DHRAM DOOT 1951 G.K.V.

COMPILED

~~R.T.-[illegible]~~

Stock Verification-20[illegible].

COMPILED

धर्मदूत

जनवरी, फरवरी, मार्च, अप्रैल,
मई, सितम्बर, अक्तूबर, नवम्बर
दिसम्बर १९५१
—९ अंक

22-22

धर्मदूत

ारनाथ महाबोधि सभा का मासिक पत्र

गुरुकुल-पत्रिका
पुस्तकालय कांगड़ी

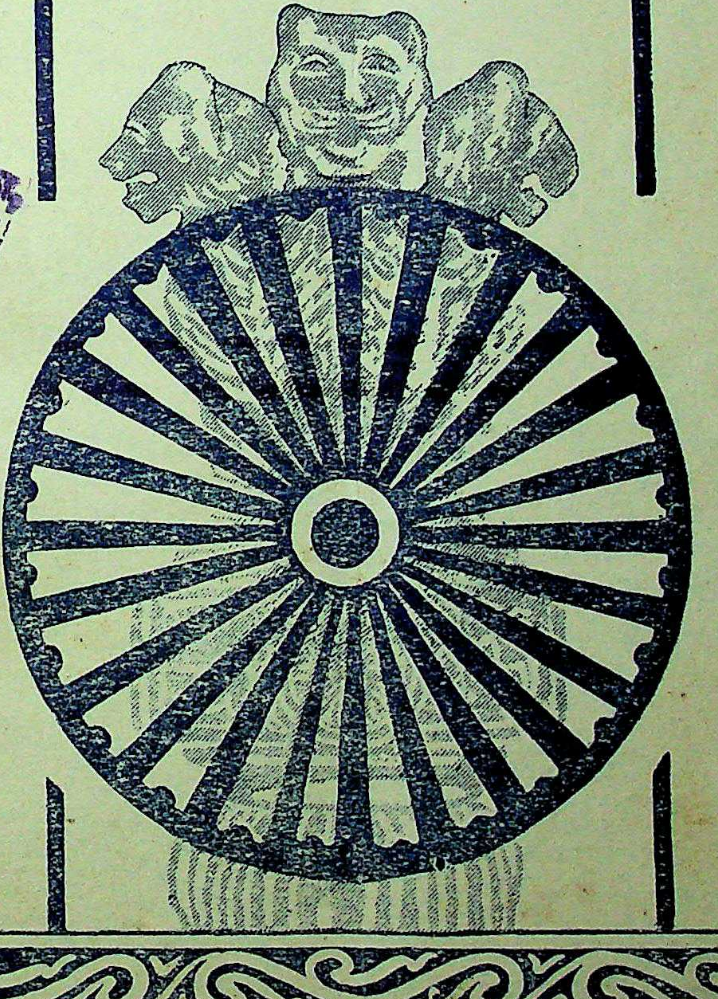

म्बर १९५१

१६

र्षिक मूल्य

विषय-सूची

विषय पृष्ठ

१. बुद्ध-वचनामृत ... २१७
२. मैत्री-भावना—अनागारिक सुगतानन्द ... २१८
३. भारत भक्त मंगोलिया—श्री लोकेश ... २२
४. बुद्ध-कीर्तन (कविता)—श्री ओंकारसिंह कुम्पावत ... २२१
५. भ्रष्टाचार और बौद्ध-शासन—श्री अनन्त रामचन्द्र कुलकर्णी ... २२
६. विचार-प्रकाशन का महत्व—श्री लालजीराम शुक्ल ... २२
७. भारतीय कला का स्वर्णकाल—श्री विजय श्रीवास्तव ... २२७
८. बुद्ध का अनुयायी (उपन्यास)—श्री राहुल सांकृत्यायन ... २२९
९. भगवान् बुद्ध का राजगृह—श्री अद्रीशचन्द्र वन्दोपाध्याय ... २३३
१०. चरिया-पिटक—भिक्षु धर्मरक्षित ... २३५
११. नवनालन्दा महाविहार—श्री बदरीनाथ वर्मा ... २३
१२. बौद्ध-जगत् ... २४३

"धर्म-दूत" के नियम—

१—"धर्मदूत" भारतीय महाबोधि सभाका हिन्दी मासिक मुखपत्र है। "धर्मदूत" प्रति पूर्णिमा को प्रकाशित होता है।

२—"धर्मदूत" के ग्राहक किसी भी मास से बनाये जा सकेंगे।

३—पत्रव्यवहार करते समय ग्राहक-संख्या एवं पूरा पता लिखना चाहिये, ताकि पत्रिका के पहुँचने में गड़बड़ी न हो।

४—लेख, कविता, समालोचनार्थ पुस्तकें (दो प्रतियाँ) और बदले के पत्र सम्पादक के नाम तथा प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र और चन्दा व्यवस्थापक के नाम पर भेजना चाहिए।

५—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने या न करने, घटाने-बढ़ाने या संशोधन करने का अधिकार सम्पादक को है। बिना डाकखर्च भेजे अप्रकाशित कविता व लेख लौटाये न जा सकेंगे। जिस अङ्क में जिनका लेख व कविता छपेगी वह अङ्क उनके पास भेज दिया जायगा।

६—"धर्मदूत" में सिर्फ बौद्धधर्म, कला, संस्कृति, साहित्य, पुरातत्व आदि सम्बन्धी लेख ही प्रकाशित किये जा सकेंगे।

७—किसी लेख द्वारा प्रकटित मत के लिये सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।

८—"धर्म-दूत" का वार्षिक मूल्य ३) और आजीवन ५) है।

व्यवस्थापक—

'धर्मदूत' सारनाथ, बनारस।

एक अङ्क का—

धर्म-दूत

RT-187

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग, (विनय-पिटक)

'भिक्षुओ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिए, लोक पर दया करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये विचरण करो। भिक्षुओ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्था में कल्याणकारक धर्म का उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो।'

सम्पादकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

वर्ष १६ } सारनाथ, दिसम्बर बु० सं० २४९५ / ई० सं० १९५१ { अङ्क ९

बुद्ध-वचनामृत

इन्द्रिय-समता

"तो क्या मानता है सोण! जब तू गृहस्थ था, तब वीणा बजाने में निपुण था?" "हाँ, भन्ते!"

"तो क्या मानता है सोण! जब तेरी वीणा के तार अत्यधिक खिंचे कसे होते थे, तब वह सुरीली रहती थी, बजाने के उपयुक्त होती थी?"

"नहीं, भन्ते!"

"तो क्या मानता है सोण! जब तेरी वीणा के तार अत्यधिक ढीले शिथिल होते थे, तब वह सुरीली रहती थी, बजाने के उपयुक्त होती थी?" "नहीं भन्ते!"

"तो क्या मानता है सोण! जब तेरी वीणा के तार न अत्यधिक खिंचे कसे होते थे और न अत्यधिक ढीले तथा शिथिल, तब तेरी वीणा सुरीली रहती थी, बजाने के उपयुक्त होती थी?"

"नहीं, भन्ते!"

"इसी भाँति सोण! अत्यधिक क्रिया-परायणता औद्धत्य उत्पन्न कर देती है और अत्यधिक शिथिलता आलस्य या जड़ता को जन्म देती है। अतः क्रिया में समता ग्रहण कर, इन्द्रियों के सम्बन्ध में समता ग्रहण कर और वहाँ कारण ग्रहण कर।"

"अच्छा, भन्ते!" कह कर आयुष्मान् सोण ने भगवान् को उत्तर दिया। (विनय पिटक, चर्म स्कन्धक १,२)

मैत्री-भावना

अनागारिक सुगतानन्द

मैत्री को पालि में 'मेत्ता' कहते हैं, जिसका शाब्दिक अर्थ प्रेम-भाव है। स्नेह से दुःख उत्पन्न होता है, किन्तु मैत्री से दुःख नहीं उत्पन्न होता, प्रत्युत जीवन में सरसता आती है और व्यक्ति एक अद्भुत प्रकार के सुख का अनुभव करता है। मैत्री के शत्रु हैं बुराई और घृणा। यदि बुराई (अकुशल) और घृणा-भाव को त्यागकर मैत्री का अभ्यास किया जाय, तो वह परम हितकर होगा।

मैत्री-भावना के गुणों को बतलाते हुए भगवान् बुद्ध ने कहा है—"जो व्यक्ति मैत्री-भावना का अभ्यास करता है, वह सुख की नींद सोता है। सोकर उठने पर भी प्रसन्नता का अनुभव करता है। वह बुरे स्वप्न नहीं देखता। सभी उसे समान भाव से प्रेम करते हैं। देवता उसकी रक्षा करते हैं। अग्नि, विष या शस्त्र उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। सहज ही उसका चित्त एकाग्र हो जाता है। चेहरे से शान्ति और गम्भीरता टपकती है और अनासक्त हो स्मृति के साथ मृत्यु को प्राप्त होता है।"

मैत्री-भावना में एक अजीब प्रकार की आकर्षण शक्ति होती है। यह अपनी दयालु और शीतल किरणों द्वारा समीप या दूर के प्राणियों पर सरलतापूर्वक प्रभाव डालती है। यह दूर के शत्रुओं को भी अपनी ओर आकर्षित करती है। यह भयानक जंगली जन्तुओं को पालतू की भाँति बना देती है। जब भगवान् बुद्ध ने अपनी जन्मभूमि कपिलवस्तु में प्रथम बार पदार्पण किया, तो उस समय उनका पुत्र राहुल, जो केवल ७ वर्ष का था उनके पास पहुँचा और वह उनकी मैत्री से इतना प्रभावित हुआ कि सहसा वह बोल उठा—"महाश्रमण! तेरी छाया सुखकर है!"

एक बार भगवान् बुद्ध कुछ भिक्षुओं के साथ कुशीनगर गये। उनके आगमन का समाचार मल्लों में शीघ्र फैल गया और उन्होंने आपस में यह तै किया कि जो भगवान् बुद्ध के सम्मान में उनकी अगवानी न करेगा, उसे पांच सौ मुद्रायें दण्ड देनी होंगी। रोजमल्ल भगवान् बुद्ध का स्वागत कर, जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गया और मित्रवत् बातचीत करने लगा। आयुष्मान् आनन्द ने कहा—"रोज! तुम कितने सज्जन हो, जो भगवान् के स्वागत के लिए इतना कष्ट किये।" रोज ने उत्तर दिया—"नहीं भन्ते! बुद्ध, धर्म या संघ के सम्मान के लिए मैंने स्वागत नहीं किया प्रत्युत हमारी जाति ने यह निश्चय किया था कि जो भगवान् का स्वागत नहीं करेगा, उसे पाँच सौ मुद्रायें दण्ड देनी होंगी। मैंने इसी दण्ड-भय से स्वागत किया।"

आयुष्मान् आनन्द इस असामयिक और नितान्त स्पष्ट उत्तर को सुनकर स्वभावतः दुःखी हुए। वे भगवान् बुद्ध के पास गए और उनसे प्रार्थना की कि रोज मल्ल को धर्मोपदेश इस प्रकार दें कि वह बौद्ध धर्म ग्रहण कर ले और श्रद्धा प्राप्त हो जाय।

तदुपरान्त भगवान् ने रोज के प्रति मैत्री-भावना का स्रोत फैलाया और अपने कमरे में जा बैठे। रोज मल्ल का सारा शरीर भगवान् बुद्ध की उस अनुपम मैत्री-भावना के द्वारा इस प्रकार प्रभावित हो उठा कि वह अपने को सम्हाल न सका। उसने अनुभव किया कि कोई गुप्त शक्ति उसे अपनी ओर खींच रही है। जैसे बछड़ा अपनी माँ के पीछे-पीछे दौड़ता है, उसी प्रकार रोज मल्ल घबड़ाया हुआ एक कमरे से दूसरे कमरे की ओर यह पूछते हुए चक्कर काटने लगा—"कहाँ हैं भगवान्? कारुणिक भगवान् कहाँ हैं? मैं आपका दर्शन करना चाहता हूँ।"

भिक्षुओं ने उसे तथागत का कमरा बतला दिया। उसने उनका दर्शन किया। धर्म का उपदेश सुना और स्रोतापन्न उपासक हो गया।

जब भगवान् बुद्ध राजगृह में भिक्षाटन के लिए जा रहे थे, तब एक नालागिरि नामक मस्त हाथी उन्हें मारने के लिए छोड़ दिया गया था। भगवान् बुद्ध ने अपनी मैत्री-भावना के प्रवाह को उसपर प्रवाहित किया। मैत्री के जादू के वशीभूत हाथी ने अपना सूँड़ झुका दिया और भगवान् के सामने पहुँचकर नम्र भाव से खड़ा हो गया।

भगवान् बुद्ध ने चरियापिटक में कहा है—"पहाड़ों की ढालों पर रहकर मैंने बड़े-बड़े शेर और चीतों को मैत्रीबल से झुका दिया था। मेरे चारों ओर शेर, चीते, तेन्दुये, भैंसे, बारहसिंगे, हिरण और जंगली सूअर जंगल में रहते

थे। न तो कोई जानवर मुझ से भय खाता था और न मैं ही। मैत्री-भावना ही मेरा एक मात्र आधार था।''

मैत्री-भावना में इस प्रकार की एक गुप्त शक्ति है, जो जंगली जानवरों को पालतू और हत्यारों को साधु बना देती है। यह गुप्त शक्ति सब लोग प्राप्त कर सकते हैं। इसे अपनाने के लिये केवल थोड़ी-सी चेष्टा की आवश्यकता पड़ती है। मैत्री का अभ्यास करो और सो जाओ। बहुत ही सुन्दर नींद आयेगी, सुनहले स्वप्नों का दर्शन होगा। प्रातःकाल खिलता हुआ चेहरा स्वागत करेगा। प्रसन्नता पूर्वक जागो और मैत्री-भावना की अनुभूति करो। प्रसन्नता और शांति से प्रत्येक के प्रति मैत्री और दया-भाव के साथ तुम्हारा दिन व्यतीत हो जायेगा। तुम्हें सभी लोग प्यार करेंगे, क्योंकि तुम सब को प्यार करते हो। कोई भी विरोधी विचार या शक्ति तुम्हें हानि न पहुँचावेगी क्योंकि तुम स्वयं मैत्री-भावना से सुरक्षित हो। तुम्हारा मस्तिष्क शांतिपूर्ण होगा। तुम स्वरचित स्वर्ग में निवास करोगे, तुम्हारा संसर्ग तुम्हारी इच्छा के प्रतिकूल कभी न होगा।

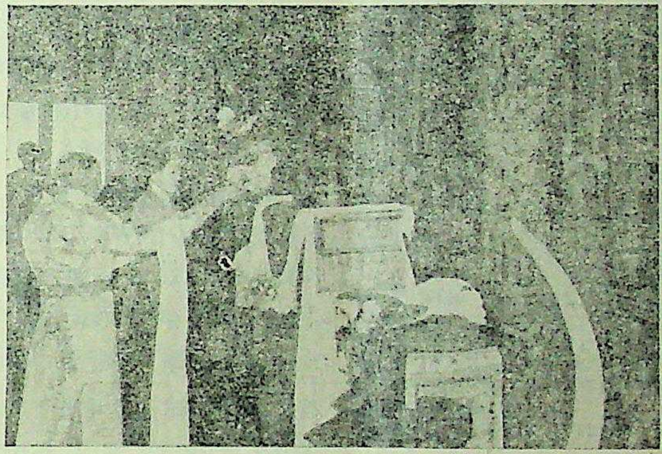

सिक्किम के महाराजकुमार और उनकी धर्मपत्नी पवित्र अस्थियों की अपने राजभवन में पूजा कर रहे हैं

मैत्री-भावना का चिंतन करो, किन्तु अपने शब्दों और कार्यों द्वारा इसे कर के दिखलाओ। तब तुम अपने को संकुचित क्षेत्र में नहीं बाँध सकोगे। क्रमशः भेद और विभेद मिटता सा जान पड़ेगा, तुम्हारा तथाकथित अहंकार सर्वभूतों में समा जायेगा। अहम् का तो कोई स्थान ही नहीं रह जायेगा और अन्त में तुम सब के बन कर रहोगे। अपने हृदय और मस्तिष्क में मैत्री-भावना लाओ। इस प्रकार एक-आध मिनट तक सोचो। तब अपने शारीरिक और बौद्धिक अंगों के कण-कण में मैत्री-भर दो और तुम मित्र के स्वरूप हो जाओगे, तब अपने चारों ओर मानसिक मैत्री का क्षेत्र बनाने की चेष्टा करोगे। और चिंतन करो कि तुम विरोधी विचारों का खण्डन कर रहे हो, तब विरोधी शक्तियों का तुम्हारे ऊपर कोई असर न पड़ेगा। तुम अपनी शुद्ध मैत्री-भावना से सुरक्षित रहोगे। अपने को सुरक्षित रख कर मैत्री-भावना अपनी चारों ओर फैला दो और सभी के पास पहुँचा दो, चाहे वह पास हो या दूर, ऊपर हो या नीचे, दृष्टिगोचर हो या नहीं। तुम दया के भावसे अनुभव करो कि सभी प्राणी सुखी रहें।

यह मैत्री का अभ्यास, एक सुन्दर आशीर्वाद होगा, एक अध्यात्मिक सुख की अनुभूति होगी। जिस सुख को शब्दों द्वारा प्रकट नहीं कर सकते। एक सच्चा बौद्ध-धर्म का अनुयायी इसका अभ्यास करे और अपने को सब में मिला दे, जाति रंग और लिंग में कोई भेद न समझे। यह मैत्री-भावना ही है जो कि एक दूसरे से विलग होने की भावना को दूर करने का प्रयत्न करती है। कोई कारण नहीं कि भिन्न-भिन्न राष्ट्रीयता के कारण एक दूसरे से दूर रहें। महाराज अशोक ने लिखवाया है कि प्रत्येक को एक दूसरे से मिलना सबसे सुन्दर है।

एक बौद्ध के लिये न तो कोई पास है और न दूर, न कोई विदेशी है और न कोई शत्रु, न कोई नीच और न कोई अछूत ; क्योंकि सद्बुद्धि से प्राप्त विश्वप्रेम ने प्राणियों के बीच भ्रातृत्व पैदा कर दिया है। एक सच्चा बौद्ध संसार का एक सच्चा नागरिक है।

अनु०—श्री पंचमराम

भारत-भक्त मंगोलिया

श्री लोकेश

एशिया भारत को स्वर्गभूमि तथा पुण्यभूमि के रूप में देखता था। भारत भूमि की दर्शन लालसा एशिया के सुदूरवासी श्रद्धापरिपूर्ण हृदयों को हमारी मातृभूमि की ओर आने के लिये प्रेरित करती थी। वे बड़ी उत्सुकता से मरुस्थल तथा दुर्गम पर्वतों के कष्टों को झेल कर अस्थि-प्रवेशी शीत तथा असह्य आतपोष्णता की अवहेलना करके, धीरे-धीरे पग बढ़ाते हुए स्वर्गभूमि की ओर अग्रसर होते और यहाँ के आचार्यों के चरण-कमलों के समीप बैठ कर विद्यामृत पान करते थे। परन्तु यह स्थिति दसवीं शताब्दी के अनन्तर बदल गयी। चीन के चिरकालिक यातायात को मध्य एशिया के शासकों ने रोक दिया एवं अन्यदेशीय भक्तों की तीर्थयात्रा में बाधा डाली। भारतवर्ष के बौद्धों को भी धार्मिक कठिनाई का सामना करना पड़ा; अतः कुछ बौद्ध आचार्यों ने नेपाल, तिब्बत आदि में शरण ली और भगवान् तथागत की 'मध्यमा प्रतिपदा' का उन देशों में प्रचार किया। इसी युग में बख्त्यार खिल्जी ने भारत के विख्यात् शिक्षा-केन्द्रों का नाश प्रारम्भ किया, तब विक्रमशिला विश्वविद्यालय के अध्यक्ष, कश्मीरनिवासी पंडित शाक्यश्री इस बर्बरता के नृत्य से विषण्ण हृदय हो नेपाल होते हुए तिब्बत को चले गये। वहाँ उन्होंने संसार के उच्चतम गौरीशंकर पर्वत से पचास मील की दूरी पर विद्यमान सास्क्या विहार में निवास किया। उस विहार के प्रधान भिक्षुने उनके भारतभूमि के आचार्य तथा प्रकाण्ड विद्वान होने के कारण उनका शिष्यत्व स्वीकार करके अपने जन्म को कृतकृत्य माना। अपने पूज्य गुरु शाक्यश्री के उपदेशों से उत्साहित होकर सास्क्या विहाराधीश ने मंगोलिया में धर्मविजय के लिए प्रस्थान किया। वहाँ पर उन्हें असीम सफलता प्राप्त हुई। एक और देश भारतभूमि को अपनी स्वर्गभूमि मानने लगा। उस देशके लोगों ने भगवान् बुद्ध को अपना श्रद्धादेव स्वीकार किया। बौद्ध धर्म सामान्य लोगों तक ही सीमित न रह कर राजधर्म बना। चंगेज़ खाँ का पुत्र आगोताई सास्क्या विहाराधीश का शिष्य बन गया। तदनन्तर आगोताई के भाई सम्राट् मनाकुखान ने एक विराट् धर्मसभा बुलाई जिसमें यशस्वी सास्क्या विहाराधीश के शिष्य फग्स्पा ने अन्य धर्मों पर महान् विजय प्राप्त की और राजकुल को बौद्ध धर्म की दीक्षा दी। यह है मंगोल देश में बौद्ध धर्म की स्थापना की कथा।

इसके पश्चात् सास्क्या विहार के किसी अधीश ने भारतीय अक्षरों के आधार पर एक लिपि बनाई। मंगोलिया के नये-नये प्रारम्भ किये हुए साहित्य को लिखने के लिए इस चीनी भाषा के समान ऊपर से नीचे लिखी जाने वाली लिपि का आविष्कार हुआ। इस लिपि का प्रयोग सम्राट् चंगेज़ खाँ तथा कुबलाई खाँ के उत्तराधिकारियों की सुवर्ण मुद्राओं पर मिलता है। आदि में लिपि गोलाकार थी परन्तु कुछ समय के पीछे चौकोर हो गयी। इसके अक्षर भारत की तत्कालवर्तिनी तथा तिब्बती लिपि से बहुत मिलते हैं और आधुनिक देवनागरी से भी कई अक्षर बहुत दूर नहीं। यदि प्राचीन मंगोल लिपि की तुलना तिब्बती तथा देवनागरी लिपियों से की जाय तो उनमें अद्भुत साम्य दिखाई पड़ेगा।

मंगोल सम्राट् बौद्धधर्म के दृढ़ अनुयायी थे और उनकी अगाध श्रद्धा का प्रमाण इस बात से मिलता है कि सम्राट् कुबलाई खाँ ने सास्क्या विहाराधीश को पश्चिमी भोटदेश (तिब्बत) का साम्राज्य अर्पण कर दिया, तदनन्तर सास्क्या विहार के अधीशों का समस्त तिब्बत पर राजनैतिक तथा धार्मिक प्रभाव बहुत बढ़ा रहा। विक्रम संवत् की सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में समाट् अलतान खाँ ने तिब्बत के दलाई लामा को जो कि उन दिनों

मंगोलिया के राजनैतिक प्रभाव में थे धर्मसेवा के निमित्त +वज्रवर (दोर्जेछाङ्) की उपाधि दी।

मंगोलिया में बौद्धधर्म के जाने से पहले कोई साहित्य न था। भगवान् बुद्ध की शरण लेने के पीछे मंगोल निवासियों ने संस्कृत से भोट भाषा में अनूदित कन्जूर नामक ग्यारह सौ ग्रन्थों से अधिक के सम्पूर्ण समूह का अनुवाद किया। यह बृहत्काय ग्रन्थसमूह आज भी संसार में विद्यमान है। परन्तु क्या भारत भी कभी इस अपने महान् गौरव चिह्न को रखने तथा अध्ययन करने का गौरव प्राप्त कर सकेगा? सम्भव है कि वह समय शीघ्र ही आ जाय।

भारतीय शब्द भी मंगोलदेश की भाषा में प्रचुरमात्रा में मिलते हैं। सूर्य की किरणों को वहाँ के सामान्य व्यक्ति को 'रश्मि' कहते हुए सुन कर किस भारतीय का हृदय उल्लसित न होगा। 'महाराज' शब्द का आज भी प्रयोग होता है। परस्पर सखा सम्बन्ध को अद्यापि मंगोल देववाणी संस्कृत के 'मैत्रि' (मंगोल भाषा में ह्रस्व इकार ही लिखा जाता है) शब्द से द्योतित करता है।

भारतीय के आश्चर्य की सीमा नहीं रहती जब वह ख़तमल् सुनता है। यह ख़तमल् मानवनिद्राभंगकारी रक्त-पिपासु खटमल (संस्कृत, खट्वामल, खाट का मल) है। पूजास्थानों तथा विहारों पर लहराती हुई ध्वजा का नाम अब भी ध्वजा ही है। विद्या का आजकल वहाँ पर अभियस् (अभ्यास का विकृत रूप) ही होता है। सम्भव है कई अशिक्षित भारतीय अभ्यास शब्द को न समझ सकेंगे। परन्तु उस देश के निवासियों के लिये यह सामान्य शब्द है। 'लोकेश्वर', 'मंजूषी' 'शाक्य-मुनि' आदि धार्मिक शब्दों से उनकी शब्दावली परिपूर्ण है। उस दूर देश में दैनिक उपासना संस्कृत में ही श्रद्धा से की जाती है। अन्त में यह जानकर प्रत्येक भारतीय का मन प्रफुल्लित होगा कि 'बोख़ारा' शब्द संस्कृत 'विहार' का विकृत मंगोल रूप है। मध्य एशिया स्थित 'बोखारा' नगर विहार शब्द का विकार है। किसी काल में यह नगर बौद्ध-विहारों से सुशोभित था।

आशा है कि भारतीय विद्वान्, छात्र और देशभक्त अपनी विस्मृत गौरवगाथा का अध्ययन, अन्वेषण तथा प्रचार करेंगे और संसार को भारत के प्रति अपने कर्तव्य का बोध करायेंगे।

+आधुनिक नगर का नाम दार्जिलिंग तिब्बती भाषा का शब्द है और उसका शुद्ध उच्चारण 'दोर्जे-लिङ्' है। इसका अर्थ वज्र आसन है।

बुद्ध-कीर्तन

श्री ओंकारसिंह कुम्पावत, अजमेर

विनय सुनो हे बुद्ध हमारी, अब हम शरण तिहारी।
शरणागत जो तुम्हरी आवत, मोक्षधाम वह निश्चय पावत॥
बलिहारी बलिहारी, दशबल तव बलिहारी!!
अंगुलिमाल दानव हत्यारा, ज्ञानचक्षु दे उसे उभारा।
उपकारी उपकारी, जय जय जय उपकारी!!
प्राणातुर हंसागिरि आया, करुणा कर तुम अभय कराया।
दुखहारी दुखहारी, जय जय जय सुखकारी!!
कोली-शाक्य की युद्ध कहानी, ध्यान मग्न हो तुमने जानी।
उपकारी उपकारी, जय जय जय उपकारी!!
पावन मृदु उपदेश सुनाया, मानव-मूल्य श्रेष्ठ बतलाया।
बलिहारी बलिहारी, भगवन् तव बलिहारी!!

भ्रष्टाचार और बौद्ध-शासन

श्री अनन्त रामचन्द्र कुलकर्णी

आजकल हम जहाँ-कहीं यहीं सुनते हैं और देखते हैं कि लोग काला बाजार और भ्रष्टाचार में व्यस्त हैं और इसीसे दुःखी हैं। इस बात को कोई भी इनकार नहीं कर सकता कि जब समाज का नैतिक स्तर गिर जाता है, तब समाज का पतन होता है। और यह पतन समाजको नाश की ओर ले जाता है। अतः समाजका नैतिक स्तर उठानाही हमारा परम पवित्र कर्तव्य हो जाता है। समाज का नैतिक स्तर ऊँचा करना ही तो समाज को सुख, शान्ति और समृद्धि की ओर ले जाना है। तो फिर समाज का नैतिक स्तर ऊँचा करने का कौनसा मार्ग है? जिस महापुरुषने अपने जीवन में नैतिक बल पर ही जोर दिया है, ऐसे महापुरुष को अपने जीवन में आदर्श रखने से हम अपना नैतिक स्तर ऊँचा उठा सकते हैं, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। बौद्ध-शासन नीति-प्रधान धर्म है—यह एक स्वयं-सिद्ध बात है। किसी भी पुरुष को जब बौद्ध धर्म की शिक्षा दी जाती है, तब उसे त्रिशरण और पंचशील की शिक्षा दी जाती है। बुद्ध, धर्म और संघ को त्रिशरण कहते हैं और पंचशील सदाचरण के पाँच नियम हैं। ये पाँच नियम कौन से हैं। (१) मैं प्राणि-हिंसा से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ ऐसा शपथ लेना सदाचार का पहिला नियम है। (२) मैं चोरी से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ—ऐसा शपथ लेना सदाचार का दूसरा नियम है। (३) मैं व्यभिचार या परस्त्री-गमन से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ—ऐसा शपथ लेना सदाचार का तीसरा नियम है। (४) मैं झूठ से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ—ऐसा शपथ लेना सदाचार का चौथा नियम है। और (५) मैं शराब आदि मादक द्रव्यों के सेवन से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ—ऐसा शपथ लेना सदाचार का पाँचवाँ नियम है। दूसरे और चौथे नियमों के पालन से हम भ्रष्टाचार और कालाबाजार को काबूमें कर सकते हैं। क्योंकि चोरी और झूठ ही तो भ्रष्टाचार की नींव हैं। हम मानते हैं कि इन नियमों का पालन व्यवहार में उतरना बहुत कठिन है। और इसी कारण जिस धर्म या शिक्षा में इन नियमों का पालन ही धर्म की नींव समझी जाती है, वही धर्म भ्रष्टाचार और कालाबाजार को रोकने के लिये समर्थ होता है। अतः बुद्ध-शासन ही भ्रष्टाचार तथा कालाबाजार पर एक प्रभावी औषधि है। शुद्ध व्यवहार ही तो धर्म की नींव है। अतः भ्रष्टाचार और कालाबाजार नष्ट करने में या कमसे कम उन्हें कम करने में पंचशील हमें बहुत मदद करेगा। अतः मेरा शासनाधिकारियों तथा सरकार से नम्र निवेदन है कि वे शालाओं में नित्य अभ्यास क्रम शुरू होने से पहिले पंचशीलका पाठ करने का क्रम शुरू करें। इससे किसी की धर्म भावना पर आघात होनेका प्रश्नही नहीं उपस्थित होता, क्योंकि ये तो सदाचार के पाँच नियम हैं और सदाचार तो सब धर्मों की नींव है।

विचार-प्रकाशन का महत्व

श्री लालजीराम शुक्ल

मनुष्य के जीवन की मौलिकता उसके विचारों में है। जो मनुष्य संसार को जितने मौलिक विचार देता है वह उतना ही महान् व्यक्ति है। संसार के महात्मा वे हैं जिन्होंने दीर्घ काल तक जीवित रहने वाले और लोगों का बहुत दिन तक कल्याण करने वाले विचार मानव जाति को दिये हैं। छिछले जीवन के लोग अपना सारा समय खाने पीने, हँसी मजाक, गप शप और आमोद प्रमोद में ही व्यतीत कर देते हैं। वे जब कभी चर्चा भी किसी बात की करते हैं तो प्रति दिन की घटनायें होती हैं इस प्रकार के व्यक्ति अपने जीवन से शीघ्र ही ऊब जाते हैं। जिस प्रकार इन्द्रिय सुख थोड़े ही काल में निरस हो जाते हैं, स्वयं इन्द्रिय इन सुखों को भोगते भोगते थोथी हो जाती

हैं, इसी प्रकार प्रति दिन होनेवाली घटनाओं की चर्चा थोड़े ही समय में रसहीन हो जाती है। फिर मनुष्य का मन इनसे ऊब जाता है। परन्तु गंभीर चिन्तन का अभ्यास न रहने के कारण फिर उन्हीं घटनाओं में वह बाध्य हो कर विचरण करने लगता है।

संसार का प्रत्येक व्यक्ति कभी न कभी गंभीर विचार तो करता है परन्तु विरला ही व्यक्ति अपने गंभीर विचारों को क्रमबद्ध बनाने की चेष्टा करता है और उनमें से विरला व्यक्ति ऐसे उपयोगी विचारों को दूसरों के समक्ष प्रकाशित करता है। अतएव बहुत से लोगों के उपयोगी विचार उन्हीं तक सीमित रह जाते हैं। इस तरह उनके अनुभव से दूसरे लोग लाभ नहीं उठा पाते। उन्हें यह भी जानने का सौभाग्य प्राप्त नहीं होता कि उनके विचार वास्तव में ठीक हैं अथवा नहीं।

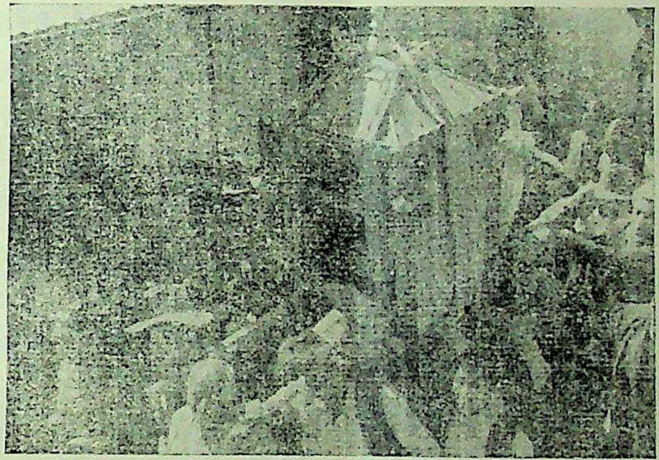

पालकी द्वारा अस्थियाँ तिब्बत जा रही हैं

विचारों के प्रकाशन के लाभ दो प्रकार के हैं—एक अपने आप सम्बन्धी और दूसरे लोक-सम्बन्धी। इन दोनों प्रकार के लाभों को ध्यान में रखने से मनुष्य अपने प्रमुख कर्तव्य को भली प्रकार से कर सकता है। विचारों का प्रकाशन उनको दूसरों को जताने की बात छोड़ कर उनके संचय मात्र की दृष्टि से भी आवश्यक है। जो मनुष्य अपने विचारों की कीमत नहीं करते वे उनका संचय करना भी व्यर्थ समझते हैं। ऐसे व्यक्तियों के व्यक्तित्व का बल भी कुछ नहीं होता। उनका लोक में सम्मान भी नहीं होता। संसार में सम्मान उसी व्यक्ति का होता है जो अपने विचारों का स्वयं सम्मान करता है, अब जो व्यक्ति अपने विचारों का सम्मान करेगा वह उन्हें संग्रहीत करने की भी चेष्टा करेगा। मनुष्यके विचार उसके आध्यात्मिक बच्चे हैं। जिस प्रकार अपने बच्चों को प्यार करना और उनका आदर करना माता पिता को जगत में सम्मानित बनाता है उसी प्रकार अपने विचारों का मान करना अपने जीवन को लोक में सम्मानित बनाता है। इस दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति को प्रति दिन अपने मौलिक विचार अपनी मूल्यवान् पुस्तक में लिखते रहना चाहिये। इस कार्य में आलस्य करना अपने आप को ही खो देना है।

विचारों के प्रकाशन से विचार स्वयं विचार के जन्मदाता को ही स्पष्ट होते हैं। जब तक हम किसी विचार को भाषा में प्रकाशित नहीं करते तब तक वह विचार हमें ही स्वयं ज्ञात नहीं होता। किसी विचार को बोल कर अथवा लिखकर प्रकाशित किया जा सकता है। बोलकर विचार को प्रकाशित करना लिखकर प्रकाशित करने से सरल है, परन्तु बोल कर विचार के प्रकाशित करने का उतना अधिक लाभ भी नहीं है। बोल कर प्रकाशित किया गया विचार न तो उतना क्रमबद्ध होता है जितना लिख कर प्रकाशित किया गया और न वह उतना स्थायी ही होता है। परन्तु कितने ही लोगों का बोला हुआ विचार दूसरे लोगों के लिखित विचार से अधिक आयुष्यवान् होता

है। और कितने ही लोग लिखने में अपना समय व्यर्थ ही गवाँते है। जो विचार व्यापक विषय पर जन साधारण के हित के लिये प्रकाशित किया जाता है वही मौलिक है।

कहा जाता है कि गणित के महान् पंडित आइन्सटाइन महाशय को अपनी रिलेटिविटी की थ्योरी की सत्यता पर तब तक विश्वास नहीं हुआ जब तक उसे उन्होंने अपने एक मित्र को नहीं समझा दिया। जब तक वह मित्र उस सिद्धान्त को नहीं समझा तब तक स्वयं ही अपने सिद्धान्त पर भरोसा नहीं हुआ। हम जिस विषय को भली प्रकार से समझना चाहते हैं उसे किसी व्यक्ति को पढ़ाने में लग जाना भला है। किसी विषय को दूसरे को समझाते समझाते वह स्वयं अपनी ही समझ में आ जाता है। समझानेवाला उस विचारमें अभ्यस्त अवश्य हो जाता है और इसके कारण वह उस विषय के मुख्य तत्वों को कभी नहीं भूलता। कितने ही विद्यार्थी अपने अधीत विषय में परीक्षाओं को पास करके उन्हें भूल जाते हैं। इसका कारण उन विषयों-सम्बन्धी बातों का अभ्यास मिट जाता है। किसी भी विषय का सच्चा ज्ञान उस विषय की पुस्तक पढ़ने से नहीं होता। यह ज्ञान उस विषय पर चिन्तन करने और अपने विचार दूसरे लोगों के समक्ष प्रकाशित करने से होता है।

विचार को प्रकाशित करने से वे न केवल अधिक ज्ञात हो जाते हैं, वरन् वे पक्के भी हो जाते हैं। विचार बार बार प्रकाशित किये जाने पर जन्मदाता की केवल राय न रह कर उसके जीवन के सिद्धान्त बन जाते हैं। जब कोई मनुष्य अपने विचार दूसरों के समक्ष प्रकाशित करता है तो उसे यह ध्यान में रखना पड़ता है कि वे कितनी दूर तक दूसरों द्वारा ग्राह्य होंगे। जिन विचारों को बार बार प्रकाशित किया जाता है उन पर इस प्रकार की आलोचक दृष्टि बार बार पड़ती है। इस प्रकार विचारों का भोंदापन निकल जाता है। उनकी भाषा परिमार्जित हो जाती है, वे अनेक प्रकार से अलंकृत हो जाते हैं। नई युक्तियों और कल्पनाओं के साथ आ जाने से वे आकर्षक बन जाते हैं।

मनुष्य के विचारों में सदा परिवर्तन होते रहते हैं। कभी कभी यह परिवर्तन विनाशात्मक और कभी कभी यह विकासात्मक होता है। हम अपने विचारों की प्रगति को तभी जान सकते हैं जब कि हम उनका लेखा अपने पास रखें। यह बात तो निश्चित ही है कि जो कुछ हम कल सोचते थे वही आज नहीं सोचते, या तो हम आगे बढ़ गये हैं अथवा पिछड़ गये हैं। परन्तु इसके जानने के लिये हमें अपने विचारों को प्रति दिन लिखते जाना आवश्यक है। जो मनुष्य अपने जीवन को मूल्यवान बनाना चाहता है उसे सदा इस बात पर ध्यान रखना पड़ता है कि वह कल कहाँ था और आज कहाँ है। नये पथ को खोजने के लिये भी अपने ही पुराने विश्वासों को ध्यान में रखना आवश्यक है। कोई भी नया विचार एकाएक नहीं आता। कल का विचार आज के विचार से ही उत्पन्न होगा। आज के विचार के सुधारने से कल का विचार सुधरेगा। परन्तु आज का विचार सुधरने के लिये उसका प्रकाशित होना आवश्यक है।

कोई भी विचार अपने आप सोचने के समय एक प्रकार का होता है और दूसरों के समक्ष प्रकाशित करते समय वह दूसरे प्रकार का हो जाता है। इसी तरह बोले हुये और लिखे विचार का स्वरूप भिन्न भिन्न होता है। जब हम किसी विचार को प्रकाशित करने के लिये तैयार होते हैं—चाहे हम बोल कर अथवा लिख कर प्रकाशित करें—हम उसके पूरे रूप को नहीं जानते। प्रकाशित होते समय ही विचार अपना रूप लेता है। जिस प्रकार बच्चे के जन्म लेने तक बच्चे के विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि बच्चा कैसा होगा—दुर्बल अथवा बलवान, सम्पूर्ण अंगवाला अथवा अंग भंग, गोरा अथवा साँवला—इसी प्रकार विचार के जन्म होने तक उसके अन्तिम रूप के विषय में कोई कल्पना नहीं की जा सकती। इस तरह विचारों का स्पष्ट भाषा में प्रकाशन उन्हें रूप देने का उपाय है।

विचारों का प्रकाशन मनुष्य का आत्म-ज्ञान बढ़ाने का सर्वोत्तम साधन है। मनुष्य के मौलिक विचार केवल उसके व्यक्तिगत चिन्तन के परिणाम नहीं होते। इन विचारों में समष्टि चेतना कार्य करती है। लेखक अथवा वक्ता इन विचारों के लिये केवल यंत्र मात्र का काम करता है। जो लेखक अभिमान को त्याग कर जितना ही अन्तः

चेतना को सहज भाव से काम करने देता है वह उतना अधिक अपने लेख को उपयोगी और दीर्घजीवी बनाता है। लेखक को कभी यह अभिमान न करना चाहिये कि वह जो कुछ एक बार लिख गया वह उसे बार बार लिख सकता है। जो बात लिखी जाती है वह उस समय के पूरे मन की परिस्थिति का परिणाम होती है और एक मानसिक परिस्थिति एक ही बार आती है वह बार बार नहीं आती, अतएव यदि किसी मनुष्य को कोई भला विचार आगया तो उसे तुरंत ही लेखबद्ध करने की चेष्टा करनी चाहिये। यहाँ यह भाव रखना आवश्यक है कि जो व्यक्ति अपनी चेतना में आये मौलिक विचारों का आदर नहीं करता उसे मौलिक विचार बार बार नहीं आते। बुरे विचार बाहर ढकेल देने पर भी बार बार जबरन मन में घुस आते हैं, परन्तु भले विचार तो बड़ी तपस्या के बाद मन में आते हैं और थोड़े से ही अनादर से सदा के लिये मन से लोप हो जाते हैं।

मनुष्य अपने भले विचारों का स्वागत करके अपनी मानसिक शक्ति से परिचित होता है। मनुष्य के अपने विचार अपनी सम्पत्ति हैं। इस सम्पत्ति के आधार पर ही वह अपने जीवन का व्यवसाय चला सकता है। दूसरों के विचार मनन द्वारा अपने बनाये जा सकते हैं। परन्तु जब तक दूसरे लोगों के विचारों को मनन करके हमने हजम नहीं कर लिया तब तक वे अपनी सम्पत्ति नहीं कहे जा सकते। ऐसे विचार हमारे व्यक्तित्व का बल नहीं बढ़ाते। मनुष्य के अपने ही विचार उसके संकट के समय काम आते हैं। जब हम किसी काम में फँस जाते हैं तो हमें अपने हेतुओं पर और सिद्धान्तों पर विचार करना पड़ता है। जिस व्यक्ति के दार्शनिक विचार जितने ही अधिक सुलझे रहते हैं वह जीवन पथ में उतना ही कम भटकता है। प्रत्येक मनुष्य अपने विचारों को अपने ही प्रयत्न से एकाकी बना सकता है अर्थात् उन्हें सुलझा सकता है। यह कार्य विचारों को बार-बार प्रकाशित करने से सरलता से हो जाता है।

विचारों के प्रकाशन से मनुष्य की इच्छाशक्ति दृढ़ होती है। मनुष्य जिन विचारों को मौलिक समझता है वे उसके ही हो जाते हैं चाहे उन्हें उसने पहले पहल किसी से भी क्यों न पाया हो। इमरसन महाशय के इस कथन में मौलिक सत्य है कि विचार उसी व्यक्ति की निधि है जो उसका स्वागत करता है और जो उसका उचित उपयोग कर सकता है। अपने विचार वे सभी हैं जिन्हें हम अपने ढंग से सोच डालते हैं और अपने ढंग से उनको प्रकाशित करते हैं। इस प्रकार के विचारों के व्यवसाय से मनुष्य के विचार एक केन्द्र की ओर अग्रसर होते हैं। प्रकाशित विचार में एकीकरण का भाव वर्तमान होता है। प्रकाशन के कार्य में ही विचारों का पारस्परिक विरोध विलीन हो जाता है। इस प्रकार विरोध के निराकरण से ही मनुष्य अपने निश्चय पर दृढ़ रह सकता है। जिस मनुष्य के विचार जितने सुगठित होते हैं उसकी शक्ति उतनी ही बलवती होती है। ऐसा व्यक्ति बाहर से आये व्यर्थ के अनुपयोगी, विचारों का सरलता से निराकरण कर लेता है।

मनुष्य के मन में अनेक प्रकार के निरर्थक विचार उठा ही करते हैं। इस प्रकार के विचारोंको बौद्ध दार्शनिकों ने वितर्क कहा है। जो मनुष्य अपने मन को जितना ही अधिक दार्शनिक विचारों से मुक्तकरता है वह उसे वितर्कों के लिये उतना ही अधिक खाली कर देता है। जिस का चित्त एकाग्र है उसे ही वितर्क नहीं उठते। यह चित्त की एकाग्रता विचारों के प्रकाशन में जितनी अधिक आती है उतनी और किसी बात में नहीं आती। फिर दार्शनिक बातों के प्रकाशन की एकाग्रता दूसरे प्रकार के विचारों के प्रकाशन में आई एकता से कहीं अधिक महत्त्व रखती है। अतएव विचारों के प्रकाशन का अभ्यास चित्र को एकाग्र करने और इच्छा शक्ति को बलवती बनाने का सबसे महत्व का अभ्यास है। जो मनुष्य अपने विचारों को सदा लिखने का अभ्यास रखता है वह बाध्य विचार, अकारण संशय, भ्रम आदि रोगों का कदापि शिकार न होगा। उसके अनेक मानसिक रोग अनायास ही नष्ट हो जावेंगे।

मनुष्य की इच्छाशक्ति क्रिया से बढ़ती है। केवल पुस्तकों के पढ़ने से मनुष्य की इच्छाशक्ति बलवान न होकर प्रायः निर्बल होती है। पुस्तक के पढ़ने में रुचि रखना अपने विचारों में वृद्धि करने की दृष्टि से भला है।

परन्तु इसमें भारी परिश्रम होता है। इस परिश्रम से लोग जी चुराते हैं। पुस्तक पढ़नेवाले को पुस्तक समाप्त कर देने की जल्दी पड़ी रहती है। कभी कभी पुस्तक केवल मनोरंजन मात्र की वस्तु होती है। चिन्तन करते हुए पुस्तक को पढ़ना भला है। परन्तु जल्दी जल्दी पुस्तक के विचार ज्यों के त्यों ग्रहण करना अथवा केवल मनोरञ्जन की दृष्टि से पुस्तक को पढ़ना इच्छा शक्ति के बल की वृद्धि की दृष्टि से हानिकारक है। मनोरञ्जन से इच्छाशक्ति का बल घटता है। इसी प्रकार दूसरे लोगों के विचार जब तक अपने विचारों से मिल नहीं जाते तब तक मन में दो धाराओं अथवा अनेक धाराओं को उपस्थित कर देते हैं। इससे मन का बल घट जाता है।

देखा गया है कि कितने ही लोग हाथ में पुस्तक लिये रहते हैं। वे उसे बाँचते भी हैं परन्तु उनका मन चारों ओर दौड़ता रहता है। इस प्रकार मन के भीतर दो धाराओं के बहने का अभ्यास अधिक दिन तक रहने से मनुष्य का मन निर्बल हो जाता है। जब मनुष्य अपने विचार प्रकाशित करने लगता है तो उसके मन के इस विभाजन का अन्त हो जाता है। किसी भी काम के करने से चित्त की एकाग्रता होती है। परन्तु यह चित्त की एकाग्रता बौद्धिक कार्य करने से और भी अधिक होती है। शारीरिक कार्य करते समय कभी शरीर एक काम करता रहता है और मन दूसरा काम करता रहता है। परन्तु कठिन बौद्धिक कार्य करते समय ऐसा नहीं होता।

विचार का प्रकाशन मनुष्य के चरित्र-गठन का सर्वोत्तम साधन है। मनुष्य के अपने विचार बाहरी वस्तु सम्बन्धी हो सकते हैं अथवा जीवन के दर्शन सम्बन्धी। पिछले प्रकार के विचार जीवन के दर्शन के निर्माण में बहुत सहायक होते हैं। ये विचार जीवन के लक्ष्य को, जीवन के सब से ऊँचे मूल्यों को निर्धारित करते हैं। चरित्र गठन बिना आदर्शों की कल्पना के नहीं होता। फिर मनुष्य के जैसे विचार होते हैं उसका आचरण भी वैसा ही होता है। प्रकाशन से विचारों में दृढ़ता आती है। यही दृढ़ता फिर मनुष्य के आचरण में चरितार्थ होने लगती है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है, वह मनुष्य के व्यक्तिगत लाभ की दृष्टि से कहा गया है। परन्तु विचारों का प्रकाशन एक सामाजिक घटना है। उसका असर समाज पर होता है। यदि मनुष्य के विचार भले हैं तो उनके न केवल विचार के जन्मदाता का लाभ होगा वरन् उन लोगों का भी लाभ होगा जो उस विचार को मानेंगे। देश के नेता इसी प्रकार जनता का कल्याण करते हैं। कितने ही विचारों को हम उपयोगी नहीं मानते, परन्तु वे किसी न किसी व्यक्ति के जीवन में भारी महत्व का काम कर जाते हैं। सभी विचार सभी लोगों के लिये उपयोगी नहीं होते। कोई विचार एक मनुष्य को मूल्यवान् सूझता है और दूसरा विचार दूसरे व्यक्ति को। जब कई मौलिक विचार मनुष्य को प्राप्त रहते हैं तो वह उनमें से किसी एक को चुन लेता है और अपने जीवन में उसे चरितार्थ करने की चेष्टा करता है।

जिस मनुष्य को अपने विचारों को सदा प्रकाशित करते रहने का अभ्यास है वह एक दिन अपने आप को संसार के सम्मानित व्यक्तियों में पा लेगा। खूब सोचकर निरभिमान भाव से लिखा गया विचार जनता के हृदय में बैठ जाता है। फिर वह एक व्यक्ति से दूसरे पर चला जाता है, इस प्रकार वह सारे राष्ट्र अथवा विश्व भर में फैल जाता है। मनुष्य के विचार में अद्भुत शक्ति है। मनुष्य अपने विचार के विषय में जैसा निश्चय करता है वह वैसा ही बन जाता है। जब तक किसी विचार का तिरस्कार स्वयं विचार का जन्मदाता ही नहीं कर देगा वह धीरे धीरे फैलते जाता है। विचार विचार को जन्म देता है। इस प्रकार संशय रहित विचार अनेक विचारों का केन्द्र बन जाता है। इस प्रकार वह संसार में प्रसरित हो जाता है।

विचार जब कल्पना का रूप लेता है तो वह नवीन वास्तविक सृष्टि का जन्मदाता बन जाता है। मनुष्य जैसे मनोराज्य में रहता है उसी प्रकार के वास्तविक संसार में रहने की वह इच्छा करता है। किसी मनुष्य के जीवन की कीमत उसके बाहरी रूप-रंग, क्रिया-कलापों से नहीं आँकी जा सकती, उसके जीवन की कीमत उसके आदर्शों और कल्पनाओं से ही आँकी जाती है। परन्तु किसी भी

कल्पना को व्यापक बनने के लिये उसका प्रकाशित होना नितांत आवश्यक है । एक व्यक्ति की कल्पना ही अनेक व्यक्तियों की कल्पना बनकर उनके कार्यों का स्रोत बन जाती है । फिर कल्पना ही संसार की बड़ी बड़ी घटनाओं का कारण बन जाती है । रूस की राज्यक्रान्ति की कल्पना मार्क्स की साम्यवाद की कल्पना, महात्मागांधी की स्वराज्य की कल्पना प्रकाशित होकर ही व्यापक परिवर्तनों का कारण बनी ।

भारतीय कला का स्वर्णकाल

श्री विजय श्रीवास्तव

शारीरिक उन्नति के साथ-साथ मानसिक उन्नति होने से मनुष्य का जीवन सार्थक हो जाता है । उसकी सारी शक्तियों में एक प्रकार का सामंजस्य स्थापित हो जाता है । सर्वतोमुखी प्रगति मानव की उन्नति का मापदण्ड है । यह तभी सम्भव हो सकता है जब सांसारिक चिन्तायें

जड़ और चेतन जगत् का अपूर्व-सन्तुलन उतनी सुन्दरता के साथ न हो सका, जितनी बौद्ध-काल में । शरीर तो जड़ है ही, मानस चेतन है । इन दोनों शक्तियों का केन्द्रित होना ही आत्म-बल का द्योतक है । इस धारा के प्रवाहित होने का स्रोत कला एवं साहित्य—ये दो ही मार्ग हैं ।

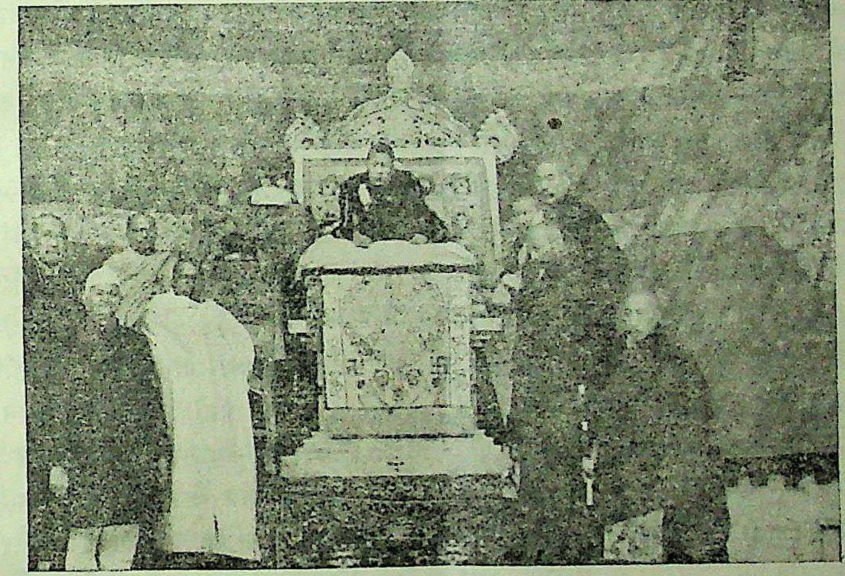

दलाई लामा के साथ महाबोधि सभा के प्रतिनिधि

बायें—(१) भिक्षु जगदीश काश्यप (२) डा० सॉफ्ट (३) भिक्षु संघरत्न (४) तिब्बत के प्रधान मंत्री

दायें—दलाई लामा के शिक्षक और धार्मिक कार्यों के मंत्री लोग

न सतायें, आपस के द्वेष से मानव-हृदय विपाक्त न हो, समृद्धि-ऐश्वर्य का राज्य हो एवं सात्विक भावनायें एक रूप से जागृत हों । ये सभी युग धर्म हैं । इन सभी का प्राबल्य समय-समय पर होता है ।

बौद्ध-काल हमारे देश के इतिहास का स्वर्णयुग माना गया है और यह सदा ही हमारा पथ-प्रदर्शन करता रहेगा । ये ही वे स्रोत हैं जिनके द्वारा मनुष्य अपनी कल्पना-शक्ति की महानता का प्रदर्शन कर सकता है ।

बौद्ध-काल को हम तीन प्रधान युगों में विभक्त कर सकते हैं:—

(१) भगवान् बुद्ध से लेकर पाँच सौ वर्ष तक।

(२) ई० सन् के प्रारम्भ से लेकर छठीं शताब्दी तक, जिसे हम कला का युग भी कह सकते हैं।

(३) सातवीं शताब्दी के बाद का समय। यह तांत्रिक युग के नाम से भी पुकारा जाता है।

प्रथम युग का सर्वप्रमुख विद्याकेन्द्र तक्षशिला था। इसी विद्यालय में पाणिनि, और चाणक्य जैसे विद्वानों की शिक्षा हुई थी। प्रथम तो यह वैदिक धर्म का विद्या-केन्द्र था, परन्तु धर्मचक्र प्रवर्त्तन के पश्चात् यहाँ पर बौद्ध भिक्षु भी पढ़ने-पढ़ाने लगे और यह बौद्ध विद्या-केन्द्र के रूप में परिवर्तित हो गया। दूसरे काल का प्रधान शिक्षा केन्द्र नालन्दा था। ह्व नसांग ने जो भारत में ई० स० ६२१ से ६४६ तक रहा, इसके बारे में खूब लिखा है। इस विश्वविद्यालय में १०,००० विद्यार्थी (भिक्षु) और १५०० अध्यापक थे। विशाल मठ, विहार और उनके बीच में बने सभागृह और विद्यालय। शिक्षा निःशुल्क दी जाती थी। द्वार-पण्डित प्रवेश पाने के पूर्व विद्यार्थी की परीक्षा लेता था। इससे केवल योग्य व्यक्ति ही यहाँ पर विद्यार्थी होने का सौभाग्य पा सकते थे। ई० सन् ७०० में उत्तरी भारत में महाराज हर्ष का उत्कर्ष हुआ। जिनके ऐश्वर्य की दुन्दुभी हिमालय से नर्वदा तक बजी। बाणभट्ट और ह्व नसांग इनके दरबार में सम्मानित हुये। यही समय शिल्प-युग भी कहा जाता है। बुद्ध-गया का मन्दिर उड़ीसा में भुवनेश्वर का मन्दिर, इस काल के इन्डो-आर्यन शैली के अद्भुत उदाहरण हैं। कला का स्वर्णीय इतिहास प्रायः ३०० वर्ष (ई० पू०) से लेकर ७०० ई० सन् (प्रायः १००० वर्षों) तक गिना जाता है। गुप्त सम्राट् और बड़े सामन्तों के उत्साह और कला-प्रेम द्वारा ही यह संभव हो सका कि भारतवर्ष अपनी उन्नति के उत्कर्ष पर पहुँचा। इस काल की कला धार्मिक भ्रातृत्व का एक अपने ढंग का अनुपम और अद्भुत उदाहरण है जिसमें बौद्ध भिक्षु और हिन्दू वैष्णवों ने एक साथ मिलकर इतनी उच्चकोटि की कला का निर्माण किया। इन दो विभिन्न आदर्शों के साथ-साथ कार्य करते रहने पर भी हम उनमें कहीं भी संघर्ष नहीं पाते। इनका प्रेम यही दिखलाता है कि वे सर्वधर्मों की एकरूपता को समझ गये थे जिसके कारण वे अपने जीवन के साथ समन्वय और सामंजस्य स्थापित कर सके थे और जीवन की तुच्छ घटनाओं और अन्तरों के परे जा चुके थे। प्रकृति के अंतःरूप से उन्होंने एकता स्थापित कर ली थी। जिसका फल यह हुआ कि वे प्रकृति के विभिन्न और प्रतिक्षण बदलते हुए भावों को इतनी सत्यता एवं सुन्दरता के साथ गुफाओं की दीवारों पर अंकित कर एक निश्चित रूप प्रदान कर सके।

अजन्ता गुफाओं का चित्रण करने में बौद्ध भिक्षुओं का उद्देश्य केवल अपना मनोरंजन मात्र ही न था। वरन् इन तमाम दीवारों को हम एक विस्तृत "आलबम" कह सकते हैं। जो यात्रियों और बौद्ध धर्म में नवागत श्रद्धालुओं के लिए भगवान् के पूर्व-जीवन की घटनाओं से अवगत कराना था। कहीं-कहीं तो कुछ चित्र संघ की विचारधारा के सर्वथा विपरीत हैं, जिनपर कि वाममार्ग की छाप पड़ी है। इसके साथ-साथ उन चित्रों से हम उस काल के सामाजिक जीवन की एक झलक पा जाते हैं। बोरोबदूर की मूर्तियों की भाँति अजन्ता के कुछ चित्र (भगवान् का गृह-आगमन, यशोधरा और राहुल, बोधिसत्त्व, बृद्ध-दूत) संसार के श्रेष्ठतम कलाकृतियों में स्थान पाते हैं।

प्रायः यह कहा जाता है कि भारतीय चित्र यूरोपीय चित्रों से निम्न होते हैं, अथवा उतने "रियलिस्टिक" नहीं। पर यह विचारधारा कहाँ तक ठीक है, इसकी सत्यता का अन्दाज अजन्ता बाघ आदि के गुफा-चित्रों को देखकर किया जा सकता है। और फिर हैवल या ग्रिफिथ इतने पागल न हो जाते इन चित्रों को देखकर। इन गुफाओं के भित्तिचित्र भारतीय कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। ये गुफाचित्र उस समय अंकित किये गये जिस समय भारतीय कला अपनी उन्नति के उच्चतम शिखर पर थी और भिक्षु कलाकारों ने अपने भावों को व्यक्त करने में कोई भी कसर उठा न रक्खा। वे अद्वितीय हैं। बौद्ध शिल्प योगियों ने कला के द्वारा अपनी साधना को पूर्णत्व प्रदान किया। उन्होंने कला को अपने पार्थिव लाभ अथवा निम्न भावनाओं की तुष्टि

का साधन न बनाकर ज्ञान की प्राप्ति का साधन बनाया। यदि ऐसा न होता तो वे क्यों इतने बीहड़-वीरान जंगलों में अन्धकारमय कन्दराओं में, पहाड़ों को काटने में अपनी शक्ति व्यय करते। साधारण मनुष्य की पहुँच के बाहर कोई वस्तु नहीं; इसी शरीर के द्वारा मनुष्य अपने ध्येय को प्राप्त कर सकता है, यही सिखाते हैं हमें ये गुफा-चित्र। यह ध्येय है, मनुष्य का अपनी समस्त शक्तियों के साथ ऐक्य स्थापित करना, अपने पूर्णत्व को प्राप्त करना। यह कार्य कठिन नहीं, यदि हममें सच्ची लगन है, सच्चा प्रेम है। कला अथवा साहित्य का भी यही ध्येय है; और अजन्ता आदि गुफाओं में हम यह स्पष्टरूप से चित्रित पाते हैं (भगवान् के जीवन में) कि मनुष्य कला-साधना द्वारा परमानन्द को प्राप्त कर सकता है। और ये गुफा-चित्र हैं उस संभाव्य एकता के प्रदर्शनमात्र।

उपन्यास का एक अध्याय

बुद्ध का अनुयायी

श्री राहुल सांकृत्यायन

[२]

भामा—'तो तुमने बुद्ध के धर्म को सुना है देवर !'

मैं—'संस्थागार में एक दिन चर्चा चली थी, उसी दिन किसी ने कहा था भाभी ! और यह भी सुना था कि वह अपने धर्म के स्वीकार-अस्वीकार की बात आदमी की अपने बुद्धि और अनुभव पर छोड़ते हैं।'

भामा—'तो तुमने बुद्ध के धर्म के बारे में काफी सुना है ?'

मैं—'बस मेरे सुनने का कोष समाप्त समझो। हाँ, संघ क्या है ?'

भामा—'बुद्ध और धर्म को मार्गख्यायी और मार्ग मानकर जो स्त्री-पुरुष—भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक-उपासिका—यथाशक्ति उसपर चलने का प्रयत्न करते हैं; वही संघ है। व्यक्ति को अपने निर्णय पर सच्चाई की कसौटी में परखने के लिये यदि एक से अधिक बुद्धि और अनुभव की सहायता प्राप्त हो; तो उसका काम भी सुकर हो जाता है, और उसे सही निर्णय पर पहुँचने की सम्भावना ज्यादा होती है।'

मैं—'भामा ! मैं तो समझता था—'

भामा—'कि तुम मनोरथ की जोरू हो, बड़ी बातूनी हो, कुछ जोशीली भी हो—क्या यही न कहना चाहते हो देवर ?'

मैं—'लेकिन, मुझे जो कहना है, उसे अपने शब्दों में कहने दो भाभी !'

भामा—'तो मैंने कौन सी पंडिताई दिखलाई है, जिसके लिए तुम तारीफ का पुल बनाना चाहते हो। यह ऐसी बातें हैं, जिन्हें चार दिन की भी बुद्ध-श्राविका जान सकती है, मुझे तो डेढ़ मास हो गये उपदेश सुनते।'

मैं—'और भाभी ! तुमने मुझे कभी न बतलाया, न कभी यहाँ आने के लिए कहा।'

भामा—'मैं समझ रही थी, कि नंगटों का पंथ मेधावी आदमी को कभी रोक कर नहीं रख सकता, समय की प्रतीक्षा करने की जरूरत है।'

मैं—'लेकिन मुझे तो निगंठ पंथ अब भी रोके हुए है ?'

भामा—'यह आश्चर्य है देवर ! मैंने सुना है कि निगंठ अपने श्रावक या श्राविका को किसी दूसरे धर्म का उपदेश सुनने की कड़ी मनाही करते हैं—अच्छा अब

हम कूटागार के नजदीक आ गये हैं, अब हमें बात बन्द कर देनी चाहिए।'

फाटक के भीतर घुसते वक्त वहाँ की नीरवता को देखकर मैंने भामा के कान में पूछा—'भाभी! यहाँ श्रमण गौतम अकेले ही रहते हैं?'

भामा—'नहीं, उनके पाँच सौ भिक्षु, और अब तो सैकड़ों गृहस्थ शिष्य और शिष्यायें भी आई होंगी।'

मैं—'लेकिन कोई शब्द सुनाई नहीं देता।'

भामा—'बुद्ध नीरवता को पसंद करते हैं, उनके शिष्य भी अपने शब्द द्वारा दूसरे को परेशान नहीं करना चाहते।'

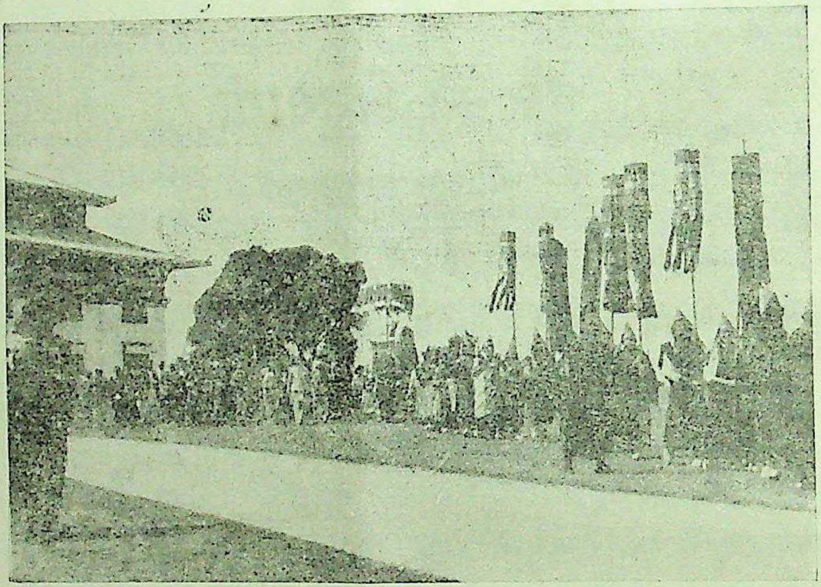

सिक्किम के लामाओं के जुलूस के साथ अस्थियाँ गान्टोक जा रही हैं

हम अब बुद्ध की दिव्य सौम्य मूर्ति के सामने पहुँच गये थे। एक ओर कूटागार भी उनकी अपनी कुटी—गन्ध कुटी—थी, जिसके सामने के बड़े आँगन में—आज वर्षा न थी, नहीं तो फूस के बड़े धर्म मंडप में होते—गंधकुटी के पास एक आसन पर बुद्ध आसीन थे। उनके पीछे दाहिनी ओर अरुण वर्ण के काषाय को पहिने बहुत से भिक्षु विनीत भाव से बैठे हुये थे, और बायें ओर कितनी ही काषाय वसना भिक्षुणियाँ थीं। सामने की ओर अलग-अलग गृहस्थ स्त्री पुरुष बैठे थे। हर एक व्यक्ति नजदीक या दूर से श्रमणगौतम की वन्दना करता, फिर चुपचाप अपने अनुकूल स्थान पर बैठ जाता। भामा माँ के साथ होकर स्त्री में जा बैठी। मुझे यह व्यवस्था बड़ी सुन्दर मालूम हुई। चूँकि श्रमण गौतम से कुछ-प्रश्न करने थे, इसलिये मैं उनके पास गया, फिर बन्दना कर एक ओर भूमिपर बैठते हुये मैंने कहा—

'भन्ते गौतम! हम बहुकृत्य बहुकरणीय हैं, लिच्छवि सेनापति का काम ऐसा ही होता है। कै दिनों से आपके दर्शन तथा कुछ प्रश्न करने के लिये आना चाहता था, किन्तु विघ्न बाधाओं के कारण नहीं आ सका।'

बुद्ध—'तो तुम लिच्छवि सेनापति सिंह हो। शत्रु के घायलों के लिये तुमने जो उदारता दया दिखलाई वह बहुत प्रशंसनीय था। शत्रु भी शामिल कर लिया जाये, तो मैं इसे मानव में देवभाव आया कहता हूँ।'

मैं—'लेकिन यह भन्ते! थोड़ा सा काम था।'

बुद्ध—'काम थोड़ा नहीं था, और काम का महत्व उसके थोड़े अधिक पर निर्भर नहीं है, वह निर्भर है हृदय के छोटे बड़े होने पर। खैर, मैंने तुम्हारे और भी गुण सुने हैं, इसी युद्ध के अवसर पर। मैं जानता हूँ, तुम बहुकृत्य बहुकरणीय हो, अच्छा जो प्रश्न करना चाहते हो करो।'

मैं—'भन्ते! आपके विरोधी कहते फिरते हैं कि श्रमण गौतम नास्तिक है, आत्मा और परलोक को नहीं मानता।

जो लोग आपके बारे में ऐसा कहते हैं, क्या वह सच कहते हैं या आपके ऊपर झूठा आरोप करते हैं।'

बुद्ध—'हाँ, सेनापति! वह सच कहते हैं, मुझपर झूठा आरोप नहीं करते। मैं किसी ऐसे आत्मा को नहीं मानता जो दो पल भी वही हो, एक सारे जन्म, या एक शरीर से दूसरे शरीर में जानेवाले नित्य ध्रुव आत्मा की तो बात ही क्या है। क्या सेनापति! तुम अपने को वही समझते हो, जो तुम पाँसु क्रीड़ा करते वक्त थे?'

सिंह—'यह ठीक कहा भगवन्! मुझे बराबर ख्याल आता था कि मैं बराबर अपने ज्ञान, अपनी रुचि, अपनी प्रवृत्ति में परिवर्तन देख रहा हूँ, मुझे सन्देह होता था कि तक्षशिला से लौटते वक्त वही नहीं था जो कि तक्षशिला जाते वक्त। मैंने दोनों अवस्थाओं में जो भारी परिवर्तन देखे। सिर्फ शरीर के देखने और लोगों के आत्मा-आत्मा चिल्लाने के ही कारण मैं तो अभी तक आत्मा को मानता आया था। यदि भगवान्! इस तरह के परिवर्तन के कारण किसी नित्य-ध्रुव आत्मा को नहीं मानते, तो मुझे यह बिल्कुल ठीक मालूम होता है''

बुद्ध—'इसी आत्मा को न मानने के कारण मुझे मेरे विरोधी नास्तिक कहते हैं। मैं किसी वस्तु—जड़ चेतन, देव-ब्राह्मण—को नित्य ध्रुव नहीं मानता। जो है वह पैदा हुआ है, वह मरनेवाला, नष्ट होनेवाला है। नित्य ध्रुव आत्मा का ख्याल सिर्फ भ्रम और लोभ के कारण होता है। जीवन से मैं इन्कार नहीं करता सेनापति! किन्तु जीवन नदी का प्रवाह है, जो हरक्षण नया होता है। यदि नया होने की गुंजाइश न होती तो हमारे सारे सुकर्म, हमारे सारे सुविचार, हमारे सारे सुवचन निष्फल होते, क्योंकि नित्य ध्रुव जीवन पर अच्छा कुछ भी प्रभाव नहीं होता। मैं जीवन को सदा नया बनना मानता हूँ, उसे वैसा नहीं मानता जैसा कि ब्राह्मण, परिव्राजक तथा दूसरे तीर्थिक मानते हैं, इसलिये वह मुझे नास्तिक कहते हैं। किन्तु मैं सेनापति! जीवन से इन्कार नहीं करता, जीवन के उच्च रूप में जाने की सम्भावना से इन्कार नहीं करता, इसलिये मेरे बारे में सच कहनेवाले को मुझे आस्तिक भी कहना चाहिये।'

मैं—'बल्कि मैं कहूँगा, सच्चे अर्थ में आप ही आस्तिक हैं, क्योंकि जीवनको नित्य ध्रुव मानकर जो उसमें किसी सुधार की गुंजाइश नहीं रहने देते, उनका जीवन का मानना न मानना बराबर है।'

बुद्ध—'आत्मा' नाम से जो मिथ्या धारणा, जो अकर्मण्यता फैलती है, उसी को देखकर मैं कहता हूँ—आत्मा की दृष्टि (विचार) मिथ्या दृष्टि है; जो नित्य ध्रुव की धारणा रखता है, वह क्यों जीवन को बदलने की कोशिश करेगा, वह सिर्फ भाग्यवादी, अकर्मण्यतावादी ही हो सकता है।

मैं—'मैंने समझ लिया भन्ते! भगवान् यथार्थवादी नहीं वस्तुवादी हैं, कल्पनावादी नहीं। भन्ते! और भी मैंने आप के विरोधी श्रमण ब्राह्मणों को कहते सुना है, कि श्रमण गौतम अक्रियावादी है। ऐसे कहनेवाले क्या भगवान् के बारे में सच कहते हैं या भगवान् पर मिथ्या आरोप करते हैं?'

बुद्ध—'एक अर्थ में सेनापति! वह सच कहते हैं। कितने ही श्रमण ब्राह्मण हैं, जो आहार छोड़ निराहार रह शरीर को सुखाने, प्राण छोड़ने तक को क्रिया कहते हैं। वह कहते हैं कि ऐसी क्रिया से पुराने पाप छूट जाते हैं, आदमी निष्पाप हो जाता है। मैं, सेनापति! उनके इस विचार को मूढ़ता कहता हूँ। जब वह आत्मा और शरीर को अलग मानते हैं, तो शरीर के सुखाने से आत्मा कैसे शुद्ध होगा सेनापति! यदि ऐसा होता, तो कपड़े के धोने से शरीर धुल जाता। यह उनका मिथ्या ज्ञान है, निरा बाल-धर्म है जो वह समझते हैं कि भूखे मरने से नंगे रहने से, शरीर को कष्ट देने से जीवन की शुद्धि हो जायेगी। मैंने सेनापति! वर्षों कड़ी से कड़ी तपस्यायें, क्रियायें—की हैं। मैंने देखा है, वह जीवन पर प्रभाव नहीं रखतीं। जीवन पर प्रभाव रखते हैं हमारे विचार, हमारा मन पर संयम, राग, द्वेष, मोह को कम करने के लिये उनके कारणों के दूर करने की चेष्टा। इस तरह सेनापति! मैं अक्रियावादी हूँ जिसे वह श्रमण-ब्राह्मण क्रिया कहते हैं, मैं उसे अक्रिया कहता हूँ! किन्तु साथ ही सेनापति! मैं क्रियावादी भी हूँ; क्योंकि मैं सुकर्म, सुवचन, सुविचार को मानता हूँ, उनके कारण जीवन के उच्च होने को मानता हूँ।'

मैं—‘सुन्दर है भन्ते ! भगवान् का अक्रियावाद, ऊपर ले जानेवाला है भन्ते ! भगवान् का अक्रियावाद। मैं भी उन श्रमण ब्राह्मणों के क्रियावाद को मूढ़ धर्म, बालधर्म मानता हूँ ।’

बुद्ध—‘यही मैं कहता हूँ, सेनापति !’

मैं —‘भन्ते ! भनवान् के विरोधी कहते हैं कि श्रमण गौतम तपतेज हीन है, क्या उनका यह कहना ठीक है ?’

बुद्ध—‘सेनापति ! वह किसे तप-तेज कहते हैं, यह मैं नहीं समझता। यदि तप से उनका अभिप्राय है, शरीर को न सँवारना, शरीर को ही सब कुछ मान कर उसकी ही सेवा के काम में जा लगना, तो मैं इसे मानता हूँ । मैं सेनापति ! दोनों प्रकार के चरम पंथों पर जाने को बुरा कहता हूँ । आदमी को न एकान्तया शरीर के सँवारने ही में लगना चाहिये न शरीर सुखा कर उसे अकर्मण्य बनाने ही में लग जाना चाहिये। मैं इन दोनों चरम पंथों को छोड़ कर मध्य मार्ग पर चलने को कहता हूँ, इसी को कहते हैं—श्रमण गौतम तप-तेजहीन है।’

मैं—‘धन्य है भन्ते ! भगवान् का मध्यमार्ग। कल्याणकरी है भन्ते ! भगवान् का यह मध्यम मार्ग। भन्ते ! निगंठ ज्ञातृपुत्र से मैंने पूछा था—’

बुद्ध—‘जाने दो इसे सेनापति ! कि निगंठ ज्ञातृपुत्र मेरे बारे में तुम से क्या कहते थे, उसके कहने-सुनने से हमें तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा सेनापति ! तुम्हें और जो कुछ पूछना हो पूछो ।’

बुद्ध के बुद्धिगम्य हृदय के भीतर तक घुस जानेवाले उपदेश से मैं पूरी तौर पर प्रभावित हो गया था, किन्तु जब उन्होंने अपने विरोधी की निन्दा को सुनने से इस प्रकार अनिच्छा प्रकट की, तो मुझे मालूम हो गया कि बुद्ध सचमुच ही अनुपम पुरुष, द्विपदोत्तम हैं ।

मैंने सन्तुष्ट हो कहा—

‘भन्ते ! भगवान् के बारे में मैंने जैसा सुना था, उससे कहीं श्रेष्ठ आपको पाया। मैं बुद्ध, धर्म, संघ की शरण में आता हूँ, आजसे भन्ते ! भगवान् मुझे अपना श्रावक (अनुयायी) समझें; और कल संघसहित मध्याह्न का मेरा भोजन स्वीकार करें।’

भगवान् ने मौन रह मेरी प्रार्थना स्वीकार की। उस समय भगवान् की आयु साठ वर्ष से ऊपर थी, किन्तु उस वक्त भी उनके सुदीप्त मुख से जान पड़ता था, प्रभा निकल रही है; उनके अभिनील नेत्र मालूम होते थे छओं दिशाओं में मैत्री और करुणा फैला रहे हैं। मैंने भगवान् के चरणों में वंदना की और फाटक से बाहर होते-होते देखा, माँ, चाची, रोहिणी और भाभा भी पहुँच गयी हैं। माँ ने बहुत खुश होकर कहा—

‘देखा पुत्र ! हमारे भगवान् कैसे अर्थसंगत, बुद्धिसंगत धर्म का उपदेश करते हैं।’

मैं—‘हाँ, जरूर माँ ! मैंने संस्थागार में कई बार भगवान् की प्रशंसा सुनी, मैंने जब-जब आने की इच्छा प्रकट की, तब-तब निगंठ ज्ञातृपुत्र ने मना कर दिया। आज मैंने उसे मानने से इन्कार कर दिया। मैंने बहुत करके जातिगौरव के ख्याल से निगंठ ज्ञातृपुत्र के धर्म को स्वीकार किया था।’

भाभा—‘तो सेनापति हम सब फिर बुद्ध के धर्ममार्ग पर एकत्रित हो गये।’

मैं—‘हाँ, भाभी ! और कल भगवान् और भिक्षु-संघ हमारे घर भोजन करेंगे, उसका भी इन्तिजाम करना होगा।’

माँ पहिले बोली ‘उसके लिये तरद्दुद न करो पुत्र !’ दूसरे दिन हमने गो वातक शूकर घातक के यहाँ से जो तैयार माँस था, उसे मँगवाया और भोजन तैयार होने पर भगवान्‌को सूचना दी। जिस वक्त संघ सहित भगवान् भोजन ग्रहण कर रहे थे, उस वक्त निगंठ (जैन साधु) लोग वैशाली के चौरस्तों पर दोनों हाथ उठा चिल्ला कर कह रहे थे—‘अधर्मी है सेनापति सिंह, पापी है सेनापति सिंह, उसने श्रमण गौतम के लिये गायें मारी हैं, सूअर मारे हैं। कहाँ है श्रमण गौतम का श्रामण्य सन्यास, कहाँ है श्रमण गौतम का धर्म, जब कि वह अपने लिये मारे गये पशुओं का माँस खा रहा है ?’ निगंठों का यह कहना सरासर झूठ था, मैंने पशुओं को मरवाया या मरवाया न था, न वैसे माँस को भगवान् को दिया; किन्तु मेरे निकल जाने से उन्हें बहुत दुःख हुआ, इसलिये बाल, मूढ़ की भाँति वह चिल्ला रहे थे।

भगवान् बुद्ध के धर्ममार्ग ने मुझे आत्मतंत्र से परतंत्र नहीं बनाया, बल्कि अपनी शक्तियों को पूरी तौर से विकसित करने में सहायता प्रदान की।

भगवान् बुद्ध का राजगृह

श्री अद्रीशचन्द्र बन्द्योपाध्याय

पूर्वी भारत के समस्त स्थानों में राजगृह को अपनी प्राकृतिक-स्थिति और अपने राजनैतिक एवं धार्मिक संबंध के कारण जो ख्याति प्राप्त है, वह अन्य किसी को नहीं। पूर्वी भारत में प्रागैतिहासिक स्थानों का अभाव नहीं है। गया, चम्पा, और पुण्ड्रवर्द्धन ऐसे नगर थे जिनकी परम्पराएँ अब धूमिल एवं सुदूर अतीत में विलीन हो गईं; और जिसके सत्यासत्य का निर्णय उत्खनन के पश्चात् ही सिद्ध हो सकता है। अभी भी किसी पुरातत्त्ववेत्ता को राजगृह की सतह के भीतर के अवशिष्टों को निकाल बाहर करना बाकी है। फिर भी साहित्य, दर्शनशास्त्र और लौकिक-परम्परा ने इसे वरेण्यता प्रदान की है, यह निर्विवाद है। प्राग्बौद्ध और अबौद्ध स्थानों की परम्पराओं को बताने के हेतु अपने पूर्व लेखों में मैं उन बिखरी हुई विस्तीर्ण सामग्रियों के संकलन का प्रयास करता रहा हूँ। किन्तु भगवान् बुद्ध द्वारा ज्ञात राजगृह के स्थानों, स्थान-वर्णनों और सीमा चिह्नों को प्रमाणित करने के लिए पालि साहित्य में प्रचुर सामग्री है। इस क्षेत्र में अन्य विद्वानों ने भी काम किया है किन्तु इनमें से कुछ ही ऐसी योग्यता रखते थे जो पालि साहित्य—वस्तुतः प्राग्बौद्ध साहित्य के अपार भण्डार का उपयोग कर सकते थे। केवल प्रिंसिपल डी० एन० सेन ही ने इसका प्रयास किया है। किन्तु बीसवीं सदी के प्रारम्भ में पटना में रहने के कारण कई महत्त्वपूर्ण कार्यों तक उनकी पहुँच न हो सकी थी। डा० विमलाचरण लाहा का प्रवेश इसमें विलम्ब से हुआ है। उन्होंने संस्कृत, पालि और प्राकृत के मूल ग्रन्थों से समन्वयात्मक-निष्कर्ष निकालने का श्लाघ्य प्रयत्न किया है। फिर भी उन्होंने 'चोदनावत्थु' आदि जैसे कई महत्त्वपूर्ण स्थानों को छोड़ दिया है। डा० मलल शेखर का सर्व संग्राहक ग्रन्थ उक्त सामग्री के विविध ज्ञानों का कोष है। उसमें भी उन्होंने अन्य सामग्रियों का उपयोग करने का कोई प्रयास नहीं किया, जिसके कारण स्वभावतः पुरातत्त्व-समीकरण सम्बन्धी उनके प्रसंगों में पूर्णता और पुष्टि का अभाव है। विदेशी यात्रियों जैसे हमारे बाद के ज्ञापक हमारी समस्या को और भी कठिन और जटिल बना देते हैं। इसपर कदाचित् ही ध्यान दिया जाता है कि पालि साहित्य के दो भाग हैं—मूल पालि और अट्ठकथाएँ। दोनों में काफी भिन्नता है। अट्ठकथा अथवा भाष्य भारतीय अभ्यास एवं शिक्षा-प्रणाली से ओतप्रोत हैं। यदि हम प्रथम संगीति के समाह्वान के कारणों को स्मरण करें तो हमें ज्ञात होगा कि बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात् ही उनके बचनों की प्रामाणिक व्याख्या की आवश्यकता अनुभव होने लगी थी। स्वयं बुद्ध, उनके प्रारंभिक शिष्यगण तथा उन प्रथम शिष्यों के शिष्य, सबों ने बुद्धघोष के आने का मार्ग खोल दिया। साथ-साथ हम उन लोगों के इस कथन से भी सहमत नहीं हो सकते जो बुद्धघोष की मौलिकता का सर्वथा अपलाप करते हैं। प्राचीनतम अट्ठकथाएँ अब बचीं नहीं। हम लोग केवल अपने सिद्धान्त की परिपुष्टि के लिये बुद्धघोष की सिंहल यात्रा का कारण उद्धृत करते हैं। रेवत स्थविर ने उन्हें साफ शब्दों में कहा कि 'पिटकट्ठकथा' का मूल भारत में सुरक्षित है किन्तु अन्य अट्ठकथाएँ यहाँ प्रचलित नहीं हैं; और संघभेद का भी कोई वर्णन नहीं पाया जाता है। मौलिक प्रतियाँ सिंहल में रखी गई हैं। अस्तु, यह स्पष्ट है कि बुद्धघोष के काल में जिनकी तिथि चाहे जो भी रही हो, संघ प्रामाणिक भाष्य की आवश्यकता का अनुभव करता था। इसी आवश्यकता से बुद्धघोष का प्रादुर्भाव हुआ जिनका नाम संसार के इतिहास में अपना स्थान रखता है।

तदुपरान्त धार्मिक चीनी यात्रियों का नाम आता है। फिर भी दुर्भाग्य से भारत और चीन के सांस्कृतिक और धार्मिक संपर्क के विषय में हमारा ज्ञान, हमारी सामग्री और हमारे स्वीकृत-तत्त्व इतने अपूर्ण, नगण्य और अदीर्घ-दर्शिन् हैं कि हम लोग कहावत वाले कूप-मण्डूक हो गये हैं। जिस किसी ने डा० पी० सी० बागची, जो आज भी शांतिनिकेतन में हैं, लिखित Le Canon Boudhique En Indochina

नामक दो उत्तम ग्रन्थों या उन्हीं की लिखी अंग्रेजी में छोटी पुस्तक 'India And China' का अध्ययन किया है वह संभवतः उन प्रतिभासंपन्न भारतीय और चीनियों की विस्तीर्ण सूची को देखकर चकित हो जायेंगे जिन्होंने धर्म प्रचारार्थ दुर्लंघ पर्वतों एवं विस्तीर्ण मरुभूमियों को पार किया। हुएनसांग और फाहियान तो उस असीम महासागर के स्वच्छ जल की दो बूँदों के तुल्य हैं। सन् १९४० ई० में उन्होंने मुझे बताया कि नालन्दा के विषय में हुएनसांग के वर्णन की अपेक्षा ह्यूलिंस का यात्रावृत्तान्त ही अधिक उत्तम है।

उनके विवरण के मूल्यांकन में हम निम्नलिखित बातों को दृष्टि से ओझल नहीं कर सकते। प्रथम तो भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण और उक्त यात्रियों के भारत-आगमन के बीच की अवधि का निश्चित ज्ञान, दूसरा यह कि उनके विवरण की निर्भरता का आधार प्रधानतः बाद की जनश्रुति ही है। तीसरी बात यह कि चोदनावत्थु, मोरनिवाप, उदुम्बरिका सप्पिणिका, परिब्बाजकाराम, परिमानकूट, जैसे कई प्रमुख स्थान जो बुद्ध से सम्बन्धित हैं तथा दो भिक्षुओं की आत्महत्या के स्थान का भी उल्लेख उन्होंने नहीं किया है। वेभार के स्थान पर पिप्फली गुहा का सम्बन्ध महाकाश्यप के बदले बुद्ध से जोड़ना हुएनसांग ही के दिमाग की उपज है जो पालि परम्परा में नहीं आता है। विरक्तिपूर्ण निर्द्धारण के कारण उनके कार्य्यों से कुछ अनर्थ हो गया है। उनकी तिथियाँ महापरिनिर्वाण काल से अत्यन्त बाद की हैं; दूसरा यह कि राजगृह जो पूर्वी भारत में राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक जीवन का आकर्षण-केन्द्र था, उसका पतन मौर्य्यों के विकास-काल से प्रारंभ होता है जिन्होंने अधिक सुविधा के लिए अपनी राजधानी वहाँ से पाटलिपुत्र लायी। राजधानी को बदलने के बाद धीरे धीरे जनसंख्या घटती गयी। सारनाथ, तक्षशिला, कुशीनगर, वैशाली, श्रावस्ती आदि बौद्ध विद्या के सुप्रसिद्ध केन्द्र हुए। त्यक्त-राजगृह लोदियों के बाद का जौनपुर, १९११ की दिल्ली, मुगलों के अन्तिम दिनों का ढाका और अन्त में ईस्ट इण्डिया कम्पनी कालीन मुर्शिदाबाद की भाँति उन नगरों का प्रतिनिधित्व कर रहा था जो अपना वैभव और अपनी प्रतिष्ठा खो चुके थे। निःसन्देह यह गुप्त और मौर्य्यकालीन 'विद्या' के प्रधान कार्यालय की भाँति तो था पर साथ साथ विनष्ट भी। शनैः शनैः इसके विनष्ट आवासों पर जंगल उग गये, वह पर्वतीय नगर जंगली जानवरों के रहने अनुकूल स्थान बन गया। धनी, सत्ता वाले लोग अच्छे चरागाहों के स्थानों की ओर चले गये और श्रमजीवी लोग रोटी की तलाश में नये नगर की ओर निकल पड़े। राजनैतिक दशा भी प्रतिकूल हो गयी। साम्राज्यवाद का अन्त हुआ। चंचलादेवी लक्ष्मी ने नवीन राजदण्डों एवं ध्वजों की शरण ली। बौद्धधर्म हीनयान और महायान में विभक्त हो गया और अन्त में बज्रयान होकर गौरव की चरमसीमा का भी अतिक्रमण कर गया। तब उन स्थानों के यथार्थज्ञान के साधनों का स्थान अविश्वसनीय जनश्रुतियों ने लिया जिन पर कष्ट सहनेवाले इन उत्साही और उद्योगी यात्रियों को विश्वास करना पड़ा।

फिर तुर्कों ने प्रलय मचाया। निःसीम धान की अमराइयों से अठखेलियाँ करती हुई पहाड़ियों से संपन्न राजगृह को उस नवयुग के प्रभात की प्रतीक्षा करनी पड़ी जब अर्वाचीन अन्वेषकों की दृष्टि इसके मूक प्रस्तरखण्डों में जान फूँक देने की शक्ति भर देने की ओर रही, और रही इनकी शक्ति इन जंगलों को स्वरहस्योद्घाटन की शक्ति प्रदान करने तथा मृत-वसुंधरा को अपने अतीत की करुण कहानी सुनाने की शक्ति भरने की ओर। राजगृह के विषय में सब से पुरानी अंग्रेजी पुस्तक संभवतः 'बुचनन हैमिल्टन" ही की है। उसकी डायरी और उसका जर्नल उस जिले की १९ वीं सदी की आर्थिक, सामाजिक, कृषि-संबंधी और सांस्कृतिक परिस्थितियों की ज्ञानप्राप्ति का एक बड़ा उत्कृष्ट और महत्वपूर्ण साधन है। उसके बाद जेनरल कनिंघम साहब का प्रत्यागमन होता है जिनका विवरण उन व्यक्तियों में से पहला है जिन्हें प्राचीन अवशिष्ट को समझने की विशेष क्षमता है। उनके बाद "वेगलर" साहब का स्थान है जिनकी खोजें सदोष होती हुई भी कटु एवं तीव्र आलोचनाओं की पात्र नहीं

जो उनपर बाद में लोगों ने की हैं। तत्पश्चात् इस क्षेत्र में 'ए० एम० ब्रेडले'' साहब का प्रत्यागमन होता है। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में ''लार्ड कर्जन'' द्वारा पुनरुज्जीवित पुरातत्त्व विभाग के डा० थियोडोर ब्लौथ, स्वर्गीय डा० शनि और सर जोन मार्शल द्वारा राजगृह का प्रथम वैज्ञानिक उत्खनन संपन्न हो सका। इन्हीं से प्राप्त सामग्रियों के आधार पर हम उस अतीत को समझने की कल्पना करते हैं।

मूलग्रन्थानुवाद

चरिया-पिटक*

अनुवादक—भिक्षु धर्मरक्षित

पहला परिच्छेद

१. दान पारमिता

निदान

चार असंख्य एक लाख कल्पों के मध्य जो चर्यायें हैं, वह सब बुद्धत्त्व की ओर ले जानेवाली हैं ॥१॥

बीते हुए कल्पों में जन्मजन्मान्तर की चर्याओं को छोड़, मैं (केवल) इसी कल्प की चर्याओं को कहूँगा, (इस) मेरे (कथन) को सुनो ॥२॥

१. अकीर्ति चर्या

प्राचीन काल में इसी भद्रकल्प में वाराणसी में ब्रह्मदत्त नामक राजा के राज्य करते समय बोधिसत्त्व महाधनवान ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुए। उनका नाम अकीर्ति रखा गया। जब वे पैर के बल चलने-फिरने लगे तब एक बहिन भी उत्पन्न हुई। उसका नाम यशवती पड़ा। वे सोलह वर्ष की अवस्था में तक्षशिला जाकर सभी शिल्पों को सीख घर लौटे। इसी बीच उनके माता-पिता का देहान्त हो गया। उनके अन्त्येष्टि-संस्कार कर कुछ दिनों के बाद खजांची द्वारा हिसाब करते समय 'इतना माता का धन है' 'इतना पिता का धन है' 'इतना पितामह का धन है' सुन कर संविग्न-मन हो—'यह धन मात्र ही दिखाई देता है' धन के संहर्त्ता नहीं; वे सब इस धन को छोड़कर ही चले गये, किन्तु मैं इसे लेकर जाऊँगा।' सोच, उन्होंने राजा से अनुमति ले मुनादी कराया—'धन के इच्छुक अकीर्ति पण्डित के घर जायँ।'

वे सप्ताह भर महादान दे, घर की सारी सम्पत्ति लुटा वाराणसी से निकल नदी पार कर दो-तीन योजन जा प्रव्रजित हो एक रमणीय स्थान में पर्णकुटी बनाकर रहने लगे। वे जिस द्वार से निकले, उसका नाम अकीर्ति-द्वार पड़ा और जिस घाट से नदी पार किये वह अकीर्ति-घाट कहलाने लगा। उनके प्रव्रजित होने की बात को सुन गाँव, निगम, नगर के बहुत से मनुष्य उनके गुण से आकर्षित हो प्रव्रजित हो गये। महा लाभ-सत्कार उत्पन्न हुआ।

बोधिसत्त्व उस महालाभ-सत्कार और महाजन समूह से अलग रहने की इच्छा से एक दिन बिना किसी को कहे ही अकेले निकल पड़े। चलते हुए तमिल देश (=दमिलरट्ठ=मद्रास प्रदेश) में जा 'कार' नामक बन्दरगाह (=पट्टन) के पास बगीचे में विहार करते हुए ध्यान-अभिज्ञा प्राप्त किया। वहाँ भी महालाभ-सत्कार उत्पन्न हुआ। वे उससे भी जिगुप्सा कर, उसे त्याग आकाश-मार्ग से जा कार द्वीप में उतरे। उस समय कार-द्वीप का नाम अहि-द्वीप था।

---

* पाठकों के विशेष आग्रह पर यह स्तम्भ प्रारम्भ किया गया है। सुविधा के लिए मूल ग्रन्थ के अनुवाद के साथ-साथ अन्तर्गतकथायें भी संक्षेप में दे दी गई हैं। —सम्पादक।

वे वहाँ एक बड़े कार-वृक्ष के सहारे पर्णकुटी बनाकर रहने लगे।

सन्तोषी होने के कारण वे कहीं न जा उसी वृक्ष के फल-पत्तियों को खा ध्यान-समापत्तियों से दिन बिताते थे। उनके शील के तेज से इन्द्र का पण्डुकम्बल शिलासन नामक सिंहासन गर्म जान पड़ा। उसने उसका विचार करते हुए बोधिसत्त्व को तप-निरत देखा और उनकी परीक्षा के लिए ब्राह्मण-वेश में पर्णकुटी के पास जा भिक्षार्थी की भाँति खड़ा हो गया। बोधिसत्त्व ने बहुत दिनों के बाद एक याचक को अपनी पर्णकुटी के पास खड़ा देख अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव किया और अपने लिये उबाली हुई पत्तियों को बर्तन के साथ ही ले जाकर याचक के पात्र में सब उडेल दिया। इन्द्र उसे ले थोड़ी दूर जा अदृश्य हो गया। वह दूसरे दिन भी आया, तीसरे दिन भी आया। बोधिसत्त्व ने प्रतिदिन प्रसन्नतापूर्वक दान दिया। उन्होंने निराहार रहकर वह दान केवल सर्वज्ञता की प्राप्ति के लिये ही दिया। इसीलिये कहा है:—

जब मैं शून्य महा अरण्य में प्रवेश कर अकीर्ति नामक तपस्वी हो विहार करता था ॥३॥

तब मेरे तप के तेज से सन्तप्त इन्द्र ब्राह्मण का रूप धारण किये हुए भिक्षा के लिये मेरे पास आया ॥४॥

मैंने उसे अपने द्वार पर खड़ा देख वन से लाये तेल-नमक-रहित पत्तियों को कड़ाही के साथ ही उडेल दिया ॥५॥

मैंने उसे पत्तियों को दे, पात्र को औंधा कर, फिर (पत्तियों को) खोजना छोड़ पर्णकुटी में प्रवेश किया ॥६॥

वह दूसरी बार भी, तीसरी बार भी मेरे पास आया, मैंने ऐसे ही अविचलित, अनासक्त (हो) दान दिया ॥७॥

उस कारण से मेरे शरीर में कुरूपता नहीं आई, मैंने प्रीति-सुख और रति से उस दिन को बिताया ॥८॥

यदि एक मास, दो मास तक भी श्रेष्ठ दान देने योग्य व्यक्ति (दाक्षिणेय) को पाता, तो अविचलित, अ-उदास हुए उत्तम दान देता ॥९॥

मैंने उसे दान देते हुए यश और लाभ की इच्छा न की, (केवल) सर्वज्ञता (=बुद्धत्व) की प्रार्थना करते हुए ही, उन कर्मों को किया ॥१०॥

२. शङ्ख चर्या

प्राचीन काल में वाराणसी का नाम मौलिनगर था। मौलिनगर में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व शङ्ख नामक महाधनी ब्राह्मण हुए थे। वे नगर के चारों द्वारों, नगर के बीच और अपने घर पर—इन छः स्थानों में छः दानशालायें बनवा प्रतिदिन छः लाख व्ययकर निर्धन, भिखारी, पथिक आदि को महादान देते थे। एक दिन उन्होंने सोचा—"मैं घर के धन के समाप्त होने पर दान न दे सकूँगा, इसलिये धन के रहते हुए ही नौका द्वारा सुवर्ण-भूमि (=पेगू, बर्मा) को जाकर धन लाऊँगा।" उन्होंने नौका पर सामान लाद पुत्र-स्त्री को सम्बोधित कर कहा—"जब तक मैं नहीं आऊँ, तब तक तुम लोग निरन्तर दान देना।" तत्पश्चात् उन्होंने नौकर-चाकरों से घिरे जूते पहन, छाता लगवा बन्दरगाह वाले गाँव की ओर प्रस्थान किया।

उस समय गन्धमादन पर्वत पर एक प्रत्येकबुद्ध ने सप्ताह भर निरोध-समापत्ति से विहार करने के पश्चात् उठकर लोक को देखते हुए बोधिसत्त्व को धन लाने के लिए विदेश जाते हुए देखा और उनके जाने वाले मार्ग में दोपहर की गर्म बालू पर चलते हुए सामने आये। बोधिसत्त्व ने उन्हें देखते ही हर्षोत्फुल्ल हो विचार किया—"मेरे लिए यह पुण्य-भूमि प्राप्त हुई है, इसमें पुण्य-बीज बोना चाहिये।" वे दूर से ही जूते निकाल, शीघ्र पास जा प्रणाम् कर—"भन्ते! मुझ पर कृपा कर इस वृक्ष के नीचे चलें।" कह, वृक्ष के नीचे ले गये। वहाँ जाने पर बालू की वेदिका बना ओढ़ने की चादर बिछा दिया। प्रत्येकबुद्ध के उस पर बैठने पर प्रणाम् कर उनके पैर धो, तेल लगा, अपने जूतों को पहना कर कहा—"भन्ते! इन जूतों को पहन, इस छाते को धारण कर जायें।" प्रत्येकबुद्ध भी उन्हें ग्रहण कर बोधिसत्त्व के देखते हुए ही आकाश-मार्ग से गन्धमादन पर्वत को चले गये।

बोधिसत्त्व उन्हें आकाश-मार्ग से जाते हुए देख अत्यन्त प्रसन्न-चित्त हो बन्दरगाह पर जा नौका में चढ़ गये। समुद्र में जाते हुए सातवें दिन नौका में छेद हो गया। नौका का पानी उलीचा न जा सका। सभी लोग मृत्यु के डर से अपने-अपने देवताओं का नाम ले रोने लगे। बोधिसत्त्व ने एक सेवक द्वारा अपने सारे शरीर में तेल की मालिश करा घी के साथ भर पेट चीनी खा मस्तूल (=कूपकयट्ठि) पर चढ़, दिशा का विचार कर समुद्र में कूद तैरना प्रारम्भ किया। इस प्रकार उनके तैरते हुए सात दिन बीत गये। नौका वहीं डूब गई।

इसी बीच समुद्रवासिनी एक देवकन्या बोधिसत्त्व द्वारा प्रत्येक बुद्ध को दिये गये दान के फल से प्रभावित हो, उन्हें अपने आनुभाव से मौलिनगर पहुँचा दी और उनके घर को बहुत-से धन-धान्य से पूर्ण कर अदृश्य हो गई। भगवान् ने उसी चर्या को बतलाते हुए कहाः——

और फिर, जब मैं शङ्ख नामक ब्राह्मण हुआ था, (तब) महासमुद्र को पार करने की इच्छा से बन्दरगाह गया ॥१॥

वहाँ मैंने प्रत्येक बुद्ध को रेतीले, तप्त, विषम-भूमि वाले उल्टे मार्ग पर आते हुए देखा ॥२॥

उन्हें मैंने उल्टे मार्ग पर देख कर यह विचार किया—'पुण्य चाहने वाले व्यक्ति के लिये यह खेत मिला है ॥३॥

जैसे कृषक पुरुष बहुत उपजाऊ खेत को देख कर यदि उसमें बीज नहीं रोपता है, तो वह धन का इच्छुक नहीं है ॥४॥

ऐसे ही पुण्य चाहने वाला मैं उत्तम खेत को देख यदि उसमें (पुण्याधि-)कार नहीं करूँगा, तो मैं पुण्य का इच्छुक नहीं हूँ ॥५॥

जैसे राजा की मुद्रा (=मुहर) लगाने वाला अमात्य यदि अन्तःपुर के लोगों को धन-धान्य नहीं देता है, तो वह मुद्रा से परिहीन हो जाता है ॥६॥

ऐसे ही पुण्य चाहने वाला मैं विपुल दक्षिणा को देख, यदि उन्हें दान न दूँगा, तो पुण्य से परिहीन हो जाऊँगा ॥७॥

ऐसा मैंने सोच, जूतों को निकाल, उनके पैरों की वन्दना कर छाता और जूते दे दिये ॥८॥

उनसे मैं सौ गुणा सुकुमार और सुख में रहने वाला होते हुए भी, दान (पारमिता) को पूर्ण करते उन्हें ऐसा दान दिया ॥९॥

३. कुरुधर्म चर्या

प्राचीन काल में कुरुराष्ट्र के इन्द्रप्रस्थ नगर में बोधिसत्त्व कुरु-राजा का पुत्र हो उत्पन्न हुए। उनका नाम धनञ्जय रखा गया। वे सयाने होने पर तक्षशिला जा सभी विद्याओं में निष्णात् हो वापस लौटे और पिता के मरने पर राजा हो धर्मपूर्वक राज्य करने लगे। उन्होंने भी छः दानशालायें बनवा महादान दिया। उनका दानी-स्वभाव सम्पूर्ण जम्बूद्वीप में प्रसिद्ध हो गया।

उस समय कलिंग राष्ट्र में दुर्भिक्ष, अकाल और रोग-तीन प्रकार के भय उत्पन्न हुए थे। सभी देशवासी दन्तपुर जा राज-भवन के द्वार पर हल्ला मचाये—"देव! पानी बरसायें।" राजा उसे सुन, संविग्न हो व्रत ग्रहण कर अपने शयन-कक्ष में जा तृणासन पर सप्ताह भर लेटे रहा, किन्तु पानी नहीं बरसा। तब अमात्यों ने राय दी कि इन्द्रप्रस्थ के राजा धनञ्जय का मङ्गल हाथी लाया जाय। उसके आने पर अवश्य पानी बरसेगा। राजा ने कहा—"धनञ्जय राजा भला कैसे अपने मङ्गल हाथी को देगा?"

"धनञ्जय के साथ युद्ध करना नहीं पड़ेगा, वह महादानी है, माँगने पर अपने सिर को भी काटकर दे सकता है, सारे राज्य को भी त्याग सकता है, मङ्गल हाथी में क्या है?"

"दान माँगने कौन जायेगा?"

"महाराज! ब्राह्मण जायेंगे।"

तब राजा ने आठ ब्राह्मणों को बुलवा सत्कार-सम्मान कर, मार्ग-व्यय दे, हाथी लाने के लिए भेजा। वे क्रमशः चलते हुए इन्द्रप्रस्थ नगर पहुँचे। उन्होंने कुरु राजा को हाथी पर बैठे दानशाला से जाते हुए देख, एक ऊँचे स्थान पर खड़े हो जयकार किया—"महाराज की जय हो!! महाराज की जय हो!!!" राजा ने उन्हें देख हाथी रोक उनके पास जा पूछा—"ब्राह्मण! क्या चाहते हो?"

'महाराज ! कलिंग राष्ट्र दुर्भिक्ष, अकाल और रोग से पीड़ित है, वह पीड़ा आपके इस मङ्गल हाथी के ले जाने पर ही शान्त होगी, इसलिये इस हाथी को हमें दें।"

बोधिसत्त्व ने ब्राह्मणों की बात सुन प्रसन्न-मन हो हाथी की सूँड को पकड़ ब्राह्मणों के हाथ में रख रत्नमय भिङ्कार (= जल-कुण्डिका) से जल गिराते हुए दान कर दिया। हाथी के दान कर देने पर अमात्यों ने बोधिसत्त्व से कहा—"महाराज ! क्यों आप ने मङ्गल हाथी को दिया, क्या दूसरा हाथी नहीं दिया जा सकता था ?"

"याचक जो मुझसे माँगते हैं, वही देना चाहिये। यदि वे मुझसे राज्य माँगे तो राज्य भी मुझे देना चाहिए। मुझे राज्य और जीवन से भी बढ़कर सर्वज्ञ-ज्ञान ही प्रिय है, इसीलिये मैंने मङ्गल हाथी को दिया।"

उस हाथी के ले जाने पर भी कलिंग देश में पानी नहीं बरसा। कलिंग-राजा ने बहुत विचार कर अमात्यों से कहा—"कुरु देश में कौरव्य महाराज धनञ्जय के पुण्य-प्रताप से पानी बरसता है, न कि इस हाथी से। वहाँ जाकर उनसे कुरु-धर्म लिखा लाओ। हम लोग भी उसका पालन करें, जिससे पानी बरसे।"

अमात्यों के जाने पर बोधिसत्त्व ने सुवर्ण-पत्र पर (१) जीव-हिंसा नहीं करनी चाहिए (२) चोरी नहीं करनी चाहिए (३) व्यभिचार नहीं करना चाहिए (४) झूठ नहीं बोलना चाहिए (५) सुरा-मेरय आदि मादक द्रव्यों का सेवन नहीं करना चाहिए—इस पञ्चशील को लिखकर दिया और कहा कि यही कुरु-धर्म है, जिसका हम लोग पालन करते हैं।

वे उसे लेकर दन्तपुर गये। कलिंगराज ने पञ्चशील का पालन किया। थोड़े ही दिनों में राज्य में उत्पन्न सभी उपद्रव शान्त हो गये। राष्ट्र सुखी और शस्य सम्पन्न हो गया।

बोधिसत्त्व भी जीवन-पर्यन्त अखण्ड पञ्चशील का पालन कर स्वर्गगामी हुए। तथागत ने इसी चर्या को बतलाते हुए कहा:—

और फिर, जब मैं इन्द्रप्रस्थ नामक उत्तम नगर में दस कुशल-कर्मों से युक्त धनञ्जय नाम का राजा था ॥१॥

तब कलिंग राष्ट्र के ब्राह्मण मेरे पास आये और सौभाग्यवान मङ्गल हाथी को मुझ से माँगे ॥२॥

'(हमारे) जनपद में पानी नहीं बरसता, दुर्भिक्ष और महा अकाल पड़ा है, अञ्जन नामक नीले श्रेष्ठ हाथी को हमें दें' ॥३॥

'याचकों के आने पर इन्कार करना मेरे लिये उचित नहीं, मेरा व्रत न टूटे, मैं महाहाथी को दूँगा' ॥४॥

हाथी को सूँड से पकड़ कर रत्नमय भिङ्कार से हाथ पर जल गिरा ब्राह्मणों को हाथी दे दिया ॥५॥

उस हाथी के देने पर अमात्यों ने यह कहा—'क्या अपने श्रेष्ठ हाथी को भी याचकों को दे रहे हैं ? ॥६॥

सौभाग्यवान, मङ्गल-युक्त, संग्राम में उत्तम विजयी उस हाथी के दे देने पर आपका राज्य क्या करेगा ?' ॥७॥

'मैं इस सारे राज्य को भी दे दूँ, अपने शरीर को भी। मुझे सर्वज्ञता ही प्रिय है, इसलिये मैंने हाथी को दिया' ॥८॥

४. महासुदर्शन चर्या

प्राचीन काल में कुसीनारा का नाम कुशावती था। बोधिसत्त्व कुशावती में ही महासुदर्शन नामक चक्रवर्ती राजा होकर धर्मपूर्वक राज्य करते थे। कुशावती राजधानी के साथ चौरासी हजार उनके नगर थे। धर्म-प्रासाद के साथ चौरासी हजार प्रासाद थे। वे सात रत्नों से युक्त थे। कुशावती राजधानी दिन-रात हाथी, घोड़े, रथ, भेरी, मृदंग, वीणा, गीत, शंख, ताल और खाइये-पीजिये-इन दश शब्दों से परिपूर्ण रहती थी। बोधिसत्त्व ने अनेक स्थानों में दानशालायें बनवा महादान देने का प्रबन्ध किया। दिन में तीन बार नगर में घोषणा होती थी—'जिस व्यक्ति की जिस-जिस वस्तु की इच्छा हो, वह दानशालाओं में आकर ले जाये।"

इस प्रकार बोधिसत्त्व चौरासी हजार वर्षों तक राज्य करते हुए महादान दे, मैत्री आदि चारों ब्रह्मविहारों की

भावना कर, शरीर छोड़ ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुए। भगवान् बुद्ध ने इसी चर्या को बतलाते हुए कहा :—

जब मैं कुशावती नगर में महाशक्तिशाली महासुदर्शन नामक चक्रवर्ती राजा हुआ था ॥१॥

तब मैं वहाँ दिन में तीन बार स्थान-स्थान पर घोषणा करवाता था कि कौन क्या चाहता है? किसकी कामना करता है? किसे क्या धन दिया जाय? ॥२॥

कौन भूखा है? कौन प्यासा है? किसे माला और विलेपन चाहिये? कौन नंगा नाना रंग के वस्त्रों को पहनेगा? ॥३॥

कौन मार्ग में जाने वाला (पथिक) छाता लेगा? कौन मृदु और सुन्दर जूते ग्रहण करेगा? इस प्रकार सायं-प्रातः स्थान-स्थान पर घोषणा कराता था ॥४॥

याचकों को धन देने के लिए दस या सौ स्थानों में ही नहीं, प्रत्युत अनेक-सौ स्थानों में व्यवस्था की गई थी ॥५॥

दिन या रात में यदि याचक आता था, तो वह इच्छानुरूप भोग (=धन) को पा, पहले हाथ से ही चला जाता था ॥६॥

इस प्रकार मैंने जीवन भर महादान दिया, न तो मैंने अप्रिय होने से धन दिया और न तो मेरे पास धन का संग्रह न था ॥७॥

जैसे पीड़ित व्यक्ति रोग से मुक्त होने के लिए धन से वैद्य को तृप्त कर रोग से मुक्त हो जाता है ॥८॥

वैसे ही मैं जानते हुए सर्वांशतः कम धन की पूर्ति के लिये अनासक्त और इच्छा-रहित हो सम्बोधि की प्राप्ति के लिए याचकों को धन देता था ॥९॥

(क्रमशः)

नवनालन्दा महाविहार

आचार्य बदरीनाथ वर्मा

[बिहार के शिक्षा मंत्री श्री बदरीनाथ वर्मा का उक्त विहार के शिलान्यास के अवसर पर दिया गया भाषण—]

आज, यह देखकर, मैं आनन्दोल्लासपूर्ण उत्साह का अनुभव कर रहा हूँ, कि स्वतन्त्र भारत की सर्वप्रथम लोकप्रिय बिहार-सरकार के सत्संकल्प और प्रयत्नों के फलस्वरूप, प्राचीन नालन्दा के भग्नावशेषों से एक ऐसी नूतन एवं महत्वपूर्ण संस्था उद्भूत हो रही है, जो इस पवित्र स्थल पर, सदियों पूर्व, प्रज्वलित विद्या-प्रदीप की ज्योति का व्यापक विस्तार करेगी। निस्सन्देह, यह हमारा सौभाग्य है कि बिहार के इस लुप्तप्राय गौरव को पुनरुज्जीवित करने का श्रेय हमें मिल रहा है देश की स्वाधीनता की सिद्धि के बाद, शीघ्र ही, पालि तथा तत्संबंधी अन्य विषयों के उच्च अध्ययन एवं अनुसन्धान-कार्य के लिये, एक उपयुक्त केन्द्र के अभाव का अनुभव किया जाने लगा। बिहार को पालि भाषा-साहित्य की जन्मभूमि होने का गौरव है। एक समय था, जब कि यही पालि भाषा भारत के एक बृहद् अंश के निवासियों की लोकभाषा थी। आज भी, विश्व के अनेक बौद्ध देशों के धर्म-ग्रन्थों की भाषा यही है। बिहार की अन्यान्य अस्तंगत विभूतियों की तरह, यह भी, अपने उद्भव एवं गौरवपूर्ण विकास के क्षेत्र के निवासियों के लिये, विलुप्त-सी हो चुकी है। संसार के विभिन्न भागों में रहनेवाले बौद्धों के लिये, मगध आज तक एक महान् आकर्षण-केन्द्र अथवा प्रेरणा का अजस्र स्रोत बना हुआ है। किन्तु, स्वयं मगध उस भाषा के साहित्य को अब भूल-सा गया है, जिस पर उसे एक दिन गर्व था। हमारी राष्ट्रीय स्वाधीनता के

साथ-साथ हमारे जीवन में एक ऐसी नयी चेतना उत्पन्न हुई, जो अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा शिक्षा और संस्कृति के क्षेत्र में अधिक प्रस्फुटित हुई है। राजनीति तथा अन्तर-राष्ट्रीय सम्बन्ध के क्षेत्रों में स्थिति चाहे जैसी भी हो, संस्कृति के क्षेत्र में देशवासियों की उद्दीप्त आकांक्षा रही है कि हम एशिया में अपना समुचित स्थान पुनः प्राप्त कर लें। एक समय, नालन्दा अधिकांश एशिया के लिये, भारत के आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक नेतृत्व का प्रतीक था। आज के परिवर्त्तित वातावरण में, हम नेतृत्व की बात तो नहीं सोच सकते। किन्तु हमने यह अनुभव किया है कि नालन्दा, आज भी, एशिया के अधिकांश भागों के लिये, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक बन्धुत्व का प्रतीक हो सकता है और इसे होना भी चाहिये। हमारी धारणा है कि आज के स्वतंत्र और समुन्नत भारत को, इस बन्धुत्व के पुनस्संगठन के लिये, अग्रसर होना चाहिये।

“नवनालंदामहाविहार” की स्थापना राज्य सरकार की उस बृहत् योजना का एक अंश है, जो संस्कृत, पालि और प्राकृत के उच्च अध्ययन एवं अनुसंधान-कार्य के निमित्त, बिहार के तीन सुविख्यात और पवित्र स्थानों में, उपयुक्त केन्द्रों के निर्माण के अभिप्राय से, बनायी गयी है। पालि के प्रतिष्ठान के लिये, स्वभावतः, नालन्दा का महत्वपूर्ण स्थल चुना गया। कालक्रम से, जब ये संस्थाएँ अभीप्सित रूप से विकसित हो जायँगी, तो हम यह आशा कर सकते हैं, कि इनमें से प्रत्येक हमारे प्रस्तावित प्राच्य विद्या के बृहत् विश्व-विद्यालय के उपांगस्वरूप हो जायगी।

किन्तु, इस समय तो हमारे इस नवमहाविहार का आरंभ बहुत ही लघु रूप में हो रहा है। यह नवनालन्दा-महाविहार पालि भाषा-साहित्य तथा बौद्ध दर्शन और ज्ञान के विविध अंगों के संबंध में, उच्च, अध्ययन एवं अनुसंधान का विशाल केन्द्र होगा। कुछ छात्रों को, इस प्रतिष्ठान में, स्नातकोत्तर (पोस्ट-ग्रैजुएट) स्तर की शिक्षा भी दी जायगी। इस प्रतिष्ठान में स्नातक (ग्रेजुएट) अथवा उसी स्तर की परीक्षा में उत्तीर्ण व्यक्ति ही प्रविष्ट हो सकेंगे। आरंभ में, इस प्रतिष्ठान के छात्र, निजी रूप से, बिहार-विश्वविद्यालय की एम० ए०, पी-एच्० डी० और डी० लिट्० परीक्षाओं में सम्मिलित होंगे। कुछ छात्रों को इसी स्तर की अन्य उपाधि-परीक्षाओं के लिये भी प्रस्तुत किया जायगा।

इस प्रतिष्ठान का पाठ्य-क्रम इस प्रकार बनाया जायगा कि गंभीर एवं सांस्कृतिक अध्ययन को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया जाय और एम० ए० परीक्षा के पाठ्यक्रम में अनुसंधान-कार्य को प्रमुख स्थान दिया जाय। छात्रों को अनुसंधान-प्रक्रिया एवं समीक्षात्मक भाष्य की पद्धति की शिक्षा देने का भी प्रबन्ध किया जायगा।

वैयक्तिक रूप से, छात्र और प्राध्यापक गण तो अनुसंधान-कार्य करेंगे ही। साथ ही, प्रतिष्ठान द्वारा महत्वपूर्ण पालि ग्रन्थों का सम्पादन और प्रकाशन किया जायगा तथा, पटना के ‘काशी प्रसाद जायसवाल अनुशीलन-प्रतिष्ठान’ के सहयोग से, प्राचीन पांडुलिपियों के अन्वेषण की भी समुचित व्यवस्था की जायगी।

इस महाविहार का एक महत्वपूर्ण विभाग बौद्ध देशों की समसामयिक एशियाई भाषाओं का होगा। इसमें तिब्बती, चीनी, श्यामी और सिंहली भाषाओं के संबंध में विशेष अध्ययन एवं अनुसन्धान का प्रबन्ध होगा। कालक्रम, से यह प्रतिष्ठान उपर्युक्त भाषाओं की शिक्षा तथा उनकी उपाधि-परीक्षा के लिये छात्र प्रस्तुत करने की व्यवस्था करेगा। इसके अतिरिक्त, उक्त विभाग में, विदेशी छात्रों के लिये, हिन्दी भाषा-साहित्य की समुचित शिक्षा की भी व्यवस्था होगी।

यथासंभव, ऐसा प्रयत्न किया जायगा कि इस संस्था के सभी छात्र एवं प्राध्यापकगण महाविहार के प्रांगण में ही निवास करें। इस संस्था को, प्राचीन विहारों के आदर्श के आधार पर, विकसित करने की चेष्टा की जायगी। इसी कारण, इस प्रतिष्ठान का नाम ‘नवनालन्दामहाविहार’ रखा गया है। किन्तु, इसकी विशेषता यह होगी कि यह प्रतिष्ठान पूर्णतया असाम्प्रदायिक होगा और इसमें आधुनिक अध्ययन-प्रणाली के वैज्ञानिक दृष्टिकोण का परित्याग नहीं किया जायगा। इस संस्था के प्राध्यापक एवं छात्रगण, एक विशाल परिवार के

सदस्यों की तरह, एक साथ रहेंगे और यह महाविहार न केवल उनके अध्ययन-क्रम का समुचित आयोजन करेगा, बल्कि उनके सम्पूर्ण दैनिक जीवन तथा व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित कर, उनके दृष्टिकोण को उदात्त तथा उनकी अनुभूतियों को व्यापक बनाने का प्रयत्न करेगा।

आरम्भ में, इस संस्था में, पालि के ३६ तथा प्रत्येक अन्य भाषा के १०-१० छात्र रहेंगे। किसी भी छात्र से शिक्षण-शुल्क नहीं लिया जायगा। किन्तु छात्रों के प्रवेश पर नियंत्रण रहेगा, ताकि केवल सच्चे ज्ञान-पिपासु व्यक्ति ही इसमें प्रविष्ट हो सकें। सम्प्रति, केवल ६ छात्रवृत्तियाँ स्वीकृत हुई हैं। ये छात्रवृत्तियाँ साधनहीन छात्रों की आर्थिक सहायता के निमित्त दी जायँगी।

अध्यापकों में कुछ विद्वान् बौद्ध भिक्षु रहेंगे और कुछ अन्य प्राध्यापकगण। यह हमारा सौभाग्य है कि इस महाविहार के प्रथम निर्देशक के रूप में श्री भिक्षु जगदीश काश्यप हमें मिले हैं। उनके सहायक के रूप में, एक प्राध्यापक तथा तीन विद्वान् भिक्षु इस प्रतिष्ठान में कार्य करेंगे। इनमें से कुछ नियुक्तियाँ हो चुकी हैं। आशा है, निकट भविष्य में, अन्य बौद्ध देशों के विद्वान् भी, अपने देश की सरकारों अथवा वहाँ के विश्वविद्यालयों की ओर से, नालन्दा में कार्य करने के लिये, भेजे जायँगे। इस प्रकार संभवतः यह नवनालन्दामहाविहार, क्रमशः, 'फाहियान' और 'हुएनसांग' के युग के अपने सार्वभौम स्वरूप को पुनः प्राप्त कर लेगा।

कालक्रम से, इस प्रतिष्ठान के अन्तर्गत, पांडुलिपियों एवं मुद्रित ग्रन्थों का एक विविधविषयक विशाल पुस्तकालय विकसित हो जायगा। राज्य-सरकार ने, ग्रन्थ खरीदने के लिये, पर्याप्त आर्थिक अनुदान की स्वीकृति दी है। इस प्रसंग में, मैं तिब्बत के महामहिम दलाई लामा द्वारा दिये गये तिब्बती पुस्तकों के उदारतापूर्ण दान की चर्चा करना उचित समझता हूँ। आपने, उक्त पुस्तकों के साथ, भगवान् बुद्ध की एक स्वर्ण प्रतिमा भी इस महाविहार को दानस्वरूप दी है। उनके इस सद्भावनापूर्ण कार्य की समस्त भारतवासियों ने हार्दिक प्रशंसा की है। इससे हमें यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि सम्पूर्ण बौद्ध जगत्, जिसका आध्यात्मिक नेतृत्व आज श्री दलाई लामा कर रहे हैं, नालन्दा के प्राचीन गौरव को पुनरुज्जीवित करने में, हमें आभ्यान्तरिक सहयोग प्रदान करेगा। प्रसंगतः, मैं उस गौरवपूर्ण परम्परा की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ, जो आज भी तिब्बत में विद्यमान है और जिसके कारण नालन्दा तथा मिथिला के साथ उसका सम्बन्ध अक्षुण्ण है। मुझे विदित है कि आज भी, तिब्बत में, विद्वन्मंडलियाँ जो शास्त्रार्थ करती हैं, उनमें एक मंडली 'नालन्दा' का नाम धारण करती है और दूसरी 'मिथिला' का। अतएव, इस नवनालन्दा-महाविहार के लिये, तिब्बत के श्री दलाई लामा का शुभाशीर्वाद प्राप्त होना विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। बिहार-सरकार नालन्दा-प्रतिष्ठान और मिथिला-प्रतिष्ठान की स्थापना, एक ही साथ, इस आशा से कर रही है कि इन संस्थाओं के द्वारा उस प्रखर बौद्धिक जीवन की प्राचीन परम्परा यहाँ भी अविलम्ब पुनरुज्जीवित हो जायगी, जो आज दिन भी तिब्बत में विद्यमान है।

संभवतः, इस महाविहार में, संसार के विभिन्न बौद्ध देशों से अनेक विद्वान् तथा विशिष्ट दर्शक सदैव आते रहेंगे। अतएव, यह निश्चय किया गया है कि इस प्रकार के विशिष्ट आगत सज्जनों के समुचित आतिथ्य का प्रबन्ध इस प्रतिष्ठान द्वारा किया जायगा। हमें आशा है कि, कालक्रम से, कुछ उदार व्यक्ति नालन्दा में अतिथिशाला और धर्मशाला बनवा कर राज्य-सरकार के साथ इस कार्य में सहयोग करेंगे। इस संस्था के भवन का निर्माण प्राचीन विहारों की शैली के आधार पर किया जायगा और इसके शिक्षण तथा आवास के खंड अलग-अलग न होंगे। सम्प्रति, इस महाविहार के लिये, एक छोटा-सा भवन बनाया जा रहा है, किन्तु जैसे-जैसे इसका विकास होगा, वैसे-वैसे विशाल भवनों का निर्माण किया जायगा। हमें आशा है कि हमारे ये नवनिर्मित सदन, यथासंभव, नालन्दा के प्राचीन भवनों के अनुरूप ही होंगे।

आज, हमारे राष्ट्रपति महोदय जिस भूमि-खंड पर इस महाविहार का शिलान्यास कर रहे हैं, वह इसलामपुर के श्री हसन अकबर खाँ नामक एक उदार मुस्लिम सज्जन द्वारा दान-स्वरूप मिला है। मैं, इस अवसर पर,

उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। जैसा कि आप सभी लोग देख रहे हैं, इसकी स्थिति ऐसी है कि नालन्दा के प्राचीन भग्नावशेष यहाँ से स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं और इसका प्राकृतिक दृश्य मनोहर है। इसके पास ही यह सुन्दर पुरातन ऐतिहासिक सरोवर भी है। ऐसे स्थान में, इस महाविहार की स्थापना से, निश्चय ही, हमारे मन में अतीत और वर्तमान के संबंध-सूत्र की स्मृति सदैव बनी रहेगी। इस प्रतिष्ठान का पूरा व्ययभार राज्य-सरकार वहन करेगी।

अन्त में, मैं बिहार-मंत्रिमंडल के अपने माननीय सहयोगियों के प्रति, इस पवित्र योजना के संबंध में, उनके तत्पर एवं उत्साहपूर्ण सहयोग के लिये, अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ और श्री भिक्षु जगदीश काश्यप ने जिस एकान्त निष्ठा एवं उत्प्रेरक उत्साह के साथ इस शुभ कार्य का आरंभ किया है, उसके लिये उनको धन्यवाद प्रदान करता हूँ। साथ ही, इस अवसर पर, मैं यह बता देना चाहता हूँ कि भारत के पड़ोसी देशों ने हमारी इस योजना का मुक्त हृदय से अभिनन्दन किया है। इसका आभास हमें इस अवसर पर प्राप्त उन देशों के प्रतिनिधियों के हार्दिक शुभसंदेशों तथा सक्रिय सहयोग से मिलता है। उनमें से कुछ प्रतिनिधिगण तो इस महोत्सव को सुशोभित कर रहे हैं। हम इस योजना का अल्पारंभ इस आशा से कर रहे हैं कि नालन्दा के भग्नावशेषों पर, निकट भविष्य में क्रमशः उस विशाल संस्था का उद्भव होगा, जो उनके अनुरूप सिद्ध होगी। हम इस महाविहार को नालन्दा के अतीत गौरव की पुण्य-स्मृति और इसके तदनुरूप अभिनव एवं आशापूर्ण भविष्य के शुभारंभ के प्रति, सविनय समर्पित करते हैं!

(पृ० २४४ से आगे)

का रूप दिया। नालन्दा विश्वविद्यालय गुप्तवंश के समय से ही विद्यमान था।" अन्त में उन्होंने कहा कि हमें संकल्प कर लेना चाहिए कि हम यहाँ सत्य का अन्वेषण जारी रखेंगे।

(नवनालन्दा महाविहार के सम्बन्ध में आचार्य बदरीनाथ वर्मा का भाषण पढ़ें, जो पृष्ठ २१९ पर इसी अंक में दिया गया है)।

डेढ़ सौ से अधिक बौद्ध नष्टावशेष मिले—उत्तर प्रदेश की राज्य-सरकार ने राज्य भर में खोज करके घोषित किया है कि अब तक १॥ सौ से भी अधिक नये पुरातत्व एवं ऐतिहासिक महत्व के बौद्ध अवशेषों का पता चला है। इन अवशेषों में कुछ तो प्राग्गैतिहासिक काल के हैं और कुछ प्रथम ईस्वी सदी से ६ ठीं सदी के हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण रायबरेली का एक बौद्ध चैत्य का भग्नावशेष है, जो लगभग छठीं ईस्वी सदी का समझा जाता है। बस्ती जिले में पाये गए बौद्ध अवशेष भी लगभग ईसापूर्व दूसरी सदी के हैं। अधिकांश अवशेष शुंग तथा कुशान काल के हैं। खोज विभागीय संचालक श्री वाजपेयी का कहना है कि इन खोजों से उत्तर प्रदेश के सामाजिक इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ेगा।

बौद्ध अनुसन्धान कार्य के लिए दो लाख का दान—लंका के स्वर्गीय श्री ई० बी० गुणतिलक के भाइयों एवं बहिनों ने उनके पुण्य के लिए सीलोन युनिवर्सिटी में बौद्ध अनुसन्धान कार्य के लिए एक लाख रुपया प्रदान किया है. उनके साथ ही श्रीमती एस. हेवावितारण ने भी एक लाख दिया है। इस धन से युनिवर्सिटी में एक स्वतंत्र बौद्ध अनुसन्धान विभाग खोला जायेगा।

चीनी सद्भावना मण्डल सारनाथ में—गत २९ नवम्बर को चीनी सद्भावना मण्डल अपराह्ण में ४ बजे सारनाथ आया। महाबोधि सभा की ओर से उन लोगों का स्वागत किया गया। सद्भावना-मण्डल चीनी मन्दिर, मूलगन्ध कुटी विहार, खँडहर और संग्रहालय का निरीक्षण किया। सारनाथवासी भिक्षु लोगों ने सूत्रपाठ कर सद्भावना मण्डल को आशीर्वाद दिया।

बौद्ध-जगत्

नेपाल में पवित्र अस्थियों का भव्य स्वागत

गत ६ नवम्बर को अग्रश्रावकों की पवित्र अस्थियाँ एक विशेष वायुयान द्वारा कलकत्ते से काठमाण्डू ले जाई गईं। अस्थियों के साथ भारतीय महाबोधि सभा के प्रधान मंत्री श्री देवप्रियवलि सिंह, भिक्षु जिनरत्न, भिक्षु धर्मरत्न एम० ए०, भिक्षु धर्मालोक आदि गए। अस्थि-मंजूषा के हवाई अड्डे पर उतरते ही नेपाल नरेश, मन्त्रिमण्डल तथा लाखों की संख्या में जनता ने उसका स्वागत किया। तत्काल ३१ तोपों की शाही सलामी दी गई। बैण्ड के सुमधुर स्वर में नेपाल का राष्ट्रीय गान गाया गया। चारों तरफ से फूल-अबीर की वर्षा होने लगी। यह दर्शनीय जुलूस दो मील से भी लम्बा था। स्थान-स्थान में सुसज्जित तोरण भी नगर की शोभा बढ़ा रहे थे।

सम्राट् की निजी मोटर को विशेष ढंग से सजाया गया था, मोटर क्या थी, मानो एक बहुत बड़ा मयूर था, कुछ देर तक तो समझा ही नहीं जा सका कि यह एक मोटर है। मोटर के आगे मयूर का एक बड़ा सिर तथा पीछे पंख बने हुए थे। श्रृंगार के बहुमूल्य साधनों से उसे अत्यन्त ही सावधानी के साथ सजाया गया था। श्री ५ महाराजाधिराज सुवर्ण पात्र में संरक्षित उन पवित्र अस्थियों को अपने हाथों में श्रद्धापूर्वक लेकर मोटर में शोभायमान थे। उनकी अगल-बगल श्री देवप्रियवलि सिंह तथा भिक्षु अमृतानन्द बैठे हुए थे। सुरक्षा और सम्मान की दृष्टि से पुलिस तथा गुप्तचर विभाग के सर्वोच्च अफसरों से पूरी कार घिरी थी। हवाई अड्डे से सम्राट् के शाही महल नारायणहिटी तक, जो लगभग ५ मील लम्बा है, दोनों तरफ सशस्त्र सैनिक तथा लाखों जनता खड़ी थी। सैकड़ों मोटरों तथा मोटर साइकिलों की दौड़ भी अपनी श्रद्धा जता रही थी। अपार जनसमूह जुलूसके रूपमें श्रद्धापूर्वक आगे बढ़ रहा था। इस तरह लगभग चार घण्टे बाद पवित्र अस्थियों को शाही महल में पहुँचाया गया। स्वागतार्थ स्थान-स्थान में बने हुए गोपुर वास्तव में दर्शनीय थे। बहुमूल्य बौद्ध चित्रों को जगह-जगह सजाया गया था।

नेपाल छात्र-संघ द्वारा किये गए एक राजनैतिक आन्दोलन के कारण स्थिति के बिगड़ जाने से अस्थि-सम्बन्धी कार्यक्रम को एक दिन के लिए स्थगित करना पड़ा। तीसरे दिन काठमाण्डू के विशाल परेडग्राउण्ड में एक महती जनसभा का आयोजन किया गया। मैदान के बीच में खरिकोबोट नामक एक ऐतिहासिक वृक्ष है, उसी से सटाकर एक ऊँचे मंच का निर्माण किया गया था। मंच को साधारण, परन्तु अत्यन्त ही असाधारण ढंग से सजाया गया था। गेहूँ के पेड़ (जिसे वहाँ छवाली कहते हैं) से निर्मित अनेक बौद्ध चित्रों से मंच सजा था। यह सभा पवित्र अस्थियों के सम्मान तथा देश-विदेश से पधारे अतिथियों के स्वागत के लिए आयोजित थी। नेपाल नरेश ने अपने भाषण में कहा कि सारिपुत्र और मौद्गल्यायन की पवित्र अस्थियों का यह स्वागत समारोह गृह-प्रवेश जैसा है। भाषणकर्ताओं में नेपाल के प्रधान मंत्री, गृह मंत्री, ग्रीस के राजकुमार, इङ्गलैंड, बर्मा, स्याम, चीन, जापान, लंका, तिब्बत तथा भारत के प्रतिनिधि प्रमुख थे।

सभा के विसर्जन होते ही श्री ५ युवराजधिराज ने अस्थि-मंजूषा को अपने हाथ में लिया। फिर एक बड़ा जुलूस 'स्वयम्भू' चैत्य के तरफ बढ़ा। सजधज की दृष्टि से आज भी प्रथम दिन जैसा ही था। नगर के प्रमुख मार्गों से होता हुआ जुलूस आगे बढ़ा। चारों तरफ असंख्य नर-समूह था। खिड़कियों से बैठी हुई महिलायें फूल-अबीर की वर्षा कर रही थीं।

१५ दिनों तक पवित्र अस्थियाँ नेपाल में रहीं। उनकी नित्य शाही सम्मानपूर्वक पूजा की गई और श्रद्धालु जनता को दर्शन मिला। प्रति दिन मन्त्रिमण्डल के सदस्य पारी-पारी से उनकी पूजा किये। पवित्र अस्थियाँ काठमाण्डू के

अरिरिक्त पाटन (ललितपुर) और भातगाँव भी ले जाई गई ।

लुम्बिनी का पुनर्निर्माण—नेपाल सरकार शीघ्र ही भगवान् बुद्ध की जन्मभूमि लुम्बिनी का पुनर्निर्माण करायेगी और उसे फिर से बसायेगी ।

कुछ समय हुआ धर्मोदय सभा ने लुम्बिनी का पुनर्निर्माण कराने का अनुरोध नेपाल के महाराजाधिराज श्री ५ त्रिभुवन से किया था और उन्होंने यह वचन दिया था कि अपनी सरकार से इस मामले पर विचार करने को कहेंगे ।

नवनालन्दा महाविहार का शिलान्यास—गत २० नवम्बर को प्रातः ९ बजे नालन्दा के ध्वंसावशेषों के बीच इतिहास प्रसिद्ध 'इन्द्र पुष्करणी' के पास लगभग २० हजार दर्शकों के समक्ष राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने 'नव नालन्दा महाविहार' नामक पालि विद्यापीठ का शिलान्यास किया । राष्ट्रपति ने विद्यापीठ के पास बोधगया से लाये गए बोधि वृक्षकी एक डाल का रोपण भी किया ।

इस अवसर पर बिहार के मुख्य-मंत्री एवं शिक्षा मंत्री के अतिरिक्त यूनान के राजकुमार पीटर, सिक्किम के महाराज कुमार, तिब्बत सरकार के प्रतिनिधि आदि उपस्थित थे । सारनाथ से भिक्षु संघरत्नजी भी एक पार्टी के साथ गए थे । लोगों की करतल ध्वनि के बीच विद्यापीठ के संचालक भिक्षु जगदीश काश्यप ने सूचना दी कि तिब्बत के दलाई लामा ने ४ सौ बौद्ध-ग्रन्थ और भगवान् बुद्ध की स्वर्णमूर्ति भेंट की है ।

शिलान्यास-कार्य के पूर्व भाषण करते हुए शिक्षा-मंत्री आचार्य बदरीनाथ वर्मा ने बतलाया कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के एक बड़े भूभाग की मातृभाषा 'पालि' के पुनरुत्थान की आवश्यकता महसूस की गई । बिहार सरकार ने पालि, संस्कृत और प्राकृत के विकास के लिए जो योजना बनाई है, उसके अनुसार इस्लामपुर वासी श्री हसन अकबर खाँ द्वारा दी गई जमीन पर यह विद्यापीठ बन रहा है । इसमें पालि और बौद्ध साहित्य की उच्च शिक्षा दी जायेगी । उसका एक विभाग तिब्बती, चीनी, बर्मी, स्यामी और सिंहली भाषायें भी पढ़ायेगा । इस शिक्षण-महाविद्यालय में फिलहाल सीमित संख्या में छात्र और शिक्षक साथ-साथ रहेंगे । शिक्षा निःशुल्क होगी तथा छात्रवृत्ति और अतिथि स्वागत की व्यवस्था भी कर दी गई है । इस संस्था का विकास प्राचीन काल के 'विहारों' के समान ही किया जायगा ।

इस अवसर पर बोलते हुए सिक्किम के महाराज कुमार ने जोर देकर कहा—'आज के युग में नालन्दा विद्यापीठ भारत और एशिया की विश्व के शेष भागों के साथ सांस्कृतिक एकता कायम करेगा ।

यूनान के राजकुमार पीटर, तिब्बत सरकार के प्रतिनिधि श्री पांग्लातू सांग तथा केम्ब्रिज ओरिएंटल इंस्टीच्यूट के डा० मिस जे० ई० वान लूहीजेन, डा० लीव आदि ने भी इस मौके पर भाषण किये ।

बिहार के मुख्यमंत्री डा० श्रीकृष्ण सिंह ने शिलान्यास करने के लिए राष्ट्रपति से अनुरोध करते हुए समारोह को ऐतिहासिक घटना बताया । उन्होंने आशा प्रकट की कि जो प्रारम्भ छोटे पैमाने पर किया जा रहा है, उसके सफल होने पर आज की घटना का बहुत बड़ा ऐतिहासिक महत्त्व होगा ।

राष्ट्रपति ने शिलान्यास करते हुए कहा—'इस महान् विश्वविद्यालय नगर में हम बहुत बड़ा उद्देश्य लेकर जमा हुए हैं । राज्य सरकार ने पालि की शिक्षा के लिए यहाँ मगध विद्यापीठ स्थापित करने का निश्चय किया है । यहाँ बौद्ध साहित्य और दर्शन का अनुसन्धान कार्य भी होगा ।

आगे राष्ट्रपति ने कहा—"नालन्दा का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है । एक समय जब यहाँ ज्ञान के ही सुन्दर फूल नहीं खिलते थे बल्कि यह एक ऐसा केन्द्र था जहाँ से विद्वान् बनकर लोग पृथ्वी भर में फैल गये थे । नालन्दा इस तथ्य का स्पष्ट प्रमाण है कि ज्ञान के क्षेत्र में आकर देश एवं जाति का भेद-भाव नहीं रह जाता है ।

नालन्दा के प्राचीन इतिहास पर प्रकाश डालते हुए आपने बताया कि भगवान् बुद्ध के समय में नालन्दा एक बड़ा गाँव था, यहाँ तथागत रहे थे । नालन्दा में सारिपुत्र का तो निवास ही था । यहाँ उनका चैत्य अशोक के काल तक था, जिसका सम्राट् अशोक ने नवनिर्माण कर मन्दिर

(शेष पृष्ठ २४२ में)

सफेद कोढ़ पर ५१) रु० इनाम दिया

सेठ भगवानजी जैन पाचोरा (खानदेश) की पुत्री का कोढ़ अच्छा हो गया और उन्होंने हमें ५१) इनाम दिया। बाबू बेनिसिंह फत्ताहपुरकलाँ (यू० पी०) लिखते हैं—'आपकी औषधि ने शरीर पर के सब दागों को दूर कर दिया।' मिठारामजी नेहते हंबर्डी लिखते हैं—'मेरी लड़की के कान, पाँव और शिर पर के सब दाग दूर हो गये। मुझे ईश्वरप्राप्ति ही हो गई—ऐसा मालूम हो रहा है।

ऐसे हजारों प्रशंसा-पत्र और कई इनाम मिले। मूल्य छोटा डिब्बा ५) रु०, बड़ा डिब्बा १०), डाक खर्च १२ आना। ज्यादा विवरण के लिये एक आने का टिकट भेजें।

पता—वैद्य बी. आर. बोरकर, आयुर्वेद भवन,
पो० मंगरूलपीर, जि० आकोला (बरार)

एकमात्र बौद्ध मासिक "धर्मदूत" के वार्षिक

ग्राहक क्यों बनें ?

१. क्योंकि धर्मदूत के प्रत्येक अङ्कमें बौद्ध धर्म सम्बन्धी गवेषणात्मक महत्वपूर्ण लेख रहते हैं।

२. अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध प्रवृत्तियों, सांस्कृतिक प्रगतियों एवं विश्व के बौद्धों की अवस्थाओं पर प्रकाश डाला जाता है।

३. इसे भारत के सभी बड़े बौद्ध लेखकों का सहयोग प्राप्त है।

४. आप थोड़े ही मूल्य में संसार भर के बौद्धों से परिचय प्राप्त कर सकते हैं।

५. धर्म के गूढ़ सिद्धान्तों, इतिहास की गुत्थियों एवं सामाजिक-समस्याओं पर इसमें पूर्ण प्रकाश डाला जाता है। 'धर्मदूत' का ग्राहक किसी भी अङ्क से बना जा सकता है। 'धर्मदूत' के समस्त प्रेमी सज्जनों से विनम्र निवेदन है कि वे अधिकाधिक संख्या में ग्राहक बना कर 'धर्मदूत' के प्रचार में सहयोग दें।

व्यवस्थापक, 'धर्मदूत' सारनाथ, बनारस।

पालि वाङ्मय का अनुपम कथा-साहित्य

जातकट्ठकथा

पठमो भागो : मूल पालि

सम्पादक - त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

बढ़िया कागज, मनमोहक छपाई, सजिल्द मूल्य ९)

जिस 'जातकट्ठकथा' के प्रकाशन की बहुत दिनों से प्रतीक्षा की जा रही थी, उसका प्रथम भाग नागराक्षरों में छपकर प्रकाशित हो गया। यह ग्रन्थ पालि वाङ्मय की एक अनुपम निधि है। कथा-साहित्य की दृष्टि से यह संसार में सर्वश्रेष्ठ एवं विशालतम ग्रन्थ है। यही नहीं, विश्व के कथा-साहित्य में यह प्राचीनतम संग्रह भी है। इसमें न केवल भारतीय ही, प्रत्युत एशियायी प्राचीन राजनीति, कला, दर्शन, इतिहास, धर्म, संस्कृति, व्यवसाय, भूगोल आदि सभी प्रकार की ज्ञान-परम्पराओं का समावेश है। इसे बिना पढ़े भारतीय संस्कृति एवं इतिहास का ज्ञान अधूरा ही रहेगा।

इस ग्रन्थ की थोड़ी ही प्रतियाँ छपी हैं। पालि के प्रेमियों, विद्वानों, इतिहास के विद्यार्थियों, पुस्तकालयों एवं विद्या-संस्थाओं को इसे शीघ्र लेना चाहिए। ऐसे ग्रन्थ बार-बार नहीं छपते। शीघ्रता करें, अन्यथा पीछे पछताना पड़ेगा।

मिलने का पता :—

व्यवस्थापक, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड, बनारस सिटी।

हिंदी में बौद्ध-धर्म की पुस्तकें

दीघनिकाय—राहुल सांकृत्यायन	६)
मज्झिम निकाय—,, ,,	८)
विनय पिटक— ,, ,,	८)
सुत्तनिपात—भिक्षु धर्मरत्न	३)
खुद्दकपाठ— ,,	।)
धम्मपद—अवधकिशोर नारायण	१।।)
जातक—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन (भाग १, २)	७।।)
,, ,, (भाग ३.)	१०)
पालि महाव्याकरण—भिक्षु जगदीश काश्यप	४।।)
भगवान् बुद्ध की शिक्षा—श्री देवमित्त धर्मपाल	।-)
तथागत—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन	१।।)
बुद्ध और उनके अनुचर— ,,	१।।।)
बौद्धचर्या पद्धति—बोधानन्द महास्थविर	१।।)
पञ्चशील और बुद्ध वन्दना— ,,	=)
सरल पालि शिक्षा—भिक्षु सद्धातिस्स	१।।)
बौद्ध कहानियाँ—व्यथित हृदय	१।।)
बुद्ध कीर्तन—प्रेमसिंह चौहान	१।।)
बुद्धार्चन— ,, ,,	।)
बोधिद्रुम (कविता)—सुमन वात्स्यायन	।=)
भगवान् बुद्ध ने कहा था— ,,	।=)

भगवान् हमारे गौतम बुद्ध—प्रो० मनोरञ्जन प्रसाद	-)
बुद्धदेव—शरत् कुमार राय	१।।।)
थेरी गाथाएँ—भरतसिंह उपाध्याय	१।।)
बुद्ध और बौद्ध साधक— ,,	१।।)
तथागत का प्रथम उपदेश—भिक्षु धर्मरक्षित	।)
कुशीनगर का इतिहास— ,, ,,	२।।)
पालि-पाठ-माला— ,, ,,	१)
जातिभेद और बुद्ध— ,, ,,	।।)
ब्राह्मण धम्मिय सुत्त— ,, ,,	=)
तेलकटाह गाथा— ,, ,,	।)
बौद्ध शिशु बोध— ,, ,,	।)
सारनाथ दिग्दर्शन— ,, ,,	।)
कुशीनगर-दिग्दर्शन— ,, ,,	।)
लंका-यात्रा— ,, ,,	१।।)
पालि जातकावली—बटुकनाथ शर्मा	२)
बुद्ध वचन—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन	।।)
बुद्ध शतकम्— ,, ,,	।)
महापरिनिर्वाण सूत्र—भिक्षु ऊ कित्तिमा	१।)
बुद्ध-अर्चना (कविता) कुमारी विद्या	≡)
तिब्बत में बौद्ध धर्म—राहुल सांकृत्यायन	१।)

नागरी लिपि में पालि ग्रन्थ

जातकट्ठकथा—भिक्षु धर्मरक्षित	६)
विसुद्धिमग्गदीपिका—धर्मानन्द कौशाम्बी	३।।)
नवनीत टीका— ,, ,,	२।।)
अभिधम्मत्थ सङ्गहो— ,, ,,	२।।)
महापरिनिब्बाणसुत्त—भिक्षु ऊ कित्तिमा	१।)
तेलकटाह गाथा—भिक्षु धर्मरक्षित	।)
धम्मचक्कप्पवत्तनसुत्त— ,,	।)
पालि-पाठ-माला— ,,	१)

चरियापिटक—डा० विमलाचरण लाहा	५)
सुत्तनिपात—भिक्षु धर्मरत्न	३)
खुद्दकपाठ— ,,	।)
धम्मसंगणी—श्री वापट	८)
अत्थसालिनी— ,,	८)
पातिमोक्ख— ,,	१)
सिङ्गाल सुत्तं—भिक्षु ऊ कित्तिमा	।।)

सूचीपत्र के लिए =) की टिकट के साथ लिखें।

प्राप्ति-स्थान :—

महाबोधि पुस्तक भंडार, सारनाथ, बनारस।

प्रकाशक—भिक्षु एम० संघरत्न, महाबोधि सभा, सारनाथ (बनारस)

मुद्रक—ओम् प्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, कबीर चौरा, बनारस ।

धर्म-दूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय नुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवल-पुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ । महावग्ग, (विनय-पिटक)

'भिक्षुओ ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिए, लोक पर दया करने के लिये, देव-

सारनाथ महाबोधि सभा का मासिक पत्र

नवम्बर

१९५१

वर्ष—१६
अङ्क—८

वार्षिक मूल्य — ३
एक अङ्क का —।

हिंदी में बौद्ध-धर्म की पुस्तकें

दीघनिकाय—राहुल सांकृत्यायन ...	६)	भगवान् हमारे गौतम बुद्ध—प्रो० मनोरञ्जन प्रसाद	-)
मज्झिम निकाय—,, ,, ...	८)	बुद्धदेव—शरत् कुमार राय ...	१।।।)
विनय पिटक— ,, ,, ...	८)	थेरी गाथाएँ—भरतसिंह उपाध्याय ...	१।।)
सुत्तनिपात—भिक्षु धर्मरत्न ...	३)	बुद्ध और बौद्ध साधक— ,, ...	१॥)
खुद्दकपाठ— ,, ...	।)	तथागत का प्रथम उपदेश—भिक्षु धर्मरक्षित	।)
धम्मपद—अवधकिशोर नारायण ...	१॥)	कुशीनगर का इतिहास— ,, ,, ...	२॥)
जातक—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन (भाग १, २)	७॥)	पालि-पाठ-माला— ,, ,, ...	[illegible]
,, ,, (भाग ३.)	१०)	जातिभेद और बुद्ध— ,, ,, ...	[illegible]

१०. बुद्ध का अनुयायी [illegible]ीश काश्यप, [illegible] राहुल सांकृत्यायन ... २०२
११. वार्षिक विवरण— ... २०७
१२. बौद्ध-जगत् ... २०९
१३. नये प्रकाशन ... २१५

"धर्म-दूत" के नियम—

१—"धर्मदूत" भारतीय महाबोधि सभाका हिन्दी मासिक मुखपत्र है। "धर्मदूत" प्रति पूर्णिमा को प्रकाशित होता है।

२—"धर्मदूत" के ग्राहक किसी भी मास से बनाये जा सकेंगे।

३—पत्रव्यवहार करते समय ग्राहक-संख्या एवं पूरा पता लिखना चाहिये, ताकि पत्रिका के पहुँचने में गड़बड़ी न हो।

४—लेख, कविता, समालोचनार्थ पुस्तकें (दो प्रतियाँ) और बदले के पत्र सम्पादक के नाम तथा प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र और चन्दा व्यवस्थापक के नाम पर भेजना चाहिए।

५—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने वा न करने, घटाने-बढ़ाने या संशोधन करने का अधिकार सम्पादक को है। बिना डाकखर्च भेजे अप्रकाशित कविता व लेख लौटाये न जा सकेंगे। जिस अङ्क में जिनका लेख व कविता छपेगी वह अङ्क उनके पास भेज दिया जायगा।

६—"धर्मदूत" में सिर्फ बौद्धधर्म, कला, संस्कृति, साहित्य, पुरातत्व आदि सम्बन्धी लेख ही प्रकाशित किये जा सकेंगे।

७—किसी लेख द्वारा प्रकटित मत के लिये सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।

८—"धर्म-दूत" का वार्षिक मूल्य ३) और आजीवन ५०) है।

व्यवस्थापक—

'धर्मदूत' सारनाथ, बनारस।

धर्म-दूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय वहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग, (विनय-पिटक)

'भिक्षुओ ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिए, लोक पर दया करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये विचरण करो। भिक्षुओ ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्था में कल्याणकारक धर्म का उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो।'

सम्पादकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

वर्ष १६ | सारनाथ, नवम्बर | बु० सं० २४९५ / ई० सं० १९५१ | अङ्क ८

बुद्ध-वचनामृत

स्वावलम्बी बनो

एक समय भगवान् मगध के मातुला स्थान में विहार करते थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को सम्बोधित किया —'भिक्षुओ !' 'भदन्त !' कह उन भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् बोले—"भिक्षुओ ! आत्मद्वीप, आत्मशरण होकर विहार करो, किसी दूसरे के भरोसे मत रहो; धर्मद्वीप और धर्म शरण होकर विहार करो, किसी दूसरे के भरोसे मत रहो।

'भिक्षुओ ! कैसे भिक्षु आत्मद्वीप, आत्मशरण, धर्मद्वीप और धर्मशरण होकर विहरता है, किसी दूसरे के भरोसे नहीं रहता ? भिक्षुओ ! भिक्षु काया में कायानुपश्यी हो, संयमी, सावधान, स्मृतिमान् और संसार के अनुचित लोभ और दौर्मनस्य को जीतकर विहार करता है, वेदनाओं में वेदनानुपश्यी होकर विहार करता है, चित्तमें चित्तनुपश्यी होकर विहार करता है, धर्म में धर्मानुपश्यी होकर विहार करता है। भिक्षुओ ! इस तरह भिक्षु आत्मद्वीप, आत्मशरण, धर्मद्वीप और धर्मशरण होकर विहार करता है। भिक्षुओ ! अपने पैतृक विषयगोचर में विचरण करो'। अपने पैतृक विषयगोचर में विचरण करने से मार कोई छिद्र नहीं पा सकेगा, मार कोई अवलम्ब नहीं पा सकेगा। भिक्षुओ ! उत्तम धर्मों के ग्रहण करने के कारण इस प्रकार पुण्य बढ़ाता है।"(दीघनिकाय ३, ३)

तथागत की दिनचर्या

श्री अनन्त

भगवान् बुद्ध के आचरण एवं व्यक्तित्व को समझने के लिये उनकी दिनचर्या जाननी अत्यावश्यक है। व्यक्ति की दिनचर्या उसके आचरण एवं व्यक्तित्व दोनों को प्रकट करती है। हम तथागत की दिनचर्या को इसी दृष्टिकोण से देखेंगे, जिससे कि हमें उन्हें समझने में किसी प्रकार की कठिनाई न हो।

साधारण रूप से तथागत की दिनचर्या पाँच भागों में विभक्त की जाती है—(१) भोजन के पूर्व की चर्या (२) भोजन के बाद की चर्या (३) पहले पहर की चर्या (४) बिचले पहर की चर्या और (५) पिछले पहर की चर्या। भगवान् बुद्ध प्रातः ही उठकर मुख धोना आदि नित्यकर्म कर भिक्षाटन के समय तक एकान्त स्थान में रह, अन्तरवासक पहन, कायबन्धन बाँध, चीवर ओढ़, पात्र लेकर कभी अकेले ही और कभी भिक्षु संघ से घिरे हुए गाँव या कस्बे में भिक्षा के लिये प्रवेश करते थे। वे गाँव के पास पहुँचकर संघाटी को भी भली प्रकार ओढ़ते थे। भिक्षु संघ भी संघाटी ओढ़कर तैयार हो जाता था, तब भगवान् गाँव में प्रवेश करते थे। गाँव में जाने पर भगवान् को देख कभी कभी लोग प्रार्थना करते—‘भन्ते ! हमें दस भिक्षु दें, हमें बीस भिक्षु दें’’ और भगवान् के पात्र को ले सुन्दर बिछे हुए आसन पर बैठ कर सत्कार पूर्वक भोजन कराते थे। भगवान् भोजन कर हाथ धो उन्हें योग्यतानुसार धर्मोपदेश देते थे। कभी कभी विशेष बात आ जाने पर या किसी भिक्षु के गुण को प्रकाशित करने के विचार से स्वयं उपदेश न देकर उस भिक्षु को ही उपदेश देने के लिए आज्ञा करते थे। उपदेश के समाप्त होने पर वे भिक्षुसंघ के साथ अपने विहार करने के स्थान को लौट जाते थे। कभी-कभी भगवान् गाँव में जाकर घर की परिपाटी से भिक्षाटन कर पाये हुए भोजन को ले एकान्त स्थान में जाकर भोजन करते थे। भोजनोपरान्त लौटकर विहार में चले आते थे। कभी कभी ही किसी विशेष बात के आ जाने पर वे भिक्षाटन करने न जाकर विहार में ही रहते थे। एक बार भगवान् मथुरा के गुन्दाबन के विहार में बास कर रहे थे। भोजन के समय भगवान् भिक्षुसंघ के साथ भिक्षाटन के लिए नगर की ओर चले। भगवान् ज्यों ही नगर के समीप पहुँचे एक यक्षिणी नंगी हो सामने आ खड़ी हुई। भगवान् भिक्षुसंघ के साथ वहीं से लौट आये। मथुरावासी गृहस्थों ने जब इस समाचार को सुना तब उन्होंने विहार में ही भोजन पहुँचाने का प्रबन्ध किया। ऐसे ही एक बार भगवान् श्रावस्ती के जेतवन विहार में बास करते थे। नगर में होली का उत्सव (बाल नक्षत्र) मनाया जा रहा था। गवाँर लोग गाँलियाँ देते घूम रहे थे। उस समय भी भगवान् एक सप्ताह तक भिक्षु संघ के साथ भिक्षाटन करने नहीं गये। भोजन की व्यवस्था विहार में ही हुई। जब कभी कोई दायक भगवान् को भिक्षु संघ के साथ भोजन के लिए निमंत्रित करता था, तब वे भिक्षु संघ के साथ उस दायक के घर जा भोजन कर धर्मोपदेश देकर लौटते थे। जब कभी भगवान् भिक्षु-संघ के साथ नगर में भिक्षाटन के लिए जाते थे, आगे आगे भगवान् चलते थे और उनके पीछे-पीछे क्रमशः भिक्षु-संघ। जब पाँच-पाँच सौ भिक्षुओं की पंक्ति नगर में प्रवेश करती तो कितनी भली जान पड़ती! लोग उस शान्त, दान्त भिक्षु-मण्डली एवं भगवान् को देखकर चकित हो जाते। कभी-कभी भिक्षाटन से पूर्व अन्य साधु-परिव्राजकों के आश्रमों में जाकर कुछ वार्तालाप करते थे और समय हो जाने पर भिक्षा के लिए नगर में प्रवेश करते थे। वहाँ से लौट कर भगवान् विहार के मण्डप में बिछे बुद्धासन पर बैठते थे, जब सभी भिक्षु भोजन कृत्य से निवृत्त हो जाते थे, तब भगवान् के उपस्थाक आकर निवेदन करते थे—"भन्ते ! सभी भिक्षु भोजन कर लिए" तदुपरान्त तथागत गन्धकुटी में प्रवेश करते थे। इसे तथागत की भोजन के पूर्व की चर्या कहते हैं।

इस प्रकार भगवान् भोजन के पूर्व के कृत्य को समाप्त कर गन्धकुटी के बरामदे में बैठकर पैरों को धो, भिक्षु-संघ को उपदेश देते थे---"भिक्षुओ! अप्रमाद के साथ जीवन के लक्ष्य का सम्पादन करो। संसार में बुद्ध का उत्पन्न होना दुर्लभ है, मनुष्य का जन्म पाना कठिन है, सुअवसर का प्राप्त होना मुश्किल है। प्रव्रजित होना दुर्लभ है और धर्म-श्रवण करना दुर्लभतर है।" तब कोई-कोई भगवान् से कर्मस्थान (योग-विधि) पूछते थे। भगवान् उनकी चर्याके अनुरूप कर्मस्थान बतलाते थे। तत्पश्चात् सभी भगवान् को प्रणाम् कर अपने-अपने रात्रि एवं दिन में विहरनेके स्थान में चले जाते थे। कोई अरण्य में, कोई वृक्ष के नीचे, कोई पर्वत आदि में से किसी एक जगह। तदुपरान्त भगवान् गन्धकुटी के भीतर जा यदि इच्छा होती तो मुहूर्त भर दाहिनी बगल से स्मृति एवं सम्प्रजन्य के साथ सिंहशय्या से लेटते थे। विश्राम से उठ महाकारुणिक दृष्टिसे संसार को देखते थे। भगवान् जिस गाँव या कस्बे के पास विहार करते थे, वहाँ के लोग भगवान् एवं भिक्षु संघ को दोपहर से पूर्व दान दे, भोजनोपरान्त भली प्रकार पहन ओढ़कर गन्ध-पुष्प आदि ले विहार में एकत्र होते थे। तब भगवान् गन्धकुटी से निकल कर परिषद् में जा बिछे बुद्धासन पर बैठ परिषद् के योग्य स्थान एवं काल को देखते हुए धर्मोपदेश देते थे। समयानुसार भगवान् परिषद् को बिदा करते थे। लोग भगवान् को अभिवादन कर चले जाते थे। इसे तथागत की भोजन के बाद की चर्या कहते हैं।

भगवान् भोजनोपरान्त के कृत्य को समाप्त कर यदि स्नान करना चाहते तो बुद्धासन से उठ स्नान-घर में प्रवेश कर उपस्थाक भिक्षु द्वारा प्रस्तुत किये जल से स्नान करते। उपस्थाक भी भगवान् के आसन को लाकर गन्धकुटी के परिवेण (आंगन) में बिछा देते। तथागत लाल अन्तरवासक पहन, कायबन्धन (कमरबन्द) बाँध, उत्तरासंग (ओढ़ने का चीवर) को एक कंधे पर कर वहाँ आ, मुहूर्त भर अकेले ही चुपचाप बैठते थे। तब भिक्षु धीरे-धीरे चारों ओर से आकर भगवान् के पास एकत्र होते थे। उनमें से कोई प्रश्न पूछते, कोई कर्मस्थान और कोई धर्मोपदेश के लिए प्रार्थना करते। सुगत उनकी इच्छाओं को पूर्ण करते पहले पहर को बिता देते थे। इसे तथागत की पहले पहर की चर्या कहते हैं।

पहले पहर के व्यतीत होने पर जब भिक्षु भगवान् को अभिवादन कर चले जाते, तब सम्पूर्ण दस हजार चक्रवालों के देवता अवसर पा भगवान् के पास आ प्रश्न पूछते थे। शास्ता उनके प्रश्नोत्तर देते हुए ही बिचले पहर को बिता देते थे। इसे तथागत की बिचले पहर की चर्या कहते हैं।

पिछले पहर को भगवान् तीन भागों में बाँट, पहले भाग को चंक्रमण करते हुए बिताते थे। दूसरे भाग में गन्धकुटी में प्रवेश कर स्मृति और सम्प्रजन्य के साथ दायीं बगल से सिंहशय्या से लेटते थे। तीसरे भाग में उठकर बैठ पहले के बुद्धों के शासन काल में दान, शील आदि पुण्य कर्मों को किए हुए व्यक्तियों को देखने के लिए महाकरुणा-समापत्ति को प्राप्त कर बुद्ध-चक्षु से संसार को देखते थे। इसे तथागत की पिछले पहर की चर्या कहते हैं।

यह तथागत की साधारण दिनचर्या है। काल, स्थान एवं प्रयोजन विशेष के अनुसार इस दिनचर्या में अल्पमात्र ही अन्तर होता था, वह भी वर्षावास के तीन मास तथा किसी विहार में कुछ दिन ठहरने के अतिरिक्त चारिका आदि समयों में ही। शास्ता जब किसी दूरस्थ व्यक्ति पर अनुकम्पा कर ऋद्धिबल से वहाँ जाने के लिए त्वरित चारिका करते थे, और जब गाँव निगम तथा नगर से होते भिक्षाटन करते, धर्मोपदेश देते अत्वरित चारिका करते थे, तभी इन चर्याओं में अल्पमात्र अन्तर पड़ता था। तथागत कभी-कभी अपने सामने भूखों को भोजन दिलवाते थे, रोगियों की स्वयं सेवा करते थे, कई योजन जाकर छायारहित वृक्ष के नीचे बैठकर जगदोद्धार का चिन्तन करते थे। कभी-कभी सारी रात मैदान में ही बैठे ध्यान-सुख में बिता देते थे। कभी ऐसा भी होता था कि वे दोपहर के बाद दूसरे परिव्राजकों के आश्रम में जाकर धार्मिक वार्तालाप भी करते थे। कितनी बार भगवान् को खाली पात्र ही लौट आना पड़ा था।

इस प्रकार हमने देखा कि तथागत की दिनचर्या अत्यन्त परिशुद्ध एवं अनुपम थी। तथागत की दिनचर्या से संसोर के किसी भी महापुरुष की दिनचर्या की तुलना

नहीं की जा सकती। क्या संसार के किसी भी कोने में कभी ऐसे महापुरुष का जन्म हुआ है, जिसकी दिनचर्या नियमित एवं सदा क्रमबद्ध रही हो? और जो स्वयं मुक्त हो संसार को मुक्त करने के प्रयत्न में ही अपना सम्पूर्ण जीवन बिता दिया हो? उन लोकोत्तर चर्यावाले तथागत को नमस्कार!

"विसुद्धचरितो सत्था बुद्धचरियाय पारगू।
सब्बचरियासु कुसलो लोकाचरियो अनुत्तरो॥"

ज्ञान का दीपक यहाँ जलता रहा है

श्री नरेशचन्द्र वर्मा 'नरेश'

साँझ की बेला, चला हूँ मैं अकेला
दूह पर, मन में लगा है भाव-मेला
पूछती है चेतना—उत्थान किसका—
उफ़! यहाँ पर रात-दिन ढलता रहा है
यह न युग की बात, युग-युग की कथा है
घूमती छाया यहाँ बन कर व्यथा है
खण्डहर से क्षीण ध्वनि आती निरंतर
काल, जीवन को यहाँ दलता रहा है
बौद्ध-संस्कृति-सभ्यता का रूप सुन्दर
एक दिन फैला यहाँ था, मधुर मनहर
आ गयी आँधी, मिटी, पर स्नेह से—
प्राण का दीपक यहाँ पलता रहा है
छोड़ती निःश्वास, वह जो आ रही है
है उदासी, चाँदनी, बहला रही है—
झर चुके जो फूल फिर भी खिल उठेंगे
आस पर यह जग सदा चलता रहा है
झुरमुटों में वेदना थक सो गई है
ओस की मुसकान झिलमिल खो गई है
दूब में उलझा हुआ मैं चल रहा, पर—
वेदना का भार तो खलता रहा है
मातृ-मंदिर शारदे तेरा प्रभामय
विश्व में था, श्रेष्ठ जैसे हो हिमालय
किन्तु उसके ध्वंस के अवशेष पर भी
ज्ञान का दीपक यहाँ जलता रहा है।

काशी की बौद्ध महारानी कुमार देवी

भिक्षु धर्म रक्षित

काशी की जिन रानियों ने बौद्धधर्म की महान् सेवा की हैं, उनमें कुमार देवी का स्थान प्रमुख है। मल्लिका, श्यामावती, संघमित्रा, चारुमती और राजश्री के बाद कुमारदेवी ही भारत की एक ऐसी रानी हुई जिसने अपना सम्पूर्ण जीवन बौद्ध धर्म के प्रचार और उत्थान में लगा दिया। उसकी कृतियों ने आज भी उसके अमर यशः-काय को जीवित रखा है। सारनाथ और श्रावस्ती में उसके द्वारा निर्मित बौद्ध विहारों के नष्टावशेषों को देख कर कुमारदेवी के कार्यों की महत्ता का थोड़ा-बहुत ज्ञान हो जाता है। उक्त स्थानों से प्राप्त शिलालेखों में उसका सारा वृत्तांत भी अंकित है।

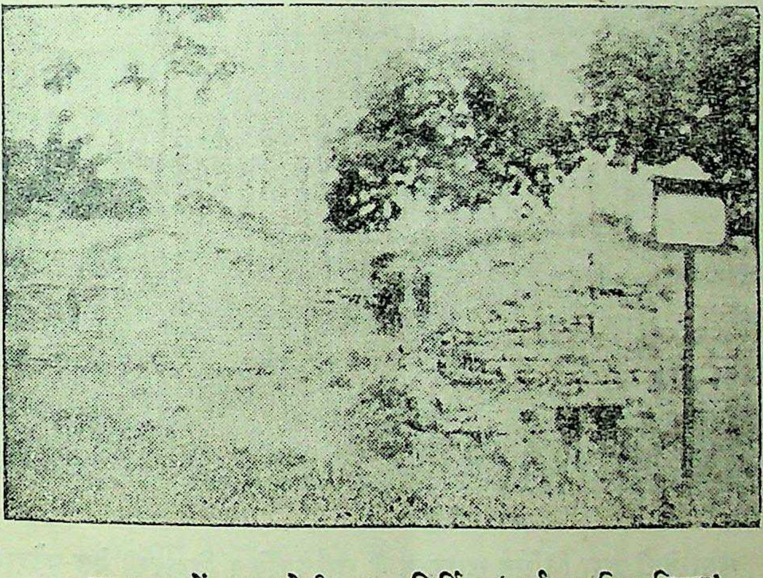

सारनाथ में कुमारदेवी द्वारा निर्मित 'धर्मचक्र जिन विहार'

शिखालेख में सौंदर्य वर्णन

कुमारदेवी गया जिले के पीठी प्रदेश के सामन्त देवरक्षित की पुत्री थी। उसकी माता का नाम शंकर देवी था, जो अंग जनपद के अधिपति मदनदेव की सन्तान थी। वह परम सुन्दरी और स्त्री-सुलभ सर्वगुण सम्पन्न थी। सारनाथ से प्राप्त शिलालेख में उसकी रूप शोभा का वर्णन इस प्रकार किया गया है—'वह एक दिव्यांगना के तुल्य थी। ऐसी रूपवती थी जैसी स्वच्छ शरद ऋतु के चन्द्रमा की सुन्दर फांक होती है। मानो पाप-सागर में डूबे हुए लोगों का उद्धार करने के निमित्त कृपावश साक्षात् तारिणीदेवी ही अवतार लेकर इस संसार में आयी हों। उसके रूपलावण्य का वर्णन करने में कोई व्यक्ति कैसे समर्थ हो सकता है? उसे बनाकर स्वयं ब्रह्मा भी अपने रचना कौशल पर अभिमान करने लगे कि मैंने ऐसी अनुपम सुन्दरी की रचना की है। उसके मुख के सौंदर्य से परास्त होकर चन्द्रमा को तो ऐसी लज्जा आयी कि वह उड़कर आकाश में जा छिपा। तब से केवल रात में ही बाहर निकलता है और तभी से वह विच्छाया और कलंकित भी हो गया है।'

कुमारदेवी के माता-पिता उसके सौंदर्य एवं गुणों से बहुत प्रसन्न रहते थे। उन दिनों मगध में बौद्ध धर्म का बोल बाला था। विक्रमशिला और नालन्दा के विद्यापीठ बौद्धधर्म के प्रसार एवं प्रचार में निरत थे। यद्यपि

उस समय उत्तर प्रदेश में बौद्धधर्म का ह्रास हो चला था, तथापि बिहार प्रांत उसके उत्थान में जुटा था। उन दिनों भी अनेक बौद्धाचार्य नेपाल, तिब्बत, चीन आदि की ओर धर्म प्रचारार्थ जाया करते थे। अतः कुमार देवी पर बौद्धधर्म का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। इससे भी अधिक महत्त्व की बात यह थी कि कुमार देवी के पिता और माता दोनों ही बौद्ध थे और उनकी भगवान् बुद्ध में परम भक्ति थी। वे प्रति मास की पूर्णिमा और अमावस्या को बुद्धगया जाकर महाबोधि एवं तथागत की पूजा करते थे। कुमार देवी भी उनके साथ बुद्धगया जाया करती थी।

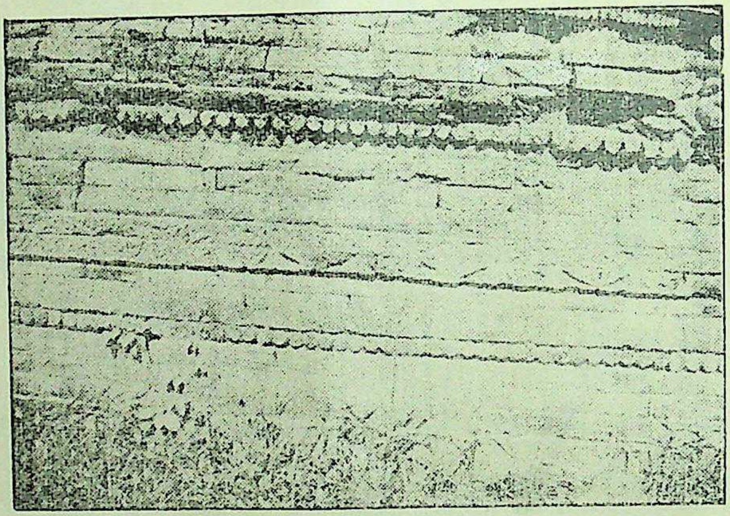

कुमारदेवी द्वारा निर्मित सारनाथ के धर्मचक्रजिन विहारकी बेल-बूटेदार दीवालों की जुड़ाईका एक नमूना

जब वह बड़ी हुई तब उसे बौद्धधर्म की शिक्षा एक विद्वान् भिक्षु द्वारा दी गयी। वह थोड़े ही दिनों में बौद्धधर्म को भली प्रकार जान गई। इन दिनों बौद्ध धर्म की अवनति देखकर उसे बड़ी चिन्ता होती थी।

वह चाहती थी कि बुद्ध धर्म पुनः सारे भारतवर्ष में एक-सा फैले। वह कभी-कभी मन में सोचती—'यदि मैं स्त्री न होकर उत्पन्न हुई होती और मैं पुरुष हुई होती, तो तथागत की उसी प्रकार पूजा करती, जिस प्रकार महाराज अशोक ने की थी।' अशोक और हर्षपर उसकी महती श्रद्धा थी। वह संघमित्रा के त्याग से भी बहुत प्रभावित थी।

शिला-लेख में लिखा है—'कुमारदेवी का मन अनन्य रूप से धर्मनिष्ठ है। वह सदा सद्गुणों के अर्जन में तत्पर रहती है। उसने पुण्यसंचय का ही व्रत उठा रखा है। दान देकर ही उसे अपार सन्तोष होता है।

काशी के राजकुमार से विवाह

कुमारदेवी की धार्मिक प्रवृत्ति ने धीरे-धीरे और जोर पकड़ा और वह घर-बार छोड़कर चारुमती और राजश्री बनने की कामना करने लगी। प्रव्रज्या की ओर उसका चित्त विशेष रूप से झुकने लगा। जब माता-पिता को उसके मनोभाव ज्ञात हुए, तब उन्होंने शीघ्र ही उसका विवाह काशी और कन्नौज के राजा मदनचन्द्रके पुत्र राजकुमार गोविन्दचन्द्र से कर दिया।

गोविंदचन्द्र भी परम रूपवान एवं वीर व्यक्ति था। उसके सम्बन्ध में शिलालेख में लिखा है—'मानो वह साक्षात् विष्णु था, जिसे भगवान् शंकर ने यह समझ कर कि विश्वभर की रक्षा करने में यही एक समर्थ है, बनारस की एक दुष्ट मुसलमान सैनिक से रक्षा करने के निमित्त इस संसार में फिर अवतीर्ण होनेको कहा था।'

गोविन्दचन्द्र बहुत बड़ा दानी भी था। उसने अनेक गाँव, तहसीलें आदि साधु-ब्राह्मणों को दान दिये थे। उसके द्वारा प्रदत्त ४२ से भी अधिक दान-पत्रों और अभिलेखों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वह बड़ा उदार और धार्मिक था।

गोविन्दचन्द्र पिता की मृत्यु के बाद सन् ११४४ में काशी और कन्नौज के सिंहासन पर बैठा था। उसकी राजधानी दोनों जगह थी, किंतु वह अधिकांश काशी में ही रहता था। उसने अपने जीवन-काल में बड़ी वीरता के साथ मुसलमानों का सामना किया। उसने गजनवी तुर्कों को पंजाब से मध्यदेश की ओर बढ़ने से रोक रखा। इन्द्रप्रस्थ से बिहार की सीमा तक के प्रदेश उसे अपने पिता से मिले थे। मगध और अंग पर उसने स्वयं अधिकार किया। मिथिला भी उसके अधीन हो गया। इस प्रकार उसके समय में कन्नौज का साम्राज्य फिर राजा भोज और महेन्द्रपाल के समय की याद दिलाने लगा।

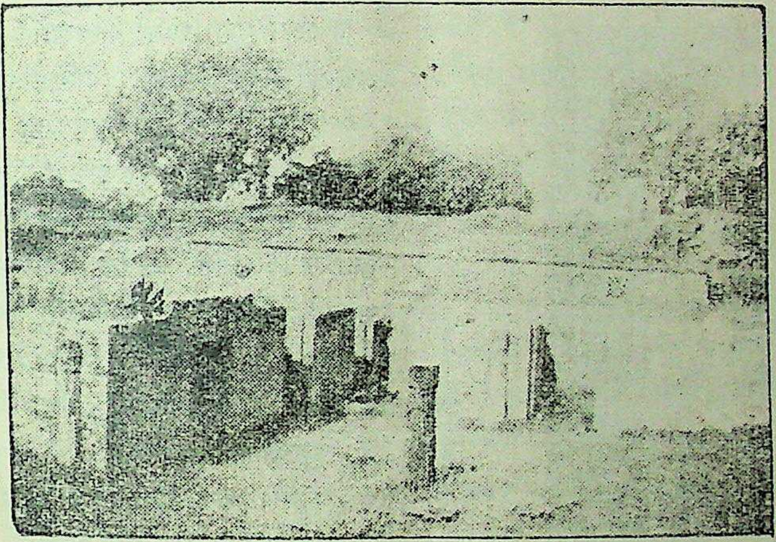

सारनाथ स्थित धर्मचक्र जिन विहार का एक दृश्य

कुमारदेवी और गोविन्दचन्द्र की जोड़ी अनुपम थी। दोनों सदाचारी, गुणी, धर्मात्मा और दानी थे। दोनों अपने इष्टदेव के परम भक्त थे। रानी तथागत में श्रद्धा रखनेवाली थी, तो राजा शंकर में, रानी 'भगवती आर्या वसुन्धरा' को पूजती थी, तो राजा कालभैरवी को; किंतु थे दोनों परम उदार। सभी धर्मों के प्रति दोनों के हृदय में आदर और सम्मान था। लेख में कहा है--'कैसे आनन्द की बात है कि त्रिभुवन प्रसिद्ध कुमारदेवी का विवाह राजा गोविन्दचन्द्र से हुआ। इन दोनों की जोड़ी लक्ष्मी और विष्णु की जोड़ी-सी थी। उस राजा के सुन्दर-सुन्दर रमणियों से भरे रनिवास में कुमारदेवी ताराओं में चन्द्रलेखा के समान थी।'

कुमारदेवी अपने धार्मिक पतिदेव को पाकर और भी धर्म कार्यों में संलग्न हो गयी। उसने काशी नगर में स्थायी रूप से निवास किया। वह नित्य प्रातः गंगा-जल से स्नान कर बुद्ध मन्दिर में पूजा करने जाती थी। नित्य ही भिक्षुओं एवं भिखारियों को दान देकर भोजन करती थी। उसने काशीके अनेक विहारों की मरम्मत करायी। श्रावस्ती की गन्धकुटी की मरम्मत करा उसने बाड़ा, चतुरासीति, पत्तलीय, बिहार, पत्तण, उपलहड़ा, मेयी, सम्बद्ध घोसाड़ी, पोठीवार और सम्बद्ध पयासी नामक गांवों को विहार के खर्चे के लिए दान कर दिया।

सारनाथ में निर्माण

नवखण्डों में विभक्त सारनाथ में 'धर्मचक्रजिन विहार' का निर्माण कराया, जो बड़ा ही सुन्दर और विशाल था। वह लम्बाई में पूर्व से पश्चिम ८०० फुट था। उसमें गर्मियों में रहने योग्य सुरंग बनी थी, जिसमें भगवान् बुद्ध

की एक भव्य मूर्ति प्रतिष्ठापित की गयी थी। विहार की भित्तियाँ नाना प्रकार की स्थापत्य कलाओं से युक्त थीं। बीच में स्नानगृह और एक सुन्दर जल-कूप था। भिक्षुओं के पाठन-पाठन की सुविधा के लिए विहार के विशाल प्रांगण में परिवेण बना हुआ था। विहार के मध्य भाग में एक मन्दिर था, जिसमें भगवान् बुद्ध की एक विशाल मूर्ति बैठायी गयी थी। यह मन्दिर सारनाथ के सभी मन्दिरों से बढ़कर सुन्दर और दर्शनीय था। कुमारदेवी ने विहार के खर्चे के लिए काशी की सब से बड़ी जम्बुकी नामक तहसील दान कर दिया। उसने अशोक द्वारा निर्मित गन्धकुटी में तथागत की मूर्ति की पुनः प्रतिष्ठा की और उसके नाम का एक अलग विहार भी बनवाया। लेख में सारनाथ में किये गये उसके कार्यों का वर्णन इस प्रकार है—'तारिणी के रूप में वसुधारा की जो मूर्ति है, उससे मण्डित एवं नव खण्डमयी इस भूमि का हारस्वरूप यह विहार उसी कुमारदेवी ने बनवाया है, जिस विहार की अद्भुत तथा सर्वोत्तम रचना-चातुरी को देखकर देवता भी चकित रह गये तथा देवताओं के साथ उनका वह प्रसिद्ध स्थपित (कारीगर) विश्वकर्मा भी चकित रह गया।

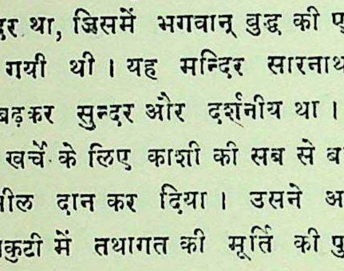

कुमारदेवी द्वारा बनवायी गयी
सारनाथ की सुरंग

'उक्त विहार के व्यय के लिए कुमारदेवी ने जम्बुकी नाम की एक तहसील पूरी की पूरी भगवती तारिणी (वसुधारा) के नाम लगा दी। जो सभी तहसीलों में सर्वश्रेष्ठ तहसील है, उसे धर्मचक्र की आकृतिवाली भगवान् बुद्ध की शासन-मुद्रा से अंकित एक ताम्रशासन द्वारा यथाविधि उसने उस तारिणी के प्रति समर्पित कर दिया। इस प्रकार दान में दी गयी यह जम्बुकी जबतक चन्द्र और सूर्य इस विश्व में विद्यमान हैं तबतक विराजमान रहे।

'उस कुमारीदेवी ने अशोक द्वारा स्थापित भगवान् बुद्ध की मूर्ति की पुनः प्रतिष्ठा की और उसके नाम का एक पृथक् विहार भी बनवाया। धर्माशोक सम्राट् के समय में धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा की प्रतिमा को जिस विधि-विधान और समारोह से प्रतिष्ठापित किया गया था, उसे फिर से और भी अधिक चमत्कारक विधि-विधान और समारोह से प्रतिष्ठापित किया गया। कुमारदेवी ने भगवान् बुद्ध के निमित्त यह विहार बनवाया। उसी में उनकी मूर्ति भी प्रतिष्ठापित की। यह विहार जबतक चन्द्र सूर्य हैं, तबतक बना रहे।

कुमारदेवी ने नालदा और महाबोधि विहार (बुद्धगया) के लिए भी पर्याप्त धन दिया। उसने सहस्रों भिक्षुओं को आश्रय प्रदान किया और अनेक विहारों के दायकत्व-भार को सम्हाला। इस प्रकार दान, शील आदि पुण्य-कर्मों को करती हुई वह भारत की अन्तिम बौद्ध महारानी काशी में ही परलोकगामिनी हो गयी। उसके पुत्र विजयन्द्र (११५५-७० ई०) ने बड़ी धूमधाम के साथ अन्त्येष्टि क्रिया करके उसके फूलों पर एक भव्यस्तूप निर्मित कराया। कुमारदेवी का वह स्तूप आज भी काशी के अवशेषों के मध्य विद्यमान है। (दैनिक 'आज' से)

पालि क्या है ?

भिक्षु जगदीश काश्यप

जिस क्षेत्र में आज हिन्दी भाषा बोली जाती है उसी क्षेत्र में आज से प्रायः ढाई हजार वर्ष पूर्व जो भाषा बोली जाती थी उसी को आज हम पालि भाषा के नाम से जानते हैं। संसार की सभी चीजों की तरह भाषा भी अनित्य तथा विकासमय है। आज जिस भाषा को हम इतनी सरलता से बोलते और समझते हैं वही भाषा कुछ शताब्दियों के बाद एक अजीब सी भाषा हो जायगी। यही कारण है कि पालि भाषा हमारे अपने पूर्वजों की भाषा होती हुई भी आज हमें इतनी नई और विचित्र सी मालूम होती है।

उन दिनों जब 'पालि भाषा' उत्तर भारत की जनभाषा थी देश की राजनैतिक सत्ता का केन्द्र मगध बना था। मगध के सम्राटों ने इस भाषा को अपनी राजभाषा का स्थान दिया और उससे उसका महत्त्व बहुत बढ़ गया। मगध सम्राटों के शिलालेख भी पालि भाषा के ही रूपों में हैं। बुद्ध ने अपने प्रचार का माध्यम इसी भाषा को बनाया। बुद्ध चाहते थे कि सूर्य की किरणों की तरह उनके धर्म का प्रचार झोपड़ियों से लेकर प्रासादों तक सभी वर्ग के लोगों में समान रूप से हो। इसीलिए उन्होंने जनभाषा पालि को ही अपनाया—ठीक उसी तरह जैसे वर्त्तमान युग में महात्मागांधी ने हिन्दी को।

बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद आनन्द, महाकाश्यप प्रभृति प्रधान शिष्यों ने निर्णय किया कि यथाशीघ्र तथागत के उपदेशों का संग्रह कर लिया जाय, जिससे आने वाली जनता को तथागत का प्रामाणिक धर्म प्राप्त हो सके। महाराज अजातशत्रु ने राजगृह के सप्तपर्णी गुफा के सामने विशाल मंच तैयार करा दिया जहाँ राजकीय संरक्षण में प्रथम संगीति की बैठक हुई। एक लम्बी अवधि तक अनवरत परिश्रम से संग्रह के कार्य कर भिक्षु संघ ने धर्म विजय के ग्रन्थों की रचना की। पालि साहित्य के प्रादुर्भाव का कदाचित यही श्रीगणेश था।

एक बात अत्यंत विचारणीय है कि सारे पालि साहित्य में कहीं भी इस भाषा को 'पालि' नाम से नहीं पुकारा गया है। जहाँ कहीं इस भाषा का उल्लेख आता है वहाँ यह 'मागधी भाषा' के ही नाम से स्मरण की गई है। इसका कारण स्पष्ट है कि मगध की भाषा होने के कारण तथा मगध की अपनी विशेषताओं की छाप ग्रहण करने के कारण यह 'मागधी भाषा' के नाम से पुकारी जाने लगी थी। तो भी स्मरण रखना होगा कि यह मगध की अपनी भाषा न थी; किन्तु यह सारे उत्तर प्रदेश में बोली जाने वाली वह भाषा थी जिस पर मागधी का रंग सब से अधिक चढ़ा हुआ था।

इसका नाम पालि क्यों पड़ा ?

बुद्ध के उपदेश जिन ग्रन्थों में संग्रहीत हुए उन ग्रन्थों के नाम के साथ 'पालि' शब्द जोड़ दिया जाता था। जैसे, ग्रन्थ का नाम था दीघनिकाय, किन्तु इस बात को दिखाने के लिए कि यह बुद्ध के वचन का संग्रह है इसके साथ 'पालि' शब्द लगाकर इसका पूरा नाम 'दीघनिकायपालि' कर दिया। उसी तरह 'मज्झिमनिकायपालि', 'संयुत्तनिकायपालि', 'महावग्गपालि' आदि ग्रन्थों के नाम पड़े। इससे स्पष्ट होता है कि मागधी भाषा में 'पालि' शब्द का अर्थ 'बुद्ध-वचन' समझा जाता था।

'पालि' शब्द का अर्थ 'बुद्ध-वचन' किस प्रकार हो गया यह भी स्पष्ट ही है। बुद्ध अपने धर्मोपदेश के अन्त में प्रायः कह दिया करते थे कि इस उपदेश का नाम अमुक हुआ। उपदेश के अन्त में शिष्य पूछता है—"को नामो अयं भन्ते धम्मपरियायो"—अर्थात् भन्ते! इस धर्मपरियाय (उपदेश) को हम किस नाम से जाने? बुद्ध उत्तर देते थे—"तस्मातिह भिक्खवे इमं धमपरियायं ······जानाथ"। अर्थात्, तो भिक्षुओ! इस धर्मपरियाय को इस नाम से जानो।

देशी भाषाओं में बहुधा रकार का लकार हो जाता है, जो सभी भाषातत्त्वविद् जानते ही हैं। अतः आगे चलकर परियाय का रूप पलियाय हो गया। अशोक के शिलालेख में 'धम्मपलियायनी' का रूप स्पष्ट प्राप्त होता है।

आगे चलकर पलियाय शब्द का संक्षिप्त रूप 'पेय्याल' हो गया और बाद में इसी का 'पालि' रूप भी हो गया।

क्योंकि उन ग्रन्थों के नाम के साथ 'पालि' शब्द जुटा रहता था, धीरे धीरे ऐसा साधारण भ्रम हो गया कि वह भाषा ही 'पालि भाषा' है जिसमें ये किताबें लिखी हैं। और आज यह लोग भूल से गये जान पड़ते हैं कि मागधी भाषाने ही 'पालि भाषा' का नाम पाया है।

पालि और संस्कृत

प्रायः लोग ऐसा समझते हैं कि 'पालि भाषा' संस्कृत भाषा का एक विकृत रूप है। यह सर्वथा भ्रममूलक है। वैदिक काल में जो भाषा बोली जाती थी उसके रूप और 'पालि' के रूप का तुलनात्मक अध्ययन करने से पता चलता है कि दोनों एक ही धारा के निकट के दो स्थल हैं। वैदिक भाषा जीवित भाषा थी, और इस कारण इसमें व्याकरण की वैसी जकड़ न थी। एक ही अर्थ में अनेक प्रत्ययों का व्यवहार होता था तथा शब्द या धातु के एक ही रूप के अनेक प्रकार होते थे। उदाहरणार्थ, वेदों में निमित्तार्थक प्रत्ययों की संख्या तेरह थी। यह ध्यान देने योग्य बात है कि 'पालि भाषा' में ये अनेक रूप उसी प्रकार प्राप्त होते हैं। इससे यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि वैदिक भाषा के बाद का ही स्तर 'पालि भाषा' है।

प्रत्यय तथा रूपों की विविधता के कारण भाषा कुछ अवश्य ही कठिन हो चली होगी, और विद्वानों ने इसका अनुभव किया होगा कि भाषा में संयम लाने के लिए कुछ नियमों की रचना की जाय। इसी दृष्टि से सर्व प्रथम वेदों के प्रातिसाख्य लिखे गये जिनमें कुछ मोटे नियम बना कर भाषा को संयत करने का प्रयत्न किया गया। यही प्रयत्न आगे चल कर पाणिनीय व्याकरण के रूप में सिद्ध हुआ जिसने भाषा को नियमों में संयत कर स्थिर कर दिया। व्याकरणानुकूल ही लिखने और बोलने पर विद्वानों ने जोर दिया। व्याकरण से संस्कृत हो यह भाषा हमारे देश की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाषा हुई जिसमें आज हमारी संस्कृति का अक्षय भण्डार सुरक्षित है।

वैदिक भाषा की धारा का प्राकृतिक प्रवाह भी अविच्छिन्नरूप से साथ–साथ चलता रहा। इसी प्रवाह के भिन्न भिन्न स्तर 'पालि', 'प्राकृत' अपभ्रंश तथा आज की हिन्दी भाषा है। अतः भारतीय भाषा–विज्ञान का अध्ययन 'पालि' के बिना पूर्ण नहीं हो सकता।

शताब्दियों तक पालि-साहित्य का विकास होता रहा, जिसके प्रधान केन्द्र गया, राजगृह नालन्दा, पाटलिपुत्र, तथा वैशाली थे। जब बौद्ध धर्म के साथ साथ पालि-साहित्य लंका, बर्मा आदि देशों में पहुँचा, तो वहाँ इसके साहित्य का और भी सर्वतोमुखी विकास हुआ।

भारतीय संस्कृति के गौरव इस विशाल साहित्य का अध्ययन–अध्यापन आज संसार के सभी सभ्य देशों के विश्वविद्यालयों में बड़े सम्मान के साथ होता है। आक्सफोर्ड, कैम्ब्रिज, हार्वर्ट (अमेरिका), अमस्टर्डम, पेरिस, बर्लिन, मास्को, अंकारा (टर्की) आदि विश्वविद्यालयों में पालि के अध्ययन-अध्यापन के अच्छे केन्द्र हैं। भारतवर्ष में मुख्यतः कलकत्ता तथा बम्बई के विश्वविद्यालयों पालि की पढ़ाई होती है।

पटना विश्वविद्यालय में पालि के अध्यापन का प्रबन्ध होने जा रहा है। यदि उत्साह के साथ हमारे विश्वविद्यालय ने काम किया, तो सम्भवतः ५० वर्षों के भीतर हम पालि-पाण्डित्य में उस स्थान को प्राप्त कर लें जिसे विदेशी विश्वविद्यालयों ने अब तक प्राप्त कर लिया है।

अम्बपाली

श्री रत्नशंकर प्रसाद

अभिनव पिशंग जलधर से, काशी दुकूल पट डाले
कोरक किशोर कलियों से, अलकों के जाल सँभाले

वे पद्मराग के पुतले, लिच्छवि कुमार रथवाले
अभिनील नयन नलिनोंमें, मानिक रेखाएँ डाले

बोले देखो अम्बा का, रथ लौट रहा क्या वन से
क्या आमंत्रित कर आई, क्या अग्र पिंड वह देगी
रे पुण्य स्वत्व क्या हमसे, बरबस ही वह ले लेगी

वैक्रान्त मणिभ स्यन्दन पर, अम्बा जनपद कल्याणी
जिससे अनुप्राणित लगते, उस जनपद के सब प्राणी

रोको अनुनय कर पूछें, अम्बे तू कहाँ चली रे
प्रत्यूष मलय अँगड़ाई, में उड़ती कहाँ कली रे

'सुभगे ! तू क्यों टकराती, रथ चक्र अरा से मेरे
मुसकाकर लिच्छवि बोले, हम भीत त्वरा से तेरे

'आमंत्रित कर आई हूँ, कल पिंडपात लेने को
दूसरे प्रात आवेंगे, वे पुण्य सकल देने को

कल संघ समेत सुगत को, सन्तर्पित कर सुख लूँगी
अपना प्रिय उपवन देकर, लोकोत्तर कीर्ति करूँगी

'अम्बे ! तू कल का भोजन, दे हमें लाख भी लेकर
यह अग्र पुण्य हम लेंगे, शत कोटि स्वर्ण भी देकर

इस सप्त द्वीपिनी वसुधा के स्वर्ण रजत मणिराजी
हैं हीन मूल्य व्ययधर्मी, कामना यज्ञ के याजी

इस पुण्य युद्ध में अम्बे ! हो गये विजित क्या तेरे
हम महाश्रमण दर्शन को, आए थे बहुत सबेरे ।'

नीला दुकूल अंबरपट ज्योत्स्ना कबंध शशि मुख का
मन्दाकिनि व्योम किनारे, रहता है जनपद सुख का

आनन्द देव हैं वज्जी, अपने सुकृतों से भूपर
है धन्य पुरस्कृत धरणी, धारण कर उनको ऊपर
मंगल पुष्करिणी जल से, अभिषिक्त अनीहा उनकी
श्री कादम्बिनि सी छाई, बरसाती बूँदें गुण की

समवेत देव परिषद् से, उस संथागार भवन में
जुटते अयोध्य लिच्छविगण, बढ़ता आलोक अवनि में

अलका स्पर्दिनी है जिसकी, अविरल सुभिक्ष वैशाली
बहु यापनीय यह नगरी, मुखरित दश शब्दोंवाली

चापाल चैत्य पर चलकर, आनन्द ! चलो विहरेंगे
छायावाले शीतल क्षुप, तनु के सब ताप हरेंगे
आनन्द भिक्षु जिसमें भी, सब ऋद्धिपाद हैं रक्षित
वह कल्प व्यापिनी काया, ले विहर सकेगा इच्छित
मैं जीर्ण वृद्ध वयव्यापी, व्याख्यात स्पष्ट पथवाला
विचिकित्सा हीन विनय की, ऊर्जस्वल उल्कावाला

आमेरु मलय वाणी से, स्पन्दन जीवित करता हूँ
मैं वीन अहिंसा लेकर, करुणा के स्वर भरता हूँ

आनन्द ! परम सत्ता की यह मृग मरीचिका छोड़ो
कर्मों के पुष्कल चय से, भव के सब बन्धन तोड़ो ।

कोरिया और भारत

श्री भानचन्द्र वर्मा

कोरिया में बौद्ध धर्म का प्रचार सन् ६७२ ईसवी में शुरू हो गया था। सातवीं सदी में कोरिया से बौद्ध भिक्षुओं का भारत आना शुरू हुआ। कोरिया से सैकड़ों बौद्ध भिक्षु भारत आए। भारत में उन्होंने ख़ास तौर से तीन काम किये—

पहला यह कि उन्होंने नालन्दा विश्वविद्यालय में बौद्ध मज़हब की तालीम हासिल की।

दूसरा यह कि बौद्ध धर्म के तीर्थों में जाकर उन्होंने अपनी श्रद्धा दिखाई।

तीसरा यह कि उन्होंने अनेक बौद्ध किताबों का अनुवाद किया और कुछ को नक़ल भी किया।

कोरिया से भारत आने वाले बौद्ध भिक्षुओं में नीचे लिखे चार नाम मशहूर हैं:—

(१) व्हाई-लुन, (२) आर्यवर्मा, (३) व्हाइ-नियै, (४) व्हेनताई।

व्हाई-लुन

व्हाई लुन का भारती नाम प्रज्ञवर्मन था। भारत के मशहूर बौद्ध स्थानों को देखने और नालन्दा में बौद्ध फ़िलासफ़ी की शिक्षा लेने के लिये वह कोरिया से भारत आया।

रास्ते में वह उत्तर चीन की राजधानी लोयांग में ठहरा। लोयांग में चीन के सम्राट ने उससे प्रार्थना की कि वह भारत में मशहूर चीनी बौद्ध भिक्षु व्हेन-चिन की मदद करे। व्हेन सन् ६३९ ई० में चीन से भारत आया था। वह भारत में रहकर बौद्ध किताबों का चीनी भाषा में अनुवाद कर रहा था।

भारत आकर व्हाई-लुन बौद्ध धर्म के सब तीर्थों में गया। बीच भारत के अमरावत मठ में वह बहुत दिन रहा। वहाँ से वह "तू-हो-ला-से' यानी तुख़ार-मठ गया। इस मठ को एशिया के तुख़ारिस्तान देश के बौद्ध भिक्षुओं ने भारत में अपने रहने के लिये बनवाया था। इसी मठ में व्हाई-लुन ने संस्कृत पढ़ी। यहाँ से वह नालन्दा विश्वविद्यालय गया। वहाँ बौद्ध दर्शन की तालीम हासिल कर वह कोरिया वापिस चला गया।

व्हाईलुन ने अपनी भारत यात्रा का बयान एक किताब में लिखा है। वह किताब इतनी मशहूर नहीं हो सकी जितनी फ़ाहियान वा ह्वेनसांग की। इस किताब में उसने एक ख़ास बात लिखी है।

वह लिखता है कि उसके भारत आने के क़रीब पाँच सौ साल पहिले यानी दूसरी सदी ईसवी में उत्तर भारत में श्रीगुप्त नाम के एक राजा राज करते थे। उनके राज-काल में बीस चीनी यात्री भारत आए थे। महाराजा ने उनके रहने और पढ़ने के लिये नालन्दा के पास एक बड़ा मकान बनवा दिया जिसे 'चीन मन्दिर' कहते थे। उस मकान के और उन भिक्षुओं के खर्च के लिये एक गाँव दे दिया गया।

व्हाईलुन लिखता है कि उस मन्दिर के खंडहरों को उसने अपनी आँखों से देखा था।

आर्यवर्मा

आर्यवर्मा कोरिया का बौद्ध भिक्षु था। उसका कोरियाई नाम क्या था यह पता नहीं लगता। वह भी नालन्दा में बौद्ध धर्म की तालीम हासिल करने भारत आया था।

कोरिया से आर्यवर्मा पहले चीन की राजधानी चांग-गांन आया। चांग-गांन से वह सन् ६३८ ईसवी में नालन्दा पहुँचा। नालन्दा में उसने बौद्ध धर्म की बहुत सी किताबों को नकल किया। कहा जाता है वह 'विनय पिटक' और 'अभिधर्म शास्त्र' का बहुत बड़ा विद्वान था।

सत्तर बरस की उमर में नालन्दा में ही उसकी मृत्यु हो गई।

व्हाई-नियै

जिस समय आर्यवर्मा नालन्दा में था उसी समय

ह्वाई-नियें नाम का एक और कोरियाई बौद्ध भिक्षु भारत आया। कोरिया से वह भी नालन्दा में तालीम हासिल करने आया था।

भारत आकर ह्वाई नियें पहले कुछ दिन गया के महाबोधि मन्दिर में रहा। फिर वह नालन्दा चला गया। यहीं उसने बौद्ध धर्म की किताबों को नकल किया और बौद्ध दर्शन की शिक्षा ली।

चीनी यात्री आइ-चिंग सन् ६७१ ई० में चीन से भारत आया था। वह जब नालन्दा की लाइब्रेरी में चीनी किताबों को सजा कर रख रहा था तो उसे ह्वाई-नियें के हाथ की लिखी कुछ किताबें मिलीं। उसने जिन बौद्ध किताबों को नक़ल किया था वह असल और नक़ल दोनों वहाँ मौजूद थीं। आई-चिंग ने मठ के भिक्षुओं से इस बारे में जब पूछ-ताछ की तो उसे मालूम हुआ कि ह्वाई-नियें नालन्द मठ में रहा करता था और वहीं साठ साल की उमर में उसने शरीर छोड़ा।

ह्वेन-ताई

यह भी कोरिया का एक बौद्ध भिक्षु था। इसका भारती नाम सर्वज्ञान देव था। यह सन् ६५० ईसवी में तिब्बत और नेपाल होकर भारत आया था।

ह्वेन-ताई भारत की सभी मशहूर बौद्ध जगहों को देखने लगा। भारत में कुछ दिन घूम फिरकर वह कोरिया वापस चला गया।

इन चार भिक्षुओं के अलावा और भी बहुत से बौद्ध भिक्षु कोरिया से भारत आए। कहा जाता है, सातवीं सदी में दो बौद्ध भिक्षु कोरिया से समुद्र के रास्ते होकर भारत आ रहे थे। पर बदक़िस्मती से श्रीविजय (सुमात्रा) पहुँचते ही उनकी मौत हो गई। एक भिक्षु कोरिया से किसी तरह समुद्र के रास्ते भारत पहुँचते ही चल बसा।

कोरिया में भारत के भिक्षु

कोरिया में बौद्ध धर्म का प्रचार शुरू होने से पहले चीन में बौद्ध धर्म पहुँच चुका था। चीन से सैकड़ों बौद्ध भिक्षु भारत आए और सैकड़ों यहाँ से चीन गए। चीन में भारती भिक्षुओं ने बौद्ध धर्म के प्रचार में काफी मदद पहुँचाई। इन्हीं भिक्षुओं में से कुछ कोरिया भी गए। कोरिया जानेवाले बौद्ध भिक्षुओं में ध्यानभद्र का नाम ख़ास तौर से लिया जाता है।

ध्यानभद्र बीच भारत का रहने वाला था। उसका चीनी नाम चे-कोंग था। बौद्ध धर्म का प्रचार करने वह चीन गया था। चीन में उस समय मंगोल ख़ानदान राज कर रहा था। मंगोल शब्द से ही मुग़ल शब्द बना है और यह वही ख़ानदान था जिसमें आगे चलकर तैमूर और सम्राट् बाबर पैदा हुए। चीन का सम्राट् कुबलई ख़ाँ, जो चंगेज़ ख़ाँ का पोता था, बौद्ध धर्म का कट्टर मानने वाला था। मंगोल राजकाल में बौद्ध धर्म चीन का राज धर्म समझा जाता था।

कुबलई ख़ाँ ने कोरिया पर हमला करके उसे अपनी चीनी सल्तनत में शामिल कर लिया। बौद्ध धर्म का प्रचार अब वहाँ और जोरों से होने लगा। इस काम में हिस्सा लेने के लिये ध्यानभद्र सन् १३२६ ईसवी में चीन से कोरिया पहुँचा।

कोरिया में ध्यानभद्र ३७ साल रहा। इस अरसे में उसने बौद्ध धर्म का प्रचार किया और दो बौद्ध किताबों का अनुवाद चीनी भाषा में किया।

सन् १३६३ ईसवी में वह कोरिया में ही मरा।

कोरिया में बौद्ध धर्म के फ़िरके

कोरिया में बौद्ध धर्म की महायान सम्प्रदाय का ही प्रचार हुआ था। इसके कई फ़िरके समय-समय पर कोरिया में कायम हुए जिनमें 'सफेद कमल पंथ' के मानने वाले सबसे ज्यादा थे।

'सफेद कमल पंथ' को चीनी भिक्षु हुइ-युआन ने भारती भिक्षु बुद्धयश और बुद्धभद्र की मदद से चीन में कायम किया था। चूँकि इन भिक्षुओं का मठ एक ऐसे तालाब के किनारे था जिसमें सफेद कमल खिले थे इसलिये उनके फिरके का नाम 'सफेद कमल पंथ' पड़ गया। उस 'पंथ' का प्रचार कोरिया में भी हुआ।

इस पंथ के लोग यह मानते हैं कि गौतम बुद्ध भगवान् अमिताभ बुद्ध के अवतार थे। अमिताभ बुद्ध ही सारी दुनिया के सिरजनहार हैं। उन्हीं की वजह से दुनिया कायम है और जो कुछ भी होता है उसके कारण वही हैं। वही अवतार लेकर गौतम बुद्ध की शकल में

इस संसार में आए। अमिताभ शब्द का अर्थ है 'ज्योति ही ज्योति'।

इस पंथ की तालीम का निचोड़ यह है: भगवान् अमिताभ बुद्ध में पूरी भक्ति और विश्वास रखो, उनकी पूजा करो और अपने को उनकी मरजी पर छोड़ दो। यही निर्वाण प्राप्त करने का रास्ता है।

इस पंथ के मानने वाले कोरियाई भक्त भगवान् अमिताभ से प्रार्थना करते हुए कहते हैं:

'नामो अमिदो पुल'

यानी:—"हे भगवान् अमिताभ! मैं भक्ति भाव से और तुझ पर पूरा विश्वास करके तेरी शरण में आता हूँ।"

महायान बौद्धों के लिये निर्वाण हासिल करने का यह भक्ति मार्ग है।

इस पंथ के अलावा, बोधि धर्म के चान पंथ का, तिब्बत के लामा पंथ का और चीन के तियेन-ताई पंथ का भी कोरिया में काफ़ी प्रचार हुआ। इन सब पंथों को भारत के और चीन के बौद्ध भिक्षुओं ने क़ायम किया था।

कोरिया में बौद्ध साहित्य

बौद्ध धर्म के साथ-साथ कोरिया में बौद्ध साहित्य भी पहुँचा। पहले तो चीन से भारत का बौद्ध साहित्य कोरिया ले जाया गया फिर बाद में कोरिया से ज़ो भिक्षु भारत आए, वह अपने साथ बौद्ध धर्म की किताबें कोरिया ले गए। बौद्ध धर्म के हर पंथ का साहित्य कोरिया पहुँचा। वहां के भिक्षुओं ने बहुत सी बौद्ध किताबों का अनुवाद किया।

सन् १००० ईसवी के करीब चीन से बौद्ध त्रिपिटक (यानी सूत्रपिटक, और अभिधर्म पिटक) की एक कापी कोरिया लाई गई। यह त्रिपिटक चीन के सम्राट की आज्ञा से सन् ९७१ ई० में तैयार किया गया था। इसमें उस समय तक की बौद्ध धर्म की तमाम किताबें शामिल थीं। कोरिया के राजा ने इस त्रिपिटक का फिर से सम्पादन करने के लिये कोरिया के विद्वानों की एक कमेटी बनाई थी। तैयार होने के बाद इस त्रिपिटक का एक एडीशन कोरिया से निकाला गया। इसी के आधार पर जापान में सन् १८८० ई० में बौद्ध त्रिपिटक का एक जापान एडीशन तैयार किया गया।

सन् १२५१ ई० में बौद्ध त्रिपिटक कोरिया में पहली बार छापकर निकाला गया।

कोरिया के लोग चीन के मशहूर बौद्ध भिक्षु हुएसांग की बड़ी इज़्ज़त करते थे। हुएसांग ने अपनी भारत यात्रा की जो किताब लिखी वह कोरिया में बौद्ध धर्म की एक बहुत पवित्र पुस्तक मानी जाती थी। इस किताब का वह नाम था "सि-यू-की" (Si-Yu Ki) यानी "पच्छिमी देशों का हाल।" यह किताब कोरिया के हर मठ में और हर किताब घर में पाई जाती थी।

कोरिया में बौद्ध धर्म के पतन के साथ-साथ बौद्ध किताबों का भी बुरा हाल हुआ। मन्दिरों और मठों के बरबाद किए जाने के साथ-साथ बौद्ध साहित्य भी बरबाद हो गया। फिर भी कुछ किताबें बच रहीं जिन्हें जापानियों ने इकट्ठा किया और उन्हें फिर छपवाया।

कोरिया में भारती कला

कोरिया में बौद्ध धर्म के फैलने के साथ-साथ वहां बौद्ध कला को भी रिवाज दिया गया। कोरिया के बौद्ध मन्दिरों में मूर्तियां कायम की गईं। उन पर भारती बौद्ध मूर्ति कला की छाप साफ़ दिखाई देती थी।

सिल्ला की सल्तनत के ज़माने में (६६८-९१८ ई०) कोरिया में ख़ासतौर से भारतीय कला का चलन था। इस ज़माने में कोरिया से अनेक बौद्ध भिक्षु भारत आए थे। भारत से वह अपने साथ अनेक बौद्ध मूर्तियां और नक्क़ाशी के नमूने कोरिया ले गये थे।

इसी ज़माने में अमिताभ बुद्ध और बोधिसत्व कुआन यिन की मूर्तियां जगह-जगह मन्दिरों में क़ायम की गईं। दोनों पर भारती कला का असर ज़ाहिर था। अमिताभ बुद्ध आसन पर बैठे, एक पैर पर दूसरा पैर रखे, अपनी गोद में अपना हाथ रखे और ध्यान में मग्न दिखाए गए हैं। बोधिसत्व कुआन-यिन का रूप भी भारत से ही लिया गया है। बोधिसत्व सिंहासन पर शाही ठाट के साथ आराम से बैठे हैं। उनका दायाँ पैर सिंहासन पर है और दायाँ हाथ दायें पैर से होता हुआ नीचे लटक रहा है। बायाँ पैर भी नीचे लटक रहा है और बायां हाथ सिंहासन को पकड़े हुए है।

इस ज़माने की चीनी और कोरियाई कला पर अपनी राय ज़ाहिर करते हुए मशहूर इतिहासकार केनेथ लाटुरेट लिखता है:—

"बौद्ध मन्दिरों में गान्धार की यूनानी बौद्ध कला या गुप्तवंश के जमाने की भारती कला का असर ख़ास तौर से ज़ाहिर है। इस ज़माने में जितनी सुन्दर मूर्तियाँ बनाई गईं उतनी सुन्दर मूर्तियाँ कोरिया में कभी नहीं बनीं। इसके नमूने आज भी कोरिया और चीन में मौजूद हैं।"

राजस्थान की एलौरा : कोलवी

श्री रामसिंह नौरावत

राजस्थान के अन्तिम दक्षिण-पूर्वी भूभाग में, ज़िला झालावड़ और तहसील डग के अन्तर्गत कोलवी नामक एक ग्राम है जो एक सुरम्य पहाड़ी की तलहटी में स्थित है। इस पहाड़ी को यदि हम राजस्थान की एलौरा कहें तो अत्युक्ति न होगी। पहाड़ी काफ़ी लम्बी चौड़ी है। प्रथम तो अरावली की पहाड़ियों का यह सिलसिला ही काफ़ी ऊँचा है जो समुद्र की सतह से लगभग १८३० फ़ुट है। जिसमें कोलवी के सब से ऊँचाई पर स्थित होने से हमारी इस एलोरा की शोभा द्विगुणित हो जाती है।

खेद है कि झालावाड़ राज्य के भूतपूर्व राजाओं द्वारा कोलवी के महत्व को न समझने के कारण यह पहाड़ी एक दुर्गम स्थान बन चुकी है और चोटी पर भाँति भाँति के विशालकाय पेड़ घर कर चुके हैं, जिनसे गुफाओं को बड़ी क्षति पहुँची है। हिंसक जन्तु और चोरों के अड्डे भी ये गुफाएँ बन चुकी हैं। कहीं-कहीं तो श्रद्धालु ग्रामीणों ने सिन्दूर लगा कर मन्दिर का रूप भी कई एक गुफाओं को दे दिया है। कहते हैं कि वाममार्गियों के पंच मकारों की दीक्षा भी यहीं हुआ करती है; आदि। कहने का तात्पर्य यह है कि अकेला दुकेला यात्री इन गुफाओं में जाने का साहस ही नहीं कर पाता।

पहाड़ी पर चढ़ते ही बुद्ध भगवान् के मन्दिर के दर्शन होते हैं। मन्दिर तीन ओर से खुला हुआ है। एक ओर मन्दिर का प्रवेश द्वार है जिसमें तथागत की बड़ी मूर्ति ध्यान मुद्रा में अवस्थित है। मन्दिर के ऊपर घण्टों, श्रृंखलाओं, शंखों इत्यादि के चिन्ह बड़े ही स्पष्ट हैं और एक ही पत्थर में खुदे हुए हैं जो उनके अति प्राचीन बौद्धकालीन होने को प्रकट कर रहे हैं।

जान पड़ता है कोलवी बौद्धकालीन विहार रहा होगा, क्योंकि मन्दिर के पार्श्व में ही एक ही पत्थर में खुदा हुआ एक बड़ा लम्बा चौड़ा हाल है जिसमें सुगमता पूर्वक २००-३०० श्रोता बैठ सकते हैं। कदाचित् विहार-निवासियों के सम्मिलित धार्मिक कार्य यहाँ सम्पन्न होते होंगे। छोटे-बड़े कई स्तूप इस विहार में विद्यमान हैं। कई गुफाएँ तो दो मंज़िला भी हैं। कोई आश्चर्य नहीं यदि गुफाओं पर बाहर प्लास्टर भी रहा हो जो काल के प्रभाव से अब नष्ट हो चुका है और जिसके चिह्न अब भी दृष्टिगोचर होते हैं। कोलवी का पत्थर छेददार और कच्चा होने के कारण किसी भी प्लास्टर के धुल जाने की सम्भावना है ही। यही कारण भी है कि बौद्ध शिल्पी छेनी-हथौड़े का काम इन गुफाओं में सरलता पूर्वक कर सके।

आपको पढ़कर आश्चर्य होगा कि कोलवी का काल एलौरा के काल से भी अधिक प्राचीन है। जिस प्रकार एलौरा में ब्राह्मण और जैन कलाओं का प्रभाव गुफाओं पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, वह बात कोलवी में नहीं है, सभी गुफाएँ जो गिनती में ३०-४० से कम न होंगी (स्तूपों के अतिरिक्त) उत्कृष्ट बौद्ध कालीन शिल्प को प्रकट करती हैं।

आस-पास के ग्रामीणों में इन गुफाओं के बारे में कई प्रकार की भ्रान्तियाँ फैली हुई हैं। कोई कहते हैं कि

पाण्डवों ने यहाँ अज्ञात वनवास किया था, कोई भगवान् बुद्ध की एक प्रस्तर मूर्ति के टूटे हुए पेट की ओर इंगित करके कहते हैं कि यह एक नाई की मूर्ति है जो चोरी से बाटी खाता था जो फूट कर निकल पड़ी ! इत्यादि ।

विहार-निवासी भिक्षु पास ही के पहाड़ीवाले से दैनिक उपयोग के हेतु जल एकत्रित करते होंगे जिसके लिए बड़े-बड़े पत्थर काट कर हौज़ बनाए हुए हैं।

कोलवी से डेढ़ मील की दूरी पर एक बड़ा भारी महादेव का मन्दिर भी है। जो तीन सौ वर्ष से अधिक पुराना नहीं है। महादेव जी को कायावर्णेश्वर महादेव कहते हैं और कहते हैं कि राजा जनमेजय का कुष्ट यह निवारण हुआ था। इधर कोलवी के अतिरिक्त बिन्नापग हाथिया गोड़, धमरार (धर्म राजेश्वर) में भी बौ कालीन गुफाएँ हैं।

राजस्थान निर्माण के पश्चात् भी राजस्थान की एलो पर हमारे राजस्थानी मन्त्रियों का ध्यान जाता प्रतीत न होता। क्या राजनीति से समय निकाल कर वे प्राचं सभ्यता और संस्कृति के पुनरुत्थान की ओर भी दृष्टिप कर सकेंगे ?

धर्म और धर्माभास

श्री चंद्रिकाप्रसाद 'जिज्ञासु'

[गोमती तट पर एक विरक्त साधु के समक्ष तीन श्रद्धालु बैठे हैं]

श्रद्धालु—(हाथ जोड़कर) स्वामीजी, हम लोग धर्म-श्रवण की इच्छा से सेवा में उपस्थित हुए हैं। अनुग्रह करके कुछ उपदेश कीजिए।

साधु—(हँसते हुए प्रसन्नता से) आप धन्य हैं, आपमें धर्म-श्रवण की इच्छा है। धर्म तो नीरस विषय है—जी उबा देनेवाला, अप्रिय। क्या आपने पंचशीलों के पालन की प्रतिज्ञा कर ली है ?

श्रद्धालु—पंचशील क्या स्वामीजी ?

साधु—यही कि हिंसा न करने, सत्य बोलने, चोरी न करने, व्यभिचार न करने और नशा का सेवन न करने की प्रतिज्ञा, और शक्तिभर उस प्रतिज्ञा की पूर्ति का प्रयत्न।

श्रद्धालु ये तो बिलकुल सामान्य बातें हैं स्वामीजी। इनको सभी जानते हैं। हम लोग आपसे धर्म का कुछ गूढ़ गंभीर तत्त्व सुनने की आशा करते हैं।

साधु—लेकिन शील तो समस्त धर्म और तत्त्वज्ञान की पहली सीढ़ी है। बिना इसपर पग रखे तो अगली सीढ़ियों पर चढ़ा ही नहीं जा सकता। आप यदि इसे 'सामान्य और उपेक्षणीय समझते हैं, तो फिर विशेष जानकर क्या कीजिएगा। यदि सामान्य की पूर्ति आप नहीं हो सकती, तो विशेष की आशा कैसे की जाय ? अ कहते हैं इनको सभी जानते हैं, किंतु आपको स्मरण रहे किसी वस्तु के ज्ञानमात्र से कुछ नहीं होता यदि व्यवहार और आचरण में नहीं है। कोई वस्तु आप ज्ञान में है किंतु व्यवहार आपका उसके विपरीत है, इससे यही सिद्ध होगा कि जिस वस्तु को अपने-आ ज्ञानमें बताते हैं उसका ठीक ज्ञान आपको नहीं है—अ उसके महत्त्व, प्रभाव, उपयोगिता, और फल को न समझे हैं; उसके अतिरिक्त किसी दूसरी वस्तु का आप सहारा है, जिसके कारण आप अपने ज्ञान के भीतर वस्तु को महत्त्व देना नहीं चाहते।

श्रद्धालु—जी हाँ स्वामीजी, आपका अनुमान स है। हमें ईश्वर का सहारा है। उसकी कृपा से हमारे स काम बन सकते हैं। क्या हिन्दू और क्या मुसलमा सभी का विश्वास है जब मनुष्य ईश्वर के समीप पहुँ जाते हैं तो उसे इन साधारण बातों की आवश्यकता न रहती। गणिका, अजामिल, गिद्ध आदि महापापियों क कथा प्रसिद्ध है जो उस प्रभु की कृपा से परमगति गये। गीता में तो भगवान् ने स्पष्ट घोषणा कर दी है तू समस्त धर्मों को त्यागकर एक मेरी शरण में आ जा मैं तुझे समस्त पाप-तापों से छुड़ाकर पवित्र कर दूँगा—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ;
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः ।

सकृत् एव प्रपन्नाय तवास्मीति भाषसे ;
अभयं सर्वभूतेषु ददाम्येतद् व्रतं मम ।

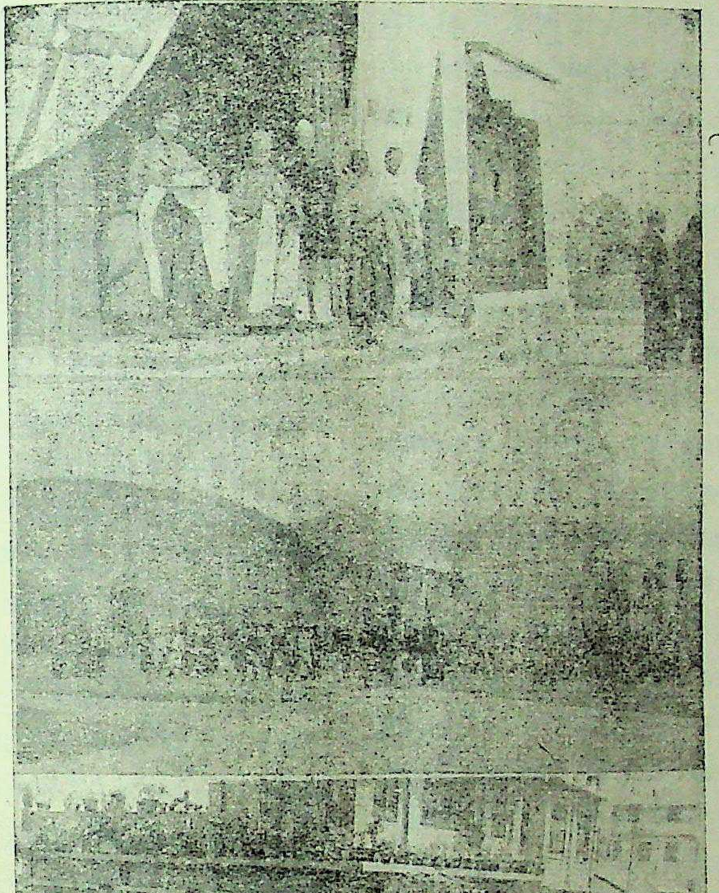

१. सिक्कम-नरेश अस्थियों की मंजूषा के साथ, २. अस्थियाँ तिब्बत के राजकीय दरबार में ले जाई जा रही हैं, ३. दार्जिलिंग में अस्थियों के जुलूस का क दृश्य

भगवान् तो इसके लिए वचनबद्ध हैं कि शरणापन्न होकर यह कहते ही कि "मैं तुम्हारा हूँ" वे उस भक्त को समस्त प्राणियों में अभय कर देते हैं—

ऐसा स्पष्ट आश्वासन रहते हुए मनुष्य को दूसरा सहारा ढूँढने की क्या आवश्यकता है ।

साधु—जब ऐसा ज्ञान आपके भीतर विद्यमान् है, तो

फिर आप एक अकिंचन साधु से धर्म-जिज्ञासा क्यों करते हैं ? आप अपने ज्ञान पर दृढ़ और आरूढ़ रहिए।

श्रद्धालु—नहीं स्वामीजी, आप-जैसे दुर्लभ-दर्शन महात्माओं से, जो बड़े भाग्य से मिला करते हैं, विशेष ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। इसीलिए आप से धर्म-श्रवण की इच्छा है। अनुग्रह करके अपने अनंत ज्ञान का कुछ प्रकाश प्रदान कीजिए।

साधु—ऐसी प्रबल इच्छा है, तो मस्तिष्क शुद्ध करके उन्मुख चित्त से सुनिए। धर्म के पथ पर चलने वाले को किसी दूसरे का सहारा नहीं रहता। वह अपना स्वामी अपने आप होता है। वह आत्म-प्रदीप और आत्म-प्रकाश हो जाता है। वह बहिर्मुखी और परमुखापेक्षी नहीं रहता, वह अंतर्मुख हो अपना मार्ग अपने हृदय में ढूँढ़ता है। इस प्रकार जब उसके भीतर सत्य का प्रकाश हो जाता है, तो वह अपने आप में ही मग्न हो जाता है। खेद है, आज मनुष्य धर्म से विमुख हो नाना प्रकार के धर्माभासों में फँस गया है जिसके कारण उसका जीवन अधिक दुःखमय हो गया है। ईश्वर की ओर से दिलाये गये इन आश्वासनों से दुर्बल मनुष्य और भी भ्रांति में फँस गया है। जरा सावधान हो सोचिए जब मनुष्य को यह विश्वास हो गया कि समस्त धर्मों को त्याग कर केवल ईश्वर की शरण में जाने से ही वह सब पापों से मुक्त और पवित्र होकर अभय-पद को प्राप्त कर सकता है, तो फिर धर्म का कोई महत्त्व उसकी दृष्टि में नहीं रह सकता। वह धर्म के संयमपूर्ण कठिन मार्ग पर चलने का कष्ट क्यों उठावेगा, जब लोक और परलोक के साधन का सहज और सीधा रास्ता उसे मिल गया। उसके सामने सिर्फ दो सवाल हल करने को हैं : एक यह कि वह ईश्वर का नाम लेकर उसकी भक्ति के कुछ गीत गा लिया करे; दूसरे संसार में इस बात का विज्ञापन कर दे कि वह ईश्वर-भक्त अथवा परम भक्त है—हरि तजि किमपि प्रयोजन नाहीं। बस उसका लोक और परलोक दोनों बन गये। फिर वह अहिंसा, सत्य, नशा-त्याग, अव्यभिचार, चोरी-घूसखोरी-चोरबाजारी-जखीरेबाजी-छल-पाखंड-धोखादि ही के त्याग आदि का संयममय जीवन बिताने का झगड़ा मोल लेकर क्लेश क्यों सहेगा ? वह अपना परमार्थ 'हरे रामा, हरे कृष्ण, अथवा 'रघुपति राघव राजा राम, यदुपति माधव राधेश्याम' अथवा 'हरि ॐ तत्सत्' या 'ओ३म्-ओ३म्' रटकर बना लेगा तथा संसार-साधन के लिए 'हरिकीर्तन' के उत्सव करायेगा, उनमें लाउड-स्पीकर लगा कर हाहाकार मचायेगा, मस्तक पर चमकदार केसरिया तिलक चंदन लगायेगा, गले में भक्त का चिह्न कंठी माला धारण करेगा, शरीर पर रामनामी दुपट्टा ओढ़ेगा, हरिमंदिर निर्माण करायेगा, जहाँ श्री ठाकुरजी की मूर्ति का पूजन-अर्चन, भोग-राग, आरती-वंदन इत्यादि होगा; विविध भाँति के उत्सव, पर्वोत्सव, शृंगार, नृत्य-गीत-राग-रंग होगा, प्रसाद वितरण होगा— इत्यादि-इत्यादि। इस प्रकार अपने आपको परम भक्त प्रसिद्ध करके वह संसार में अपनी साख बढ़ायेगा, फिर [illegible] टट्टी की ओट में अपने सांसारिक भोगैश्वर्य की साधना करेगा—जन शोषण करेगा, जन-लूट और जन ठगी करेगा—रिसवतें खायेगा, चोर बाजारी करेगा, कुनबा-परवरी करेगा, कम तोलेगा, कम नापेगा, चोरी करेगा, लेमारी करेगा, गबन करेगा, अमानत में खयानत करेगा, जुआ खेलेगा, चार सौ बीस के सारे काम करेगा, नशेबाजी करेगा, व्यभिचार करेगा और हर प्रकार से अपनी वासना तृप्ति करेगा, क्योंकि उसे विश्वास हो गया है कि हरिनाम संकीर्तन, धर्मोत्सव व ईश्वर-भजन करके अथवा त्राहि माम् , तौबा व सिजदा करके वह सब पापों व गुनाहों से छुटकारा पा जायगा। किसी शायर ने कहा है—

> रात भर खूब ढली, सुबह को तौबा कर ली;
> रिंद के रिंद रहे, हाथ से जन्नत न गई।

यह सब धर्म का तत्त्वज्ञान तो आप प्रत्यक्ष देखते ही हैं। क्या इससे आप संतुष्ट नहीं हैं ?

श्रद्धालु—स्वामीजी, आपके इन प्रखर और तेजस्वी वचनों से हमारे हृदय में हलचल मच गयी है—हमारे ज्ञान की जड़ें हिल गयी हैं। जिसे हम अब तक धर्म समझते थे, वह निरा खोखला और थोथा प्रतीत होने लगा। हमारी अब तक यही धारणा थी कि गीता, भागवत, रामायण या कुरान आदि पवित्र धर्म-ग्रंथ हैं। इनके उपदिष्ट मार्ग से चलकर मानव का परम कल्याण हो सकता है।

परंतु आपने जिस ज्ञान-रश्मिका प्रकाश किया उससे तो यह सब बीहड़ नजर आने लगा। परमार्थ की बात तो दूर रही आज यह संसार जो इतना भयानक और दुःखमय हो गया है, उसका कारण यह मिथ्या धर्म है जो धर्म-सा प्रतीत होता है।

साधु—नहीं-नहीं, आप एक दम ऐसे प्रभावित न हों। अंधश्रद्धा ठीक नहीं होगी। मनुष्य को विचारवान् और विवेकशील रहना तथा सत्कर्म पर विश्वास रखना चाहिए। हम पूछते हैं क्या गीता और कुरान-जैसी पवित्र पुस्तकों का यह मंशा है कि मनुष्य हिंसा, चोरी, चोरबाजारी, रिश्वतखोरी, नशाबाजी, व्यभिचार, कुनबापरवरी, समाज-शोषण और दुर्बल-दलन करे तथा दिन-रात झूठ बोले? ऐसा स्पष्ट आदेश तो हमें इन ग्रंथों में कहीं नहीं मिला और हमारा विश्वास है कि इन ग्रंथों का ऐसा मंशा या उद्देश्य कदापि नहीं है। इसलिए हम इन ग्रंथों की निंदा नहीं करते। निंदनीय तो वे स्वार्थी और धर्मव्यवसायी लोग हैं जो इन ग्रंथों के ईश्वर-महिमा-संबंधी टुकड़ों को उठा कर उनपर झूठी रंगामेजी और मुलम्मासाजी करके समाज में ऐसा धर्माभास फैला कर अपना उल्लू सीधा किया करते हैं जो वस्तुतः धर्म न हो कर धर्म-सा प्रतीत होता है। इस मिथ्या धर्माभास के कारण ही समाज में दुराचरण, भ्रष्टाचार और नाना प्रकार के पापों की बाढ़ हो गयी है, और कल्याणकारी धर्म इस पाखंड जाल में छिप गया है। आप समझ सकते हैं मनुष्य दुर्बल है, भोगों में उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। आँख, कान, नाक, जिह्वा, त्वचा आदि इंद्रियाँ स्वभावतः भोग चाहती हैं—आँखें सुन्दर रूप और दृश्य देखना चाहती हैं, कान सुरीले और मधुर शब्द सुनना चाहते हैं, नासिका सुन्दर गंध चाहती हैं, रसना विविध रसों का सुन्दर स्वाद चाहती है और त्वक् इंद्रिय मृदुल कोमल शीतल सुखद संस्पर्श चाहती है तथा अंतरिंद्रिय मन भीतर से इंद्रियों द्वारा विषयों का आनंद लेता और नित-नूतन विषय भोगों की कामनाएँ किया करता है। इंद्रियों की तृप्ति के लिए विषयों की इच्छा अथवा भोगों की कामना का नाम 'संकल्प' है तथा भोगों की प्राप्ति के लिए जितने सब प्रयत्न किये जाते हैं, उनको 'विकल्प' कहा जाता है। इन्हीं संकल्प और विकल्प के चक्र में सारा संसार व्यस्त है। ये जागतिक संकल्प-विकल्प जब सद्ज्ञान से पूत, धर्ममय और संयम-संयुक्त होते हैं, तो संसार में सुख-शांति की अभिवृद्धि होती है: और जब ये विवेकहीन, धर्मरहित और संयम-शून्य होते हैं, तो संसार में दुःख, क्लेश और अशांति की वृद्धि होती है। कहा है, ''यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः'' जिससे संसार का अभ्युदय और अंत में मोक्ष की प्राप्ति हो वह 'धर्म' है, ऐसा धर्म तो 'आचरण की विशुद्धि' ही हो सकता है; 'भगत जगत को ठगत है' एक प्रसिद्ध प्रवाद है। भगवान् बुद्ध ने 'चरित्र की शुद्धि' को ही धर्म का मूलाधार बताया। उन्होंने ईश्वर, आत्मा, वेद, यज्ञादि कर्मकांड एवं वर्णभेद, जातिभेद जैसे अधिकार-भेद को अपने उपदिष्ट धर्म में स्थान नहीं दिया। शील, समाधि और प्रज्ञा उनके धर्म के तीन प्रधान अंग हैं। शीलों के पालन से विशुद्ध चित्त समाहित होता है, समाहित चित्त में प्रज्ञा का प्रकाश होता है और प्रज्ञा के प्रकाश से निर्वाण-रूप परमशांति की प्राप्ति होती है। इस सार्वयौगिक, सार्वकालिक और अपरिवर्तनीय सत्य-सनातन धर्म का भूतल पर आदेश करने के कारण बुद्ध जगत् के 'शास्ता' के सर्वोच्च सिंहासन पर समासीन हैं।

श्रद्धालु—स्वामीजी, भगवान् बुद्ध पर हमारी असीम श्रद्धा है। उन्हीं के आविर्भाव के कारण हमारा देश समस्त संसार में पूजनीय हुआ। निःसंदेह बुद्ध भगवान् के इस चरित्रवादी धर्म से भारत की ही नहीं, समस्त विश्वकी मानवता का कल्याण हो सकता है। 'चरित्र-की विशुद्धि' ही परम धर्म है, यह बात तो हमारे मन में बैठ गयी। कृपया हमें शील को समझायें।

साधु—पंचशील, अष्टशील, द्वादश शील और साधुओं के लिए २२८ शील—यों संयम की क्रमिक पूर्णता करता हुआ साधक ज्यों-ज्यों पूर्ण विशुद्धि की ओर बढ़ता है शीलों की संख्या भी उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। किंतु इनमें पंचशील का पालन तो सर्वसाधारण के लिए, जो धर्म मार्ग पर चलने का इच्छुक है, अनिवार्य आवश्यक है। एक धर्मजिज्ञासु को पंचशील का तात्पर्य इस प्रकार समझ लेना चाहिए। अहिंसा धर्म का मूल 'दया'

है, नशा-निषेध का तात्पर्य 'अप्रमादी' व 'क्रोधजयी' होना है, अव्यभिचार का प्रयोजन 'कामजयी' होना है, बिना दिये कोई वस्तु न लेना अर्थात् चोरी-ठगी-घूसखोरी त्याग 'लोभजयी' होना है, सत्य-भाषण जीवनोत्कर्ष है। इस प्रकार पंचशीलों के पालन से मनुष्य काम-क्रोध-लोभ पर विजय प्राप्त कर दयामय हो जाता है।

अतएव शील, समाधि और प्रज्ञा ही यथार्थ धर्म है, इनके अतिरिक्त सब धर्माभास। धर्माचरण से ही संसार का अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति संभव है।

श्रद्धालु—धन्य स्वामीजी धन्य! धर्म और धर्माभास का ऐसा प्रखर, सुन्दर, प्रांजल और परिमार्जित विवेचन हमने पहले कभी नहीं सुना था। ऐसा प्रतीत होता है मानो किसी ने अंधे की आँखें खोल दी हों, गहरी नींद में सोते हुए को जगा दिया हो अथवा घोर अँधकार में लाखों कैंडिल का विद्युत-प्रकाश कर दिया हो। आपके इस ज्ञानालोक से हमारे हृदय के नेत्र खुल गये और हमें सब कुछ प्रत्यक्ष दिखाई देने लगा।

उपन्यास का एक अध्याय

बुद्ध का अनुयायी

श्री राहुल सांकृत्यायन

[१]

अब मैं सेनापति था; इसलिये सेना के प्रबन्ध-सम्बन्धी कार्य में काफी समय देना पड़ता था, तो भी अब न उतनी व्यस्तता थी न चिन्ता। बरसात शुरू हो जाने पर अवकाश और ज्यादा रहता था। कपिल, शन्तनु, असरू आदि मेरे तलवार के साथी तथा भामा, क्षमा आदि के साथ मिलने बैठने का रोज समय मिलता था। माया ने सचमुच अब मेरे जैनव्रत पर मधुर प्रहार शुरू कर दिया था। शरीर के तप से पाप धोना और अहिंसा के प्रतिपादन में जो कुछ कहना था, वह एक दो ही दिन में समाप्त हो गया। अब केवल मूक रह उसके आक्षेपों को सुनना पड़ता था। आक्षेपों से भी बढ़ कर असह्य था, जब कि घर भर मेरे सामने ही तरह तरह के माँसों का स्वाद लेता तथा पान के बाद नृत्य में व्यस्त होता और मुझे अधिकतर जाति बहिष्कृत की भाँति चुपचाप अलग बैठे टुकुर-टुकुर देखते रहना पड़ता था।

एक दिन हम गण के किसी काम से संस्थागर में जमा हुये थे। काम समाप्त होने के बाद सदा की भाँति सदस्यों ने बाहरी भी बातें उठायी। किसी ने कहा—'आज कल वैशाली का बड़ा सौभाग्य है, जो एक नहीं, दो दो महान् धर्माचार्य, गणाचार्य, तीर्थंकर अपनी परिषद् के साथ यहाँ वर्षावास कर रहे हैं।—श्रमण गौतम महावन की कूटागार शाला में अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ ठहरे हुये हैं और निगंठ ज्ञातृपुत्र चैत्य के पास।'

दूसरे ने कहा—'वैशाली वालों के लिए लाभ है, यह सुलाभ है। उन्हें ऐसे महान् धर्माचार्यों का उपदेश सुनने को मिलता है।'

तीसरे ने कहा—'भाई, श्रमण गौतम की प्रतिभा ऋद्धि-मत्ता के बारे में क्या कहना है। आज सारे जम्बूद्वीप में उनकी ख्याति है। उनके शिष्योंमें कहाँके आदमी नहीं हैं!'

इस पर गणपति ने कहा—'धर्माचार्यों और उनके धर्म से मुझे ज्यादा दिलचस्पी नहीं है तो भी वह दिन मुझे याद है, जिस दिन गौतम की मौसी (प्रजापति गौतमी) और उनकी पत्नी (यशोधरा) पैदल चलकर वैशाली पहुँची थीं। गौतम पत्नी यशोधरा उस वक्त बिलकुल तरुणी थीं और उसकी सुन्दरता के बारे में क्या कहना है! वह एक जनपद (देश) नहीं अनेक जनपदों की कल्याणी (सुन्दरतम) हो सकती थीं। कपिलवस्तु से यहाँ तक पैदल चलने के कारण उसका चेहरा मुर्झा गया था। उसके लाल ओंठ फट गये थे। उसके पैरों में घाव हो गये थे। जिन लोगों ने सुनाही भर था कि गौतम ने शाक्यगण में अपने पिता शुद्धोदन के समृद्ध कुल को त्याग कर भिक्षाचर्या स्वीकार की है, उन्होंने जब यशोधरा के रूपलावण्य को देखा तो

गौतम का महान् त्याग मूर्तिमान दिखलाई देने लगा। मैं तो शाक्य गणपति शुद्धोदन के नाम और पदमर्यादा से काफी परिचित था; इसलिये गौतम के धर्म के सुनने की चाहे मैंने कभी लालसा न की हो, किन्तु गौतम के व्यक्तित्व का मैं बहुत सम्मान करता रहा हूँ। और हम लिच्छवियों के तो वह परम मित्र हैं। जब हमारे यहाँ महामारी फैली थी तो उन्होंने यहाँ आकर हम सबको ढाढ़स बँधाया। अभी जब मगध की ओर से हमारे ऊपर आक्रमण होनेवाला था तो उन्होंने हमारी अजेयता को बतलाये हुये मगध राज को समझाने का प्रयत्न किया, किंतु यह युद्ध तो बिंबसार की ओर से नहीं बल्कि अजातशत्रु की ओर से था, यदि वह उसकी बात न मानता, तो उसने अपने पिता को बंदीगृह में डाल दिया होता, यह बिंबसार को भलीभाँति मालूम था।”

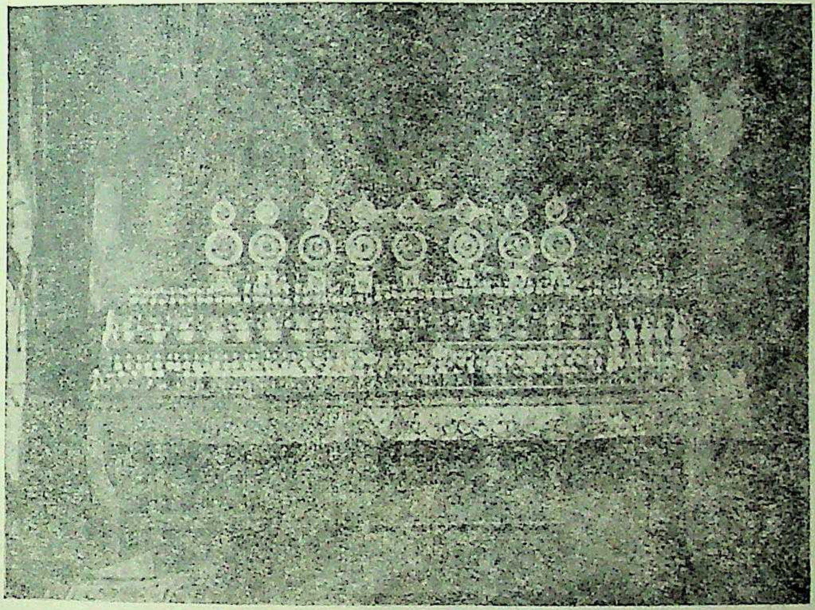

तिब्बत के डोंकर गुम्बा में पवित्र अस्थियों की मंजूषा

प्रथम लिच्छवि—“श्रमण गौतम में जबर्दस्त आकर्षण है। उनके विरोधी भी कहते हैं कि गौतम के पास आवर्जनी माया है, जिससे वह दूसरे के मन को फेर लेते हैं, किन्तु उनकी आवर्जनी माया कोई जादू-टोना नहीं है। उनके भाषण का ढंग बहुत मधुर है। बच्चोंसे बूढ़ों तक, गरीब से प्रसेनजित् या बिंबसार तक उनका व्यवहार समान और स्नेह-पूर्ण होता है। और उनकी प्रतिभा के बारे में क्या कहना है! हमारे यहाँ एक नंगटा सच्चक था। उसके लिये ख्याति थी कि वाद करने के लिये जम्बू-द्वीप में फिर आया था, किन्तु उसे कोई हरा नहीं सका। और वैशाली में आकर उसने गजब का पाखंड पसारा था। और थोड़े से क्षेत्र के बाहर न जाने की उसने प्रतिज्ञा की थी कि भोजन में सिर्फ मांस और पान में सिर्फ सुरा पिया करेगा। लोग उसे महान् सिद्ध मानते थे। वह बहुत गाल बजाया करता था—गौतम क्या है मेरे सामने। किन्तु जब एक दिन श्रमण गौतम से सामना पड़ा, तो सच्चक के मुँह से बात तक न निकली”।

कितनी ही देर तरह-तरह की बात कर सबलोग अपने अपने घर चले गये। उस समय मैं रोज नियम-पूर्वक शाम को निगंठ ज्ञातपुत्र महावीर के दर्शन को जाया करता था। उस दिन मैंने उनसे पूछा—‘भगवान्! श्रमण गौतम यहाँ आया हुआ है, लोग बड़ी प्रशंसा कर रहे हैं, किन्तु आपके सामने वह क्या हो सकता है। मैं चाहता हूँ, उसे देखूँ’।

महावीर—‘नहीं सिंह! क्या जाओगे उसके पास,

वह नास्तिक है, आत्मा को भी नहीं मानता, परलोक को भी नहीं मानता।'

मेरा उत्साह ढीला हो गया और गौतम के पास जाने का ख्याल मैंने छोड़ दिया।

कितने ही दिनों बाद फिर उसी तरह संस्थागर में बाहरी बातों की चर्चा छिड़ी। अनेक राजाओं और धर्माचार्यों के बारे में लोग कह रहे थे, जिसमें फिर गौतम की बात आई।

प्रथम लिच्छवी—'श्रमण गौतम को बुद्ध कहा जाता है, वह सचमुच ही बुद्ध हैं। उनका बोध अपार है; और दूसरों को भी बोध (ज्ञान) के मार्ग का ही उपदेश करते हैं। वह अंधी भक्ति या श्रद्धा नहीं चाहते।'

द्वितीय लिच्छवी—'और आपने तो सुना होगा केसपुत्रिय कालामों को उन्होंने कैसा सुन्दर उपदेश दिया था। केसपुत्र कोसल में एक बड़ा गाँव जंगल के मुँह पर है, श्रावस्ती जानेवाले हर एक सार्थ को उसमें ठहरना पड़ता है। मैं भी वहाँ एक बार दो दिन दो रात सार्थ के साथ ठहरा था। गाँव के सारे कालाम बुद्ध के श्रावक (शिष्य) हैं—कालामों का भी कभी एक छोटा सा गण था; किन्तु अब वह कोसल राज्य के उदर में चला गया है। जब घूमते-फिरते श्रमण गौतम केसपुत्र में पहुँचे, तो कालामों ने उनसे प्रश्न किया था कि जितने तीर्थंकर, जितने धर्माचार्य मिलते हैं, सभी एक दूसरे से विरोधी धर्म का उपदेश करते हैं, हम उनमें से किसकी बात सच समझें। गौतम ने, जानते हैं, क्या उत्तर दिया? उनका उत्तर बहुत सुन्दर और सरल था। 'सोने के खरे-खोटे होने की बात हर सोने के पीछे दौड़ने से नहीं मालूम होती; बल्कि उसका खरा-खोटापन आपके हाथ की कसौटी बतलाती है, इसलिये कालामों! तुम किसी धर्माचार्य के रूप-सौन्दर्य, उसकी वाग्मिता, उसकी लोक-प्रसिद्धि को देख कर उसके उपदेश को ग्रहण न करो; बल्कि उसके लिए तुम अपनी बुद्धि और अनुभव [तजुर्बे] की कसौटी बनाओ।' रूप सौन्दर्य, वाग्मिता और लोक-प्रसिद्धि में गौतम जैसा कोई नहीं, तो भी उन्होंने कितनी खरी बात कही थी।'

द्वितीय लिच्छवी—'मुझे गौतम की एक और बात याद आती है। सारे धर्माचार्य अपने शिष्यों से कहते हैं, कि हमारे उपदेश को बन्दरमुष्टि की भाँति पकड़ रखो, किन्तु गौतम का कहना इससे बिल्कुल उल्टा है। उन्होंने एक बार उपमा दी थी। 'कोई आदमी-बरसात में अचिरवती [राप्ती] नदी के तीर जाता है। नदी दोनों कूलों तक भरी हुई है, वहाँ कोई नाव या सेतु नहीं है। आदमी को पार जाना है, वह सोचने लगता है। फिर लकड़ियों को जमा कर एक बेड़ा बनाता है और उस पर बैठ कर खेते हुये नदी पार हो जाता है। यह बेड़ा उस आदमी के लिये कितना उपकारक हुआ; इसके कहने की जरूरत नहीं। किन्तु, यदि इस उपकार का ख्याल कर वह आदमी उस बेड़े को सिर पर लाद ले, तो जिस गाँव में भी जायेगा, वहाँ लोग उसे निरा मूर्ख बतलायेंगे। बेड़ा पार होने के लिये है, सिर पर ढोने के लिये नहीं मूर्ख!—यही सब उसे कहेंगे। इस उपमा को देख जानते हैं, गौतम ने अपने श्रावकों को क्या कहा? उन्होंने कहा—'बेड़े की भाँति मेरे उपदेश केवल पार उतरने के लिये हैं, पकड़ कर रख रखने के लिये नहीं,।'

उस दिन फिर मेरे मन में उत्कंठा हुई कि श्रमण गौतम से भी भेंट करूँ; किन्तु जब निगंठ ज्ञातृपुत्र से बात की तो उन्होंने कहा सिंह! क्या उस अक्रियावादी [अच्छी-बुरी क्रिया को न माननेवाले] के पास जाओगे?

और-और भी कितनी ही बातें कह मना किया। निगंठ ज्ञातृपुत्र में मेरी इतनी श्रद्धा थी कि उनके वचन को सुन कर मैंने फिर अपने संकल्प को छोड़ दिया।

दोनों धर्माचार्य वैशाली में वर्षा के तीन मास बिताने के लिये ठहरे हुये थे और हमको समय समय पर संस्थागार में जमा होना ही पड़ता था। संस्थागार में बैठ कर बात करनेवाली साधारण रथ्या [सड़क के] पुरुष नहीं, बल्कि बड़े बड़े सम्भ्रान्त लिच्छवी होते थे। एक दिन बात होते होते फिर श्रमण गौतम पर चली गई।

सुप्रिय ने कहा - 'भाई श्रमण गौतम हम गण क्षत्रियों के महान् गौरव हैं। आज-तक ब्राह्मण गण वालों की भेड़ नहीं तो लड़ाकू भेड़िये भर मानने के लिये तैयार थे वह ब्राह्मण—बुद्धि-विद्या से हीन—कह कर हमारा तिरस्कार

करते थे; किन्तु अंग-मगध के कूटदन्त, स्वर्णदंड जैसे महाप्रसिद्ध तीनों वेदों के ज्ञाता ब्राह्मण गौतम के श्रावक हैं। वज्जी-विदेह में अद्वितीय तथा वृद्ध ब्रह्मण दीर्घायु गौतम का श्रावक है। कोसल के चंकि और पौष्कारसादि जैसे पाँच पाँच सौ विद्यार्थियों को वेद पढ़ानेवाले राजगुरु महाशाला ब्राह्मण श्रमण गौतम को अपना गुरु तथा एक महान् ऋषि मानते हैं। ब्राह्मण अपने अष्टक, वामदेव आदि को छोड़ किसी गण सन्तान को ऋषि माने जो यह ख्याल में नहीं लाया जा सकता था। यही नहीं श्रमण गौतम के शिष्य सारिपुत्र, मौद्गल्यायन, महाकाश्यप, महाकात्यायन जैसे अद्भुत प्रतिभाशाली ब्रह्मकुल से प्रव्रजित हैं। वे अपनी विद्या और प्रतिभा में इतने ऊँचे हैं कि चाहते तो अपना अलग तीर्थ (मत) चलाते और निगंठ ज्ञातृपुत्र, संजय वेलट्ठिपुत्र, या मक्खली गोसाल भी बड़े तीर्थंकर माने जाते, किन्तु वह श्रमण गौतम को अपना शास्ता (उपदेष्टा) मानते हैं। कुरु पंचाल, जिन्हें ब्राह्मण अपने वेद और ज्ञान की खान मानते थे, आज वहाँ भी गौतम के उपदेश बड़े गौरव के साथ सुने जाते हैं। तक्षशिला के पुराने गणपति कप्पिन किस तरह गौतम के उपदेशों को दूसरों के मुख से सुन कर साठ योजन चल शाक्य पुत्रीय श्रमणों [बौद्ध-भिक्षुओं] में शामिल हुये, इसे आप में कितने ही जानते होंगे।'

महानाम—'और हाथ के मधुगोलक (लड्डू) की मिठास की प्रशंसा वाणी से करने की जरूरत नहीं, वह तो जीभ पर रखने से मालूम हो जाती है। आज-कल हर शाम को हजारों नर-नारी महावन की कूटागारशाला में जो श्रमण गौतम का उपदेश सुनते हैं, और सभी प्रशंसा करते नहीं थकते।'

उस दिन फिर मेरा मन श्रमण गौतम के पास जाने के लिये अत्यन्त उत्कंठित हो गया। नित्य के अनुसार जब आज निगंठ ज्ञातृपुत्र के दर्शन को गया, तो मैंने कहा—

'श्रमण गौतम कौन भन्ते! मुझे नहीं मालूम। मैंने सिर्फ उसका नाम सुना है। किन्तु, लिच्छवि उसकी बड़ी प्रशंसा करते हैं। मुझे विश्वास है, उसमें आप जैसा तप तेज तो नहीं होगा। मैं चाहता हूँ, जाकर श्रमण गौतम से भेंट और बातचीत करूँ।'

महावीर—'सिंह! क्या तुम इस तप तेजहीन आदमी के पास जाओगे? वह तो गद्दों पर सोता, काशी के नरम नरम कौषेय वस्त्रों को पहिनता, तरह तरह के स्वादिष्ट मांसों का आस्वाद लेता है। उसके पास तपस्या की क्या गंध भी मिलेगी?"

मैं—'इसलिये तो भन्ते! मैं उसे आँख से देखना चाहता हूँ, और मोह में पड़े लिच्छवियों को उनकी गलती बतलाना चाहता हूँ।'

महावीर—'और कुछ नहीं, सिंह! बस आवर्तनी माया [जादू] उसे मालूम है जिससे वह दूसरों के मन को फेर लेता है। पास भी मत जाओ सिंह! उस मायावी के।'

निगंठ ज्ञातृपुत्र ने और भी तरह तरह से समझा कर मुझे जानेसे रोकना चाहा, किन्तु उनके इस कथन का मुझ पर उलटा असर हुआ। वहाँ से उठ कर चलने पर मैंने अपने मन में कहा– मैंने अपनी विद्या बुद्धि को निगंठ ज्ञातृपुत्र के हाथ बेच नहीं दिया है। उनका कोई अधिकार नहीं कि मुझे परीक्षा के लिये कहीं जाने आने से रोकें। मैं स्वयं जाकर देखूँगा कि श्रमण गौतम कैसे पुरुष हैं, उनमें क्या गुण है, जो कि प्रमुख लिच्छवि उनकी इतनी प्रशंसा करते हैं।

शाम को बहुत-से लिच्छवि-लिच्छवियानी जिनमें मेरी माँ, चाची, भामा और रोहिणी भी थी—जब कूटागार शाला की ओर जा रहे थे, तो मैं उनके साथ हो लिया। भामा की नजर मुझ पर पड़ी तो वह चुपके से मेरे पास चली आयी और हाथ पकड़ बोली—

'आज क्या है देवर! जो उसें नंगे श्रमण को छोड़ इधर चल रहे हो—यह अकाल कुसुम कैसे फूला?"

मैं—'भामा! तुम श्रद्धा से श्रमण गौतम के धर्मउपदेश को सुनने जाती होगी, फिर इस तरह का हास परिहास करते तुम्हें संकोच नहीं होता?'

भामा—'श्रमण गौतम शरीर और मन के स्वास्थ्य को पसंद करते हैं, वह उसे सुखाने और मारने की बात नहीं पसंद करते।'

मैं—'अच्छा तो तुम सब गौतम की पक्की-श्राविका बन गई?'

भामा—गौतम के यहाँ पक्की कच्ची का सवाल नहीं।

गौतम चाहते हैं, सभी को अपनी वर्तमान स्थिति से आगे बढ़ना चाहिये, जो बढ़ता है उसे देखकर खुश होना चाहिये।'

मैं—'और अपनी सारी लिच्छवियानी सेना को तो गौतम की सेना में बदलना नहीं चाहते हो।'

भामा—सारी सेना के बदले का यहाँ सवाल नहीं है देवर! यहाँ हर एक को अपने बारे में खुद निर्णय करना है।'

मैं—'मा और चाची कब से भागी! उपदेश सुनने लगी है?'

भामा—'वह तो न जाने कितने वर्षों से, शायद जब तुम तक्षशिला गये तभी से। उन्हीं के कहने पर तो पहले दिन मैं यहाँ आयी।'

मैं—'और रोहिणी?'

भामा—'तुम रोज नियम से नंगे श्रमण का उपदेश सुनने जाया करते हो, बेचारी बच्ची अकेली घर में पड़ी रहती थी—इधर मैं भी जो यहाँ आने लगी थी। मैंने रोहिणी से कहा, चलो तुम भी श्रमण गौतम का दर्शन कर आओ।'

मैं—'गोया, मेरी जानकारी के बिना ही मेरे घर पर श्रमण गौतम का अधिकार हो गया है?'

भामा—'ऐसा ही मालूम होता है देवर! एक दिन तो रोहिणी ने श्रमण के उपदेश को सुनने के बाद यहाँ तक कह दिया कि भगवान् यह जो मेरे गर्भ में है, उसकी ओर से भी मैं बुद्ध-धर्म-संघ की शरण जाती हूँ।'

मैं—'बुद्ध-धर्म-संघ की शरण?'

भामा—'जो श्रमण गौतम के धर्म को स्वीकार करता है, वह इसी त्रिरत्न तीनों, रत्न—बुद्ध-धर्म-संघ—की शरण में जाता है अर्थात् इन्हें अपना पथ-प्रदर्शक स्वीकार करता है।'

मैं—'शरण का अर्थ तो मालूम हुआ; किन्तु यह त्रिरत्न क्या बला है?'

भामा—'बुद्ध, धर्म, संघ को त्रिरत्न कहते हैं; क्योंकि यही दुनिया में रत्न की भाँति सर्वश्रेष्ठ पदार्थ है।'

मैं—'बुद्ध क्या है?'

भामा—'मैं भगवान् गौतम के धर्म की पंडित नहीं हूँ, कि तुम्हें इसके बारे में पूरा बतला सकूँ। दूसरे यह काम और समय भी ऐसा नहीं है कि मैं विस्तार पूर्वक अपनी जानी हुई बातों को भी बतलाऊँ। संक्षेप में बुद्ध कहते हैं जिसे बोध—ज्ञान—सत्य का दर्शन हो गया है, अर्थात् जीवन को आगे बढ़ाते बढ़ाते अपने ज्ञान, अपनी दया, अपनी सहिष्णुता में जो पराकाष्ठा तक पहुँच गया हो। प्राणी अपने प्रयत्न से और केवल अपने ही प्रयत्न से—किसी इन्द्र, ब्रह्मा या मार की कृपा या सहायता से नहीं—अपने जीवन को उन्नत करते करते बुद्ध हो जाता है। आज-कल शाक्य पुत्र गौतम ऐसे ही एक बुद्ध हैं। ऐसे बुद्ध पहले भी होते रहे हैं, और आगे भी होते रहेंगे। ऐसे बुद्धों का पथ-प्रदर्शन यात्रा में सहायक होता है। बुद्ध श्रमण गौतम अपने को सिर्फ मार्गाख्यायी [मार्ग बतलाने वाला] बतलाते हैं, पकड़ कर मार्ग पर ले जाने वाला नहीं।'

मैं – 'और धर्म?'

भामा—'बोधगम्य मार्ग को कहते हैं, जिसे कि बुद्ध अपने चिन्तन, अपने प्रयत्न से प्राप्त करते हैं। किन्तु, धर्म की शरण के जाने के बारे में बुद्ध अंधी श्रद्धा की बात नहीं करते।'

मैं—'तुम्हारा मतलब है, बुद्ध धर्म को बेड़े की तरह पार उतरने के लिये मानते हैं, न कि पकड़ कर रखने के लिये।'

(शेष अगले अंक में)

वार्षिक-विवरण

[मूलगन्ध कुटी विहार के बीसवें वार्षिकोत्सव के अवसर पर महाबोधि सभा के उपमंत्री भिक्षु संघरत्न द्वारा पढ़ा गया वार्षिक-विवरण]

माननीय सभापति जी, भिक्षुसंघ, भाइयो तथा बहिनो,

आप सभी देश-विदेश के अतिथियों के स्वागत करने तथा आपके सामने सारनाथ के २० वें वार्षिक-विवरण को आज उपस्थित करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। सारनाथ बौद्ध धर्म के चार महातीर्थों में से एक है। यहीं वह दीप प्रज्वलित हुआ जिसने विश्व के कोने-कोने को आलोकित किया। कई शताब्दियों तक सारनाथ बौद्ध-धर्म तथा बौद्ध-संस्कृति का केन्द्र बना रहा, फिर एक समय ऐसा आया कि लोग सारनाथ को भूल गये और यह खंडहर हो गया। बहुत दिनों के बाद स्वर्गीय अनागारिक धर्मपाल जी ने इसके महत्व को समझा तथा अपना जीवन इसके पुनरुत्थान में लगा दिया। सारनाथ को पुनः एक बार बौद्ध केन्द्र के रूप में देखने का उनका स्वप्न सन् १९३१ में मूलगन्ध कुटी विहार के रूप में साकार हुआ, तब से सारनाथ महाबोधि सभा का केन्द्र बन गया। मूलगन्ध कुटी विहार हजारों यात्रियों के लिये एक भव्य आकर्षण है।

लंका की श्रीमती बियन्का मुनसिंह ने १,५००) और सिक्किम की श्रीमती लेम्बजोन अमा ने २५०) मूलगन्ध कुटी विहार की भगवान् की मूर्ति पर सोना लगवाने के लिये प्रदान किया है। लंका के धर्मपाल ट्रस्ट से २५०) उत्सव-कार्य के लिये प्राप्त हुए हैं। हम इन सभी को धन्यवाद देते हैं और उनकी मंगलकामना करते हैं। गत फरवरी मास में तिब्बत के दलाईलामा और सिक्किम-नरेश के विशेष आग्रह पर मूलगन्ध कुटी विहार में स्थित भगवान् बुद्ध तथा अग्रश्रावकों की पवित्र अस्थियाँ सिक्किम तथा तिब्बत ले जाई गईं। उनके साथ सारनाथ से भिक्षु जगदीश काश्यप तथा भिक्षु संघरत्न गये। वहाँ उनका भव्य स्वागत हुआ। दलाईलामा ने कंजूर, तंजूर, स्वर्ण बुद्ध-प्रतिमा, तिब्बती चित्रपट और चीवर प्रदान किये। इस सम्मान के लिये हम श्री दलाईलामा और सिक्किम नरेश को धन्यवाद देते हैं। इसी यात्रा में पवित्र अस्थियाँ कालिंपोंग, दार्जिलिंग, घूम, तिनधरिया और करसियांग में भी ले जाई गईं और वहाँ पर भी उनका बड़ा भव्य स्वागत हुआ।

काशी-नरेश श्री विभूतिनारायण सिंह के हम बड़े आभारी हैं जो कि प्रतिवर्ष हमारे उत्सव को सफल बनाने के लिये हाथी दिया करते हैं और विजयनगरम के महाराज कुमार को भी हम इस अवसर पर धन्यवाद देते हैं जो कि सदा हाथी का हौदा प्रदान किया करते हैं।

शिक्षा

लाहुल के लामा अंगरूप, लद्दाख के लोबसन, नेरबू, लंका के पोलम् पेरुम, चटगाँव के मनीन्द्र विकास बरुआ और जयसिंह पालि, हिन्दी, अंग्रेजी, और बौद्ध धर्म का अध्ययन किये तथा कर रहे हैं। महाबोधि हायर सेकण्डरी स्कूल का परीक्षा फल ७० सत्तर प्रतिशत रहा। पालि का शिक्षण उत्तरोत्तर प्रगति कर रहा है। इस वर्ष ३७ सैंतिस छात्र नवीं श्रेणी में पालि पढ़ रहे हैं। हम जिला—अधिकारियों को भवन—निर्माण के लिये १०,०००) प्रदान करने के निमित्त हार्दिक धन्यवाद देते हैं। प्राइमरी स्कूल के भवन-निर्माण के लिये ४,५००) रुपया जिला बोर्ड बनारस ने प्रदान किया है। उसके लिये भी हम जिला बोर्ड के अध्यक्ष श्री जगतनारायण दूबे को धन्यवाद देते हैं। इस वर्ष हम लोगों ने महाबोधि जे. टी. सी. कालेज प्रारम्भ किया है, जिसमें ४० चालीस छात्राध्यापक शिक्षा पा रहे हैं। कालेज के मैनेजर आचार्य श्री शासनश्री जी

तथा प्रिंसिपल श्री के. के. राय, प्राइमरी स्कूल के प्रधानाध्यापक श्री विश्वनाथ पाठक और सब सहायक अध्यापकों को सुचारु रूप से कार्य-सम्पादन के लिये मैं धन्यवाद देता हूँ ।

पुस्तकालय तथा वाचनालय

हमारे पुस्तकालय में बौद्ध धर्म तथा बौद्ध संस्कृति सम्बन्धी पुस्तकों का अच्छा संग्रह है। वाचनालय में हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी, सिंहली, बर्मी, तिब्बती तथा स्यामी भाषाओं के समाचार पत्र और पत्रिकायें आती हैं। पुस्तकालय को उत्तर प्रदेश की सरकार से ९०) वार्षिक सहायता मिलती रही, किन्तु दुःख की बात है कि इस वर्ष केवल साठ रुपये की पुस्तकें मात्र प्राप्त हुईं। बनारस के हिन्दी दैनिक पत्र 'आज' तथा 'सन्मार्ग' हमारे वाचनालय को निःशुल्क प्राप्त हो रहे हैं, उनके व्यवस्थापकों का मैं आभारी हूँ । सिक्किम के शिक्षा-मंत्री रायबहादुर टी. डी. डेनसपा ने पुस्तकालय के लिये भगवान् बुद्ध और अग्रश्रावकों के चित्र के साथ एक थंका प्रदान किया है, उन्हें भी मैं धन्यवाद देता हूँ ।

धर्मदूत

हिन्दी के एक मात्र बौद्ध मासिक पत्र धर्मदूत को प्रकाशित होते १६ वर्ष हो गये। धर्मदूत ने बौद्ध धर्म तथा संस्कृति के प्रचार में काफी सहयोग किया है। सम्पादक त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्म रक्षित जी के उत्साह तथा लगन से उसने काफी उन्नति की है। मैं उसके सभी लेखकों का भी आभारी हूँ ।

दातव्य औषधालय

हमारे दातव्य औषधालय का उपयोग बढ़ता जा रहा है। ५ मील के घेरे में यही एक औषधालय है। इस वर्ष ३०,००० रोगियों की चिकित्सा हुई है। हम उत्तर प्रदेश की सरकार तथा बनारस जिला बोर्ड को धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने क्रमशः २,५००) तथा २००) की वार्षिक सहायता प्रदान की है। डाक्टर अदालत सिंह जी तथा कम्पाउन्डर श्री शिवजोर लाल जी और अन्य सभी सहायकों का मैं आभारी हूँ ।

पुस्तक-भंडार

महाबोधि पुस्तक भंडार सदा लोगों की बौद्ध ग्रन्थों की बढ़ती हुई मांग की पूर्ति करता रहा है। यहाँ बौद् धर्म सम्बन्धी सभी भाषाओं की पुस्तकें प्राप्य हैं। इस व हिन्दी, पालि, अंग्रेजी में बहुत सी पुस्तकें प्रकाशित हुईं बुद्धचर्या, संयुक्त निकाय और कई छोटी-मोटी पुस्तकें अभ प्रेस में हैं। इस अवसर पर दाताओं तथा अपने सा सहानुभूति रखनेवालों के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता प्रक करता हूँ। आजकल के अनाथपिंडक श्री जुगल किशोर बिड़ला सर्वदा सहयोग के लिये प्रस्तुत रहते हैं। उन एक प्रेरणा-सी मिलती रहती है। महाबोधि सभा के दूस केन्द्रों के व्यवस्थापकों का उनके सहयोग के लिये मैं ऋण हूँ। वे सभी हर कार्य में हमारे साथ सहयोग कर रहे हैं।

आज के उत्सव की सफलता के लिये मैं अपने साथियों सहयोगियों तथा अपने विद्यालयों के सभी अध्यापकों छात्रों का आभारी हूँ। आजकल विश्व में सर्वत्र अशान् दिखाई पड़ रही है। ऐसे समय में भगवान् बुद्ध के शान् तथा प्रेम के संदेश की बड़ी आवश्यकता प्रतीत हो र है। तथागत के देश भारत में शान्ति स्थापित करने उज्वल भविष्य दिखाई दे रहा है। मुझे आशा है कि भा पुनः भगवान् बुद्ध की शिक्षाओं को अपनायेगा तथा उन प्रेम, दया एवं सेवा के सन्देश का प्रचार करेगा। त्रिर के अनुभव से हम इस योग्य बनें कि अपना कर्त पालन कर सकें। भवतु सब्ब मंगलं, सब का मंगल हो

बौद्ध-जगत

मूलगन्ध कुटी विहार का २०वाँ वार्षिकोत्सव

सारनाथ के मूलगन्ध कुटी विहार का २०वाँ वार्षिकोत्सव ११ नवम्बर रविवार को उत्तर प्रदेश के शिक्षा एवं पुलिस मन्त्री श्री सम्पूर्णानन्द की अध्यक्षता में मनाया गया। महाबोधि हायर सेकण्डरी स्कूल और महाबोधि जे. टी. सी. कालेज के छात्रों की प्रभातफेरी के बाद मन्दिर में मंगलाचरण हुआ तथा भगवान् बुद्ध की पवित्र अस्थियों का प्रदर्शन प्रारम्भ हुआ। अस्थि-प्रदर्शन के समय अजमेर की बुद्ध कीर्तन पार्टी द्वारा भजन गाये गये। दोपहर में भिक्षु-संघ को भोजन कराया गया तथा दो बजे अस्थियों का भव्य जुलूस विभिन्न देशों से आगत बौद्ध प्रतिनिधियों एवं यात्रियों के साथ चौखण्डी स्तूप तक गया। जुलूस में अजमेर की 'बुद्ध-कीर्तन पार्टी के सम्मिलित होने से एक नया उत्साह आ गया था। जुलूस के वापस आने पर सभा का खुला अधिवेशन प्रारम्भ हुआ।

महाबोधि सभा के उपमन्त्री भिक्षु संघरत्न द्वारा स्वागत भाषण किये जाने पर भिक्षु सद्धातिस्स ने पञ्चशील दिया। तदुपरान्त बसन्त कालेज की छात्राओं ने मंगलगान गाया। तदनन्तर भिक्षु सुमंगल ने आये हुए सन्देश सुनाये। सन्देश भेजनेवालों में बम्बई और मध्यप्रदेश के राज्यपाल, केन्द्रीय सरकार के मन्त्री श्री गाडगिल, श्री मुन्शी, संसद के अध्यक्ष श्री मावलंकर, बम्बई और बिहार के प्रधान मंत्री एवं बम्बई, इलाहाबाद विश्वविद्यालय तथा शांतिनिकेतन के कुलपति उल्लेख्य हैं।

भाषण

महाबोधि सभा के उपमंत्री भिक्षु संघरत्न द्वारा वार्षिक विवरण पढ़े जाने के बाद हिन्दू विश्वविद्यालय के जापानी छात्र श्री जिकाई फूजी योशा, नागपुर बुद्ध सोसाइटी के मंत्री श्री अनन्तरामचंद्र कुलकर्णी, लखनऊ विश्वविद्यालय के रूसी भाषा के प्राध्यापक डा० एच० वी० गुंथर, लंका के श्री फर्नेण्डो, भिक्षु० के सीवली, श्री डी० सोइसा, अजमेर तरुण बौद्ध समिति के मंत्री श्री रामसिंह छावरा के भाषण हुए। श्री फूजी योशा ने जापानी बुद्धिस्ट काँग्रेस का संदेश पढ़कर सुनाया। आपने कहा कि जापान में ७० प्रतिशत बौद्ध हैं, जो विश्व शांति हेतु प्रयत्नशील है। डा० गुंथर ने बौद्ध धर्म के व्यावहारिक पहलू पर प्रकाश डालते हुए मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा ब्रह्मविहार की भावना पर जोर दिया। श्री कुलकर्णी ने कहा कि जातीयता और छूआछूत जैसी बुराइयों को बौद्ध धर्म ही दूर कर सकता है। श्री फर्नेण्डो ने बौद्ध-धर्म की सर्वश्रेष्ठता पर प्रकाश डाला। श्री सोइसा ने इस बात पर खेद प्रकट किया कि लंका में सभी बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं फिर भी वहाँ की सरकार एक पैसा भी बौद्ध धर्म के लिए खर्च नहीं करती। उन्होंने बुद्धगया को बौद्धों को सौंप देने के लिए मार्मिक शब्दों में भारत सरकार से अपील की। भिक्षु के० सीवली ने पालि भाषा में भाषण देते हुए कहा कि जिस प्रकार ईसाई ईसाई से प्रेम करता है और मुसलमान मुसलमान से, उस प्रकार बौद्ध केवल बौद्धों से ही प्रेम नहीं करते प्रत्युत वे संसार के सभी लोगों से प्रेम करते हैं। जब तक बौद्ध धर्म भारत में रहा तब तक इस देश की अवस्था अच्छी थी किन्तु बौद्ध धर्म के दूर हटते ही यहाँ की अवस्था खराब हो गई। जब तक भारत बौद्ध धर्म को नहीं अपनाता और बुद्धगया को बौद्धों को नहीं सौंप देता तबतक दक्षिण पूर्वी एशिया का सम्बन्ध दृढ़ न हो सकेगा। श्रीरामसिंह छावरा ने कहा कि अजमेर के २५००० कोली राजपूत बौद्ध हैं और वे सभी दृढ़तापूर्वक बौद्ध धर्म का अनुसरण करने में तत्पर हैं। जिस समय भिक्षु धर्मरक्षित अजमेर गये और बुद्ध विद्या मन्दिर का शिलान्यास किये तब से हम लोगों में एक नयी चेतना आ गयी। वह दिन दूर नहीं है कि सारा राजस्थान बौद्ध धर्मावलम्बी हो जायेगा। हम संसार के बौद्धों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हैं और सहयोग की माँग करते हुए शासन के वृद्धि की कामना करते हैं। श्री जग-

जीवनलाल सेठ ने आगत प्रतिनिधियों को अखिल भारतीय छात्र संघ की ओर से मानपत्र भेंट किया। महाबोधि सभा की ओर से उन्हें भगवान् की एक मूर्ति प्रदान की गयी।

प्रस्ताव

सभा में कुल चार प्रस्ताव पास हुए। पहले प्रस्ताव को भिक्षु सद्धातिस्स ने रखा, जिसका अनुमोदन भिक्षु धर्मरक्षित ने किया। प्रस्ताव इस प्रकार था—"यह सभा उत्तर प्रदेशीय सरकार का ध्यान सारनाथ में एक पालि-विद्यापीठ स्थापित करने की ओर दिलाती है। पालि हमारे देश की कई शताब्दियों तक राजभाषा रही है और वर्तमान हिन्दी भाषा की मातृभाषा है। इसमें हमारे आठ शताब्दियों का इतिहास है और यही एक भारत की ऐसी भाषा है जो अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बन चुकी है और इसी कारण जब तक हम इससे पूर्ण परिचित नहीं होते, तब तक हमारा सांस्कृतिक ज्ञान अधूरा ही रहेगा। अतः इसकी परम आवश्यकता है कि शीघ्रातिशीघ्र सारनाथ में एक ऐसे विद्यालय की स्थापना हो जिसमें पालि को प्रमुख स्थान देकर सिंहली बर्मी, तिब्बती आदि एशियायी भाषाओं का अध्ययन कराया जाय।"

दूसरे प्रस्ताव को श्री अनन्तरामचन्द्र कुलकर्णी ने उपस्थित किया जिसका अनुमोदन डा० एच० वी० गुन्थर ने किया। प्रस्ताव निम्नलिखित था—

"यह सभा भारत सरकार से नम्रनिवेदन करती है कि अशोकचक्र के निर्माता भगवान बुद्ध की जयन्ती के निमित्त वैशाख पूर्णिमा को भारत सरकार समस्त भारत में आम छुट्टी घोषित करे।"

तीसरा प्रस्ताव श्री के० के० राय ने रखा, जिसका समर्थन भिक्षु धर्मरक्षित ने किया। प्रस्ताव इस प्रकार था–

"यह सभा उत्तर प्रदेशीय सरकार का ध्यान अपने विद्यालयों में पालि के अध्यापन व्यवस्था की ओर दिलाती है। हाई स्कूल इण्टर मीडियेट बोर्ड ने पालि की स्वीकृति दे दी है किन्तु अभी तक किसी भी कालेज या स्कूल में उसके अध्यापन की व्यवस्था नहीं हुई। अतः सरकार को शीघ्र पालि अध्यापन की व्यवस्था करनी चाहिये।"

चतुर्थ प्रस्ताव द्वारा राजकीय संस्कृत कालेज की परीक्षाओं में पालि का भी समावेश करने की माँग की गई। इस प्रस्ताव को श्री धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री एम. ए. ने रखा, जिसका समर्थन भिक्षु सद्धातिस्स ने किया। प्रस्ताव इस प्रकार था—

"यह सभा उत्तर प्रदेशीय सरकार का ध्यान गवर्नमेंट संस्कृत कालेज बनारस की परीक्षाओं में पालि के समावेश की ओर दिलाती है और आशा करती है कि संस्कृत-परीक्षाओं में पालि को भी स्वतंत्र स्थान मिलेगा। इससे कई शताब्दियों से संस्कृत-पालि का विच्छिन्न सम्बन्ध पुनः जुटेगा। इससे केवल उत्तर प्रदेशीय सरकार की परीक्षाओं का गौरव ही न बढ़ेगा प्रत्युत एशिया की सांस्कृतिक एकता में भी यह कार्य सहायक होगा।"

सभापति का भाषण

अन्त में सभापति ने अपने संक्षिप्त भाषण में बौद्ध धर्म की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कहा कि दुनिया में ईसाइयों, मुसलमानों का धर्म और साम्राज्य तलवार के बल पर फैला। भारत की तलवार कहीं नहीं गई, धर्म गया, आदर्शों की शिक्षा गयी और इस प्रकार बौद्ध धर्म का देश विदेश में प्रसार हुआ।

रात्रि में प्रदीप-पूजा तथा सूत्रपाठ के उपरान्त स्थानीय कालेज के छात्रों ने कैम्पफायर किया, जिसमें अजमेर की पार्टी ने भी भाग लिया। अजमेर-पार्टी के काम बड़े ही सुन्दर रहे।

अजमेर के बौद्धों का स्वागत—दूसरे दिन • प्रातःकाल अजमेर से आयी हुई २२ कोली राजपूतों को महाबोधि सभा की ओर से जलपान कराया गया और अस्त्र प्रदर्शन के बाद अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध सम्मेलन में उनका स्वागत किया गया। स्वागत समारोह भदन्त शासनश्री जी के सभापतित्व में हुआ। प्रारम्भ में भिक्षु संवरत्न ने अजमेर के बौद्धों का हार्दिक स्वागत करते हुए उनकी मंगल कामना की। तदुपरान्त श्री के. के. राय, डा० एच. वी. गुन्थर, और भिक्षु सद्धातिस्स के भाषण हुए। अजमेर के बौद्धों की ओर से श्री अकारोंसिंह कुस्पावत एवं श्री रामसिंह छावराने अपने सम्मान के लिए धन्यवाद देते हुए अजमेर के कोली राजपूतों की आवश्यकताओं की ओर सब का ध्यान आकृष्ट किया। अन्त में भिक्षु धर्मरक्षित ने कोली राजपूतों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जोर देते हुए

अनुरोध किया कि भारतीय महाबोधि सभा प्रतिवर्ष कम से कम दो भिक्षुओं को अजमेर भेजा करे। सभापति के भाषण के बाद भिक्षु संघरत्न ने महाबोधि सभा की ओर से अजमेर के बौद्धों को संगमरमर की भगवान् बुद्ध की एक सुन्दर मूर्ति प्रदान की।

महाबोधि हायर सेकण्डरी स्कूल का वार्षिकोत्सव—१२ नवम्बर को डा० एच. वी० गुन्थर के सभापतित्व में सारनाथ के महाबोधिहायर सेकण्डरी स्कूल का वार्षिकोत्सव हुआ। प्रिंसिपल श्री० के० के० राय के वार्षिक विवरण पढ़े जाने के बाद श्रीमती फर्नेण्डो द्वारा पारितोषिक वितरण हुआ। छात्रों ने वार्तालाप आदि सुनाये। बर्मा के भिक्षु ऊ सागर की ओर से भिक्षु ऊ कित्तिमा जी ने सन्देश सुनाया, सभापति-भाषण के पश्चात मिष्टान्न वितरण हुआ।

कठिन-चीवर दानोत्सव—१३ नवम्बर को बर्मा बौद्ध विहार सारनाथ में कठिन चीवर दानोत्सव हुआ। प्रातःकाल बर्मा से आये लगभग ७० व्यक्तियों का महाबोधि सभा की ओर से स्वागत किया गया और भगवान् बुद्ध की अस्थियाँ प्रदर्शित की गईं। सभा की ओर से भिक्षु संघरत्न ने बर्मी पार्टी के नेता भिक्षु ऊ सागर को भगवान् बुद्ध की एक हाथी दाँत की मूर्ति और कुछ धार्मिक ग्रन्थ प्रदान किये। तदुपरान्त भिक्षु ऊ सागर ने धन्यवाद देते हुए कहा कि हम लोग पतिवर्ष आयेंगे और भारत में रहने वाले सभी भिक्षुओं को चीवर आदि प्रदान करेंगे। दोपहर में बर्मी बौद्धों ने बड़े समारोह और आयोजन पूर्वक सर्वदेशीय भिक्षुओं को भोजन दान दिया। कठिन चीवर दानोत्सव से सम्मिलित होने वाले सभी भिक्षुओं को उन्होंने चीवर, जूते, छाते, पंखा आदि प्रदान किये। विभिन्न देशों के बौद्ध गृहस्थों को भी भोजन कराया।

काशी में बौद्ध सांस्कृतिक सम्मेलन—१३ नवम्बर को तीन बजे अपराह्न से काशी के क्वींस कालेज में नयी बिरादरी की ओर से डा० एच. वी. गुन्थर की अध्यक्षता में बौद्ध सांस्कृतिक सम्मेलन हुआ, जिसमें एशिया के विभिन्न देशों से आये हुए बौद्ध सम्मिलित थे। सर्वप्रथम श्री जगन्नाथ उपाध्याय ने सभापति का परिचय दिया। तदुपरान्त आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अतिथियों का स्वागत करते हुए कहा कि हमें सन्तोष है कि हम आप लोगों का स्वागत विश्व की प्राचीनतम नगरी काशी में कर रहे हैं, जिसने अपना प्रभुत्व शस्त्र बल से नहीं, बल्कि आध्यात्मिक ज्ञानबल से कायम किया है। काशी शंकर के त्रिशूल के कोण पर है, इसका अर्थ है वह अपने ही भार से टिकी हुई है और वह भार आध्यात्मिक है। हमारे पास यही निधि है और इसी के द्वारा इस नगरी में हम आप का स्वागत करते हैं। इसके बाद क्रमशः सिंहली, बर्मी, चीनी और तिब्बती भिक्षुओं ने अपने-अपने ढंग से सूत्र पाठ किये।

विश्व बौद्ध भ्रातृत्व संघ लंका के प्रतिनिधि भिक्षु सद्धातिस्स ने कहा कि लंका और भारत एक ही सांस्कृतिक परम्परा के उत्तराधिकारी हैं। अपने इस बात पर जोर दिया कि दक्षिण-पूर्व एशिया के सभी देशों को सांस्कृतिक आधार पर एक सक्रिय संघ बना लेना चाहिए। यह संघ शक्ति इन देशों के अस्तित्व के लिए भी आवश्यक है। आगे आपने कहा कि भारत तथा अन्य दक्षिण पूर्व एशिया के राष्ट्रों में प्राचीन काल से घनिष्ठ सांस्कृतिक सम्बन्ध रहा है। अतः आज इस बात की आवश्यकता है कि एशिया की उन्नति तथा उत्थान के लिए इस प्रकार की संस्था कायम की जाय।

आपने आगे बताया कि यदि उक्त संस्था की स्थापना की गई तो विश्व बौद्ध भ्रातृत्व संघ सदैव उसके कार्यों में सहायता किया करेगा। आपने आगे कहा कि मुझे आशा है कि उक्त संस्था विश्व में शान्ति स्थापना करने में सफल होगी।

बर्मा के श्री किन मांग ने इस बात पर दुःख प्रगट किया कि भगवान् बुद्ध के जन्म स्थान भारत में बौद्धों की संख्या बहुत कम है। बर्मा के भिक्षु महासंघ के मंत्री भिक्षु ऊ सागर ने कहा कि यदि बुद्ध के शान्ति सन्देश का उपयुक्त प्रचार किया गया होता तो आज सा परस्पर अविश्वास और विरोध न दिखाई देता। विश्व में सद्भावना बिना शान्ति होना कठिन है। आप ने आगे कहा कि मैं आशा करता हूँ कि भविष्य में बौद्ध धर्म भारत में

बहुत शीघ्रता से फैलेगा और भारत भी एक बौद्ध राष्ट्र हो जायगा।

सम्मेलन में जापानी छात्र श्री फूजीयोशा, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल तथा नागपुर बुद्ध सोसाइटी के मंत्री श्री कुलकर्णी के भी भाषण हुए। इस अवसर पर संस्कृत कालेज-भवन भली भाँति सजाया गया था। एक बौद्ध कला प्रदर्शनी का भी आयोजन था, जिसमें बर्मा, लंका, तिब्बत, चीन आदि देशों की बौद्ध धर्म सम्बन्धी वस्तुएँ प्रदर्शित की गई थीं।

भगवान् बुद्ध भारत-चीन के बीच की कड़ी—गत १३ नवम्बर को बम्बई के राज्यपाल श्री महाराज सिंह ने बम्बई में चीनी प्रदर्शनी का उद्‌घाटन करते हुए कहा कि भारतीयों में सबसे महान् 'बुद्ध' चीन और भारत को—जिनकी सभ्यता सब से पुरानी है—मिलाने वाली कड़ी हैं। श्री महाराज सिंह ने कहा कि कोई ऐसी घटना नहीं घटी जिससे दोनों देशों के बीच के सम्बन्ध को धक्का लगा हो। उन्होंने कहा कि हम इस बात पर बहुत जोर देते हैं कि चीनी लोगों ने भारत में आकर यहाँ की संस्कृति और धर्म का अध्ययन किया, पर हम भूल जाते हैं कि भारतीय कलाकार, विद्वान और धर्म प्रचारक हजारों वर्ष पूर्व चीन गये और उन्हीं के कारण आज भारत और चीन के बीच का सम्बन्ध सुखमय है।

अग्रश्रावकों की पवित्र अस्थियाँ नेपाल ले जाई गईं—भगवान् बुद्ध के अग्रश्रावक सारिपुत्र और मौद्‌गल्यायन की पवित्र अस्थियाँ गत ६ नवम्बर को एक विशेष वायुयान द्वारा कलकत्ता से नेपाल से जाई गईं। पूरा विवरण अगले अंक में प्रकाशित किया जायगा।

भारतीय बौद्ध संघ का वार्षिक अधिवेशन—१४ नवम्बर को सारनाथ के बर्मी बौद्ध विहार में भारतीय बौद्ध संघ का वार्षिक अधिवेशन भिक्षु ऊ कित्तिमा जी के सभापतित्व में हुआ। संघ के प्रधान मंत्री भिक्षु ऊ चन्दिमा के वार्षिक विवरण पढ़ने के पश्चात् पदाधिकारियों का चुनाव हुआ। तत्पश्चात् कतिपय महत्वपूर्ण प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए।

पहले प्रस्ताव द्वारा बर्मा सरकार से निवेदन किया गया कि वह भारत आनेवाले तीर्थ यात्रियों की होनेवाली कड़ी जाँच और नियमित रुपया ही लाने के नियमोंमें दिला करे। दूसरे प्रस्ताव द्वारा बर्मा सरकारसे अनुरोध किया गया कि भारत-स्थित सभी बर्मी बौद्ध विहारों की वह सहायता करे। तीसरे प्रस्ताव द्वारा निश्चय हुआ कि बुद्धाब्द २५० (सन १९५६) की स्मृति में हिन्दी में एक स्मृति-ग्र प्रकाशित किया जाय। चौथे प्रस्ताव द्वारा यह निर्णय हु कि भारतीय बौद्ध संघ प्रति वर्ष अपनी ओर से किसी किसी उत्सव का आयोजन करे, जो जिस किसी ती स्थान में हुआ करेगा। इन्हीं के साथ ये चारों प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए जो कि ११ नवम्बर की विरा सभा में स्वीकृत हुए थे।

मंत्री द्वारा धन्यवाद देने के बाद अधिवेशन का का समाप्त हुआ।

बर्मा में धर्म सङ्गीति होगी—बर्मा के प्रधान मंत्री श्री थाकिन नू शीघ्र ही बर्मा में ५०० भिक्षुओं की ए धर्म संगीति कराने का आयोजन कर रहे हैं, जिस त्रिपिटक का संशोधन किया जायेगा। संगीति के मण्ड की वेदिका को बनाने के लिए राजगृह की सप्तपर्णी गुफ की मिट्टी मँगाई गई है, जहाँ पर कि भगवान् बुद्ध परिनिर्वाण के बाद ही प्रथम संगीति हुई थी। इस प्रकार प्रायः प्रत्येक बौद्ध तीर्थ से कोई न कोई वस्तु संगीति कार्य की पवित्रता के लिए ले जाई गई है। स्वयं प्रधा मंत्री ने उन वस्तुओं का संकलन किया है और अपने सा भारत से बर्मा ले गए हैं। इस प्रकार यह संगीति बौद्ध धर्म के धार्मिक इतिहास में छठीं होगी।

बर्मा के प्रधानमंत्री द्वारा तीर्थ यात्रा—बर्मा के प्रधानमंत्री श्री थाकिननू गत २९ अक्तूबर को तीर्थ-यात्रा हेतु सारनाथ आये। उनके साथ उनकी स्त्री, पुत्री, भारत स्थित बर्मी राजदूत और अन्य कई पदाधिकारी थे। उन्होंने मूलगंधकुटी में भगवान् बुद्ध की पूजा की। भिक्षुओं ने सूत्रपाठ कर उन्हें आशीर्वाद दिया। तदुपरांत भिक्षु संघरत्न ने श्री नू को भगवान् बुद्ध की एक सुन्दर हाथीदाँत की मूर्ति और कुछ धार्मिक ग्रंथ प्रदान किये, जिसे श्री नू ने बड़ी श्रद्धापूर्वक ग्रहण कर अपनी प्रसन्नता

प्रगट करते हुए उन्हें बर्मा आने के लिए विशेष आग्रह किया। तदनन्तर उन्होंने सारनाथ के खंडहरों का दर्शन किया और धम्मेक स्तूप के पास धर्मचक्र प्रवर्तन सूत्र का पाठकर थोड़ी देर तक ध्यान लगाया। उन्होंने अपनी पार्टी के साथ स्थानीय संग्रहालय का भी निरीक्षण किया। यह जानकर उन्हें बड़ी ही प्रसन्नता हुई कि संग्रहालय एक विशाल विहार की नींव पर खड़ा है।

श्री थाकिन नू बुद्धगया की पूजा कर सारनाथ आये थे और यहाँ से श्रावस्ती के लिए रवाना हो गए। श्रावस्ती से वे राजगृह गए और फिर बर्मा वापस लौट गए। कुशीनगर और लुम्बिनी की यात्रा उन्होंने अपनी पहली यात्रा में की थी। इस बार इच्छा रहते हुए भी समयाभाव के कारण वहाँ नहीं जा सके।

भारत सरकार द्वारा बौद्ध त्रैमासिक-पत्र का प्रकाशन—भारत सरकार एक ऐसे त्रैमासिक पत्रिका को प्रकाशित करने की योजना बना रही है जिसका आधा भाग अँग्रेजी और आधा भाग पालि में रहेगा। पत्रिका की सारी सामग्री बौद्ध धार्मिक ही रहेगी। भारत सरकार ने इस कार्य के लिए हरेक बौद्ध देश के एक-एक विद्वान् को इसके सम्पादक मण्डल में नियुक्त किया है। लंका की ओर से डा. जी. पी. मललसेकर, जो सीलोन युनिवर्सिटी के प्राध्यापक हैं—इसके सम्पादक मण्डल में लिए गए हैं। भारत सरकार इस पत्रिका के द्वारा बौद्ध दर्शन और साहित्य को भी प्रकाशित करना चाहती है।

पावा की खोदाई की योजना—उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले में स्थित कुशीनगर से १० मील पूरब फाजिल नगर, छठियाँव तथा आसमानपुर की खोदाई की एक दृढ़ योजना तैयार हो रही है। ये तीनों गाँव प्राचीन पावा के खँडहरों पर बसे हैं। पावा में ही भगवान् बुद्ध ने अन्तिम भोजन ग्रहण किया था। कहा जाता है कि खोदाई से पावा का यथार्थ पता लगते ही कुशीनगर के आदर्श पर स्तूप आदि का निर्माण शुरू हो जायेगा। खोदाई में लेख, मूर्ति, हथियार तथा बर्तनों के मिलने की अधिक सम्भावना है।

हाथी दाँत की बुद्ध प्रतिमा—काशी के श्री गगनेन्द्र कुमार केडिया ने गत भारत में काशी में ही निर्मित एक बुद्ध भगवान् की हाथी दाँत की सुन्दर प्रतिमा अपनी ओर से उपहार रूप में अमेरिकी बच्चों को भेजी है।

जापानी बौद्ध भिक्षु काशी में—जापान के कियोहो विश्वविद्यालय के स्नातक और कियोटो बौद्ध मठ के श्री फूजी योशा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में भारतीय दर्शन का अध्ययन करने के लिए गत मास में भारत आये। आप को अध्ययन के लिए भारत सरकार ने छात्रवृत्ति भी दी है।

महाबोधि दातव्य औषधालय को दान—महाबोधि सभा के अनुरोध पर पर्शियन गल्फ, वेहराईन के प्रसिद्ध व्यापारी श्री जसनमल एण्ड सन्स ने ३०२) महाबोधि दातव्य औषधालय, सारनाथ को दान के रूप में भेजा है। सभा इस आदर्श दान को सहर्ष स्वीकार करते हुए उनकी मंगलकामना करती है।

चीनी महापण्डित का देहावसान—चीन के धर्मगुरु और बौद्धनेता श्री ताईशू ताऊ के विद्वान् शिष्य एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि प्राप्त भिक्षु फाफन का गत २ अक्तूबर को लंका में देहावसान हो गया। स्वर्गीय फाफन चीनी, संस्कृत, अंग्रेजी आदि भाषाओं के विद्वान् थे। उन्होंने महायान बौद्धधर्म के सम्बन्ध में प्रगाढ़ अध्ययन किया था। उन्होंने बहुत दिनों तक शान्तिनिकेतन में अध्ययन-कार्य भी किया था। उन्होंने ही सारनाथ के मूलगन्धकुटी विहार पुस्तकालय को चीनी त्रिपिटक प्रदान किया था। उनके देहावसान से हम एक बहुत बड़े अभाव का अनुभव कर रहे हैं।

नये प्रकाशन

जातकट्ठकथा (पठमो भागो, मूल पालि)— सम्पादक : त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित । प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ काशी, पोष्ट बाक्स नं० ४८, बनारस १ । पृष्ठ संख्या ३८३, कपड़े की जिल्द, मूल्य ९) ।

जातकट्ठकथा पालि वाङ्मय की एक अनुपम निधि है। इसमें भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्म की ५४७ कथायें संग्रहीत हैं, कथा-साहित्य की दृष्टि से यह ग्रन्थ संसार में सर्वश्रेष्ठ एवं विशालतम है। यही नहीं, यह विश्व के कथा-साहित्य में प्राचीनतम संग्रह भी है। इसमें न केवल भारतीय ही प्रत्युत एशियायी प्राचीन राजनीति, कला, दर्शन, इतिहास, धर्म, संस्कृति, व्यवसाय, भूगोल आदि सभी प्रकार की ज्ञान-परम्पराओं का समावेश है। जातकट्ठकथा को बिना पढ़े भारतीय संस्कृति एवं इतिहास का कदापि पूर्ण ज्ञान नहीं हो सकता। हमारे जिन इतिहासकारों ने भारत का सुन्दर इतिहास-ग्रन्थ लिखने का प्रयत्न किया है, उन सभी ने इस कथा-साहित्य का आश्रय लिया है। इसमें आई हुई कथायें कितनी प्राचीन हैं, इसका ज्ञान साँची, भरहुत आदि के स्तूपों की वेष्टनी पर उत्कीर्ण जातक-कथाओं से हो सकता है।

जातकट्ठकथा २२ निपातों में विभक्त है, जिसका विस्तार (१) दूरे निदान, (२) अविदूरे निदान और (३) सन्तिके निदान के क्रम से हुआ है। बोधिसत्त्व ने जब सुमेध तपस्वी का जन्म ग्रहण कर भगवान् दीपङ्कर के चरणों में जीवन समर्पित किया, उस समय से लेकर वेस्सन्तर का शरीर छोड़ तुषित स्वर्ग लोक में उत्पन्न होने तक की कथा दूरे निदान कही जाती है। तुषित लोक से च्युत होकर महामाया देवी के गर्भ से उत्पन्न हो बुद्धगया में बुद्धत्व प्राप्त करने तक की कथा अविदूरे निदान कही जाती है। जहाँ जहाँ भगवान् बुद्ध ने विहार करते समय कोई जातक कही, उन स्थानों का जो उल्लेख है, वह सन्तिके निदान है। जितनी जातक कथायें हैं, वे दूरे निदान के ही अन्तर्गत आती हैं।

इस विशाल ग्रन्थ के प्रणेता आचार्य बुद्धघोष हैं, जिन्होंने त्रिपिटक के प्रायः सभी प्रमुख ग्रन्थों की अट्ठकथायें लिखी थीं। आचार्य बुद्धघोष बुद्धगया के रहने वाले थे, उन्होंने लंका में जाकर इस ग्रन्थ को सिंहल भाषा से पालि में परिवर्तित किया। सम्प्रति पालि जातकट्ठकथा ही उपलब्ध है, सिंहल अट्ठकथायें इसकी उपयोगिता के सम्मुख लुप्त हो गईं।

प्रस्तुत ग्रन्थ इसी विशाल कथा-साहित्य का प्रथम भाग है। इसमें दूरे निदान और अविदूरे निदान के साथ १५० कथायें हैं। भारतीय ज्ञानपीठ ने नागराक्षरों में इस ग्रन्थ के मुद्रण का कार्य प्रारम्भ कर स्तुत्य एवं ऐतिहासिक कदम उठाया है। इसका यह सांस्कृतिक-यज्ञ महान् है, इसका मूल्यांकन हम अभी जो कुछ कर सकते हैं, इससे भी कहीं अधिक और प्रभावशाली इस कार्य का महत्त्व है। हमने लंका, बर्मा आदि बौद्ध देशों से प्रकाशित होनेवाले पत्रों में इस ग्रंथ की समालोचना पढ़ी है, सभी ने ज्ञानपीठ के संस्थापक सेठ श्री शान्ति प्रसाद जैन जी की इस कार्य के लिये भूरि-भूरि प्रशंसा की है 'बुद्धिष्ट वर्ल्ड' (लंका) ने लिखा है—“इस कार्य के द्वारा सेठ श्री शांति प्रसाद जैन ने नागराक्षर एवं हिन्दी का प्रचार विश्वभर में करने का प्रशंसनीय कार्य किया है।” 'सिंहल बौद्धया' ने इस पर विस्तार पूर्वक प्रकाश डालते हुए लिखा है—“पालि ग्रन्थों के प्रकाशन का संकल्प कर भारतीय ज्ञानपीठ ने भारतीयों का बहुत बड़ा उपकार किया है। उसने भारतीय संस्कृति की एक महत्वपूर्ण श्रृंखला को पुनः जोड़ने की ओर कदम बढ़ाया है।”

इस समय भारत वर्ष में पालि का पठन-पाठन जोर पकड़ रहा है, किन्तु नागरी अक्षरों में पालि ग्रन्थों के अभाव के कारण बड़ी कठिनाई होती है, यद्यपि भारतीय महाबोधि सभा एवं बम्बई विश्वविद्यालय ने कुछ ग्रन्थों का प्रकाशन किया है किन्तु अभी तक इस प्रकार के सुन्दर प्रकाशन की ओर किसी की दृष्टि नहीं गई थी। भारतीय ज्ञानपीठ ने इस महान् कार्य को अपने हाथ में लेने का बड़ा ही उत्तम संकल्प किया है। जातकट्ठकथा का प्रथम भाग उसका प्रथम प्रयास है, आशा है शीघ्र ही इसके अन्य भाग भी प्रकाशित होंगे।

ग्रन्थ की छपाई आदि सब सुन्दर है। कपड़े की जिल्द और कवर मनमोहक है। ग्रंथ के आकार के अनुसार मूल्य उचित है। हाँ, प्रकाशक और सम्पादक की सावधानी बरतने पर भी प्रूफ सम्बन्धी कुछ त्रुटियाँ रह गई हैं, इसके लिए अन्त में शुद्धिपत्र लगा दिया गया है। जातककथाओं की अनुक्रमणिका भी दे दी गई है।

विद्वानों, ग्रन्थकारों, पुस्तकालयों एवं प्राचीन इतिहास के छात्रों को ऐसे ग्रन्थ शीघ्र संग्रह करना चाहिए। आशा है हमारे सुविज्ञ पाठक इस ग्रन्थ का स्वागत कर प्रकाशक के इस सांस्कृतिक-यज्ञ में योगदान देंगे।

भगवान् महावीर—लेखक : कामता प्रसाद जैन। प्रकाशक : भा० दि० जैन परिषद् पब्लिशिंग हाउस, दरीबा, दिल्ली। पृष्ठ संख्या ३६७, मूल्य ३)।

हमने इस ग्रन्थ को आद्योपान्त पढ़ा। यह न तो भगवान् महावीर का जीवन चरित है और न तो इसमें जैन ग्रन्थों के अधार पर कोई प्रामाणिक बात ही कही गई है। जान पड़ता है लेखक के हृदय में बौद्धों एवं बौद्ध धर्म के प्रति ईर्ष्या का स्रोत उमड़ रहा है। उसने ऐसे संकीर्ण-विचारों का अपने उलझे हुए मस्तिष्क से सम्पादन किया है, जो हास्यास्पद है। किसी भी लेखक को यह अधिकार नहीं है कि वह किसी भी सत्य बात को जनता वे सम्मुख विपरीत ढंग से रखे। उसने ग्रन्थ में भगवान् बुद्ध और बौद्ध धर्म पर सर्वत्र ही छींटें मारी हैं। उसकी कुछ पंक्तियाँ यहाँ दे देना हम अपना कर्त्तव्य समझते हैं। उसने लिखा है—

"…गौतम बुद्ध… उससे (जैन धर्म से) प्रभावित हुए थे। बौद्धों के निकट म० बुद्ध ही सब कुछ थे…(प्रस्तावना)।…यद्यपि इनके सिद्धान्त लचर थे (पृष्ठ ४१)। शुद्धोदन के पुत्र बुद्ध को परमात्मा कहा (पृष्ठ ४३)।… जैनियों के प्रतिद्वन्दी बौद्ध ग्रन्थों में (पृष्ठ ११०)। बौद्ध धर्म की स्थापना शाक्यपुत्र गौतम ने की, परन्तु जैन धर्म तो उससे बहुत पहले से प्रचलित था (पृष्ठ २६५)। वह (भगवान् बुद्ध) दिगम्बर मुनि का कठोर जीवन भी बिताते हैं, परन्तु तपश्चरण के काठिन्य से घबड़ा जाते हैं (पृष्ठ २६६) वह शरीर के मोह में फस जाते हैं।…इस प्रकार की घोषणा करके उसने (बुद्धने) संसार में सम्पूर्ण पापकर्म की परिपाटी चलाई (पृष्ठ २६७)। म० गौतम बुद्ध एक समय दि० जैन मुनि भी रहे थे। यही कारण है कि जैन और बौद्ध शास्त्रों के वाक्यों में बहुत सादृश्य मिलता है। (पृष्ठ २६९)। म० गौतम बुद्ध की मीठा वाणी और मोहक मुखाकृति ने जनता को मोह लिया था।…जैन दृष्टि से उनका यह ज्ञान पूर्ण ज्ञान न होकर अवधि ज्ञान प्रगट होता है।…म० गौतम बुद्ध के जीवन पर भगवान् महावीर की सर्वज्ञ दशा का इतना प्रभाव पड़ा प्रतीत होता है कि भ० महावीर के धर्मप्रचार करते रहने तक कर्मक्षेत्र में उनके दर्शन कठिनना से मिलते हैं (पृष्ठ २७१)।…निर्ग्रन्थ परम्परा से बुद्ध ने बहुत कुछ लिया (पृष्ठ २७४)।"

किसी धर्म का ज्ञान न रहने पर जब कभी दुराग्रह या हठधर्मी की जाती है, तो वह बड़ी ही घातक होती है। लेखकने जहाँ कहीं भी बौद्ध ग्रन्थोंके स्थलोंको उद्धृत किया है, उसे खींच तान कर ऐसा बनाने का प्रयत्न किया है, जिससे उसके कथन की पुष्टि हो जाय।

लेखक और प्रकाशक दोनों ने ऐसे ग्रन्थ को जनता के सम्मुख उपस्थित कर जैन धर्मका गौरव बढ़ाया नहीं, प्रत्युत जैन-विचारधाराओं को कलंकित किया है! हम इस ग्रन्थ का घोर विरोध करते हैं।

प्राप्ति स्वीकार

महामानव महावीर—लेखक रघुवीरशरण दिवाकर। प्रकाशकः मानव साहित्य सदन, मुरादाबाद। पृष्ठ संख्या ३०, मूल्य।)।

इस पुस्तिका में महामानव महावीर निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र

का बड़े सुन्दर ढंग से परिचय दिया गया है। पुस्तिका पठनीय है।

तामिल भाषा का जैन साहित्य—लेखक : श्री सी० एस० मल्लिनाथम् । अनु०—श्री भंवरलाल पोल्याका। प्रकाशक : मंत्री, श्री दि० जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी, महावीर पार्करोड, जयपुर। पृष्ठ संख्या २६, मूल्य-मुद्रित नहीं है।

इस पुस्तिका में तामिल भाषा में लिखे जैन साहित्य का संक्षेप में परिचय दिया गया है। जिनका वर्गीकरण व्याकरण, छन्द शास्त्र, शब्दकोष, आचार और नीतिशास्त्र, महाकाव्य, लघुकाव्य, उच्चकोटि की साहित्यिक कविताएँ, संग्रह ग्रन्थ और मणि प्रवाल पद्धति के ग्रन्थ के क्रम से किया गया है।

सर्वार्थ सिद्धिः—(संस्कृत) सम्पादक : पं० चैनसुखदास न्यायतीर्थ। प्रकाशक : श्री दि० जैन अ० श्री महावीर जी, महावीर पार्क रोड जयपुर। पृष्ठ संख्या २९५, मूल्य ४)।

यह ग्रन्थ तत्वार्थ सूत्र की व्याख्या सर्वार्थसिद्धिः का संक्षिप्त संस्करण है, जो राजपूताना विश्वविद्यालय की एम० ए० कक्षा के लिए स्वीकृत है। प्रारम्भ में अँग्रेजी में ३७ पृष्ठ की विस्तृत भूमिका है। अन्त में छात्रों के हित के लिए १०६ पृष्ठ की व्याख्या भी दी गई है।

कुशीनगर-दिग्दर्शन—लेखक : भिक्षु धर्मरक्षित। प्राप्ति स्थान—महाबोधि पुस्तक भण्डार, सारनाथ, बनारस। मूल्य ।)।

इसमें कुशीनगर का संक्षिप्त परिचय है। यह पुस्तिका कुशीनगर के दर्शनार्थियों के लिए उपयोगी है।

सफेद कोढ़ पर ५१) रु० इनाम दिया

सेठ भगवानजी जैन पाचोरा (खानदेश) की पुत्री का कोढ़ अच्छा हो गया और उन्होंने हमें ५१) इनाम दिया। बाबू बेनिसिंह फत्ताहपुरकलां (यू० पी०) लिखते हैं—'आपकी औषधि ने शरीर पर के सब दागों को दूर कर दिया।' मिठारामजी नेहते हंबर्डी लिखते हैं—'मेरी लड़की के कान, पाँव और शिर पर के सब दाग दूर हो गये। मुझे ईश्वरप्राप्ति ही हो गई ऐसा मालूम हो रहा है।

ऐसे हजारों प्रशंसा-पत्र और कई इनाम मिले। मूल्य छोटा डिब्बा ५) रु०, बड़ा डिब्बा १०) रु० डाक खर्च १२ आना। ज्यादा विवरण के लिये एक आने का टिकट भेजें।

पता—वैद्य बी. आर. बोरकर, आयुर्वेद भवन, पो० मंगरूलपीर, जि० आकोला (बरार)

अर्थ-वाणिज्य विषयक सचित्र मासिक पत्र

व्यवसाय

देश-विदेश की वाणिज्य विषयक खबरें, सरकारी आज्ञाएँ, नियम उप-नियम, टैक्स सम्बन्धी सूचनाएँ, सामान्य ज्ञान, पाठकों के प्रश्नों व शंकाओं के उत्तर, गवेषणात्मक लेख तथा अन्य उपयोगी सामग्री से भरपूर।

व्यापारियों, कम्पनियों तथा विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त उपयोगी ।

वार्षिक मूल्य ३) रु०, एक प्रति ।)

विज्ञापनदाता व एजेण्ट पत्रव्यवहार करें ।

पता- मैनेजर, "व्यवसाय"

आर्य साहित्य मण्डल लि०, अजमेर ।

एकमात्र बौद्ध मासिक "धर्मदूत" के वार्षिक

ग्राहक क्यों बनें ?

१. क्योंकि धर्मदूत के प्रत्येक अङ्कमें बौद्ध धर्म सम्बन्धी गवेषणात्मक महत्वपूर्ण लेख रहते हैं।

२. अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध प्रवृत्तियों, सांस्कृतिक प्रगतियों एवं विश्व के बौद्धों की अवस्थाओं पर प्रकाश डाला जाता है।

३. इसे भारत के सभी बड़े बौद्ध लेखकों का सहयोग प्राप्त है।

४. आप थोड़े ही मूल्य में संसार भर के बौद्धों से परिचय प्राप्त कर सकते हैं।

५. धर्म के गूढ़ सिद्धान्तों, इतिहास की गुत्थियों एवं सामाजिक-समस्याओं पर इसमें पूर्ण प्रकाश डाला जाता है। 'धर्मदूत' का ग्राहक किसी भी अङ्क से बना जा सकता है। 'धर्मदूत' के समस्त प्रेमी सज्जनों से विनम्र निवेदन है कि वे अधिकाधिक संख्या में ग्राहक बना कर 'धर्मदूत' के प्रचार में सहयोग दें।

व्यवस्थापक, 'धर्मदूत' सारनाथ, बनारस ।

भारतीय ज्ञानपीठ काशी के सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

शेर ओ शयरी

(उर्दू के सर्वोत्तम १५०० शेर और १६० नज़्म)

ले० अयोध्याप्रसाद गोयलीय

[प्राचीन और वर्तमान कवियों में सर्व प्रधान लोकप्रिय ३१ कलाकारों के मर्मस्पर्शी पद्यों का संकलन और उर्दू कविता की गतिविधि का आलोचनात्मक परिचय ।]

पृष्ठ संख्या ४६० । मूल्य आठ रुपये

मुक्तिदूत (उपन्यास)

ले० वीरेन्द्रकुमार एम० ए०

[हिन्दी में अपने ढंग का सबसे पहला पौराणिक रोमांस। आधुनिक भारतीय साहित्य में जैन संस्कृति पर आधारित प्रथम कलाकृति ।]

पृष्ठ सं० ३४०, मूल्य ४।।।)

पथचिन्ह

(स्मृति रेखायें और निबन्ध)

ले० शान्तिप्रिय द्विवेदी

(हिन्दी साहित्य की अनुपम पुस्तिका जो आज की गतिविधि की निःसारता दिखाती है और पाठक को रुकने के लिये वाध्य करती है।) मूल्य २)

ज्ञानोदय

व्यक्ति-स्वातंत्र्यमूलक श्रमण संस्कृति के सन्देश द्वारा श्रम, शम, सम-स्वावलम्बन, शान्ति और समता का सार्वजनीन उद्बोधन करने वाला मासिक पत्र।

वार्षिक ६) एक प्रति ॥=)

व्यवस्थापक- भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड, बनारस सिटी ।

BOOKS ON BUDDHISM FOR SALE

	Rs. As. P.
Buddhism	1-8-0
Buddhist Legends 3 Volumes	105-0-0
Buddhism in Translation	21-12-0
The Life of Buddha as legend & History	17-1-0
Early Buddhists Scriptures	11-0-0
The word of the Buddha	1-12-0
Buddhism Outlined	1-8-0
The way of Mindfulness	4-4-0
A Treatise on Buddhist Philosophy or Abhidhamma	6-0-0
An Introduction to Theravad Buddhism	7-8-0
Early Monastic Buddhism 2 Volumes	15-0-0
Aspects of Mahayan Buddhism and its Relation to Hinayana	12-8-0
A Concise Pali English Dictionary	11-0-0
Ceylon Lectures	7-0-0
What is Buddhism	1-8-0
Benares and Sarnath	1-0-0

	Rs. As. P.
Buddhist Shrines in India	5 0-0
Sarnath	0-12-0
Dhāmmapad	12-0-0
Buddhist India	5-0-0
Dhammapada and Suttanipata	15-8-0
Buddhist Meditation	5-8-0
Light of Asia	3-4-0
Essence of Buddhism	1-8-02
Asoka and His Inscription	15-0-0
Foundations of Buddhism	5-8-0
Buddhism for Beginners	0-4-0
Buddhism for Everybody	1-8-0
The Living Thoughts of Gautama The Buddha	6-0-0
Spirit of Buddhism	20-0-0
Vedantic Buddhism of the Buddha	32-0-0
Abhidhamma Philosophy	6-0-0
Asoka	0-8-0
Benares The Holy City	0-5-0
The Buddhist way of Life	0 6-0

PALI TEXTS IN DEVANAGARI SCRIPT

Visuddhimagga	16-8-0
Visuddhimagga Dipika	3-8-0
Navanita Tika	2-8-0
Dhammasangani	8-0-0
Atthasalini	8-8-0
Patimokkha	8-8-0

Pali-Patha-Mala	1-0-0
Cariyapitaka	5-0-0
Sutta Nipata	3-0-0
Jatakatthakatha Ist Volume	9-0-0
Mahaparinibban Sutta	1-4-0

Apply :—

Maha Bodhi Book Agency, Sarnath, Banaras.

or

Maha Bodhi Book Agency,

4-A BANKIM CHATTERJEE STREET, CALCUTTA—12

प्रकाशक—भिक्षु एम० संघरत्न, महाबोधि सभा, सारनाथ, (बनारस)
मुद्रक—ओम प्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, कबीर चौरा, बनारस ।

धर्मदूत

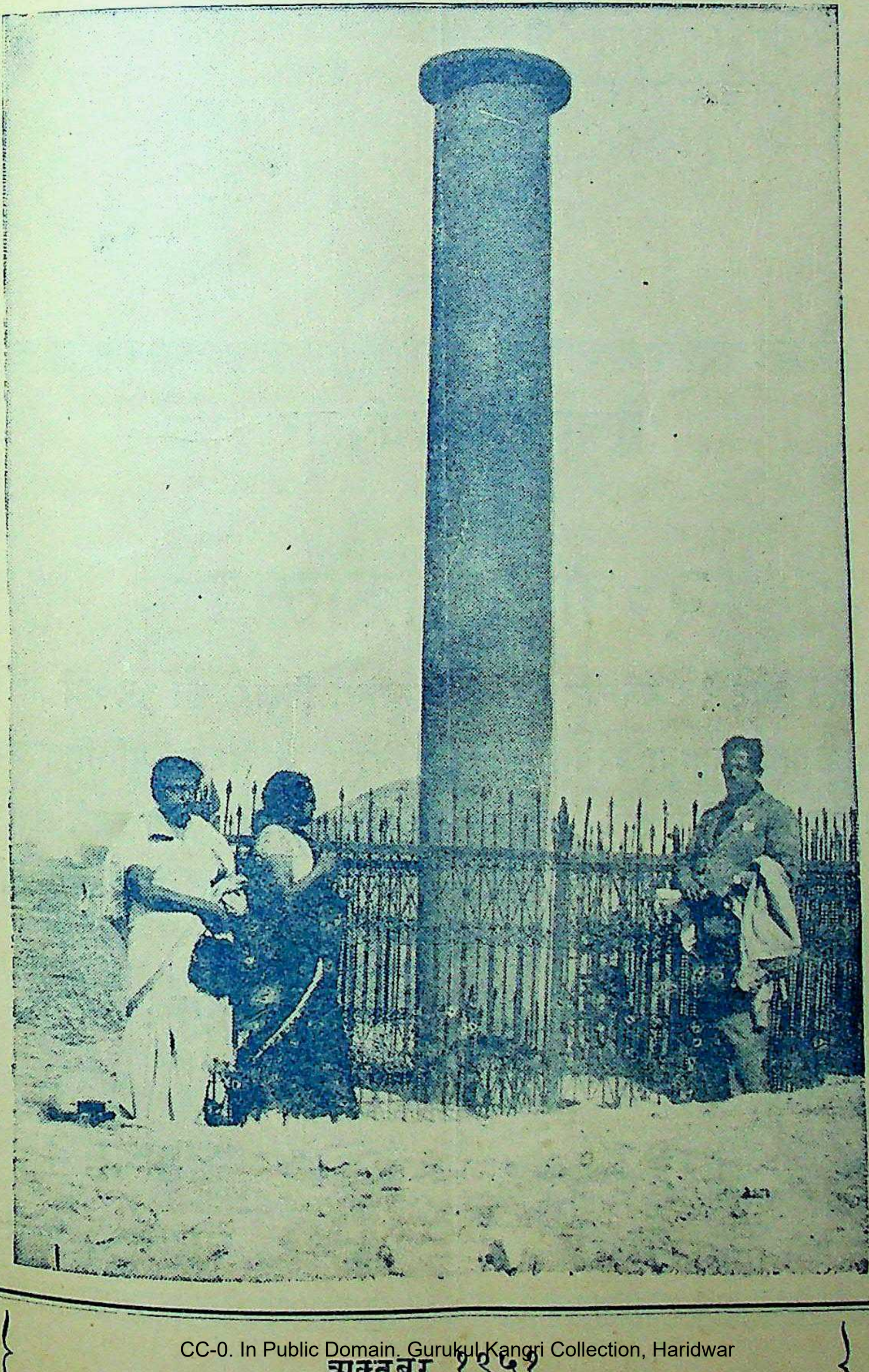

वनी का अशोक-स्तम्भ

र्ष—१६
ङ्क—७
अक्तूबर १९५१
वार्षिक मूल्य—
एक अङ्क

विषय सूची

विषय पृष्ठ

१. बुद्ध-वचनामृत ... १५९

२. हमारा धर्मचक्र—श्री रङ्गनाथ रामचन्द्र दिवाकर ... १६०

३. दलाई लामा और पणछेन लामा—श्री राहुल सांकृत्यायन ... १६३

४. मंगोलिया में हमारी धर्मविजय—डॉ० लोकेशचन्द्र ... १६९

५. जीवन-दर्शन—डॉ० उदयनारायण तिवारी ... १७०

६. प्रेम और मानसिक विकास—प्रो० लालजीराम शुक्ल ... १७२

७. निष्कलंक तथागत—श्री वेदराज प्रसाद ... १७५

८. नेपाल में स्थविरवाद का पुनरुत्थान—श्री अनन्त ... १७७

९. कुल्लू के आराध्यदेव—लामा अङ्गरूप लाहुली ... १७८

१०. मानवता-स्तुति—भदन्त शान्ति भिक्षु ... १७९

११. बौद्ध-जगत् ... १८१

मूलगन्धकुटी विहार

का

२०वाँ वार्षिकोत्सव

आगामी ११ और १२ नवम्बर को मूलगन्धकुटी विहार का २०वाँ वार्षिकोत्सव अति समारोह के साथ मनाया जायेगा। देश-विदेश से अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति इस उत्सव में प्रति वर्ष सम्मिलित होते हैं। आप भी अवश्य पधार कर इससे लाभ उठाने के लिए अब निश्चय कर लीजिये। कार्य-क्रम का पूरा विवरण समाचार-पत्रों द्वारा सूचित किया जायेगा।

विशेष जानकारी के लिये निम्नलिखित पते पर पूछ-ताछ करें :—

मन्त्री,

महाबोधि सभा,

सारनाथ, बनारस।

धर्म-दूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ । महावग्ग, (विनय-पिटक)

'भिक्षुओ ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिए, लोक पर दया करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये विचरण करो। भिक्षुओ ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्था में कल्याणकारक धर्म का उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो।'

सम्पादकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

वर्ष १६ } सारनाथ, अक्तूबर बु० सं० २४९५ / ई० सं० १९५१ { अङ्क ७

बुद्ध-वचनामृत

जीवन की क्षणिकता

"यहाँ मनुष्यों का जीवन अनिमित्त है, अज्ञात है, कठिन है, अल्प है और वह भी दुःख से युक्त है। ऐसा कोई उपाय नहीं है, जिससे उत्पन्न प्राणी न मरे। जरा को प्राप्त होकर भी मरना है। प्राणियों का स्वभाव इस प्रकार का है। जिस प्रकार पके फलों के शीघ्र गिरने का भय सदा रहता है, उसी प्रकार उत्पन्न मनुष्यों को नित्य मृत्यु-भय रहता है। जिस प्रकार कुम्हार द्वारा बने मिट्टी के सब बर्तन फूटने वाले होते हैं, उसी प्रकार है मनुष्यों का जीवन। छोटे और बड़े, मूर्ख और पण्डित सब मृत्यु के वश में जाते हैं। सब मृत्यु के अधीन हैं। मृत्यु के अधीन, परलोक जाने वालों में न तो पिता पुत्र की रक्षा कर सकता है और न बन्धु बन्धुओं की रक्षा कर सकते हैं। बहुत से बन्धुओं के देखते और विलपते वध के लिए ले जायी जानेवाली गौ की तरह एक एक मनुष्य मृत्यु के पास जाता है। इस प्रकार संसार मृत्यु और जरा से पीड़ित है।"

हमारा धर्मचक्र

श्री रंगनाथ रामचंद्र दिवाकर

धर्मचक्र देखने में एक साधारण-सा प्रतीक है, पर कुछ और प्रतीकों की भांति इसकी भी एक ऐतिहासिकता, एक अर्थ और एक महानता है। हमारे संघ-राज्य के झंडे में इसके समावेशित हो जाने से यह सारे संसार में प्रसिद्ध हो गया है। सारनाथ का अशोक स्तम्भ भारतीय संघ-राज्य का चिह्न स्वरूप माना गया है। उस स्तम्भ की चारों दिशाओं में, एक-दूसरे का पीछा करते हुए गज, वृषभ, सिंह और अश्व के बीच में भी अलंकार-रूप से यह चक्र अंकित किया गया है। संसद्-भवन में कार्य-समारंभ के समय आपने स्पीकार की कुर्सी के ऊपर बिजली के अक्षरों में पढ़ा होगा--"धर्मचक्र प्रवर्त्तनाय।" चक्र के वहाँ पर न होने पर भी मतलब उसी धर्म-चक्र से है, जो हमारे झंडे में है और राज्य-प्रतीक है।

कर्नाटक के अन्वेषक और कवि श्री गोविन्द पाइ के साथ जब हम एक दिन बंबई में झंडे की वंदना कर रहे थे, वे बोल उठे--"इन सिंहों के चरणों के नीचे यह धर्म-चक्र, क्यों है उसे इनके मस्तक पर होना चाहिये।" मैंने विचार कर यही बात ठीक पायी, चक्र का उचित स्थान सिंहों पर ही है। उनके पैरों के नीचे केवल एक अलंकारिक भावना है।

राज्य के चिह्न-रूप में सारनाथ के बयालीस फीट ऊँचे स्तम्भ का एक अंश लिया गया है। संभव है शतियों पूर्व स्तम्भ नीचे गिर पड़ा। स्तम्भ के नीचे का भाग तो जहाँ-का-तहाँ पड़ा रह गया--ऊपर का भाग, जो हमारा राज-चिह्न है, वह अत्यन्त महिमान्वित ऐतिहासिक अवशेष के रूप में सारनाथ के म्यूजियम में देखा जा सकता है। इसने समादृत स्थान वहाँ अधिकृत कर रखा है। प्रशस्त ऊँचाई, रुचिर प्रतिमा-कौशल, चमकती हुई पालिश और प्रभावशाली सिंह-मूर्त्तियाँ बलपूर्वक दर्शकों को आकर्षित कर लेती हैं। यह सिंह-स्तम्भ या अशोक-स्तम्भ के नाम से प्रसिद्ध हैं।

भौतिक शास्त्र या उचित रूप से मैकेनिक्स में चक्र के अन्वेषण ने मानव को गति के ऊपर बहुत बड़ा अधिकार दे दिया। चक्र गति का प्रतीक है। बौद्धों के धर्म चक्र का अर्थ है बुद्ध के धर्म को प्रगति देना। धर्मचक्र प्रवर्त्तन की व्याख्या है--चक्र को घुमाते ही रहना अर्थात् धर्म को चिरंतन गति देना। कहा जाता है, ज्ञान प्राप्त कर बुद्ध सारनाथ के मृग-दाव बन में गये। वहाँ उन्होंने सबसे पहले अपने उन शिष्यों को उपदेश दिया जो कुछ समय पहले उन्हें छोड़ आये थे। यही उनके बुद्धत्व का आरंभ था। बौद्धकाल की इस विशिष्ट घटना को धर्म चक्र बहुत अच्छी तरह प्रतीक रूप में प्रकट करता है। यह लाक्षणिकता और भी अनेक रेखा और आकारों में प्रकट हुई है। तिब्बत के मठों में ढोल के रूप में प मूँठ में स्थित यह चक्र देखने में आता है। भक्त लोग इसे निरंतर घुमाते रहते हैं। एक छोटे-से पहिये के रूप में एक चलित ढोल भी रहता है, जिसे भक्तगण वन्दना गीत की तालों पर चलाते रहते हैं।

धर्मचक्र को हमने जिस रूप में स्वीकार किया है उसके इस वर्त्तमान रूप की लोकप्रियता का प्रधान कारण यह था कि पाटलिपुत्र के महान् साधुमना सम्राट् प्रियदर्शी अशोक ने ऐसे कई उत्तुंग धर्मस्तम्भ स्थापित करके इसे प्रचारित और प्रतिष्ठित किया था, जिनकी शीर्ष-चूड़ा पर प्रायः घूमता हुआ चक्र विद्यमान होता था। साथ ही आरम्भिक बौद्ध कलाकारों ने भी एक शोभा-चिह्न के रूप में इसका उपयोग करके इसकी लोक-प्रियता में योग दिया था। ऐतिहासिक दृष्टि से यह स्पष्ट है कि स्तम्भों के चूड़ाप्रतीक के रूप में ही सबसे पहले इसका उपयोग होता था; स्थापत्य और शिल्प के शृंगार के रूप में इसका उपयोग बाद में होने लगा। चूँकि आज यह हमारे शासन का प्रतीक है और विविध स्थानों पर विविध रूपों में इसका प्रयोग होता है, इसलिये आज के हमारे देश के

प्रत्येक नागरिक के लिये यह आवश्यक है कि वह इसके इतिहास, अर्थ और गम्भीर अभिप्राय के बारे में जानकारी प्राप्त करे।

अशोक महान् ने अपने पीछे जो अत्यन्त महत्वपूर्ण स्मारक, चिह्न या प्रतीक छोड़े हैं और जो अभी भी विद्यमान हैं वे प्रधानतया स्तम्भ हैं और उनमें से अनेकों पर राजाज्ञाएँ खुदी हुई हैं। हमारा सम्बन्ध विशेष रूप से उन स्तंभों के साथ है जो अशोक स्तम्भ के साथ समता रखते हैं, जिसे कि भारत ने अपने शासन-प्रतीक के रूप में स्वीकार किया है।

सारनाथ के स्तम्भ की विगतों में जाने से पहले यह जानना एक रोचक बात होगी कि इन स्तम्भों को सामान्यतया 'धर्म-स्तम्भ' कहा जाता था। वास्तव में सम्राट अशोक ने अपनी एक राजाज्ञा में ही इन स्तम्भों को इस नाम से अभिहित किया है और यह भी उल्लेख किया है कि प्राचीन भारत के राजा लोग प्रायः ही ऐसे स्तम्भों की प्रतिष्ठा किया करते थे। जहाँ तक अशोक के स्तम्भों का सम्बन्ध है, उनके बारे में पर्सी ब्राउन ने लिखा है :

"अशोक द्वारा प्रतिष्ठित इस संयुक्त शैली की कलासिद्धियों में, निराधार खड़े स्तम्भ ही निःसन्देह सबसे अधिक उल्लेखनीय हैं। ऐसा जान पड़ता है कि मूलतया ऐसी अखण्ड शिलाकृतियाँ लगभग तीस थीं, जिनमें से दस के अवशेष अभी भी विद्यमान हैं। इनमें से दो सिंहशिखर वाले स्तम्भ अभी भी सीतू में काफी अच्छी हालत में विद्यमान हैं; एक कोल्हुआ (बखरा) में तथा दूसरा लौरिया नंदनगढ़ में; ये दोनों ही स्थान बिहार के चम्पारन जिले में हैं। शेष स्तम्भों में से जिनके मात्र शिखर-देश बचे हैं वे भवन के पुरातत्वागार में विद्यमान हैं। स्तम्भों के समुचित स्थापना-स्थलों के चुनाव में दृष्टिकोण यह रहा है कि, बहुत से तो ऐसे स्थानों पर स्थापित किये गये हैं, जिन्हें भगवान् बुद्ध ने पावन किया था, और शेष स्थल ऐसे हैं जो पवित्र तीर्थों के यात्रियों के मार्ग को चिह्नित करते हैं। चम्पारन और मुजफ्फरपुर जिलों—रामपुरवा, लौरिया आराराज, लौरिया नंदनगढ़ और कोल्हुआ—में स्तम्भों की सरणि पाटलिपुत्र से बौद्धधर्म की पावन तीर्थ-भूमि नेपाल के सीमान्तों तक जाने वाले राजमार्ग पर थोड़ी-थोड़ी दूरी के अन्तराल से आरोपित की गयी थी। सम्भव है कि सांची की स्तम्भ-सरणि उस सरणि के साथ सम्बद्ध है जो कि पश्चिमीय सीमान्त की ओर गयी है। ऐसा तो एक भी उदाहरण नहीं है जिसमें स्तम्भ किसी स्वतंत्र, भिन्न स्मारक के रूप में सामने आते हों, क्योंकि प्रत्येक स्तम्भ के पार्श्ववर्ती प्रदेश में ऐसे स्तूपों और भवनों के अवशेष विद्यमान हैं जो यह बताते हैं कि वे स्तम्भ विशद-विस्मृत बौद्ध वसतिकाओं के अंग थे। प्रत्येक स्तम्भ एक सरल, अलंकारहीन शलाका के रूप में गोलाकार होता था; उसकी ऊँचाई ३० से ४० फुट तक होती थी; बिना किसी अवलम्ब या आधार के वह सीधा जमीन से ही निकलता दिखायी पड़ता था, जैसे कि एक ऊँचे ताड़वृक्ष का धड़-भाग होता है। इस शलाका या स्तम्भ के सिरे पर, जिसका कि गोलार्द्धपरिमाण दो फुट होता था, एक शिखर होता था जो एक विशाल बौद्ध प्रतीक के आधार के रूप में होता था; यह सब मिलाकर स्तम्भ लगभग पचास फुट ऊँचा होता था। अपने बौद्ध अभिप्राय के अतिरिक्त अशोक के स्तम्भ बहुत प्राचीन और व्यापक श्रद्धा के व्यंजक हैं, और इनके पीछे उस मानव की प्रेरणा है जो वन-कानन की वृक्ष-घटाओं और विशाल झाड़ों की पूजा किया करता था।"

यहाँ उन स्तम्भों की पूर्व प्रेरणाओं का अनुसरण करने, उनकी प्रतीकात्मकता का अध्ययन करने, उनके सौन्दर्यात्मक मूल्यों का अंकन करने और उनकी विगतों का वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है। पर उन स्तम्भों में से दो, एक सांची का और दूसरा सारनाथ का धर्मचक्र की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। मैं केवल इन्हीं दो के दृष्टान्त दे रहा हूँ। इन दृष्टान्तों से धर्मचक्र का स्थान निश्चयात्मक रूप से ज्ञात हो जाता है।

सांची के स्तम्भ पर अंकित धर्मचक्र का स्थान बिलकुल स्पष्ट है। चक्र सिंहों के मुखों से कुछ ही इंच ऊपर लम्बरूप में विद्यमान है। वह एक अलंकृत पाषाण के सहारे धुरी पर स्थिर है। धुरी का बिन्दु, आरे और चक्रनाभि सुघड़ और सजीव हैं। आकृति से यह भी विदित होता है कि चक्र घूम नहीं सकता। उसका आकार

और उसकी गंभीर भव्यता उस विशाल स्तम्भ के अनुकूल ही है, जिसकी चोटी पर वह स्थित है।

सारनाथ म्यूजियम के अशोक स्तम्भ पर चार चक्र हैं। ये चक्र चार पशुओं के पदों के नीचे आधार के रूप में स्थित हैं। ये पशु हैं सिंह, हाथी, वृषभ और अश्व। इन चक्रों में २४ आरे हैं। ये २४ आरे दिव्यज्ञान की २४ सीढ़ियों (संस्कृत ग्रंथों के अनुसार प्रत्यायास) के प्रतीक हैं। भगवान् बुद्ध ने अपने पहले उपदेश में धर्म के जिस क्रमण का उल्लेख किया था, वह धर्म-चक्र अथवा न्याय-चक्र इस स्तम्भ पर अंकित नहीं है।

अब समस्या है कि आखिर यह चक्र किस चक्र विशेष का प्रतिमान है। उस चक्र में कितने आरे थे और उनसे किस बात का सम्बोधन होता था।

अपने अवलोकन और गवेषणा के आधार पर मैं जिन निष्कर्षों पर पहुँचा हूँ वे हैं (अ) नयी दिल्ली के 'एशियन एन्टीकिटीज के म्यूजियम' में चक्र के केवल पाँच टुकड़े संग्रहीत हैं (ब) चक्र उसी पत्थर का बना है जिसके सिंह और स्तम्भ हैं और इन तीनों की पालिश भी एक समान हैं। इन तीनों के आकार में भी आनुपातिक समानता है (स) चक्र के ३२ आरे हैं (उ) चक्र उसी प्रकार स्वरूप में है जिस प्रकार इस लेख में वर्णित सांची का स्तम्भ है (ई) इसकी धुरा एक स्तम्भ पर आधारित थी। यह स्तम्भ अलंकृत था या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता; पर यह ८ इंच चौड़े और ६-११२ इंच गहरे आधार पर, सिंहों के सरों के मध्यभाग में स्थित था। (फ) उन सरों से यह स्पष्टतया कम से कम एक-दो इंच ऊपर अवश्य था। मेरे लिये अभी यह कहना अत्यन्त कठिन है कि उसे घूमने की स्वतंत्रता थी अथवा नहीं।

ऊपर जिस आधार का वर्णन किया गया है, वह अब भी है, और कोई भी व्यक्ति, चाहे तो, सीढ़ी पर चढ़ कर चारों सिंहों के सरों के मध्यभाग को देख सकता है। यह बड़ा पहिया सिंहों के सरों पर आधारित नहीं रह सकता था क्योंकि उन सरों पर खाई या इस प्रकार के कोई चिह्न नहीं हैं। इन सरों के ऊपरी भाग सुमार्जित और स्वच्छ हैं। यह पहिया ऊर्ध्वाधर स्थिति में है, यह इसी बात से स्पष्ट है कि यह कहीं भी इस स्थिति के अलावा अन्य किसी प्रतीक स्वरूप या अलंकारीय स्थिति में देखने को नहीं मिलता। सांची स्तूप के चारों द्वारों के पहिये ऊर्ध्वाधर स्थिति में ही हैं।

अब प्रश्न यह है कि चक्र के ये ३२ आरे किस के प्रतीक हैं? कुछ लोग कह सकते हैं कि ३२ आरों वाला यह चक्र स्वयं बुद्ध का प्रतीक हैं—३२ महापुरुष लक्षणों (महापुरुष सत्ता) वाले महापुरुष। परन्तु यह कहना अधिक उपयुक्त है कि यही चक्र, जो न्याय चक्र है—धर्मचक्र है और इसके ३२ महापुरुष लक्षण इसके अंग हैं। यह पूर्ण चक्र महालक्षणों वाले धर्म का प्रतीक है।

कुछ भी हो, हमारा राज्य-प्रतीक मूलतः बौद्ध-धर्म से, जो शांतिदूत और राजर्षि अशोक का धर्म था, सम्बन्धित होने के कारण तो पवित्र है ही, साथ ही इसकी प्रतीकात्मता की दृष्टि से भी यह महान है। न्याय का चक्र—धर्मचक्र—इसके ऊपर विराजमान है। इस चक्र को चार सिंह संभाले हुए हैं, जो चारों दिशाओं की शक्ति के प्रतीक हैं। कला की दृष्टि से भी यह अनुपम कृति है।

मुझे यहाँ अधिक विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं है।

यदि हमारे शिशु गणतंत्र के नागरिकों को इस छोटे से लेख से हमारे धर्मचक्र की महानता का बोध हो सका और उनमें इस विषय की यथार्थ उत्सुकता जाग सकी तो मैं अपने श्रम को कृतकृत्य समझूँगा।

तिब्बत के दो धर्मगुरु

दलाईलामा और पणछेनलामा

श्री राहुल सांकृत्यायन

दलाई लामा तिब्बत के राजनीतिक शासक हैं और पणछेन लामा धार्मिक शासक—यह कथा यूरोपीय लेखकों द्वारा बहुत प्रचारित हुई है। तिब्बत में कोई दलाई लामा नहीं कहता, और न उसका अर्थ ही समझता है। 'दलाई' वस्तुतः मंगोल शब्द 'ताले' का अंग्रेजी अशोच्चारण है, जिसका अर्थ 'सागर' है। चूंकि अबतक हुए चौदहो दलाई लामों के नामों का अन्त सागर (ग्यम्-छो) से होता है, इसलिए मंगोल बौद्धों ने उन्हें तिब्बत गुरुवाचक शब्द लामा के साथ ताले लामा कहना शुरू किया। तिब्बती लोग दलाई लामा को ग्यल्वा रिम्-पोछे (जिन रत्न) अथवा चम्गोन् रिम्-पो-छे (मैत्रेय रत्न) कहते हैं। इनमें से पहला नाम अधिक प्रचलित है। रिम्-पो-छे का शब्दार्थ है महार्घ या रत्न। यह उपाधि वहाँ अधिक प्रतिष्ठित लामों के नाम या पद के साथ लगाई जाती है। पणछेन रिम्-पो-छे (महापण्डित रत्न) या पणछेन लामा (महापण्डित गुरु) टशी-ल्हुन्पो के महान् मठ के अध्यक्ष टशी-लामा की उपाधि है। बाहर यद्यपि टशी लामा (मंगल गुरु) अधिक प्रसिद्ध हैं, किन्तु तिब्बत वाले उन्हें पणछेन रिम्-पो-छे के ही नाम से जानते हैं। दोनों का आपस में और तिब्बत के साथ क्या सम्बन्ध है, यह जानने के लिए हमें चौदहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में जाना होगा।

दलाई लामा

११वीं सदी में भारत के विद्वान् दीपंकर श्रीज्ञान (९८२-१०५४ ई०) तिब्बत बुलाये गये। उस समय वहाँ बौद्ध धर्म में बहुत-सी बुराइयाँ आ गयी थीं, और विद्या का प्रचार बहुत कम रह गया था। दीपंकर श्रीज्ञान १०४२ ई० में तिब्बत पहुँचे, और तब से अपनी मृत्यु के समय (१०५४ ई०) तक उन्होंने जहाँ अनेक स्थानों में घुम-घूम कर धर्म-प्रचार किया वहाँ बहुत से संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद और संशोधन भी किया। दीपंकर के महान्

पणछेन लामा

प्रयत्न से फिर तिब्बत में ज्ञान का प्रसार हुआ और भिक्षुओं में पैदा हो गये बहुत से दोष दूर हुए। किन्तु, १४वीं सदी के मध्य में पहुँचते-पहुँचते तिब्बत में फिर वही पुरानी दुरवस्था आ गयी। उस समय भारत से बौद्ध धर्म लुप्त हो चुका था, नालन्दा, विक्रमशिला और उड्यन्तपुरी के महान् विद्यापीठ धराशायी हो चुके थे। इसी समय प्रतिभाशाली अम्दो (तङ्गुत) जाति ने एक महान् प्रतिभा को पैदा किया, जिसका नाम लोब्-जङ्-डग् पा (सुमतिकीर्ति) था, किन्तु वह अधिकतर अपने जन्मग्राम के नाम से चोङ्-ख-पा (चोङ्-खा-वाला के नाम से) प्रसिद्ध है। उसका जन्म १३५७ ई० में हुआ था, और मृत्यु १४१९ ई० में, अर्थात् वह बहुत कुछ कबीर का समसामयिक था। चोङ्-ख-पा का जन्म-देश अम्दो तब से आजतक अच्छे-अच्छे पंडितों को पैदा करता चला आ रहा है। जीवित पंडितों में सबसे बड़े गेशे-शेरब् उसी अम्दो के रत्न हैं, जिनका सहयोग नवीन चीन को पूरी तौर से प्राप्त है। अम्दो या तंङ्गुत लोग यद्यपि जाति से और भाषा से तिब्बती हैं किन्तु वह चौथी सदी ही में बौद्धधर्म में दीक्षित तथा अधिक संस्कृत हो चुके थे। वर्तमान १४वें दलाई लामा और नवें पणछेन लामा दोनों ही मुख्य चीन के अन्तर्गत इसी अम्दो प्रदेश के पुत्र हैं।

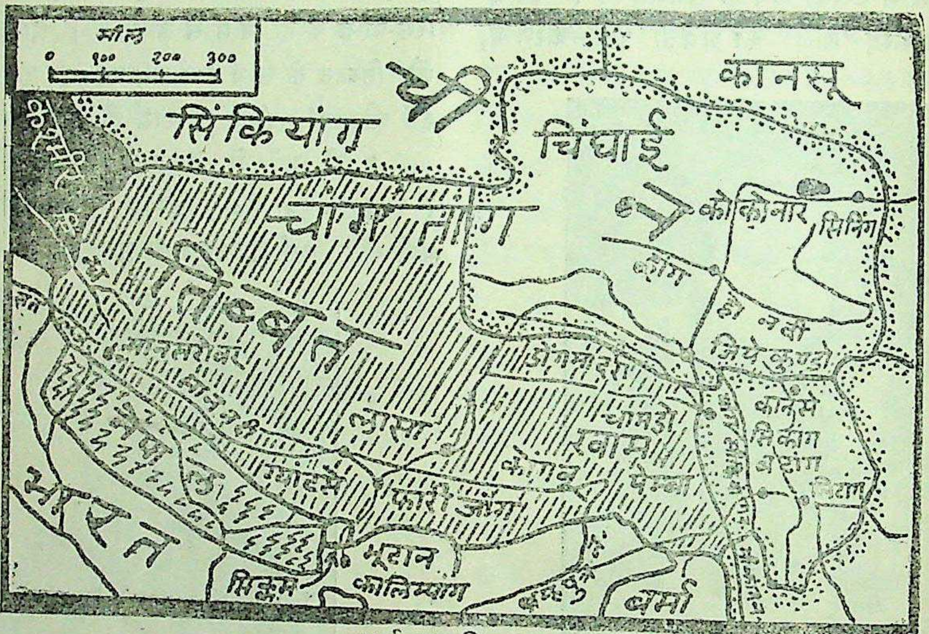

वर्तमान तिब्बत

चोङ्-ख पा ने जहाँ एक महान् वाग्मी के तौरपर अपने उपदेशों द्वारा तिब्बत के बौद्ध धर्म में नया जीवन फूँक वहाँ, वह लेखनी का भी धनी था। उसने न्याय, दर्श और दूसरे विषयों पर कई गम्भीर ग्रन्थ लिखे। चोङ्-ख पा उन सौभाग्यशाली आचार्यों में था। उसको एक एक योग्य शिष्य मिले। उसके एक शिष्य मस् यङ् (म घोष १३७८-१४१९ ई०) ने तिब्बत के सब से ब विद्यापीठ डेपुङ् (धान्यकटक) को १४१६ ई० स्थापित किया। आज उसमें ७,००० के करीब विद्या और अध्यापक भिक्षु रहते हैं, और उसके खर्च के लि पचासों गाँव लगे हुए हैं। दूसरे दलाई लामा के बाद सभी दलाई लामा इसी डेपुङ् विहार के गुरु होते रहे चोङ्-ख-पा के दूसरे शिष्य शाक्य-ये शे (साक्यज्ञान जन्म १३८३) ने १४१९ ई० में दूसरे महान् विहा सेरा को स्थापित किया, जहाँ आज ५,००० से अधि भिक्षु रहते हैं। चोङ्-ख-पा के तीसरे शिष्य गेन्-दुन ग्रु (संघसिद्ध, १३९१-१४७४ ई०) ने टशी-ल्हुन्पो विहा की स्थापना की, जिसमें आज ३,००० से ऊपर भिक्षु रहते हैं। चोङ्-ख-पाने स्वयं गन्-दन् (तुषित) विहार की स्थापना की, और अन्त में उसका वहीं देहान्त हुआ। गन्-दन् में आज भी चोङ्-ख-पा का मृतशरीर एक स्तू

के भीतर सुरक्षित रखा है, और उसके हाथ की लिखी पुस्तकें भी यहाँ मौजूद हैं। वस्तुतः तिब्बत के विहारों को देखने से १५वीं सदी का आरम्भ इस तरह मालूम होता है, जैसे १९वीं सदी का अन्त। वहाँ इतनी स्मारक वस्तुएं सुरक्षित रखी हुई हैं कि पुराना इतिहास आँखों के सामने मूर्तिमान् दिखाई देने लगता है। १५वीं सदी क्यों, १२वीं सदी के आरम्भ में भारत से गये, कितने ही बौद्ध आचार्यों के चीवर, जूते, भिक्षापात्र, वैशाखी (डंडे) वहाँ अब भी रखे हुए हैं। चोङ्-ख पा के समय से तिब्बत में जो चोङ्-ख-पा युग आरम्भ हुआ, वह आजतक चला आया है। उसमें परिवर्तन हाल में हुई चीन-तिब्बत संधि के द्वारा ही होने की सम्भावनाएं हैं। चोङ्-ख-पा के अनुआयी तिब्बत में गे-लुक्-पा (भिक्षु परंपरावादी), और बाहर पीली टोपीवाले लामाके नाम से प्रसिद्ध हैं। आजकल तिब्बत के बड़े बड़े मठ और बड़े-बड़े लामा गे-लुक्-पा सम्प्रदाय के अन्तर्गत हैं। ग्यल् बा-रिम् पो-छे (दलाई लामा) और पणछेन रिम्पो-छे भी गे-लुक्-पा सम्प्रदाय के धर्माचार्य हैं।

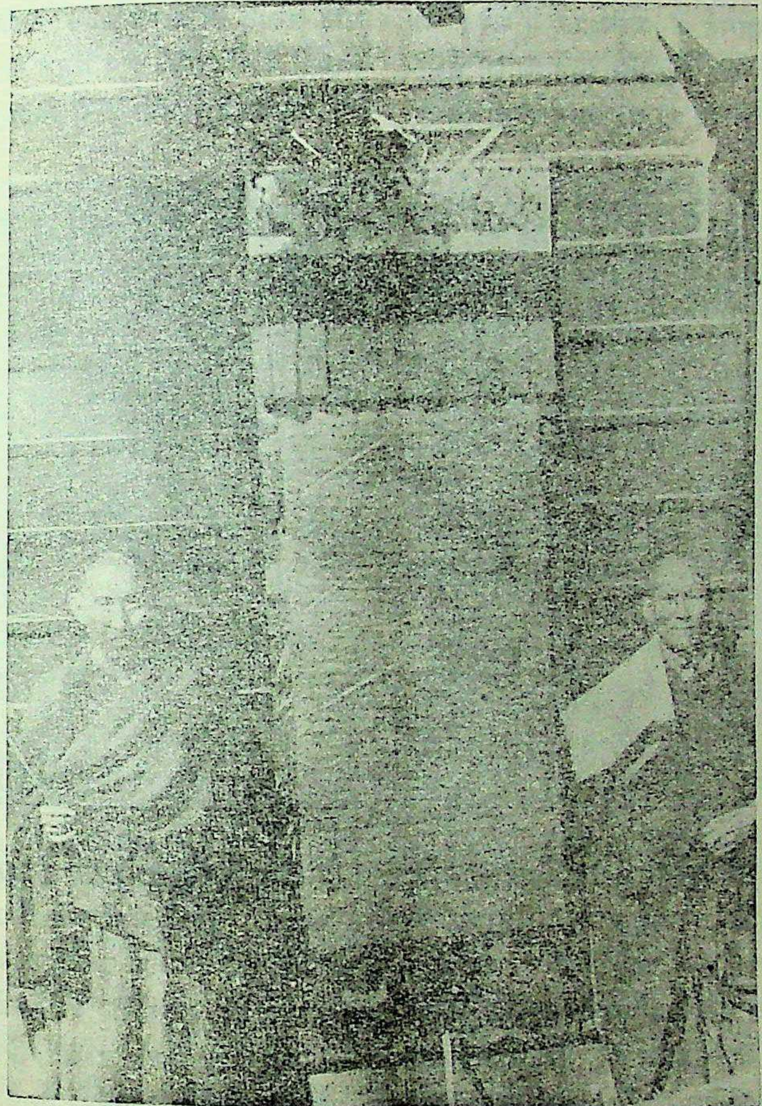

भारतीय महाबोधि सभा को दलाई लामा का सन्देश, जो तिब्बती भाषा में चीनी सिल्क पर लिखा है

टशी-ल्हुन्पो विहार के संस्थापक तथा चोङ्-ख-पा के शिष्य गेन् दुनडुब (१३९१–१४७४ ई०) प्रथम दलाई लामा थे। वह और उनके तीन उत्तराधिकारी केवल धर्माचार्य थे। पाँचवें दलाई लामा लोब् जङ्-ग्यम्-छो (सुमतिसागर, १६१७–८२ ई०) जहांगीर के समय में पैदा हुए, और औरङ्गजेब के शासन के मध्यकाल में मरे। वह अपने समय के बहुत प्रतिभाशाली और प्रभावशाली धर्माचार्य थे। डेपुङ् विहार में अब भी वह प्रासाद मौजूद है, जिसमें सुमतिसागर (पांचवें दलाई लामा) धर्माचार्य के तौरपर रहते थे। १६४२ ई० में उन्हें तिब्बत का राज्य, मिला। उससे पहले प्रायः ढाई शताब्दियोंतक चोङ्-ख-पा के अनुयायियों का काम था—विद्या का गम्भीर अध्ययन तथा धर्म-प्रचार। यद्यपि मंगोल लोगों में धर्म-प्रचार उसी समय (१६ वीं सदी के आरम्भ) होने लगा था, जब कि भारतवर्ष से वह लुप्त हो रहा था। किन्तु बौद्ध धर्म को मंगोलों का राष्ट्रीय धर्म बनाने का श्रेय चोङ्-ख-पा के अनुयायियों को है। तिब्बत में एक और भी विचित्र प्रथा १३वीं सदी के अन्त से चल पड़ी, जिसका पता न भारतीय बौद्ध धर्म में पाया गया, और न किसी और बौद्ध देश में। आमतौर से सभी धर्मों के मठों में योग्य शिष्य को उत्तराधिकारी माना जाता है, किन्तु तिब्बत के प्र प्रसिद्ध लामा कर्मा-बख्शी-छोन्-जिन (कर्मा भिक्षु धर्मभा १२०४-८३ ई०) के बाद उसकी गद्दी का उत्तराधिका शिष्य नहीं बल्कि मृतगुरु का अवतार माना जाने लगा। कर्मा बख्शी बहुत प्रभावशाली लामा था। वह मङ्गो चीन सम्राट् का मान्य था। आज भी उसके मठ में चीं सम्राटों के भेंट किये हुए बहुत से सामान देखने को मिल हैं। यह अवतार प्रथा आगे तिब्बत के दूसरे सम्प्रदायों भी ले ली। उसके प्रभाव से चोङ्-ख-पा के अनुयायी नहीं बच सके। प्रथम दलाई लामा के मरने (१४७४ ई के बाद से ही अवतारी बच्चों को ढूँढ़कर गद्दीपर बैठा जाने लगा। इस तरह उसका पाँचवाँ अवतार तथा उत्तराधिकारी लोब्-जङ्-ग्यन्-छो था।

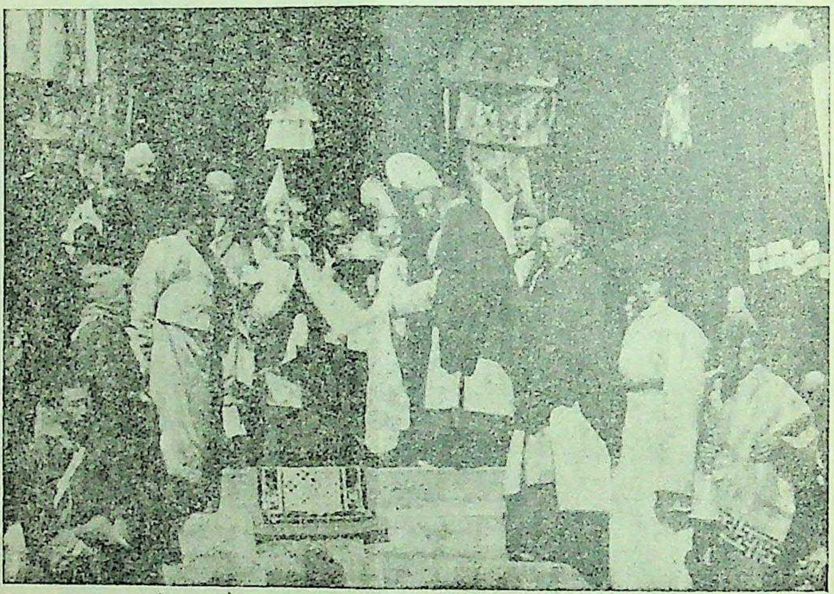

डोंकर गुम्बा में दलाई लामा की ओर से पवित्र अस्थियों का स्वागत

१७वीं सदी के मध्य में यद्यपि तिब्बत से मङ्गोलिय तक धार्मिक जगत् में गे-लुक-पा सम्प्रदाय का सबसे अधिक प्रभाव था, किन्तु तिब्बत में राज शक्ति जिस सम्प्र दाय के हाथ में थी, वह गे-लुक-पा के बढ़ते प्रभाव को सहन करने के लिये लिए तैयार नहीं था। वह समय था, जब कि तिब्बत बहुत-सी छोटी-छोटी ठकुराइयों में बँटा हुआ था, किन्तु मध्य-तिब्बत के चाङ्-प्रदेश में एक शक्ति

शाली शासन था। साम्प्रदायिक प्रतिद्वन्द्विता यहाँ तक बढ़ी, कि १६१८ ईस्वी में चाङ्-की सेना ने डेपुङ्-विहार के हजारों भिक्षुओं को जान से मार डाला। उस समय गे-लुक्-पा सम्प्रदाय का मङ्गोलों पर बहुत प्रभाव था। चौथा दलाई-लामा गुणसागर (१४८९-१६०६ ईस्वी) स्वयं मङ्गोल-कुल में पैदा हुआ था। जब भिक्षुओं के हत्या-काण्ड की खबर मङ्गोलिया पहुँची, तो वहाँ बदला लेने की आग भड़क उठी। एक मङ्गोल सामन्त गु-श्री-खान (१५८२-१६५४ ईस्वी) ने एक बड़ी मङ्गोल सेना संघटित की, और अपने गुरु-सम्प्रदाय पर हुए अत्याचार का बदला लेने के लिए वह तिब्बत की ओर चल पड़ा। मङ्गोल और चाङ्-सेनाओं में कई लड़ाइयाँ हुईं। यद्यपि विरोधी को १६२९ ईस्वीतक ही परास्त कर दिया गया था, किन्तु एक मरतबे प्रयाण कर चुकी मङ्गोल सेना इतने से सन्तुष्ट नहीं हुई, और २२ वर्षों के संघर्ष के बाद उसने छोटे-मोटे राज्यों को तोड़ कर सारे तिब्बत को एकाबद्ध करके उसे १६४२ ईस्वी में अपने समय के सब से प्रभावशाली धर्माचार्य पाँचवें दलाई लामा सुमतिसागर के हाथ में गुरु-दक्षिणा के तौरपर अर्पण कर दिया। १६४२ ई० से आरम्भ हुआ दलाई-लामा का शासन आज भी १४वें दलाई-लामा के हाथ में मौजूद है। चूंकि उत्तराधिकारी बरस-दो-बरस का बालक होता था, इसीलिए उसकी नाबालगी के समय रिजेण्ट या उपराज के हाथ में सारी शक्ति रहती थी। इसीलिए शक्ति के लोभ से कई दलाई-लामों को वयस्क होने से पहले ही अवतार लेने के लिए मजबूर होना पड़ा। १३वां दलाई-लामा मुनिशासनसागर (१८७६-१९३३ ईस्वी) इसका अपवाद था। वर्तमान दलाई-लामा की उमर अभी १५-१६ ही वर्ष की है, किन्तु इसी बीच में एक रिजेण्ट मृत्यु के घाट उतारा जा चुका है, और शक्ति के लिए पिछले कई सालों से संघर्ष हो रहा है।

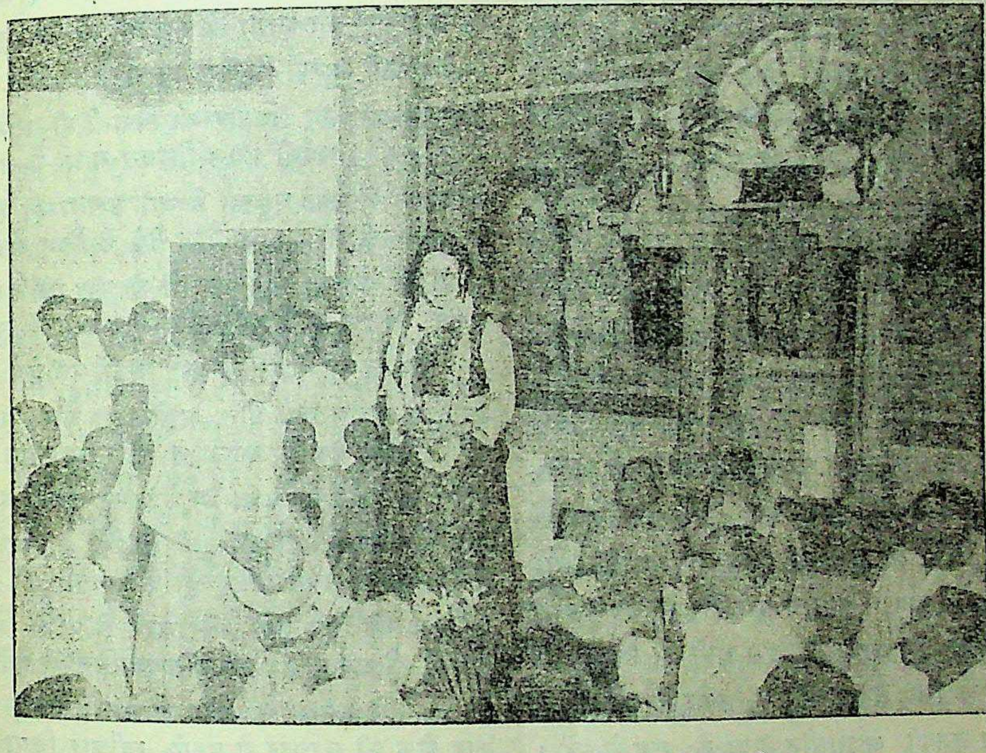

कलकत्ते में दलाईलामा की मा स्वागत-भाषण दे रही हैं

दलाई-लामा की तरह पणछेन लामा का महत्व पहले से नहीं था। पाँचवें दलाई-लामा तिब्बत के लामा शासक हुए। उनके दीक्षा गुरु टशीलहुन्पो विहार के एक बड़े विद्वान् लोब्-जङ्-छोस्-की ग्यल्-छन् (सुमति धर्म ध्वज १५७० १६६८ ईस्वी) थे। अपनी विद्वत्ता के कारण वह पण-छेन के नाम से प्रसिद्ध थे। पण वस्तुतः हमारे

पण्डित का संक्षिप्त रूप है, छेन का अर्थ है महा, अर्थात् महापण्डित। जब शिष्य (पाँचवें दलाई लामा) को राज्य मिला, तो दीक्षागुरु का भी सम्मान बढ़ना चाहिये था, इस प्रकार प्रथम पणछेन को तिब्बत के प्रधान धर्माचार्य के तौरपर माना जाने लगा। उससे पहले पणछेन लामा के भी अवतार होने लगे, वर्तमान पण-छेन यद्यपि सातवें अवतारी हैं, किन्तु प्रथम पण-छेन के गुरु और परम गुरु को भी गिनकर इन्हें नवां पण-छेन कहा जाता है। पण-छेन और दलाई लामा के बीच गुरु-शिष्य सम्बन्ध स्थापित हो जाने के बाद आगे बराबर आयु के अनुसार वह एक दूसरे के गुरु या शिष्य होते रहे। पण-छेन लामा को शासन का अधिकार नहीं प्राप्त था, किन्तु शासक दलाई लामा के गुरु या शिष्य होने के कारण उनका और उनके विहार टशी-ल्हुन्पो का वैभव और प्रभाव बराबर बढ़ता रहा। टशी-ल्हुन्पो विहार के पास आज जो बहुत बड़ी स्थावर और जंगम सम्पत्ति है, उसका कारण यही प्रभाव है।

१३वें दलाई लामा और आठवें पण-छेन लामा—दोनों ही मध्य-तिब्बत में पैदा हुए, और प्रायः एक ही उमर के थे। उनमें गुरु-शिष्य का सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता था। पण-छेन लामा को शासन का अधिकार न होने पर भी अपने प्रदेश—चाङ्—में काफी अधिकार प्राप्त थे। १३वें दलाई लामा ही शासक दलाई लामा में ऐसे थे, जिन्होंने शासन का सूत्र पूरी तौर से अपने हाथ में रखा। वह पण-छेन लामा के उस थोड़े से प्रभाव को भी सहन करने के लिए तैयार नहीं थे, और चाहते थे कि पण-छेन लामा उनकी आज्ञाधीन प्रजा के रूप में रहें। यही नहीं, बल्कि १९११ में चीनी क्रान्ति के बाद निर्वासन से लौटकर जब दलाई लामा ने तिब्बत के शासन-सूत्र को फिर से सम्हाला और अंग्रेजों के प्रभाव में आकर चीन के भावी खतरे से बचने के लिए अपने यहाँ आधुनिक ढंग से सेना का संघटन करना चाहा, तो रुपयों की जरूरत पड़ी। दलाई लामा ने पण-छेन लामा से रुपयों की मांग की। पण-छेन लामा का विहार टशी-ल्हुन्पो एक अच्छा विद्यापीठ था। आठवें पण-छेन लामा ने अम्दो और मङ्गोलिया से अच्छे-अच्छे विद्वानों को मँगाकर उसकी विद्या-सम्बन्धी ख्याति को और बढ़ाया था। उनका कहना था कि हमारे पास विहार के खर्च से अधिक की आमदनी नहीं है। दलाई लामा को उनकी यह गुस्ताखी पसन नहीं आयी। दोनों का सम्बन्ध दिनपर दिन बिगड़ता गय और १९२४ के आसपास पण-छेन लामा को साफ मालू होने लगा, कि दलाई लामा से बचने का इसके सिवा औ कोई उपाय नहीं, कि तिब्बत को छोड़ दिया जाय। अन् में एक दिन अपने विश्वसनीय अनुयायियों के साथ आठ पण-छेन लामा गुम हो गये। तेरहवें दलाई लामा की सेना ने उन्हें पकड़ने की बहुत कोशिश की, किन्तु तबतक पण-छे लामा चीन की सीमा के भीतर पहुँच चुके थे। दलाई लामा ने पण-छेन लामा के अनुयायियों पर बहुत अत्याचा किये। टशी-ल्हुन्पो विहार पर बहुत आर्थिक दण्ड लगाये, जिसे देने के लिए विहार की कितनी ही बहुमूल्य निधियां बेचनी पड़ीं। अपनी प्रथम तिब्बत यात्रा में जब मैं १९३० के वसन्त में टशी-ल्हुन्पो में था, उस समय एक छात्रावास के अधिकारी सरकार को पैसा देने के लिए अपनी बहुत-स चीजों को बेच रहे थे। उसमें से कुछ पुराने चित्र मैंने भी खरीदे, जो कि आजकल पटना-म्युजियम में सुरक्षित हैं।

तिब्बत से भागने के बाद आठवें पण-छेन लामा अपनी मृत्यु के समय तक चीन, मङ्गोलिया और अम्दो में घूमते रहे। १३वें दलाई लामा ने अन्तिम समय में पण-छेन लामा को लौटाना चाहा था, किन्तु उनकी वह चाह कार्य रूप में परिणत नहीं हो सकी थी कि वह मर गये। पण-छेन लामा ने अपने प्रतिद्वन्द्वी के अवतार को ढूंढ निकाला, किन्तु उसके लिए कुछ और करने से पहले वह स्वयं पर देश में ही मर गये। उनके अनुयायियों ने नवें अवतार क ढूंढकर उसे अपना पण-छेन लामा बनाया, जिसे चांङ्-काइ शेक की सरकार ने पहले स्वीकार किया। आज चीन की कम्युनिस्ट सरकार भी उन्हें पण-छेन लामा मानती है और चाहती है, कि पिछले २७ साल से होते अत्याचार से टशी-ल्हुन्पो के लामा को मुक्त किया जाय। आज २७ साल बाद टशी-ल्हुन्पो विहार अपने लामा के स्वागत की तैयारी कर रहा है। चीन-तिब्बत की नयी सन्धि अब दलाई लामा और पण-छेन लामा के पुराने झगड़े को शान्त कर देगी, इसमें सन्देह नहीं और इसमें भी सन्देह नहीं कि पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता को कायम रखते हुए भी १७वीं शताब्दी के मध्य से तिब्बत में चली आती सामन्तशाही और महन्तशाही स्वेच्छा-चारिता अब और अधिक जारी नहीं रह सकती।

मंगोलिया में हमारी धर्मविजय

डा० लोकेशचन्द्र

एशिया भारत को स्वर्गभूमि के रूप में देखता था। भारतभूमि की दर्शन-लालसा, एशिया के सुदूरवासी श्रद्धा परिपूर्ण हृदयों को, हमारी मातृभूमि की ओर आने के लिए प्रेरित करती थी। वे बड़ी उत्सुकता से मरुस्थल तथा दुर्गम पर्वतों के कष्टों को झेल कर अस्थि-प्रवेशी शीत और असह्य आतपोष्णता की अवहेलना करके धीरे-धीरे पग बढ़ाते हुए "स्वर्गभूमि की" ओर अग्रसर होते और यहाँ के आचार्यों के चरण-कमलों के समीप बैठकर विद्यामृत पान करते थे। परन्तु यह स्थिति दसवीं शताब्दि के अनन्तर परिवर्तित हो गई। चीन के चिरकालिक यातायात को मध्य एशिया के शासकों ने रोक दिया एवं अन्यदेशीय भक्तों की तीर्थयात्रा में बाधा डाली। भारतवर्ष के बौद्धों को भी धार्मिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। अतः कुछ बौद्ध आचार्यों ने नैपाल, तिब्बत आदि में शरण ली और भगवान् तथागत की "मध्यमाप्रतिपदा" का उन देशों में प्रचार किया। इसी युग में बख्त्यार खिलजी ने भारत के विख्यात शिक्षा-केन्द्रों का नाश आरम्भ किया। तब विक्रमशिला विश्वविद्यालय के अध्यक्ष, कश्मीर निवासी पंडित शाक्यश्री इस बर्बरता के नृत्य से विषण्णहृदय हो नेपाल होते हुए तिब्बत चले गये। वहां उन्होंने संसार के उच्चतम गौरीशंकर पर्वत से पचास मील की दूरी पर विद्यमान सास्क्या विहार में निवास किया। उस विहार के महन्त ने उनके भारत के आचार्य तथा प्रकाण्ड विद्वान होने के कारण उनका शिष्यत्व स्वीकार करके अपने जन्म को कृतकृत्य माना। अपने पूज्य गुरु शाक्यश्री के उपदेशों से उत्साहित होकर सास्क्या विहाराधीश ने मंगोलिया में धर्म-विजय के लिये प्रस्थान किया। वहां पर उन्हें असीम सफलता प्राप्त हुई। एक और देश भारत भूमि को अपनी स्वर्गभूमि मानने लगा। उस देश के लोगोंने भगवान् बुद्ध को अपना श्रद्धादेव स्वीकार किया। बौद्ध-धर्म सामान्य लोगों तक ही सीमित न रह कर राजधर्म बना। चंगेजखां का पुत्र आगोताई सास्क्या विहाराधीश का शिष्य बना। तदनन्तर आगोताई के भाई सम्राट् मनाकुर्वान ने एक विराट् धर्म-सभा बुलाई, जिसमें यशस्वी सास्क्या विहाराधीश के शिष्य फग्सपाने अन्य धर्मों पर महान् विजय प्राप्त की। और राजकुल को बौद्ध-धर्म की शिक्षा दी। यह है मंगोलिया में बौद्ध धर्म की स्थापना की कथा।

इसके पश्चात् सास्क्या विहार के किसी अधीश ने भारतीय अक्षरों के आधार पर एक लिपि बनाई। मंगोलिया के नये-नये प्रारम्भ किये हुए साहित्य को लिखने के लिए इस चीनी भाषा के समान ऊपर से नीचे लिखी जाने वाली लिपि का आविष्कार हुआ। इस लिपि का प्रयोग सम्राट् चंगेजखां तथा कुबलईखान के उत्तराधिकारियों की स्वर्ण मुद्राओं पर मिलता है। आदि में लिपि गोलाकार थी। परन्तु कुछ समय के उपरान्त चौकोर हो गई। इसके अक्षर भारत की तत्कालवर्तिनी तथा तिब्बती लिपी से बहुत मिलते हैं और आधुनिक देवनागरी से भी कई अक्षर बहुत दूर नहीं हैं।

मंगोल सम्राट् बौद्ध-धर्म के दृढ़ अनुयायी थे और उनकी अगाध श्रद्धा का प्रमाण इस बात से मिलता है कि सम्राट् कुबलईखां ने सास्क्या विहाराधीश की पश्चिमी भोटदेश (तिब्बत) का साम्राज्य अर्पण कर दिया। तदनन्तर सास्क्या विहार के अधीशों का समस्त तिब्बत पर राजनैतिक-धार्मिक प्रभाव बहुत बढ़ा रहा। विक्रम सम्वत् की सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में सम्राट् अलतानखान ने तिब्बत के दलाई लामा को जो कि उन दिनों मंगोलिया के राजनैतिक प्रभाव में बंधे थे, धर्म सेवा के निमित्त वज्रधर की उपाधि दी।

मंगोलिया में बौद्ध-धर्म के जाने से पहिले कोई साहित्य न था। भगवान् बुद्ध की शरण लेने के उपरान्त

मंगोल निवासियों ने संस्कृत से "भोट भाषा" में अनूदित "कंजूर" नामक ११०० ग्रन्थों से अधिक सम्पूर्ण समूह का अनुवाद किया। यह बृहत्काय ग्रन्थ समूह आज भी संसार में विद्यमान है। परन्तु क्या भारत भी कभी इस अपने महान गौरव चिन्ह को रखने तथा अध्ययन करने की इच्छा करेगा ?

भारतीय शब्द भी मंगोल देश की भाषा में प्रचुर-मात्रा में मिलते हैं। सूर्य की किरणों को वहाँ के सामान्य व्यक्ति को "रस्मि" कहते हुए सुनकर किस भारतीय का हृदय उल्लसित न होगा। "महाराज" शब्द का आज भी प्रयोग होता है। परस्पर सखा-सम्बन्ध को अद्यापि मंगोल संस्कृत-मैत्रि (मंगोल भाषा में ह्रस्व ही लिखा जाता है) शब्द से द्योतित करता हैं। भारतीय के आश्चर्य की सीमा नहीं रहती, जब वह "खतमल" सुनता है। यह खतमल मानव निद्रा भंगकारी रक्तपिपासु "खटमल" (संस्कृत "खटवामल" खाट का मल) है। पूजास्थानों तथा विहारों पर लहराती हुई ध्वजा का नाम अब भी "ध्वजा" ही है। विद्या का आजकल वहां पर अभियस् (अभ्यास का विकृत रूप) ही होता है। सम्भव है, कई भारतीय इस शब्द को न समझें, परन्तु उस देश के वासियों के लिए यह सामान्य शब्द है। "लौकेश्वर," "मंजूशी," "शाक्यमुनि," आदि धार्मिक शब्दों से उनकी शब्दावली पूर्ण है। उस दूर देश में दैनिक उपासना संस्कृत में ही श्रद्धा से की जाती है। अन्त में यह जान कर प्रत्येक भारतीय का मन प्रफुल्लित होगा कि बोखारा शब्द संस्कृत विहार का विकृत मंगोल रूप है। मध्य एशिया स्थित बोखारा नगर विहार शब्द का ही अपभ्रंश शब्द है। किसी काल में यह नगर बौद्ध विहारों से सुशोभित था, पर आज……।

रूस देश भी मंगोल निवासियों की बौद्ध धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा को दूर नहीं कर सका। जब बुरियतों का नया गणराज्य स्थापित हुआ तब साम्यवादियों ने धर्म के विरुद्ध प्रचार करना आरम्भ किया। और उन्होंने दर्शाया कि आधुनिक विज्ञान का आधि-भौतिक दृष्टिकोण है। गणराज्य के महायान बौद्ध भिक्षुओं ने उसका निराकरण किया और प्रमाणित कर दिया कि बौद्धों के लिए आधि-भौतिक दृष्टिकोण कोई नई बात नहीं तथा विधान के आधारभूत सिद्धांत उनके दर्शन-शास्त्र में पूर्व से ही विद्यमन हैं। इस प्रकार मंगोल निवासियों को बौद्ध धर्म से विमुख करने के साम्यवादियों के प्रयत्न विफल हुये। क्या भारतीय इससे शिक्षा ग्रहण न करेंगे ? क्या वे अपने आंग्ल तथा अन्य विदेशी प्रभावों के मोह को छोड़ कर अपनी सनातन संस्कृति को न अपनायेंगे ?

जीवन-दर्शन

डा० उदयनारायण तिवारी

संसार के सभी धर्मों की पुस्तक मनुष्य को सदाचार, सत्य, अहिंसा आदि की शिक्षायें देती हैं। किंतु केवल इन शिक्षाओं से ही विश्वका कल्याण नहीं हो सकता। वेद, कुरान, बाइबिल आदि धर्मशास्त्र मनुष्य को सन्मार्ग पर चलने की शिक्षा देते हैं। परन्तु उस सन्मार्ग पर चलने के लिये मनुष्य को सतत प्रयत्न और अभ्यास करना पड़ेगा; उपदेशों को व्यावहारिक जीवन में लाना होगा तभी उसका वास्तविक परिणाम दृष्टिगोचर होगा। जो बात मनुष्य के लिये है वही राष्ट्र के लिये भी है। आज चारों ओर शान्ति की पुकार सुनाई पड़ रही है, किन्तु इस शान्ति की स्थापना के लिये अस्त्र-शस्त्र, गोला-बारूद, अणुबम तथा मृत्युकिरण का अनुसन्धान किया जा रहा है। "कथनी" और "करनी" के इस वैषम्य ने विश्व में शान्ति की अपेक्षा युद्धों को ही अधिक प्रोत्साहित किया है। जब तक मनुष्य और राष्ट्र दोनों ही, जीवन में सत्य अहिंसा आदि को प्रमुख स्थान नहीं देते तब तक शान्ति वस्तुतः नहीं प्राप्त हो सकती। शान्ति के लिये हमें सद्गुणों को महत्त्व देना होगा। इस बात को जातक की

निम्नलिखित कथा में अत्यन्त सुन्दर ढंगसे प्रदर्शित किया गया है।

अत्यन्त प्राचीन युग में वाराणसी-नरेश ब्रह्मदत्त के मन में यह बात आई कि क्या उसमें कोई अवगुण ही नहीं है? उसे राजप्रासाद के अन्दर कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला जो उसके दोष कहे। जो मिला प्रशंसा ही करने वाला मिला। ''यह मेरे भय से मेरी प्रशंसा करते हैं'' यह सोचकर उसने प्रासाद के बाहर रहने वालों की परीक्षा की। वहाँ भी कोई नहीं मिला तो उसने नगर में खोज की और जब वहाँ भी प्रशंसक ही मिले तो आमात्यों को राज्य सौंप कर और अपने साथ केवल सारथी को लेकर वह अपने बाहर के जनपद के महामार्ग पर चला।

उसी समय कोशल नरेश भी अपने दोष कहने वालों को ढूँढ़ने चला। जब उसे महल में रहने वालों आदि में दोष कहने वाला नहीं मिला तो वह भी उसी महामार्ग पर पहुँचा। अपने रथों पर चढ़े हुए दोनों राजा नीचे के एक सँकरे मार्ग पर आमने सामने हुए। दोनों रथ उस सँकरे मार्ग से नहीं निकल सकते थे।

कोशल नरेश के सारथी ने वाराणसी नरेश के सारथी से कहा—''तू अपने रथ को लौटा ले''।

वाराणसी नरेश के सारथी ने कहा—''तू अपने रथ को लौटा ले। मेरे रथ में वाराणसी राज्य के स्वामी बैठे हैं''।

दूसरे ने कहा—'मेरे रथ में भी कोशल नरेश बैठे हैं। अतएव तू अपने रथ को मोड़कर हमारे राजा के रथ को जगह दे।''

वाराणसी नरेश के सारथी ने सोचा—यह भी राजा है अब क्या करना चाहिये? उसे एक उपाय यह सूझा कि राजा की आयु पूछकर आयु में छोटे राजा का रथ लौटवाकर आयु में बड़े राजा के रथ के लिये जगह करवाऊँगा। यह निश्चय कर उसने दूसरे सारथी से कोशल नरेश की आयु पूछी। मिलान करने पर दोनों राजा समान आयु के निकले। फिर राज्य-विस्तार, सेना, धन, यश, जाति, गोत्र कुलभेद आदि के बारे में पूछा। दोनों तीन तीन सौ योजन भूमि के राजा थे तथा सेना, धन, यश, जाति, गोत्र, कुलभेद आदि में समान थे। तब सोचा जो अधिक शीलवान् होगा उसे जगह दी जायगी। उसने कोशल नरेश के सारथी से पूछा—'सारथी! तुम्हारे राजा का सदाचार कैसा है?''

उसने अपने राजा के अवगुणों को भी गुण बताते हुए कहा--

''दल्हं दल्हस्स खिपति मल्लिको मुदुना मुदुं।
साधुम्पि साधुना जेति असाधुम्पि असाधुना।
एतादिसो अयं राजा मग्गा उय्याहि सारथि॥''

अर्थात्—''मल्लिक (कोशल नरेश) कठोर से कठोरता का व्यवहार करता है, कोमल से कोमलता का। भले को भलाई से जीतता है और बुरे को बुराई से। हे सारथि! यह राजा (कोशल नरेश) ऐसा है तू मार्ग छोड़ दे।''

तब वाराणसी नरेश के सारथी ने पूछा—''क्या तुमने अपने राजा के सब गुण कह लिये?''

''हाँ''

''यदि यही गुण हैं तो अवगुण कैसे होते हैं?''

''अच्छा! यह अवगुण ही सही, तुम्हारे राजा में क्या गुण हैं?

''अच्छा तो सुनो'' कह कर उसने निम्नलिखित श्लोक कहा—

''अक्कोधेन जिने कोधं, असाधुं साधुना जिने।
जिने कदरियं दानेन, सच्चेन अलिकवादिनं।
एतादिसो अयं राजा, मग्गा उय्याहि सारथि॥''

अर्थात्—''(वाराणसी नरेश) क्रोधी को अक्रोध से, बुरे को भलाई से, कृपण को दान से तथा झूठ को सत्य से जीतता है। यह राजा ऐसा है। अतएव हे सारथि! तू मार्ग छोड़ दे।''

कोशल नरेश के सारथी तथा कोशल नरेश ने अपना रथ हटा लिया, क्योंकि शील में काशीनरेश श्रेष्ठतर व्यक्ति निकला।

संसार में जब तक सद्गुणों की प्रतिष्ठा न होगी तब तक केवल उपदेशों और शान्ति का पाठ पढ़ाने से कुछ न होगा। व्यक्तियों तथा राष्ट्रों के अपने जीवन में सद्गुणों के ग्रहण करने पर शान्ति अपने आप प्रतिष्ठापित हो जायगी।

प्रेम और मानसिक विकास

प्रो० लालजीराम शुक्ल

मनुष्य के मन में अद्भुत शक्ति है, परन्तु इस शक्ति का उसे आत्म-साक्षात्कार नहीं होता। इसका कारण यह है कि उसके मन की विभिन्न प्रवृत्तियाँ एक दूसरे के विरोध की अवस्था में पड़ी रहती हैं। उनका कार्य एक दूसरे के विरोध की अवस्था में होने के कारण परिणामहीन होता है। यदि ये शक्तियाँ संयुक्त रूप से कार्य करने लगें तो मनुष्य आश्चर्यजनक कार्य कर डाले। बिखरे हुए मन से किसी प्रकार काम सफलता-पूर्वक नहीं किया जा सकता; सुव्यवस्थित मन ही सफलता की प्राप्ति में समर्थ होता है। मन की यह सुव्यवस्थता प्रेम से आती है। प्रेम वह राग है जिसके उत्पन्न होने पर सभी राग उसी में लय हो जाते हैं। जब मनुष्य के जीवन में प्रेम का अभाव हो जाता है तो उसकी मानसिक शक्ति भी नष्ट हो जाती है। प्रेम के अभाव में मनुष्य अपना आत्म-विश्वास खो देता है। प्रेम की आँखों से देखने से संसार रसमय और सुन्दर दिखाई देता है। जब प्रेम का अभाव रहता है तो सुन्दर वस्तु भी विरस और अपरूप दिखाई देने लगती है। ऐसी अवस्था में मनुष्य को अपने वास्तविक स्वरूप का भी ध्यान नहीं रहता।

हम ऐसे कई नवयुवकों से मिलते हैं जिनका जीवन कुछ काल तक सफलतापूर्वक चलता जाता है; किन्तु समय बीतने पर उनकी भावनाओं पर किसी प्रकार का आघात लग जाता है। तब उनका जीवन एक नया ही रूप ग्रहण कर लेता है। हाल ही में लेखक को एक नवयुवक मिला। वह कालेज का विद्यार्थी है। गत वर्ष के पूर्व वह पढ़ाई में खूब मन लगाता था और अपनी परीक्षाओं को भली प्रकार से पास करता था। गत वर्ष उसका विवाह हुआ। यह विवाह ही उसके जीवन की समस्या बन गया। जिस लड़की के साथ उसका विवाह हुआ उसे पहले से ही हिस्टीरिया की बीमारी थी। लड़की के पिता और दूसरे सम्बन्धियों का कहना है कि उक्त युवक से प्रेम करने के कारण ही यह रोग उत्पन्न हुआ है। युवक को सन्देह है कि उसे रोग पहले से ही था; विवाह समय उस रोग को छिपा लिया गया। लड़के का विश्वा है कि लड़की पागल है। अपनी पुत्री के प्रति दामाद उदासीनता देखकर पुत्री के माता-पिता भी दामाद उदासीन हो गये। वे पहले उसके प्रति बहुत प्रे दिखाते थे। अब इस युवक की मानसिक दशा ब शोचनीय है। उसे सारा संसार निराशामय दिखाई दे है। वह प्रेम के सभी प्रतीकों में छल ही छल देखता है युवक अब अपनी सभी क्रियाओं में अर्थ नहीं देखता।

उक्त युवक के समान एक दूसरे युवक का विवा भी उसके पिता ने उसकी इच्छा के प्रतिकूल एक लड़ से कर दिया। विवाह के समय दोनों तरफ के लोगों कुछ कहा-सुनी हो गई। इस प्रकार युवक के मन खिंचाव बढ़ता ही गया। विवाह के बाद युवक का जीव रसहीन हो गया। वह एक विद्यालय का छात्र था। अ उसका मन पढ़ाई में नहीं लगता था। जैसे जैसे उ अपना जीवन अच्छा बनाने की शिक्षा दी जाती थी व जीवन से और निराश होता जाता था। ऐसी अवस्था अपने आन्तरिक दुखों को भुलाने के लिये मनुष्य अने प्रकार की बुरी आदतें डाल लेता है। नशाखोरी, वेश्या गमन तथा अन्य प्रकार के व्यभिचार अपने आप असन्तु व्यक्ति में सरलता से आ जाते हैं। जो व्यक्ति भीतरी चिन्ताओं से परेशान हो जाता है वह कुछ काल के लिये चिन्ताओं से मुक्ति पाने के लिये किसी न किसी प्रकार का नशा करने लगता है। नशा की अवस्था में मनुष्य की सामान्य चेतना जाती रहती है और इसके चले जाने पर दुःख की अनुभूति नहीं होती। कुछ नशीली वस्तुओं के सेवन से मनुष्य अपनी चेतना की सूक्ष्म तर्क करने की शक्ति को खो देता है। इससे भी उसे एक प्रकार की क्षणिक शान्ति मिलती है। इस प्रकार सिगरेट और बीड़ी

का नशा भी मनुष्य को अपने मन में उपस्थित घोर असन्तोष से बचाता है। इस प्रकार के नशा करनेवालों में नैतिक भावनाओं का दमन पाया जाता है। अर्थात् नशा के द्वारा वे अपने पुराने कृत्यों की बुराइयों को भुलाने की चेष्टा करते रहते हैं।

चिन्ताग्रस्त व्यक्ति व्यभिचार और वेश्यगमन का भी आदी हो जाता है। जिस व्यक्ति के मन में आन्तरिक शान्ति नहीं रहती वह बाहरी सुख की खोज करता है। जो लोग अपने आप को शारीरिक सुखों में भुलाये रहते हैं वे भीतरी मन से दुखी रहते हैं। प्रेम भाव का वातावरण कितने ही युवकों में सिनेमा जाना, गप-शप में समय काटना, हँसी-मजाक में मन लगाना आदि बातों की आदतें डाल देता है। प्रत्येक प्रकार के दुराचरण के पीछे आत्मविश्वास की कमी रहती है। जो मनुष्य अपनी कीमत स्वयं करता है वह दुराचारी नहीं होता। वह अपना मूल्य प्रति क्षण बढ़ाने की चेष्टा करता है। मूल्य भले काम करने से बढ़ता है। अतएव जिस मनुष्य ने आत्म-विश्वास नहीं खोया वह अनेक प्रकार के भले काम सदा करता ही रहता है।

मनुष्य का आत्म-विश्वास प्रेम से बढ़ता है और घृणा के वातावरण से उसका विनाश होता है। प्रेम से मनुष्य के मन में आनन्द का आगमन होता है। जहाँ आनन्द रहता है, वहाँ शक्ति रहती है। मनुष्य की मानसिक शक्तियाँ मन की आनन्दावस्था पर निर्भर करती हैं। दुखी मन में किसी प्रकार की मानसिक शक्ति नहीं रहती। दुःख की अवस्था में मनुष्य थोड़े से काम से थक जाता है। कोई नया काम हाथ में लेने के लिये उसका मन उत्साहित ही नहीं होता। ऐसी अवस्था में उसकी योग्यताओं की वृद्धि अथवा विकास भी नहीं होता। मनुष्य की प्रत्येक प्रकार की योग्यताओं का उपयोग से विकास और अनुपयोग से ह्रास होता है। जब मनुष्य मन लगाकर कोई काम नहीं करता तो, उसकी मानसिक शक्ति का सदुपयोग भी नहीं होता। ऐसी अवस्था में मनुष्य दिन-प्रति-दिन गिरता ही जाता है।

जिस व्यक्ति से अपने चारों ओर के लोग प्रेम करते हैं उसे आसपास के लोगों से शुभ-निर्देश भी मिलते हैं। हम जिस व्यक्ति से जैसी आशा करते हैं, वह उस प्रकार के काम करने को प्रेरित होता है। जब बहुत से लोग किसी व्यक्ति से महान् कार्य की आशा करते हैं, तो वह उस काम के करने में समर्थ हो जाता है। वास्तव में दूसरे लोगों की सदभावनायें ही उस व्यक्ति में ऐसा बल उत्पन्न कर देती हैं, जिससे वह कठिन काम करने में समर्थ होता है। मनुष्य की सफलता उसकी व्यक्तिगत इच्छा के ऊपर निर्भर नहीं करती; उसकी इच्छा समष्टि मन की इच्छा और प्रेरणा का परिणाम है।

प्रत्येक मनुष्य संसार से वही पाता है, जो वह उसे देता है। यदि हमने दूसरों को प्रेम दिया तो हमें दूसरों से प्रेम मिलता है और यदि हमने उन्हें घृणा के भाव दिये हैं, तो हमें उनसे भी घृणा ही मिलती है। हमारे आस पास का वातावरण हमारे ही आन्तरिक विचारों और भावों का परिणाम होता है। घृणायुक्त मनवाले व्यक्तियों को भले से भले लोगों की संगति में रख दीजिये। वह थोड़े ही समय में अपने आस-पास नरक का वातावरण उत्पन्न कर लेगा। इसके प्रतिकूल किसी भले व्यक्ति को बुरे लोगों की संगति में रखिये, वह उन लोगों की बुराइयों को ग्रहण न कर उनमें भी किसी न किसी प्रकार की भलाई का संचार कर देगा। हमारे आंतरिक मन के सभी भले और बुरे गुण स्वयं हमें ज्ञात नहीं रहते। ये गुण दूसरे लोगों के सम्पर्क में आने से व्यक्त होते हैं। सद्गुणों की भाँति हम अपने दुर्गुणों को स्वीकार नहीं करते, अतएव ये दुर्गुण हमें दूसरे लोगों में दिखाई पड़ते हैं। इस प्रकार हम दूसरे लोगों के अवगुणों से परेशान रहते हैं। वास्तव में हमारे ही अवगुण दूसरे लोगों पर आरोपित होकर प्रकाशित होते हैं। इस प्रकार हमारा आंतरिक स्वभाव हमारे वातावरण में प्रकाशित होता है। हम अपने स्वभाव को परिवर्तित करने की सामर्थ्य रखते हैं। मैत्री-भावना का अभ्यास मनुष्य के स्वभाव में मौलिक परिवर्तन कर देता है।

प्रेम की अनुभूति मनुष्य में आत्म-प्रसाद को उत्पन्न करती है। वह उसके मन में एकीकरण की प्रवृत्ति उत्पन्न कर देती है। इस प्रकार के एकीकरण से मनुष्य की शक्ति एकत्रित हो जाती है। मनुष्य की मुख्य शक्ति विचार की

शक्ति है। जिस मनुष्य के विचार एक ओर केन्द्रित होते हैं, वह अपने आप में भारी शक्ति और सामर्थ्य का अनुभव करता है, जिस व्यक्ति के विचार बिखरे हुए दिखाई पड़ते हैं, उसमें न तो शक्ति रहती है और न सामर्थ्य। विचारों का एकीकरण प्रेम के द्वारा ही होता है।

प्रेम के दो रूप हैं—एक अपने से प्रेम और दूसरा अपने सम्पर्क में आनेवालों से प्रेम। जो व्यक्ति अपने से प्रेम करता है, वही दूसरों से प्रेम करता है। दूसरों से प्रेम करना सरल है; अपने से प्रेम करना कठिन है। स्वार्थी मनुष्य अपने से सच्चा प्रेम नहीं करता; वह आंतरिक मन में अपने आप से घृणा करता है। इसलिये उसकी आत्मा सदा अशान्त रहती है। दूसरे लोगों से प्रेम करना अपने आप से प्रेम करने का सच्चा साधन है। जो व्यक्ति दूसरे लोगों की सेवा में अपने आप को भुला देता है, वह आन्तरिक मन से उतना ही प्रोत्साहन पाता है। उसकी आत्मा उसको सराहती है। इस प्रकार सराहने से मनुष्य की कार्य-क्षमता बढ़ती है। वह दिन-प्रति-दिन नये काम करने में समर्थ होता है। भले काम के लिये, जो सबसे बड़ा पुरस्कार मनुष्य को मिल सकता है, वह आत्मसंतोष है और बुरे काम के लिये जो सबसे दण्ड मिल सकता है, वह है आत्म-भर्त्सना। आत्म-संतोष से मनुष्य देवता में परिणत हो जाता है और आत्म-भर्त्सना से वह नरक की यंत्रणा भोगता है और कभी-कभी पागल भी हो जाता है।

प्रेम का भाव कठिन से कठिन कार्य को सरल बना देता है। प्रेम की अवस्था में शारीरिक क्लेश की अनुभूति नहीं होती। प्रेम के भाव से, जो कर्तव्य किया जाता है, वह भाररूप नहीं प्रतीत होता। जब तक मनुष्य के मन में प्रेम है, वह अपने भले कामों की गणना त्याग में नहीं करता। जब मनुष्य सोचने लगता है कि हमने अपने मित्र के लिये क्या किया, तब उसे समझना चाहिये कि उसके प्रति उसके प्रेम का अन्त हो गया। अब वास्तव में मित्र की भलाई करने की क्षमता उसमें नहीं रह गई। वास्तव में मनुष्य जो कुछ असामान्य कार्य करने में समर्थ होता है, वह प्रेम के कारण ही होता है। जब वह ऐसे काम करता है, तो वह कतृत्व का अभिमान करने लगता है। तब उसकी कार्य-क्षमता का अन्त हो जाता है। वास्तव में प्रेम ही कार्य करता है। वह व्यापक तत्व है। उसकी शक्ति अपार है। जो मनुष्य अपने में जितना अधिक प्रेम का संचय करता है, वह उतना ही अधिक भाग्यशाली है, क्योंकि उससे उतना ही अधिक संसार का कल्याण होगा।

मनुष्य के मानसिक विकास की कसौटी उसके सर्व त्याग की शक्ति और विचारों का संगठन है। ये दोनों बातें एक दूसरे की पूरक हैं। विचारों का संगठन त्याग और तप से आता है और विचारों के संगठन से त्याग और तप करना सरल हो जाता है। प्रेम के द्वारा त्याग भी सरल हो जाता है और विचारों का एकीकरण होता है। वास्तव में हम किसी मौलिक वस्तु का त्याग नहीं करते। छोटी वस्तु का त्याग किसी न किसी अधि मौलिक वस्तु के लिये किया जाता है। जो व्यक्ति कि क्षुद्र वस्तु के लिये मौलिक वस्तु का त्याग करता है; व मूर्ख है। जब मनुष्य किसी भौतिक पदार्थ का त्याग करता है तो वह आशा करता है कि उसे उससे अधिक मूल्य का पदार्थ मिले। जब उसे यह पदार्थ नहीं मिलता तो वह दुखी होता है, परन्तु जो मनुष्य प्रेम के लिये अपने कि प्रकार के द्रव्य का त्याग करता है वह किसी दूसरी वस्तु की प्राप्ति की आशा नहीं करता। प्रेम की प्राप्ति ही उसका ध्येय होता है। इस प्रकार का त्याग ही सच्चा त्याग है। वास्तव में वह त्याग त्याग नहीं वरन् आत्म-साक्षात्कार है। जब तक हम अपने आप को दूसरों में नहीं देखते और उनके हित से अपने हित का तादात्म्य नहीं कर लेते इस प्रकार का त्याग नहीं होता। यह तादात्म्य प्रेम से जाता है। अतएव प्रेम आत्म-साक्षात्कार का सर्वोत्तम उपाय है।

जब प्रेम से मनुष्य अपने आप को भूल जाता है तो उसके विचार भी उच्चतम स्थिति को पहुँच जाते हैं। भले से भले विचार उसे, स्वाभाविक रूप से आने लगते हैं। उसके सभी विचार लोककल्याण करते हैं। जब मनुष्य की चेतना में प्रेम के विचार दृढ़ हो जाते हैं, तब वा सभी घटनाओं में कल्याण, सभी मनुष्यों में भलाई और पदार्थों में एक ही तत्त्व को कार्य करता हुआ देखने लगता है। ऐसा व्यक्ति सदा प्रसन्नचित्त रहता है। उसकी बुद्धि

स्थिर और विश्वास दृढ़ होता है। जिस काम को वह हाथ में लेता है, उसमें उसे सफलता ही दिखाई देती है।

स्वार्थीपन वास्तव में बचपन है। बच्चे और पशु वास्तव में स्वार्थ की दृष्टि से समान ही हैं। बच्चा दूसरों से प्रेम की आशा करता है, वह स्वयं दूसरों को अपना प्रेम नहीं देता। वह चाहता है दूसरे उसे आराम दें; वह अपने आप कष्ट नहीं सहना चाहता। जो मनुष्य सदा दूसरों की सेवा के इच्छुक हैं, वे मानसिक विकास की दृष्टि से बच्चे ही हैं। जब हम अपने आराम को दूसरों के लिये त्याग देते हैं, तभी विकसित जीवन को दर्शाते हैं। दूसरे के लिये त्याग कर सकना विकसित जीवन की कसौटी है। यह त्याग प्रेम के कारण ही सम्भव होता है। प्रेम परमार्थ के कार्यों का कारण है और उनका अन्तिम परिणाम भी। जो व्यक्ति जितना ही अधिक दूसरों की सेवा करता है, उनके लिये कष्ट उठाता है, वह उनकी प्रसन्नता का भी उतना ही अधिक भागी होता है। प्रेम के कारण दूसरे व्यक्ति का सुख अपना सुख बन जाता है। जो मनुष्य इस प्रकार जितना अधिक अपने आप को दूसरों के हित में भुला देने की योग्यता रखता है, वह उतना ही अधिक विकसित मन वाला है।

चिंचा की दुष्टता

निष्कलंक तथागत

श्री वेदराज प्रसाद

भगवान् बुद्ध सभी अच्छे गुणों से युक्त थे, उनमें किसी प्रकार का अवगुण न था और न तो उन्हें किसी प्रकार से कोई कलंकित ही कर सकता था। वे सब प्रकार से निर्मल एवं निष्कलंक थे। संसार के सभी जीवों को उन्होंने एक समान देखा। पापी और धर्मात्मा सबके प्रति उनकी दया समान थी। उन्होंने सदा संसार को सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न किया और सत्कार्यों में लगाया। वे भगवान् प्राणियों के सुख-दुःख को देखने के लिए सदा ही ज्ञान-चक्षु से करुणा-द्रवित हृदय हो अवलोकन किया करते थे।

तथागत ने समस्त भारत में उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम पैदल भ्रमण कर सभी का कल्याण किया। वे जब कभी किसी को कष्ट में पड़ा देखते थे, तो उनका हृदय द्रवित हो उठता था। वे उसे तुरन्त शान्ति प्राप्त करने का उपाय बतलाते एवं धर्मोपदेश देते थे। हाँ, प्रायः अन्य मतावलम्बियों के साथ बहुत वाद-विवाद हुआ करते थे। वे लोग तथागत को नीचा दिखाने का सदा प्रयत्न किया करते थे और तरह-तरह के दोषारोपण करते थे, किन्तु भला तथागत के समक्ष वे कहाँ तक ठहर सकते थे? एक दिन प्रातःकाल सूर्य निकलने के कुछ देर बाद, एक निर्जन स्थान में कुछ अन्य मतावलम्बी साधुओं ने इस प्रस्ताव पर देर तक विचार किया कि श्रमण गौतम के लाभ-सत्कार को किस प्रकार नाश किया जाय? उस समय श्रावस्ती में एक चिंचा नामक माणविका रहती थी, जो अप्सरा की भाँति रूपवती थी। वह इतनी सुन्दरी थी कि उसके शरीर से चन्द्रमा की भाँति किरणें निकलती थीं। उस की सुन्दरता को देखते हुए एक साधु ने अपने विचार को सभा में, अन्य उपस्थित लोगों के समक्ष रखा और कहा—'हम लोग चिंचा के द्वारा श्रमण गौतम की अपकीर्ति फैला कर, उसके लाभ सत्कार को नाश करा सकते हैं। मेरे ख्याल में यह एक उत्तम उपाय है। यह उपाय सर्व सम्मति से स्वीकार किया गया। उस साधु के उपाय की सभी ने बड़ी प्रशंसा की।

सभी साधुओं ने चिंचा माणविका से प्रार्थना की कि "भगिनी! यदि तू हमारा सुख चाहती है, तो श्रमण गौतम की अपकीर्ति फैलाकर, उसके लाभ-सत्कार को नाश कर।"

"आर्यो ! यदि यह भार मेरे ऊपर है, तो आप लोग चिन्ता न करें ।"

इतना कहकर उसने नाना प्रकार के आभूषणों से अपने शरीर को सजाया और माया में चतुर वह उस समय जेतवन की ओर चली, जब कि श्रावस्ती के उपासक-उपासिका और गृहस्थ-गृहस्थिनी धर्म-कथा को सुनकर विहार से निकल रहे थे। उसके कोमल हाथों में माला, गन्ध थे। मुख पर मधुर मुस्कान थी और वह मस्त हस्ती की भाँति चल रही थी। लोगों ने उसे जेतवन की ओर जाते हुए देखकर पूछा—'इस समय कहाँ जा रही हो ?'

"आप लोगों को मेरे जाने की जगह को पूछने से क्या तात्पर्य ?"

"उसने रात्रि में जेतवन के समीप तैर्थिकाराम में बासकर, प्रातःकाल प्रथम वन्दना की इच्छा से नगर से निकलते हुए उपासकों को, जेतवन के भीतर निवास करके आयी हुई-सी दिखा नगर में प्रवेश किया। वह प्रतिदिन ऐसा करने लगी। 'रात को कहाँ रही पूछने पर कहती—"आप लोगों को मेरे रात्रि-निवास से क्या मतलब ?"

इस प्रकार एक-आध मास व्यतीत हो जाने पर पूछने से कहती—"जेतवन में श्रमण गौतम के साथ एक ही 'गन्ध कुटी' में रही।" इस बात को सुन पृथग्जनों में 'यह सत्य है या नहीं'—इस प्रकार के संशय उत्पन्न कर, तीन-चार मास बाद कपड़ों से पेट को बाँध, बनावटी गर्भ बना, गर्भिणी जैसा दिखला, ऊपर से लाल साड़ी पहन कर कहने लगी—'श्रमण गौतम से यह गर्भ उत्पन्न हुआ है।' लोगों में इस संशय का प्रचार होने लगा। अन्य मतावलम्बी साधु फूले न समाते थे। सात-आठ मास के बाद चिंचा माणविका ने अपने पेट पर एक लकड़ी की गठरी बाँध ली और ऊपर से लाल कपड़ा से बाँध, गाय के जबड़े से हाथ, पैर, पीठ आदि को कुटवाकर फूला सा बना, इन्द्रियों को शिथिल कर के एक दिन सायं काल भगवान् के पास गयी। उस समय भगवान् धर्म-उपदेश कर रहे थे। धर्म-सभा में वह जाकर खड़ी हो गयी और कहने लगी:—

"महाश्रमण ! तुम सांसारिक भोग-विलासों से वंचित हो अपने को महान् घोषित करते हो ? लोगों को धर्म-उपदेश देते हो ? तुम्हारा शब्द मधुर है। अब मैं तुम से गर्भ प्राप्त हो, परिपूर्णगर्भा हो गयी हूँ। तुमने न मेरे लिए प्रसूति-घर बनाया, न घी-तेल आदि का प्रबन्ध करते हो या न उपासकों में से—कोसलराज, अनाथ-पिंडिक या विशाखा जैसी महा-उपासिका को ही बोल देते हो कि वे लोग मेरे लिए आवश्यक सामानों का प्रबन्ध करें। तुम केवल भोग-विलास को ही जानते हो, गर्भ उपचार नहीं जानते ?" इस प्रकार के बुरे विचार से परिषद् के बीच आ, चन्द्रमण्डल को दूषित करने की भाँति तथागत पर आक्षेप किया।

तथागत ने धर्म-कथा को बीच में ही रोककर सिंह की भाँति गर्जते हुए कहा—"भगिनी ! तेरी सच्चाई झूठाई को तू और मैं ही जानते हैं।"

चिंचा ने कहा—"हाँ, महाश्रमण ! तेरे और मेरे सम्बन्ध को कौन नहीं जानता ?"

उस क्षण तथागत की गर्जना से इन्द्र का आसन काँप उठा। इन्द्र को मालूम हो गया कि चिंचा माणविका तथागत को कलंकित करना चाहती है, झूठा दोष लगा रही है। इन्द्र इस बात को प्रकट करने के लिए चार देव-पुत्रों के साथ वहाँ चला, जहाँ चिंचा थी। उसके पास देव-पुत्रों ने आकर, चूहे का वेष धारण कर, उसके बँधे पेट की गठरी की रस्सी को काट दिया। उसके ओढ़ने के कपड़े को हवा ने उड़ा दिया। वह लकड़ी की गठरी धड़ाम से उसके पैर पर गिर पड़ी। उसके दोनों पैरों के पंजे कट गए। चारों ओर से आवाज उठने लगी—"धिक्कार है कलमुखी, तूने सम्यक् सम्बुद्ध पर कलंक लगाने की चेष्टा की !" लोगों ने उसे मारा-पीटा और ढेले, डण्डे से जेतवन विहार से निकाल बाहर किया।

वह कलमुखी चिंचा ज्योंही तथागत की दृष्टि से ओझल हुई, त्यों ही धरती ने फटकर उसे अपने गर्भ में दबा लिया।

तथागत निष्कलंक थे। उन्हें अन्य मतावलम्बी साधुओं ने नाना प्रकार से कलंकित करना चाहा, किन्तु वे उनका एक भी बाल बाँका न कर सके। वे निष्कलंक तथागत एकदम खरे उतरे। प्रतिवादी अपने किये हुए दुष्प्रयत्नों पर हाथ मल मल कर पश्चाताप करते रह गये।

वे सफल न हो सके। उनका जाल बेकार हो गया। तथागत की निष्कलंकिता को देख वे दंग रह गये। उन महान् एवं निष्कलंक तथागत की शरण में आकर उन लोगों में से जिन्होंने सद्प्रयत्न किया, उन्होंने परम शान्ति की प्राप्ति की। वे भगवान् सम्यक् सम्बुद्ध धन्य थे! उनका स्मरण मात्र भी हमारे लिये कल्याणकर है।

नेपाल में स्थविरवाद का पुनरुत्थान

श्री अनन्त

आजकल नेपाल के बौद्धधर्म में एक नई जाग्रति दीख रही है। मत पूछो, लगभग बीस वर्ष पूर्व नेपालवासी यह भी नहीं जानते थे कि भिक्षु कैसे होते हैं? नेवारी भाषा में भिक्षु के लिए 'छुं' शब्द विद्यमान था, जिसका अर्थ चूहा भी होता है, लोग चूहों को तो देखते थे, परन्तु भिक्षु दृष्टिगोचर न होते थे। उन्हीं दिनों छिद्दी नरभू नामक एक तिब्बती लामा नेपाल आये उन्होंने पाँच तरुणों को प्रव्रजित किया, किन्तु राणा ने उन्हें बौद्ध भिक्षु होने के अपराध में देश से निर्वासित कर दिया। उन पाँच तरुणों में एक महाप्रज्ञा भी थे, जो पीछे श्री चन्द्रमणि महास्थविर के पास कुशीनगर में आ कर भिक्षु हो गये और कालिम्पोङ्ग में प्रज्ञाचैत्य महाविहार का निर्माण कर के धर्म का प्रचार करने लगे, किन्तु नेपाल से बाहर होने के कारण उनका नेपाली बौद्धों पर पर्याप्त प्रभाव नहीं पड़ा।

कुछ दिनों के बाद दशरत्न नामक एक तरुण गृहस्थ यात्रा के हेतु कुशीनगर आये। वे काठमाण्डू के असनटोल के रहने वाले एक महा सम्पत्तिशाली व्यापारी थे। उनका व्यापार तिब्बत और भारत से होता था। वे पूँजीपति होते हुये भी पूँजीपतियों के भाव-विचारों से घृणा करने लगे थे। उन्हें राग, द्वेष, मोह में लिप्त देख कर उद्विग्न हो जाया करते थे। अतः वे दोनों पुत्रों को लंका भेज कर स्वयं सन् १९३० ई० में श्री चन्द्रमणि महास्थविर से प्रभावित हो कर कुशीनगर में प्रव्रजित हो गये। तब से उनका नाम भिक्षु धम्मालोक हुआ।

भिक्षु धम्मालोक छः महीने के बाद नेपाल लौटे। कई शताब्दियों के बाद यही सर्वप्रथम स्थविरवादी भिक्षु थे। जिन्होंने सन् १९३० में नेपाल में प्रवेश किया। राजकर्मचारियों ने इस अद्भुत वेषधारी भिक्षु को एक सप्ताह तक कारागार का अतिथि बना रक्खा। उन्होंने महायानी भिक्षुओं के चीवर आदि का दर्शन किया था, किन्तु स्थविरवादी भिक्षु का चीवर-पात्र आदि तो उनके लिये कौतुक की वस्तु थी। आठवें दिन उनकी पेशी युद्धशमशेर राणा जंगबहादुर के सामने हुई और आग्रह किया गया कि 'यह भिक्षु देश से निर्वासित कर दिया जाय।' किन्तु राणा ऐसा करना उचित नहीं समझते थे। उन्होंने कर्मचारियों से कहा—"भिक्षु होने से हमारी राजनीति में कोई हानि नहीं होती है, जो भी चाहे भिक्षु हो सकता है।"

राणा की इस बात को सुनकर उन्हें विशेष प्रसन्नता हुई और तब वे स्वतन्त्र होकर भिक्षाटन करने लगे। नेपाल वासियों के लिये वे तमाशा बनने लगे। रातोंदिन बौद्ध उपासक-उपासिकायें अपने चिर-वियुक्त 'छुं' को देखकर फूली न समातीं। उन्होंने किण्डोल बहाल (विहार) में रहना प्रारम्भ किया और स्थविरवाद बौद्ध धर्म का प्रचार कार्य होने लगा।

सन् १९३४ में सारनाथ में पूज्यपाद महास्थविर जी के उपाध्यायत्व में उनकी उपसम्पदा हुई। इसके बाद उन्होंने बर्मा, अराकान और भारत के विभिन्न प्रदेशों की यात्रायें कीं। इसके पूर्व वे लंका, चीन और जापान जा चुके थे। तिब्बत में तो उनकी दूकान ही थी।

भिक्षु धम्मालोक जी का जन्म सन् १८९० ई० में हुआ था। इस समय (१९४८) वे अट्ठावन वर्ष के हैं और धर्म कार्य में जुटे हुये बुद्ध शासन का प्रचार कर रहे हैं।

भिक्षु धम्मालोक जी ने अनेक ग्रन्थों को नेवारी भाषा में लिखा और भारत आ कर छपाया, जिससे नेपाल में बौद्ध धर्म की नवजाग्रति हो चली। पूज्य श्री चन्द्रमणि

महास्थविर की सदा उन पर कृपा बनी रही। जो जो तरुण भिक्षु होना चाहते थे या जो-जो उपासिकायें अनागारिक, वे सब कुशीनगर आयीं और प्रव्रजित होकर नेपाल लौटीं। नेपाल में इस बीसवीं सदी में जो स्थविरवाद बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ है, उसके आदि प्रचारक भिक्षु धम्मालोक जी ही हैं और उसके सृष्टिकर्त्ता हैं हमारे वयोवृद्ध महास्थविर जी। नेपाल में जो कोई धार्मिक कार्य हुआ है, वह सब महास्थविर जी के परामर्श से ही हुआ है। महास्थविर जी ही तो नेपाल में बौद्ध धर्म के पुनरुद्धारक हैं। नेपाली सभी अनागारिकायें, भिक्षु तथा श्रामणेर उन्हीं के शिष्य हैं।

महास्थविर जी ने सन् १९४४ की शिवरात्रि में स्वयं नेपाल जाकर सर्वत्र घूम-घूम कर उपदेश किया और नेपाल के अपने शिष्यों को बौद्ध धर्म के उत्थान के लिये नाना प्रकार के साधनों का दिग्दर्शन कराया। महास्थविर जी नेपाल से ज्यों लौटकर कुशीनगर आये और धम्मालोक जी नवनिर्मित विहार (आनन्दकुटी) के लिये मूर्ति लेने के लिये कुशीनगर पधारे, उसी बीच नेपाल सरकार ने भिक्षुओं पर झूठा दोषारोपण कर देश से निकाल दिया, किन्तु फिर थोड़े ही दिनों में उसे अपनी वह आज्ञा वापस लेनी पड़ी, क्योंकि प्रत्येक बौद्ध देश से विरोध होना प्रारम्भ हो गया था। भारत, बर्मा, लंका, स्याम आदि देशों में नेपाल सरकार के विरुद्ध अनेक सामूहिक सभायें हुई थीं। लंका में उस समय इन पंक्तियों के लेखक ने भी कोलम्बो की "तरुण बौद्ध समिति" के सभा-भवन में नेपाली भिक्षुओं के निर्दोष होने और नेपाल देशीय शासकों के अन्यायपूर्ण कार्य का वर्णन किया था।

उस समय सभी भिक्षु आश्रय-विहीन होकर कुशीनगर ही आये थे और पूज्यपाद गुरुवर की छत्रछाया में रह कर वर्षावास व्यतीत किया था। वहाँ इस घटना की स्मृति में उन्होंने एक नेपाली धर्मशाला का भी निर्माण करना प्रारम्भ कर दिया था, किन्तु किसी कुटिल के कुत्सित प्रयत्न से उनकी वह महान् भावना जाती रही।

इस समय नेपाल में भिक्षुओं की संख्या अठारह है। अनागारिकायें भी लगभग इतनी ही हैं। भिक्षुओं के आनन्द कुटी (काठमाण्डू), यंमङ्गल विहार (पाटन), प्रणिधि महाविहार (बलम्बू), शाक्यमुनि विहार (भो पुर), बुद्धविहार (बुटौल), बुद्ध विहार (तानसेन) आदि कई विहार हैं। अब सांगु बाजार (त्रिशूली) और आह गाँव में भी विहार बन रहे हैं। पनौती और बनेपा में पुरातन विहार हैं ही। अनागारिकाओं के भी किंडोल विहार (काठमाण्डू), बुद्धविहार और आनन्द-भवन (पोखरा) आदि अनेक विहार हैं।

सन् १९४४ में धर्मोदय नाम की एक सभा की भी स्थापना हुई, जिसके प्रधान सभापति पूज्य महास्थविर जी ही हैं। इस सभा द्वारा "धर्मोदय" नामक नेवारी भाषा में एक मासिक-पत्र भी निकाला जा रहा है। इससे नेपाल के बौद्धों में संगठन और सुधार होता दीख रहा है।

कुल्लू के आराध्यदेव

लामा अङ्कुरूप, लाहुली

कुल्लू जनपद कांगड़ा जिले में व्यास नदी की दोनों ओर फैला हुआ है। यहाँ के निवासी नाटे-कद के होते हैं। उनका शरीर गठीला एवं खूब हृष्ट-पुष्ट होता है। वे प्रायः खेती के काम करते हैं। औद्योगिक कार्यों में भी उनकी अभिरुचि है। कश्मीरी लोगों की तरह ये लोग भी भेड़ पालते हैं। अतः यहाँ ऊन अधिक मात्रा में उपलब्ध है। भारत के नगरों में प्रायः देखा जाता है कि यहाँ की बनी हुई ऊनी चादरें कश्मीरी कहकर बेची जाती हैं। जगत-प्रसिद्ध धारीवाल कम्पनी देशी ऊन प्रायः यहीं से खरीदती है।

कुल्लू के मकान लकड़ी से बनते हैं, जो तिमंजिले होते हैं। इससे आग लगने का सदा भय बना रहता है। यहाँ के लोग प्रायः भेड़-बकरी के मांस खाते हैं। जिन भेड़-बकरियों को ये लोग मारते हैं उनकी सींगों को द्वार के सामने टाँग कर रखते हैं। पूर्वजों द्वारा मारी गई भेड़-बकरियों की सींगे प्रत्येक घर में गौरव पूर्वक सुरक्षित रहती है। कुल्लू वासी नर-नारी नृत्य-गान को बहुत पसन्द करते हैं। यही कारण है कि खेती करते तथा मार्ग-चलते हुए भी गाते-नाचते रहते हैं। पुरुष फूलों के छोटे-छोटे गुच्छे अपनी टोपी में बाँधे रहते हैं। स्त्रियाँ प्रायः हार पहने रहती हैं। वे ४ इंच लम्बी और ३ इंच चौड़ी पूला (=पट्टी) पैर में पहनती हैं, जो पल्के की बनी होती है।

कुल्लू में विवाह के लिए कोई खास समय नहीं होता। वह जब कभी भी सम्पन्न हो सकता है। विवाह में जो कुछ व्यय होता है, वह सब वर-पक्ष ही करता है। लोग शराब आदि मादक द्रव्यों का सेवन खूब करते हैं।

यहाँ की भाषा हिन्दी-उर्दू से भिन्न होते हुए भी हिन्दी से बहुत मिलती है। इसकी अपनी कोई लिपि नहीं है। प्रारम्भिक पाठशालायें अब काफी संख्या में खुल गई हैं, किन्तु लगभग ५०,००० की जनसंख्या के इस प्रदेश में केवल एक कालेज है। इससे स्पष्ट है कि यहाँ के लोग बहुत कम शिक्षित हैं।

ई० पूर्व २५६ के लगभग महाराज अशोक के धर्म-प्रचारक भिक्षुलोग यहाँ पहुँचे थे। उस समय यह सारा प्रदेश बौद्ध धर्मावलम्बी हो गया था, किन्तु इस समय यहाँ की जनता इसे बिल्कुल ही भूल चुकी है। यहाँ के लोग अब तथागत के नहीं, प्रत्युत देवी-देवता के पूजक बन गये हैं। वे ही इनके आराध्यदेव हैं। जब कोई बच्चा बीमार होता है या रोता है, तब लोग कहते हैं—"देवे रा दोष" अर्थात् देवता अप्रसन्न हैं। देवता के कोप से ही बच्चा बीमार होता या अधिक रोता है, अतः देवता को प्रसन्न करने के लिए बलि दी जाती है। हरेक कार्य में देवताओं की प्रसन्नता अपेक्षित है। गाँव-गाँव में देवालय बने होते हैं। जिनमें प्रतिवर्ष सैकड़ों निरीह पशुओं की बलि दी जाती है। हमें यह लिखते हुए आश्चर्य हो रहा है कि इन देवालयों की मूर्तियाँ बहुधा बुद्ध, बोधिसत्त्व तथा तारा की होती हैं, किन्तु कुल्लूवासी इन्हें देवता ही मानते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि बौद्ध धर्म के शास्ता हमारे भगवान् बुद्ध कुल्लू वासियों के विचित्र आराध्यदेव बन गये हैं। हमारा कर्त्तव्य है कि हम वहाँ के नर-नारी को पुनः तथागत के धर्म एवं स्वरूप का दर्शन करा, उन्हें सन्मार्ग पर लाये।

मानवता-स्तुति

अनुवादक--भदन्त शान्ति भिक्षु

दयापरं दुःखिजने क्षमापरं
द्विषत्स्वपि प्रीतिपरं जने सुखे।
समं स्थितं द्वन्द्वगणे सुदर्शनं
तमस्यहो त्वां प्रणमामि मानवम् ॥१॥

मैं तुझ मानव को प्रणाम् करता हूँ, जो दुखियों के प्रति दयालु है, वैरियों प्रति भी क्षमाशील है, सुखी लोगों पर जिसकी प्रीति है, द्वन्द्वों के बीच (हानि-लाभ, माना-पमान के बीच) जो एक जैसा रहता है। अहो! (अचरज तो यह कि) वह अन्धकार में भी दृष्टिमूढ़ नहीं होता।

प्रयोजनं मे नहि दैवतैः प्रभो
न देवलोकस्य सुखे मम स्पृहा।
मनुष्यलोकेऽस्तु मनुष्यता विभो
मया मनुष्यस्त्वमतः समाश्रितः ॥२॥

हे प्रभो! मुझे न तो देवताओं से कुछ प्रयोजन है, और न मुझे देवलोक की लालसा ही है। हे विभो! मनुष्य लोक में मनुष्यता हो, इसीलिए मैंने तुझ मानव का सहारा लिया है।

रहस्यवादं तव बोद्धुमक्षमः
क्षमो न बोद्धुं चरितं ह्यलौकिकम्।
ततः स्पृहावानहमस्मि ते प्रभो
व्यतीत दोषे चरितेऽत्र मानवे ॥३॥

हे प्रभो! मुझ में न तो तुम्हारे रहस्यवाद के समझने

की शक्ति है, और न तुम्हारा अलौकिक चरित्र ही मेरी समझ में आता है। इसलिए मैं तुम्हारे निर्दोष मानव चरित्र में ही स्पृहयालु हूँ।

कुवैद्यवन्मोचयितुं व्यथामिमां
व्यतीतवीर्यो ह्यमनुष्य इत्यतः।
त्वमाश्रयो मे सततं भव प्रभो
मनुष्यविन्नाथ मनुष्य एव यत् ॥४॥

अयोग्य वैद्य की भाँति अमनुष्य (देवतादि) में यह शक्ति नहीं है कि वह हमारी पीड़ा को हर सके। इसलिए हे प्रभो! तुम मुझे सहारा दो, क्योंकि हे मेरे स्वामी! मनुष्य को मनुष्य ही जान सकता है।

प्रभु र्न दुःखार्तिमपो हितुं परां
बलिं गृहीत्वापि जनात् कुराजवत्।
विभाव्य तद्देवगणो वृथेति तं
विहाय मानुष्यममोघ माश्रितः ॥५॥

जैसे दुष्ट राजा कर लेकर भी लोगों के परम दुःख क्लेश को नहीं दूर कर पाता, उसी तरह देवगण भी बलि पूजा लेकर लोगों के दुःख क्लेश को दूर करने में असमर्थ रहता है। यह देख मैंने देवगण का त्याग कर सफल मनुष्यता का सहारा लिया है।

वरो मनुष्यो द्विपदां वरोऽप्रम—
स्तमोऽपहारी त्वमहो न तापकः।
सहस्रपादं जयसीह तत्प्रभो
प्रतापकोऽपीह न हन्ति यस्तमः ॥६॥

द्विपदों में श्रेष्ठ, अतुलनीय, तुम मनुष्य ही श्रेष्ठ हो; जो तम (अज्ञान) का हरण करते हुए भी नहीं तपाते हो। हे प्रभो! इस लिए तुम सहस्रपात् (सूर्य) के भी विजेता हो, जो तपाते हुए भी तम (अज्ञान) का नाश नहीं कर पाता।

समुद्दिधीर्षुः सदसज्जनं समं
प्रवर्त्य तद्वर्त्म तदुत्तरं समं।
विनीय तं तत्र जयस्यहिंसया
हरिं प्रवृत्तं दितिजेषु हिंसया ॥७॥

सत् और असत् सभी जनों के उद्धार की इच्छा से, समता वाले, उत्तम मार्ग का प्रवर्तन कर, उसमें अहिंसा के द्वारा दुनिया को विनीत कर, तुम उन विष्णु के भी विजेता हो, जो दितिपुत्रों के प्रति हिंसा से प्रवृत्त होते हैं।

अहो निर्जित्यापि महादयालुना
स्मरो न दग्धो ऽस्मरचेतसा त्वया।
अयस्यमुं तत्स्मरदाहिनं रूषा
हरं परं यश्चकमे शुभामुमाम् ॥८॥

अचरज है तुम्हारी दयालुता पर, निष्काम चित्त! तुमने काम को जीत करके भी जो उसे नहीं जलाया। इसलिए तुम काम के जलाने वाले शिवके भी विजेता हो, जिन्होंने बाद में (काम को जला कर भी) शोभन पार्वती की कामना की।

विनायकोऽपीहं जनप्रियोऽसि भोः
स्मृतो भवस्यत्र ततो यथा सखा।
विनायकं तं प्रविजित्य शोभसे
जनो यदावेश इहास्ति शान्तिकृत् ॥९

हे (भगवान्)! तुम विनायक होते हुए भी लोगों को प्यारे हो और इसलिए लोग तुम्हारा वैसाही स्मरण करते हैं जैसा एक साथी का स्मरण किया जाता है। इसलिए तुम उन विनायक (गणेश) को जीत कर शोभायमान हो रहे हो, जिनका आवेश होने पर लोग शांन्ति मंत्रों द्वारा उन्हें भगाने का यत्न करते हैं।

विनायकं त्वामनुसृत्य नायकं
ह्यवैरचित्त सकलोप कारकं।
अमंगलोऽपीह पुरा विनायको
जनोपकृन्मंगलदेवता ननु ॥१०॥

सब का हित करने वाले, निर्वैर चित्त, नायक, तुम विनायक बुद्ध का अनुसरण करके ही, पहले का अमंगल विनायक (गणेश) अब मानो जनोपकारी मंगल देवता बन गया है।

मांगल्यं गणपस्य लोक जननीवात्सल्यभावं समं
शर्वस्याखिलमाशुतोष हृदयं कारुण्यमात्रं हरेः।
सूर्यस्याविकलं प्रकाशनगुणं वृद्धं गुणैः शोभनैः
सर्वं वीक्ष्य त्वयि श्रयेऽहमधुना त्वां निष्कषायं परम्

गणपति की मंगलमयता, लोक माता के सब में समान रूप से व्याप्त वात्सल्य भाव, शिव के संपूर्ण आशुतोष हृदय, विष्णु की एक मात्र करुणा, तथा सूर्य के अखंड प्रकाशन गुणको, अन्य शोभन गुणों के साथ, तुम में पूर्णरूप से समृद्ध देख, मैं तुम परम निष्कषाय (= दोषहीन) का आश्रय लेता हूँ।

बौद्ध-जगत्

धर्मपाल-जन्मोत्सव

गत १७ सितम्बर को बड़े समारोह पूर्वक सारनाथ के मूलगन्ध कुटी विहार में उदय प्रताप कालेज के प्रिंसिपल श्री जगदीश प्रसाद सिंह की अध्यक्षता में भारतीय महाबोधि सभा की ओर से स्वर्गीय अनागरिक धर्मपाल जी का जन्मोत्सव मनाया गया। मंगलाचरण एवं श्री केशरी कुमारराय के स्वागत भाषण के अनन्तर भिक्षु धर्मरक्षित ने स्वर्गीय धर्मपाल जी को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए कहा—"धर्मपाल जी ने बौद्ध संस्कृति एवं धर्म की जो अमूल्य सेवा की है, वह बौद्ध-जगत् को इस युग की बहुत बड़ी देन है। विशेषकर उन्होंने भारत में बौद्ध धर्म के पुनरुत्थान के लिए जो प्रयत्न किया, उसी के कारण आज हम भारतवासी अपने भूले हुए बौद्ध धर्म को पुनः जान पाये हैं। आज कल यहाँ उसका जो कुछ उन्नति या प्रचार हुआ है, वह सब उन्हीं की देन है।"

अध्यक्ष ने अपने भाषण के सिलसिले में कहा कि धर्मपाल जी ने सिंहलद्वीप के ऊपर से भारतीयों के महान् ऋण को उतारने का काम किया। हमारे राजकुमार और राजकुमारी ने जिस सन्देश को सिंहल पहुँचाया था उसे उन्होंने पुनः हमें सुनाने का सद्प्रयत्न किया। यद्यपि वर्तमान हिन्दू धर्म पर, हमारी विचार धाराओं पर, शंकराचार्य द्वारा उपदिष्ट ग्रन्थों पर बौद्ध धर्म की पूरी छाप थी, हम भगवान् बुद्ध को अवतार मानते थे, किन्तु वस्तुतः बौद्ध धर्म से हमारा सम्बन्ध टूट सा गया था; अपने जीवन में बौद्ध धर्म की शिक्षाओं का थोड़ा बहुत पालन करते हुए भी हम उसे भूल गये थे। उसे पुनः धर्मपाल जी ने हमें सुनाया, बतलाया और हमारी आँखें खोलीं। उनकी भारत को यह अमूल्य देन सदा स्मरणीय रहेगी।"

महाबोधि हायर सेकण्डरी स्कूल के छात्रों के भी प्रतियोगितात्मक भाषण हुए, जिनमें गौरीशंकर सिंह कक्षा ९ प्रथम, राधेश्याम पाण्डेय कक्षा ६ द्वितीय, और महेन्द्र प्रताप सिंह कक्षा ९ तृतीय आये। महाबोधि निःशुल्क प्राइमरी पाठशाला के छात्रों में सिंहली बालक जयसिंह प्रथम और शारदा कुमारी द्वितीय हुए। छात्रों के भाषण विशेष मनोरंजक रहे।

अध्यक्ष के भाषणोपरान्त आचार्य श्री शालनश्री जी ने महाबोधि सभा की ओर से अभ्यागतों को धन्यवाद दिया। दोपहर में स्थानीय भिक्षु संघ को भोजनदान दिया गया एवं सन्ध्या को प्रदीप-पूजा की गई।

पवित्र अस्थियों की नेपाल-यात्रा—नेपाल सरकार ने महाबोधि सभा को सारिपुत्र और मौद्गल्ययन की पवित्र अस्थियों को अगले नवम्बर मास में नेपाल ले जाने के लिए निमंत्रित किया है। अस्थियों के स्वागत के लिए एक स्वागत-समिति बनी है, जिसके अध्यक्ष स्वयं नेपाल-नरेश हैं और धर्मोदय सभा के भिक्षु अमृतानन्द मंत्री नियुक्त हुए हैं जो अस्थियों के स्वागतार्थ उचित और बढ़िया प्रबन्ध करेंगे। सभा इस निमंत्रण का स्वागत करती है और प्रसन्नता का अनुभव करती है, क्योंकि यह नेपाल की नयी सरकार का पहला महत्वपूर्ण सांस्कृतिक कार्य है। सरकार ने बौद्धों को हरएक प्रकार से सुविधा प्रदान करने का वचन दिया है। इसे प्रायः लोग नहीं जानते कि नेपाल की प्रजा आधे से अधिक बौद्ध है और उनके मन्दिर बड़े ही सुन्दर एवं दर्शनीय हैं। इससे बढ़कर महत्वपूर्ण बात तो यह है कि वर्तमान नेपाल राज्य की सीमा के अन्दर ही भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ था, इस प्रकार नेपाल को तथागत की जन्मभूमि कहलाने का भी सौभाग्य प्राप्त है। नेपाल-नरेश के स्वयं स्वागत-समिति का अध्यक्ष होने से पूर्ण आशा है कि पवित्र आस्थयों का बड़ा शानदार स्वागत होगा।

पवित्र अस्थियाँ ६ नवम्बर को कलकत्ते से वायुवान द्वारा नेपाल जायेंगी।

पाकिस्तान का भी निमंत्रण—चटगाँव के बौद्धों की प्रार्थना पर पूर्वी पाकिस्तान ने भी अग्रश्रावकों की पवित्र अस्थियों के लिए निमंत्रण भेजा है। महाबोधि सभा की कार्यकारिणी समिति ने इस निमंत्रण को स्वीकार कर लिया है, किन्तु वर्षा ऋतु में अस्थियों का वहाँ जाना सम्भव नहीं है। सभा ने निश्चय किया है कि अस्थियाँ अगले वर्ष ही पाकिस्तान जा सकेंगी। इस निमंत्रण से भी हम लोगों को प्रसन्नता है, क्योंकि इस कार्य से पाकिस्तान तथा भारत दोनों एक दूसरे के भाव समझ सकेंगे और यह निमंत्रण सम्भव है भ्रातृत्व वर्द्धक हो।

महाबोधि सभा को भारत सरकार का अनुदान—भारत सरकार ने महाबोधि सभा को बौद्ध ग्रन्थों के मूल और अनुवाद को प्रकाशित करने के लिए ४,०००) का अनुमोदनीय अनुदान दिया है। यद्यपि यह अनुदान बहुत थोड़ा है किन्तु सभा अपनी प्रसन्नता प्रगट करती है। इस समय वह कुछ महत्त्वपूर्ण हिन्दी में अनूदित ग्रन्थों के प्रकाशन में लगी है। प्रथम ग्रन्थ संयुत्त निकाय है, जिसका हिन्दी अनुवाद भिक्षु जगदीश काश्यप एम. ए. ने किया है। दूसरा बुद्धचर्या है जिसका श्री राहुल सांकृत्यायन ने सम्पादन किया है और जो शीघ्र ही प्रेस से बाहर आनेवाला है। यह परिशुद्ध स्थविरवाद का परिचायक ग्रन्थ है, इसके प्रकाशित होते ही इसकी बड़ी माँग होगी। तीसरा ग्रन्थ विशुद्धिमार्ग है, जो अट्ठकथा लेखक आचार्य बुद्धघोष की प्रसिद्ध रचना है, इसका अनुवाद त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित ने किया है, जिन्होंने इस ग्रन्थ के अध्ययन में अपना काफी समय लंका द्वीप में लगाया है। भिक्षु धर्मरत्न एम. ए. द्वारा अनूदित सुत्तनिपात अभी-अभी प्रेस से निकला है। इन सभी ग्रन्थों के प्रकाशन में २०,०००) से अधिक व्यय होंगे।

धर्मराजिक विहार में नेपाल-नरेश का शुभागमन—नेपाल नरेश, जो गत अगस्त मास में कलकत्ता आये थे, धर्मराजिक विहार के दर्शनार्थ पधारे। उनका आगमन व्यक्तिगत था। उस अवसर पर भिक्षुओं ने सूत्रपाठ करके आशीर्वाद दिया और उनके दीर्घजीवन की कामना की। महाराज ने मन्दिर में पुष्प, धूप, और दीप से पूजा की तथा दर्शनार्थी-पञ्जिका में हस्ताक्षर किया।

पालि अध्यापनार्थ दान—कलकत्ता के विद्वान् डा० नरेन्द्रनाथ ला ने कलकत्ता विश्वविद्यालय को पालि के अध्यापनार्थ ५,०००) का दान दिया है। कलकत्ता विश्वविद्यालय ने ही सर्वप्रथम मैट्रिक से लेकर एम. ए. तक पालि के अध्यापन की व्यवस्था की थी। हम इस आदर्श दान के लिए श्री ला को धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि भारत के दूसरे भी विद्वान् एवं दानी लोग पालि के प्रचार तथा प्रसार हेतु अपना सहयोग प्रदान करेंगे।

साँची विहार के लिए १,५००) का दान—बर्मा स्थित लंका के डा० आर० जयसिंह ने साँची विहार के कार्य के लिए १,५००) दान दिया है। श्री जयसिंह सभा के आजीवन सदस्य हैं और सदा सभा के कार्यों में सहायक होते हैं। हम इस महत्त्वपूर्ण दान के लिए उन्हें हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

स्टालिन को बौद्ध बनाने का प्रयत्न—'विश्व बौद्ध भातृत्व संघ' के अध्यक्ष डा० मललसेकर ने गत २७ अगस्त को लंका के पंडुरा नामक स्थान में भाषण देते हुए कहा कि रूस में हजारों बौद्ध हैं और यदि निकट भविष्य में स्टालिन बौद्ध हो जायँ, तो कोई आश्चर्य नहीं होगा। ऐसा प्रयत्न जारी है।

धर्मदूत के नये आजीवन सदस्य—धर्मदूत की आजीवन सदस्यता के लिए केवल ५०) शुल्क हैं। हम चाहते हैं कि हमारे बन्धु काफी संख्या में आजीवन सदस्य बनकर 'धर्मदूत' की सहायता करें। हम "धर्मदूत-दायक-मण्डल" भी प्रारम्भ करना चाहते हैं। इस मण्डल के वही व्यक्ति सदस्य हो सकते हैं जो वर्ष में कम से कम १०) देकर ग्राहक बनेंगे। "धर्मदूत-दायक-मण्डल" के सदस्यों का नाम वर्ष भर 'धर्मदूत' में छपता रहेगा। श्री नेगी-लामा शासनदार ध्वज, ग्राम-रामनी, पो०—किल्बा, तहसील चीनी (बुशहर सब डिविजन), शिमला ने 'धर्मदूत' की आजीवन सदस्यता के लिये ५०) भेजा है। हम उसे सधन्यवाद स्वीकार करते हुए आशा करते हैं कि हमारे पाठक अधिक से अधिक संख्या में आजीवन-सदस्य बनेंगे। 'धर्मदूत' के अबतक निम्नलिखित व्यक्ति आजीवन सदस्य बने हैं—

१. श्री धर्मराज शाक्य १००)
२. श्री त्रिरत्न कुरुमराज १०१)
३. सेठ श्री नारायणदास बाजोरिया ५१)
४. श्री वीरेन्द्रलाल मुत्तसुद्दी १०५)
५. श्री भाजुरत्न मणिहर्षजोति १०५)
६. श्री अवधविहारीलाल श्रीवास्तव ५०)
७. अनागरिका गौतमी ५०)
८. श्री जशनमल १२५)
९. श्री आर० एल० सोनी १००)
१०. श्री नेगी लामा शासनदार ध्वज ५०)
११. बाबू हरवंश प्रसाद उपाध्याय ५०)
१२. श्री एम० कृष्णस्वरूप ५०)

आवश्यकता है

हमारे नये डिजाइन के फाउन्टेनपेनों को बेचने के लिये ३००) से ५००) तक मासिक वेतन या कमीशन पर एजेन्टों की आवश्यकता है। नमूना और नियमावली के लिये लिखें—

लावरेन्स ब्रदर्स (डी. डी. बी.),

नागदेवी, बम्बई ३

अभूतपूर्व आकर्षण

ज्योतिष शास्त्र का सर्वश्रेष्ठ त्रैमासिक पत्र

"ज्योतिष-विज्ञान"

जिसमें मनुष्यमात्र की समस्याओं पर पूर्ण विचार किया जाता है। यथा राशियों पर ग्रहों का प्रभाव, वस्तुसमीक्षा (तेजी-मन्दी) हस्तरेखा, राशिफल आदि के अतिरिक्त भारतीय स्टैण्डर्ड टाइम के घण्टा मिनटों में पञ्चाङ्ग। प्रश्नोत्तर स्तम्भ में आपकी शङ्काओं का उचित समाधान किया जाता है। ज्योतिष विषयक (साइण्टिफिक) वैज्ञानिक लेखों से परिपूर्ण यह पत्र अपने ढंग का एक ही है आज ही २) रुपया भेज कर आजीवन ग्राहक बन सकते हैं।

व्यवस्थापक –

"ज्योतिष-विज्ञान"

१८, गोविन्द बनर्जी लेन, सलकिया (हवड़ा)

धर्मदूत की पुरानी फाइलें

धर्मदूत की पिछले वर्ष की पूरी फाइल सजिल्द उपलब्ध है। एक जिल्द का दाम ५) है, अपनी फाइल के लिए शीघ्र लिखें।

भारतीय ज्ञानपीठ काशी के सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

शेर ओ शयरी

(उर्दू के सर्वोत्तम १५०० शेर और १६० नज़्म)

ले० अयोध्याप्रसाद गोयलीय

[प्राचीन और वर्तमान कवियों में सर्व प्रधान लोकप्रिय ३१ कलाकारों के मर्मस्पर्शी पद्यों का संकलन और उर्दू कविता की गतिविधि का आलोचनात्मक परिचय।]

पृष्ठ संख्या ४६०। मूल्य आठ रुपये

मुक्तिदूत (उपन्यास)

ले० वीरेन्द्रकुमार एम० ए०

[हिन्दी में अपने ढंग का सबसे पहला पौराणिक रोमांस। आधुनिक भारतीय साहित्य में जैन संस्कृति पर आधारित प्रथम कलाकृति।]

पृष्ठ सं० ३४०, मूल्य ४॥)

पथचिन्ह

(स्मृति रेखायें और निबन्ध)

ले० शान्तिप्रिय द्विवेदी

(हिन्दी साहित्य की अनुपम पुस्तिका जो आज की गतिविधि की निःसारता दिखाती है और पाठक को रुकने के लिये वाध्य करती है।) मूल्य २)

ज्ञानोदय

व्यक्ति-स्वातंत्र्यमूलक श्रमण संस्कृति के सन्देश द्वारा श्रम, शम, सम-स्वावलम्बन, शान्ति और समता का सार्वजनीन उद्बोधन करने वाला मासिक पत्र।

वार्षिक ६) एक प्रति ।≈)

व्यवस्थापक– **भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड, बनारस सिटी।**

BOOKS OF BUDDHISM FOR SALE

	Rs. As. P.		Rs. As. P.
Buddhism	1-8-0	Buddhist Shrines in India	5-0-0
Buddhist Legends 3 Volumes	105-0-0	Sarnath	0-12-0
Buddhism in Translation	21-12-0	Dhammapad	12-0-0
The Life of Buddha as legend & History	17-1-0	Buddhist India	5-0-0
Early Buddhists Scriptures	11-0-0	Dhammapada and Suttanipata	15-8-0
The word of the Buddha	1-12-0	Buddhist Meditation	5-8-0
Buddhism Outlined	1-8-0	Light of Asia	3-4-0
The way of Mindfulness	4-4-0	Essence of Buddhism	12-8-0
A Treatise on Buddhist Philosophy or Abhidhamma	6-0-0	Asoka and His Inscriptions	15-0-0
An Introduction to Theravad Buddhism	7-8-0	Foundations of Buddhism	5-8-0
Early Monastic Buddhism 2 Volumes	15-0-0	Buddhism for Beginners	0-4-0
Aspects of Mahayan Buddhism and its Relation to Hinayana	12-8-0	Buddhism for Everybody	1-8-0
A Concise Pali English Dictionary	11-0-0	The Living Thoughts of Gautama The Buddha	6-0-0
Ceylon Lectures	7-0-0	Spirit of Buddhism	20-0-0
What is Buddhism	1-8-0	Vedantic Buddhism of the Buddha	32-0-0
Benares and Sarnath	1-0-0	Abhidhamma Philosophy	6-0-0
		Asoka	0-8-0
		Benares The Holy City	0-5-0
		The Buddhist way of Life	0-6-0

PALI TEXTS IN DEVANAGARI SCRIPT

Visuddhimagga	16-8-0	Pali-Patha-Mala	1-0-0
Visuddhimagga Dipika	3-8 0	Cariyapitaka	5-0-0
Navanita Tika	2-8-0	Sutta Nipata	3-0-0
Dhammasangani	8-0-0	Jatakatthakatha Ist Volume	9-0-0
Atthasalini	8-8-0	Mahaparinibban Sutta	1-4-0
Patimokkha	8-8-0		

Apply :—

Maha Bodhi Book Agency, Sarnath, Banaras.

or

Maha Bodhi Book Agency,
4-A, BANKIM CHATTERJEE STREET, CALCUTTA—12

प्रकाशक—भिक्षु एम० संघरत्न, महाबोधि सभा, सारनाथ, (बनारस)
मुद्रक—ओम् प्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, कबीर चौरा, बनारस ।

धर्मदूत

गुरुकुल-पत्रिका,
गुरुकुल काँगड़ी.

सिक्किम नरेश

सितम्बर १९५१

वार्षिक मूल्य— ३)
एक अङ्क का—।=)

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
१. बुद्ध-वचनामृत	१३५	७. भारत में चीनी बौद्ध यात्री —श्री कृष्णकिंकर सिंह	१५
२. तथागत की धर्मविजय—भिक्षु धर्मरक्षित	१३६	८. पटाचारा की शोक-मुक्ति—भिक्षु आर्यवंश	१५
३. सच्चा धर्म—श्री अनन्त रामचन्द्र कुलकर्णी	१४०	९. बौद्ध-जगत्	१५
४. पूजा—भदन्त आनन्द कौसल्यायन	१४४	१०. नये प्रकाशन	१५
५. नेपाल में वज्रयान का उदय—श्री अनन्त	१४५		
६. समदर्शी तथागत—श्री वेदराज प्रसाद	१४८		

भारतीय महाबोधि सभा

को

हीरक-जयन्ती

आगामी दिसम्बर मास में भारतीय महाबोधि-सभा अपनी हीरक-जयन्ती मनायेगी। हम चाहते हैं कि उक्त अवसर तक हमारा प्रधान केन्द्र भवन—अभाव के कष्ट से मुक्त हो जाय। पश्चिमी बंगाल की सरकार ने कृपापूर्वक सभा के लिए भूमि एक्वायर करने की आज्ञा प्रदान कर दी है। हम इस कार्य के लिए अपने भारतीय, सिंहली, बर्मी, नेपाली, तिब्बती आदि सभी बन्धुओं से सहायता की अपील करते हैं। हमने "हीरक जयन्ती-फण्ड" खोलने का आयोजन किया है, जो इस प्रकार है :—

प्रधान केन्द्र के लिए भूमि-क्रय	१६९४५०)
भवन निर्माण	८३०,५५०)

लंका के अनागारिक धर्मपाल ट्रस्ट ने कृपापूर्वक ४०,०००) भूमि-क्रय के लिये प्रदान किया है और ५७२५।≈। 'स्वर्ण-जयन्ती फण्ड' से प्राप्त हैं। अभी हमें ९५४,२७४।।-)।।। की पूर्ति करनी है।

कृपया आप अपनी सहायता इस पते पर भेजें :—कोषाध्यक्ष, भारतीय महाबोधि सभा, ४-ए, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता—१२।

— श्यामाप्रसाद मुकर्जी, अध्यक्ष-भारतीय महाबोधि सभा।
देवप्रियवलि सिंह, प्रधान मन्त्री।

हीरक-जयन्ती महोत्सव २७ एवं २८ दिसम्बर १९५१ को कलकत्ते में मनाया जायेगा।

धर्म-दूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ । महावग्ग, (विनय-पिटक)

'भिक्षुओ ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिए, लोक पर दया करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये विचरण करो। भिक्षुओ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्था में कल्याणकारक धर्म का उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो ।'

सम्पादकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

वर्ष १६ } सारनाथ, सितम्बर बु० सं० २४९५ / ई० सं० १९५१ { अङ्क ६

बुद्ध-वचनामृत

धर्म-ग्रहण और शुद्धि

"जिसे कुछ लोग उत्तमधर्म बताते हैं, उसी को दूसरे लोग हीन बताते हैं। इनमें कौन वाद सत्य है? सभी अपने को कुशल बताते हैं, अपने धर्म को परिपूर्ण और दूसरे धर्म को हीन कह कर भिन्न मत वाले हो, अपनी धारणा को ही सत्य बतलाते हुए विवाद करते हैं। यदि दूसरे की अवज्ञा से हीन हो जाय, तो धर्मों में कोई श्रेष्ठ नहीं है, क्योंकि सभी दूसरे धर्म को हीन बताते हैं और अपने को उत्तम। वे जिस प्रकार अपने धर्म-मार्गों की प्रशंसा करते हैं, उसी प्रकार उनकी पूजा भी करते हैं। यदि इसे सत्य का प्रमाण मान लें, तो सभी वाद सत्य होंगे और उनकी शुद्धि भी अलग-अलग होगी। अतः विद्वान् व्यक्ति सत्य के लिए दूसरे पर निर्भर नहीं रहता, विचार के बाद धर्मों में से किसी को ग्रहण नहीं करता, इसलिए वह विवादों से परे है और सत्य को छोड़ किसी दूसरे धर्म को श्रेष्ठ नहीं समझता। जो किसी वाद में आसक्त है, वह शुद्धि प्राप्त नहीं होता, क्योंकि वह किसी दृष्टि को मानता है। मनुष्य जिसमें आसक्त होता है उसी को शुभ बताता है और जिसे शुभ बताता है उसे सत्य मानता है।"

तथागत की धर्म-विजय

भिक्षु धर्मरक्षित

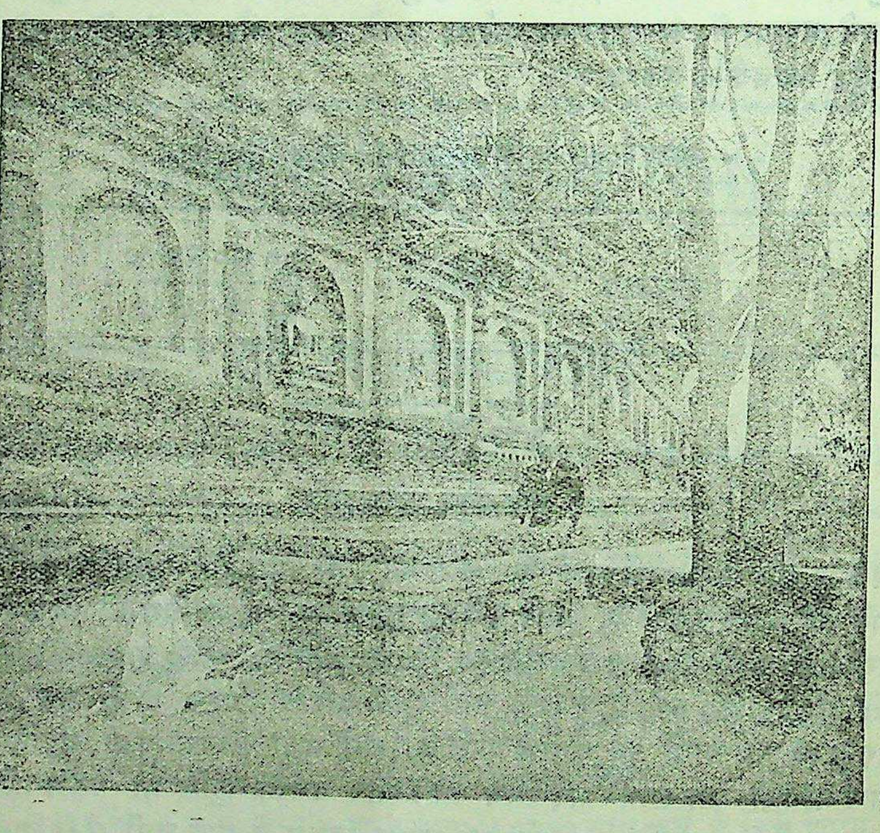

बुद्धगया का बोधि-वृक्ष

भगवान् बुद्ध ने बोधि वृक्ष के नीचे बैठकर जिस ज्ञानामृत को प्राप्त किया, उसे उन्होंने संसार के सभी प्राणियों को पिलाने के लिए पैंतालीस वर्ष तक पैदल भ्रमण किया। सुख-विलास में पले हुए तथागत ने कष्टों की परवाह न की। उन्हें कभी भिक्षाटन के लिए गाँवों में जाकर खाली पात्र लिए लौटना पड़ा, वेरंजा में अकाल पड़ने पर तीन मास तक शिला पर पीसे हुए अन्न मात्र को खाकर रहना पड़ा, कभी लोगों की फटकार सुननी पड़ी, चिन्चा और सुन्दरी जैसी दुष्ट स्त्रियों के मिथ्या-प्रसंगों द्वारा इस निष्कलंक को कलंकित करने का प्रयत्न किया गया, देवदत्त जैसे दुष्टों ने उन्हें मारने का भी दुष्प्रयास किया, कभी कुछ लोगों ने उन्हें भ्रूणहत्या का अपराधी (भूनहुनो) भी कहा, किन्तु उस लोकगुरु भगवान् बुद्ध ने अपना मार्ग नहीं बदला। वे अपने मार्ग पर दृढ़ता पूर्वक चलते ही रहे। सभी परिस्थितियों में उनकी विजय हुई। वे अद्भुत धर्म-विजयको करके प्राणिमात्रका कल्याण करनेमें सदा तत्पर ही रहे। तथागत ने जो कुछ किया 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय'। सब सुन्दर और प्रशस्त! सब कल्याणकारक तथा मुक्तिदायक! हम यहाँ उनके कुछ उन विशेष गुणों पर प्रकाश डालेंगे, जिनसे उन्होंने अनुत्तर धर्म-विजय की।

निःस्वार्थ लोकचर्या

भगवान् बुद्ध ने संसार के दुःखित प्राणियों की निःस्वार्थ सेवा की। उन्हें किसी प्रकार के लाभ, यश, कीर्ति एवं सम्मान की कामना न थी। वे अपने शिष्यों की संख्या बढ़ाने की भी चिन्ता में न थे और न तो वे गण-शास्ता (महन्त) ही बनना चाहते थे। वे अपने शिष्यों को भी उपदेश देते थे—"भिक्षुओ ! लाभ, सत्कार और प्रशंसा दारुण हैं, उनमें नहीं फँसना चाहिए, तुम्हें उन्हें त्याग देने का अभ्यास करना चाहिए।" तथागत ने मुक्त होकर भी अरण्य का सेवन किया; धूप, गर्मी, जाड़ा, बरसात का ध्यान नहीं किया, पैदल तथा ऋद्धिबल से जहाँ आवश्यकता पड़ी यात्रा की, सब स्वार्थ-रहित हो, जीवमात्र के कल्याण का ध्यान रखते हुए। वे मागन्दीय ब्राह्मण तथा उसकी पत्नी के उद्धार के लिए कुरु जनपद की एक झाड़ी में बैठे, कोलिय तथा शाक्यों के रक्तपात को रोकने के लिए रोहिणी नदी के बीच खड़े हुए, शाक्यों की रक्षा के लिए एक छाया-रहित वृक्ष के नीचे विराजमान हुए और भिक्षुओं को सांसारिक आसक्ति से हटाने के लिये सिरिमा गणिका के सड़े हुए मृत-शरीर की तीन दिनों तक रखवाली कराये। तथागत का सारा जीवन ही निःस्वार्थ लोकचर्या में व्यतीत हुआ। उनकी निःस्वार्थ लोकचर्या कहाँ तक गिनाई जाय ? शास्ता ही एक ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने सदा बहुजन का हितसुख निःस्वार्थ-भाव से किया—"सारिपुत्र ! जो ठीक से कहते हुए यह कहेगा कि सम्मोह-धर्म से रहित एक व्यक्ति बहुजन के हित-सुख के लिए उत्पन्न हुआ है, तो वह मेरे ही लिए कहेगा।"

यथावादी तथाकारी

तथागत ने केवल उपदेश मात्र ही न दिया, उन्होंने जिन गुण-धर्मों का उपदेश दिया, स्वयं उनका आचरण भी किया और जिनका आचण किया, उसी का उपदेश भी दिया। इसी से वे यथावादी तथाकारी एवं यथाकारी तथावादी हुए। परसेवा बौद्धधर्म का एक पवित्र उद्देश्य है। भगवान् बुद्ध ने स्वयं परसेवा की और परसेवा का उपदेश दिया। उन्होंने मुक्त होकर ही भिक्षुओं को मुक्ति-पथ बतलाया और उनके भी मुक्त हो जाने पर ही परहितार्थ प्रेरित करते हुए कहा—"भिक्षुओ ! मैं सभी दिव्य और मानुषी बन्धनों से मुक्त हूँ और तुम लोग भी दिव्य और मानुषी सभी बन्धनों से मुक्त हो। भिक्षुओ ! बहुजन के हित के लिए, बहुजन के सुख के लिए, लोकपर दया करने के लिए, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिए, हित के लिये, सुख के लिये विचरण करो।"

"जो रोगी की सेवा करता है, वह मेरी सेवा करता है" कहने वाले तथागत ने स्वयं रोगी की सेवा की। भूखों को भोजन देने की शिक्षा देने वाले लोकनाथ ने स्वयं भूखों को भोजन दिलाया। क्षमा एवं सहनशीलता आदि सद्गुणों के प्रशंसक शास्ता ने अपने अहित चाहने वालों के प्रति मैत्रीभाव रखा। सम्प्रदायवाद एवं संकीर्ण मनोवृत्ति की निन्दा करने वाले भगवान् ने सदा ही सभी सम्प्रदायों के प्रति अपना भाव उदार रखा। तथागत ने जो कहा उसे किया और जो किया उसे कहा।

आचरण की पवित्रता

दुःख से मुक्ति पाने के लिए निश्चित मार्ग में केवल समाधि और दर्शन ही पर्याप्त नहीं हैं, आचरण की पवित्रता अत्यन्त आवश्यक है। अतः तथागत ने शील (=सदाचार) पर विशेष रूप से जोर दिया। उन्होंने कहा—"दुराचारी और एकाग्रता-रहित के सौ वर्ष के जीने से भी सदाचारी (शीलवान) और ध्यानी का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है।" तथागत तो आचरण की पवित्रता में सर्वश्रेष्ठ ही थे। क्या किसी देव या मनुष्य ने उनके आचरण में कभी किसी कमी को देखा ? वे शास्ता-परम पवित्र, शुद्ध और निर्मल थे, उनके आचरण की पवित्रता की तुलना नहीं। उन्होंने स्वयं अपने आचरण की पवित्रता को बतलाते हुए कहा—'भिक्षुओ ! यह शील तो बहुत छोटे और गौण हैं, जिसके कारण अनाड़ी मेरी प्रशंसा करते हैं। भिक्षुओ ! इनके अतिरिक्त और दूसरे धर्म हैं जो गम्भीर, दुर्ज्ञेय दुर्बोध, सुन्दर, तर्क से न जाने जा सकने वाले, निपुण और पंडितों के समझने योग्य हैं, जिन्हें तथागत स्वयं जानकर और साक्षात्कर कहते हैं और जिन्हें तथागत के यथार्थ गुण को ठीक-ठीक कहने वाले कहते हैं।"

जो शास्ता (गुरु) अपवित्र आचरण वाले होकर

पवित्रता का उपदेश देते हैं, उसे विज्ञ लोग नहीं ग्रहण करते, जो स्वयं कूएँ में गिरा है, वह भला दूसरे गिरे हुए को कैसे निकालेगा ? किन्तु पवित्र आचरण वाले तथागत के आचरण की पवित्रता सम्बन्धी उपदेश को सुनकर स्रोता कहते थे—"भन्ते ! जैसे कोई पुरुष नरक के खड्ड में गिरते किसी पुरुष को उसका केश पकड़कर ऊपर खींच ले और भूमि पर रख दे,उसी तरह से मैं आप के द्वारा नरक-खड्ड में गिरते हुए ऊपर खींचा जाकर भूमि पर रख दिया गया। आश्चर्य है.! जैसे उलटे को सीधा कर दे, ढँके को खोल दे, मार्ग भूले को मार्ग बता दे, अन्धकार में तेल का प्रदीप दिखा दे जिसमें कि आँख वाले रूप को देखें, उसी तरह भन्ते ! अद्भुत है ! भगवान् ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित किया। भन्ते ! मैं भगवान् की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु संघ की भी। आज से जीवनभर भगवान् मुझे अपनी शरण में आया उपासक स्वीकार करें।"

मध्यममार्ग की विशेषता

लोक और सत्व के शाश्वत आदि होने की बात को तथागत ने निरर्थक बतलाया। उन्होंने इस सम्बन्ध में एक दृष्टान्त देते हुए कहा कि जैसे किसी व्यक्ति को विष में बुझा हुआ वाण लगा हो, वह उससे सुखी होने के लिए न निकलवाकर ही कहे कि मैं इसे तब तक नहीं निकलवाऊँगा जब तक कि यह न जान लूँ कि मुझे वाण किसने मारा है ? वह कैसा है ? उसके माँ-बाप कौन हैं ? तो वह इन प्रश्नों के उत्तर पाये बिना ही मर जायगा। इसी प्रकार लोक और सत्व के आदि-अन्त के पर्येषण में ही जीवन व्यतीत हो जायगा और यह प्रश्न हल न हो सकेगा। इस लिए तथागत ने इन दस प्रश्नों को अव्याकृत (अकथनीय) कहा है—

१. लोक नित्य है ?
२. लोक अनित्य है ?
३. लोक अन्तवान् है ?
४. लोक अनन्त है ?
५. वही जीव है, वही शरीर है ?
६. जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है ?
७. मरने के बाद जीव फिर पैदा होता है ?
८. मरने के बाद जीव फिर पैदा नहीं होता ?
९. मरने के बाद जीव फिर होता है और नहीं भी होता है ?
१०. मरने के बाद जीव न होता है, न नहीं होता है ?"

तथागत ने यह भी कहा है कि ये प्रश्न विराग, शान्ति, सम्बोधि एवं निर्वाण के लिए अर्थ-युक्त नहीं हैं, और न आदि-ब्रह्मचर्य के लिएही उपयुक्त हैं, इसलिए ये अव्याकृत हैं।

तथागत की दृष्टि नित्य और अनित्य दृष्टियों से भिन्न है। उनके अनात्मवाद में नित्य आदि वादों को स्थान नहीं है। उनका निर्वाण-गामी मार्ग शरीर-मंडन एवं शरीर-दण्डन—इन दोनों धारणाओं से रहित है। इस प्रकार उन्होंने सांसारिक भोग-विलास में रहकर मौज उड़ाने और नाना प्रकार से शरीर को पीड़ित करने के दोनों अन्तों (=चरम सीमाओं) को त्याग कर मध्यम-मार्ग का उपदेश दिया, जिसे आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग भी कहते हैं, जो विशुद्धि का सर्वोत्तम और अद्वितीय मार्ग है।

इसके आठ अंग हैं—(१) सम्यक् दृष्टि (२) सम्यक् संकल्प (३) सम्यक् वचन (४) सम्यक् कर्मान्त (५) सम्यक् आजीविका (६) सम्यक् व्यायाम (प्रयत्न) (७) सम्यक् स्मृति और (८) सम्यक् समाधि। इस मध्यम मार्ग में न तो किसी पोथी-पत्रे की गुलामी स्वीकार की गई है और न तो किसी अन्य व्यक्ति विशेष की ही। धर्म-ग्रहण में व्यक्ति का बुद्धि-स्वातंत्र्य अपेक्षित है। द्वेष से दूषित, दया से रहित, ईर्ष्या के वशीभूत और चंचलता से युक्त होकर ब्रह्म की पूजा करने से मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा की भावना कर ब्रह्मत्व पाना श्रेष्ठ है। तथागत ने साफ-साफ बतलाया है कि कोई दूसरा व्यक्ति किसी की शुद्धि नहीं कर सकता। शुद्धि या अशुद्धि तो अपने हाथ की बात है। व्यक्ति अपना स्वामी आप है, उसे ही गुण-धर्मों का पालन कर ब्रह्मत्व (निर्वाण) प्राप्त करना है। अतः तथागत भिक्षुओं को कहा करते थे—"भिक्षुओ ! आत्मद्वीप और आत्मशरण (=स्वावलम्बी) होकर विहार करो, किसी दूसरे के भरोसे मत रहो।"

मध्यम मार्ग में न कोई ऊँच है न नीच, सभी व्यक्ति समान हैं। भगवान् ने जन्मजात ऊंच-नीच की भावनाओं की निन्दा करते हुए सद्‌गुणों की प्रधानता पर अधिक जोर दिया। उन्होंने नीच समझे जाने वाले पीड़ित वर्ग को इस विषम वातावरण से निकाल कर उन्नति-पथ पर किया। मनुष्यत्व की श्रेष्टता को दिखलाते हुए भेद-भिन्न जनसमूह को एक सूत्र में बाँधा। उन्होंने मध्यम मार्ग में किसी प्रकार का रहस्य नहीं रखा। जिस प्रकार सूर्य और चन्द्र सर्वसाधारण के लिए एक समान प्रकाश प्रदान करते हैं। उसी प्रकार तथागत ने उसे खोलकर सबके सामने रख दिया। जिसे सुनकर कुलपुत्रों ने कहा—"भला, भगवान् के धर्म को सुनकर कौन अत्यन्त सन्तुष्ट नहीं होगा? भन्ते! मैं आप के धर्म को सुनकर अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ। भन्ते! आपने खूब कहा है, आपने खूब कहा है!"

जब तथागत मध्यम मार्ग का उपदेश देते हुए बतलाते थे कि यह रूप है, यह उसकी उत्पत्ति है, यह उसका विनाश है, तब जो देवता ऊँचे विमानों में रहने वाले हैं वे भी तथागत के धर्मोपदेश को सुनकर डरते और भय खाते थे, उन्हें संसार से निर्वेद हो आता था, आदमी की क्या बात? यही कारण था कि श्रद्धावान कुलपुत्र मुक्तिदायक धर्म को सुनकर घरबार छोड़ प्रव्रजित हो जाते थे, जिसके लिए भगवान् को कभी-कभी बुरा-भला भी कहा जाता था। एक समय मगध के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कुलपुत्र भगवान् के शिष्य होते थे। लोग देखकर हैरान होते, निन्दा करते और दुःखी होते थे—"अपुत्र बनाने को श्रमण गौतम उतरा है, विधवा बनाने को श्रमण गौतम उतरा है, कुलनाश के लिए श्रमण गौतम उतरा है। अभी उसने एक सहस्र जटिलों को साधु बनाया। इन ढाई सौ संजय के परिव्राजकों को भी साधु बनाया। अब मगध के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कुलपुत्र भी श्रमण गौतम के पास साधु बन रहे हैं।"

जब इस बात को भिक्षुओं ने भगवान् से कही, तब उन्होंने कहा—"भिक्षुओ! ताना मारने वालों को तुम भी इस प्रकार उत्तर दो—'महावीर तथागत सच्चे धर्म के रास्ते ले जाते हैं, धर्म से ले जाये जाने वालों के लिए बुद्धिमानों को ईर्ष्या क्यों?'"

भिक्षु भी तथागत के उपदेश को सुनकर बोल उठते—"आश्चर्य भन्ते! अद्‌भुत भन्ते! इस धर्मोपदेश को सुनकर रोमांच हो गया!" जिस प्रकार स्वच्छ, मधुर, शीतल जलवाली रमणीय सुन्दर घाटों वाली पुष्करणी हो, उसमें सभी दिशाओं एवं सभी जातियों के लोग आकर स्नान करें, अपनी प्यास बुझायें, इसी प्रकार तथागत द्वारा उपदेशित मध्यम मार्ग को प्राप्त कर सभी व्यक्ति आध्यात्मिक शान्ति को प्राप्त करते हैं। जैसे लड्डू को जिधर से खायें, मीठा ही होता है, वैसे ही तथागत के मध्यम मार्ग को जिधरसे प्रज्ञा द्वारा देखा जाता है सन्तोष एवं प्रसन्नता ही प्राप्त होती है।

भाषा की स्वतंत्रता

किसी भी धर्मोपदेशक के लिए यह आवश्यक है कि वह जनसाधारण की भाषा को अपनाये। तथागत ने धर्मोपदेश के लिए तत्कालीन जनभाषा पालि को अपनाया। उन्होंने भिक्षुओं को भी किसी एक भाषा का आग्रह छोड़ कर अपनी-अपनी मातृभाषा में ही धर्म सीखने एवं कहने की अनुमति दी—"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अपनी भाषा में बुद्धवचन के सीखने की" प्रान्तीय भाषाओं के शब्दों के प्रति भी विशेष आग्रह न कर समयोचित प्रयोग के लिए भी उन्होंने आदेश दिया—"भिक्षुओ! वही वस्तु किन्हीं किन्हीं जनपदों में पाती भी पुकारी जाती है, पत्त भी, वित्त भी, शराव भी, धारोप भी, पोण भी, पिसीलव भी, इस प्रकार जैसे जैसे उन उन जनपदों में पुकारते हैं वैसे वैसे दृढ़ता से ग्रहणकर आग्रह पूर्वक व्यवहार नहीं करना चाहिए, प्रत्युत जहाँ-जहाँ जिन-जिन शब्दों का प्रचलन हो, उन्हीं-उन्हीं का प्रयोग करना चाहिए।" इस प्रकार तथागत एवं भिक्षुओं ने जहाँ पर भी जो कुछ उपदेश दिया उसे जनसाधारण भली प्रकार ग्रहण किया।

धर्म-प्रचार की सहिष्णुता

तथागत की धर्म-विजय अपूर्व एवं महान् थी। उन्होंने अपने अनन्त गुणों के प्रताप से ही ऐसी अद्‌भुत

धर्म-विजय की। तथागत के श्रावक भी अपने सद्गुणों के प्रकाश से मानव मात्र को प्रकाशित करते हुए सर्वत्र विचरण किये। उन्होंने नाना प्रकार का कष्ट सहा, किन्तु अपने उद्देश्य से न डिगा। उनमें धर्मप्रचार की पूर्ण रूप से सहिष्णुता थी। इस बात को हम आयुष्मान् पूर्ण और तथागत के वार्तालाप से भली प्रकार जान सकते हैं। शास्ता ने आयुष्मान् पूर्ण से पूछा—

"पूर्ण! तू किस जनपद में विहार करेगा?"

"भन्ते! सूनापरान्त नामक जनपद है, मैं वहाँ विहार करूँगा।"

"पूर्ण! सूनापरान्त के मनुष्य चण्ड हैं, कठोर हैं, यदि वे तुझे डाँटे या गाली देंगे तो तुझे क्या होगा?"

"यदि भन्ते! सूनापरान्त के मनुष्य मुझे डाँटे या गाली देंगे, तो मुझे ऐसा होगा—सूनापरान्त के मनुष्य भद्र हैं, जो मुझपर हाथ से प्रहार नहीं करते। भगवान् मुझे ऐसा होगा, सुगत! मुझे ऐसा होगा।"

"पूर्ण! यदि वे तुझपर हाथ से प्रहार करें!"

"तो भन्ते! मुझे ऐसा होगा—यह सूनापरान्त के मनुष्य भद्र हैं, जो मुझे डंडे से नहीं मारते।"

"पूर्ण! यदि वे डंडे या शस्त्र से मारें?"

"तो भन्ते! मुझे ऐसा होगा—'वे मेरे प्राण नहीं लेते।"

"यदि पूर्ण! सूनापरान्त के मनुष्य तुझे तेज हथियार से मार डालें?"

"तो भन्ते! मुझे ऐसा होगा—उन भगवान् के कोई-कोई शिष्य हैं जो जीवन से तंग आकर, ऊब कर, घृणाकर आत्महत्या करने के लिए हथियार खोजते हैं, सो मुझे बिना खोजे ही हथियार मिल गया।"

"साधु! साधु!! पूर्ण साधु! तू इस प्रकार के शम, दम से युक्त हो सूनापरान्त जनपद में वास कर सकता है।"

तथागत की अनुपम धर्म-विजय एवं उनके अनन्त गुणों की तुलना नहीं की जा सकती। आयुष्मान् सारिपुत्र के शब्दों में "सम्बोधि (परम ज्ञान) में भगवान् से बढ़कर कोई दूसरा श्रमण या ब्राह्मण न हुआ, न होगा, न इस समय है।" उन अनन्त ज्ञानी सम्यक् सम्बुद्ध का जिन्होंने दर्शन किया, जिन्हें उनकी धर्म-विजय द्वारा विजित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, उन कृतपुण्य व्यक्तियों का जीवन धन्य था! वे सफल मानव सन्तान थे! हमारे लिए तो केवल उनकी पुण्य-स्मृतियाँ एवं वचनामृत ही अवशेष हैं! उन महान् धर्म-विजयी तथागत को बार-बार प्रणाम्।

सच्चा धर्म

श्री अनन्त रामचन्द्र कुलकर्णी

सिक्के की तरह धर्म दो प्रकार के होते हैं—एक सच्चा धर्म और दूसरा मिथ्या या नकली धर्म। सच्चा धर्म होता है सचाई का रास्ता, न्याय का रास्ता, नीति का रास्ता। इस दृष्टि से धर्म आचरण की बात है न कि शुष्क तर्क या तत्वज्ञान की। मिथ्या या नकली धर्म होता है परंपरा, शुष्क तर्क और मिथ्या आडंबर को ही अपने जीवन में महत्व का स्थान देना। मिथ्या धर्म से समाज में सांप्रदायिकता या गुट निर्माण होते हैं। अमूक परंपरा तथा तत्वज्ञान को मानने वाले लोग अमूक धर्म के अनुयायी कहलाते हैं। इस विचार-धारा में सदाचार को गौण स्थान दिया जाता है। सचाई का रास्ता ही यदि सच्चा धर्म है तो समस्त विश्व का धर्म एक ही हो सकता है और यही मानव धर्म है। जैसे समस्त विश्व को प्रकाश देनेवाला सूर्य एक ही है वैसे ही मनुष्य मात्र के सुख का साधन भी एक ही है और वह साधन है सच्चाई का मार्ग। हिंदू धर्म, इस्लाम धर्म, ईसाई धर्म इत्यादि सांप्रदायिकता हैं न कि धर्म। यह तो धर्म के नाम पर मनुष्यों का वर्गीकरण है। इसी से तो मनुष्यों में भेद

निर्माण होकर धर्म सुख का साधन न रह कर कलह का कारण बन जाता है। यदि हमें ये कलह या भेद मिटाने हैं तो हमें सदाचार पर ही जोर देना होगा, क्योंकि सदाचार ही तो सच्चे धर्म की नींव है। अतः सदाचार सब धर्मों का सार है।

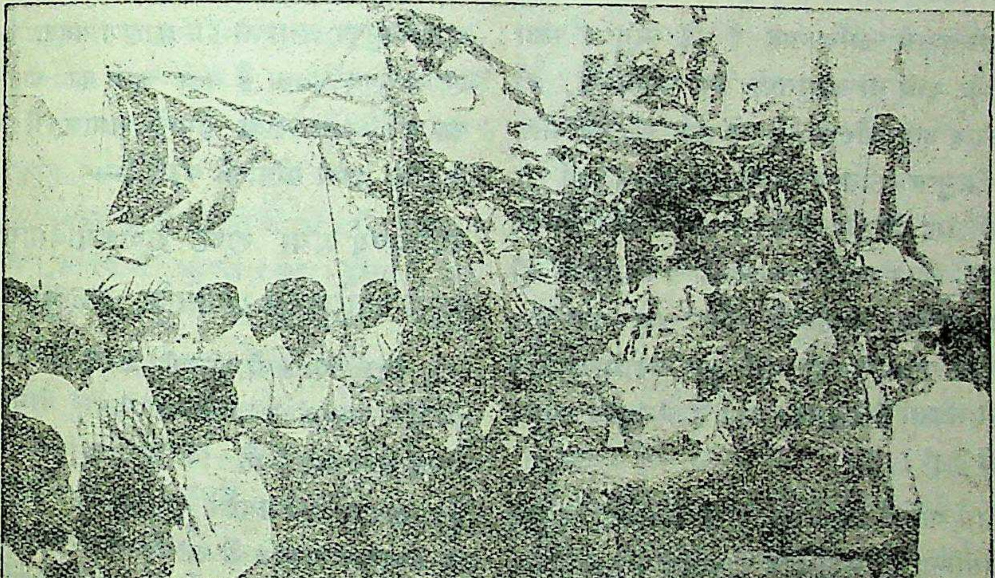

कलकत्ता में बुद्धजयन्ती के जुलूस का एक दृश्य

इसपर कुछ लोग कहेंगे, संसार में धर्म की आवश्यकता ही क्या है? यदि धर्म कलह का ही कारण बन जाता है तो हमें धर्म क्यों चाहिये? हम मानते हैं कि यदि धर्म कलह का ही कारण होता है तो हमें धर्म नहीं चाहिये। परंतु यदि धर्म सुख और शान्ति का साधन है तो हमें धर्म अवश्य ही चाहिये। इस पर कुछ लोग कहेंगे कि इस संसार में अशान्ति तथा दुःख का कारण है संपत्ति का अभाव या उसका असमान या अनुचित वितरण। अतः हमें संपत्ति के समान या उचित वितरण पर ही जोर देना चाहिये। इसपर हम कहते हैं कि हम मानते हैं कि संपत्ति के अभाव में मनुष्य का जीवन दुःखी होता है। मनुष्य की जीवन-यात्रा को सुखी होने के लिये उसे खाने के लिये अनाज चाहिये, ओढने के लिये कपड़ा चाहिये और रहने के लिये मकान चाहिये। इन साधनों के अभाव में मनुष्य का जीवन कष्टमय और दुःखी होगा—ऐसा कौन नहीं मानेगा। परंतु ऐसा भी तो हम नहीं मान सकते कि केवल संपत्ति के प्रभाव से मनुष्य का जीवन सुखी हो सकता है, क्योंकि एक न्यायी गरीब मनुष्य अन्यायी अमीर से सुखी होता है—यह हम देखते हैं। अतः पैसा या संपत्ति मनुष्य के सुख का साधन नहीं हो सकते। अतः सुख का सच्चा साधन है धर्म अर्थात् सत्य, न्याय, नीति का रास्ता।

हम यह कह सकते हैं कि इस संसार में किसी न किसी रूप में सच्चाई और खोटाई में सदा द्वन्द्व चला आ रहा है। और आश्चर्य की बात यह है कि खोटाई भी सचाई का रूप धारण करती है। अतः खोटाई को पहचानना बहुत कठिन प्रश्न बन जाता है। इस लड़ाई में खोटाई का अस्त्र होता है शुष्क तर्क और परम्परा। इस दृष्टि से यदि हम देखेंगे तो हम साधारणतः ऐसा कह सकते हैं कि हमारे समाज में सच्चाई के रास्ते में दो महान् रुकावटें हैं। एक है सर्वशक्तिमान परमेश्वर की कल्पना और दूसरी है चातुर्वर्ण्य की कल्पना। ये दोनों कल्पनाएँ समाज में कैसी हानिकारक हैं इसका हम विचार करेंगे। संसार के बहुत से लोग ऐसा मानते हैं कि परमेश्वर ने यह विश्व निर्माण किया है और वही उसका नियन्ता तथा चालक है। ऐसे सर्वशक्तिमान परमेश्वर के इच्छानुसार ही सब कुछ होता है। वे ऐसा कहते हैं कि पेड़

का पत्ता भी उस परमेश्वर की आज्ञा बिना नहीं हिल सकता। ऐसी विचार-धारा समाज के लिए बहुत हानिकारक है। यदि यह परमेश्वर ही सब कुछ करता है तो फिर इस विश्व में मनुष्य का कुछ भी कर्तव्य नहीं होता। और सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय, पाप और पुण्य ये सब केवल ढकोसला बन जाते हैं। क्योंकि जो कुछ भी हम करते हैं वह सब 'परमेश्वरेच्छा' होने से अच्छा ही समझा जाता है। ऐसी विचार-धारा में पाप-पुण्य को बिल्कुल स्थान नहीं होता। ऐसी विचार-धारा हमें निष्क्रिय या निरंकुश बनाती है। अतः वह त्याज्य है। यह विचार विश्व को दो प्रकार से हानि पहुँचाता है। पहली हानि यह है कि इस विचारधारा से मनुष्य निष्क्रिय या निरंकुश बनता है और दूसरी हानि यह है कि मनुष्य सदा ऐसे परमेश्वर के हाथ की कठपुतली बन जाता है, तो फिर मोक्ष, स्वाधीनता और शान्ति ये सब कल्पना मात्र बन जाते हैं। मनुष्य स्वतन्त्र बनता है इसका अर्थ ही ऐसा है कि वह किसी अन्य शक्ति या व्यक्ति पर निर्भर न रहकर अपना स्वामी बनता है। परमेश्वर की कल्पना हमें पराधीन बनाती है, अतः वह त्याज्य है। 'अत्ताहि अत्तनो नाथो' यही बुद्ध का महामन्त्र हमें लाभदायक हो सकता है। इसका अर्थ है 'मनुष्य अपना स्वामी आपही है।'

मानव धर्म या सच्चे-धर्म के रास्ते में दूसरी महान् रुकावट है जातीयता, जिसकी नींव चातुर्वर्ण्य है। जातीयता यह सम्प्रदायिकता की छोटी बहन है और वह मानवता पर एक महान् आपत्ति है। हो सकता है कि चातुर्वर्ण्य की मूल कल्पना समाज के लिए बड़ी अच्छी रही। परन्तु ऐसा दिखता है कि यह कल्पना कल्पना मात्र ही रही और प्रत्यक्ष व्यवहार में न आ सकी। हम जानते हैं कि सात्विक दृष्टि से इस कल्पना का अच्छा समर्थन हो सकता है। परन्तु तत्व की योग्यता तब ही साबित होती है जब वह आचरण में आता है। इस दृष्टि से हम कह सकते हैं कि इस चातुर्वर्ण्य के फल हमारे समाज के लिये सदा विषैले ही रहे हैं और हम दृढ़ता पूर्वक कह सकते हैं कि चातुर्वर्ण्य हमारे समाज में हमेशा कलह का कारण बन गया। वशिष्ट और विश्वामित्र का झगड़ा हमें क्या सिखाता है? इस पर कुछ लोग कहेंगे 'अन्त में तो विश्वामित्र को ब्राह्मणपद मिल गया'। यह तो केवल युक्तिवाद है, छल है, ढकोसला है। यह तो जन्माधिष्ठित चातुर्वर्ण्य की या जातिवाद की कुशल वकालत है। आज हमारे समाज में कर्म से मनुष्य ब्राह्मण बनता है इस तत्व को कौन हिन्दू व्यवहार में मानता है? और जो हिन्दू इस तत्व को मानकर दूसरों को मनाने की कोशिश करता है वह अहिन्दू बन जाता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं जैन-धर्म, बौद्ध-धर्म, सिख-धर्म की कहानियाँ। जो कोई महापुरुष इस जन्माधिष्ठित चातुर्वर्ण्य पर आघात करता है वह ब्राह्मणों के विरोध का भाजन बन जाता है, अहिन्दू बन जाता है। यही है हमारी सत्य-प्रियता और यही है हमारा धर्म। अतः मनुष्य जन्म से ही ब्राह्मण बनता है और जन्म से ही वह शूद्र बनता है यही आज का चातुर्वर्ण्य है। और यह परिस्थिति सदा हमारे समाज में चली आ रही है। श्री कृष्ण गीता में कहते हैं—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्धि अकर्तारमव्ययम्॥

पहली पंक्ति में श्रीकृष्ण कहते हैं कि मैंने गुण कर्माधिष्ठित चातुर्वर्ण्य निर्माण किया, परन्तु दूसरी पंक्ति के अन्त में वे कहते हैं कि मैं चातुर्वर्ण्य का अकर्ता भी हूँ। इसका अर्थ क्या है? इसका अर्थ यह है कि चातुर्वर्ण्य के नाम पर समाज में जो अनर्थ या जातीयता निर्माण हुई है उसके लिये मैं जिम्मेदार नहीं हूँ। याने जातीयता [illegible] करने के लिये मैं असमर्थ हूँ। चातुर्वर्ण्य की जगह उसका विकृत स्वरूप ही आज हमें दिखाई देता है इस बात को श्रीकृष्ण गीता में मानते हैं। चातुर्वर्ण्य का विकृत स्वरूप नष्ट करने का सीधा रास्ता है चातुर्वर्ण्य न मानना। यदि जातीयता चातुर्वर्ण्य का परिणाम है तो जातीयता मिटाने के लिये हमें चातुर्वर्ण्य की मूल कल्पना नष्ट करनी होगी। प्रत्येक विवेकवान हिन्दू को यह बात जँचती है कि भेद ही हमारी अवनति का कारण है। और चातुर्वर्ण्य तो भेद को ही प्रोत्साहन देता आ रहा है। इसी कारण दलित समाज के हृदय-सम्राट डॉ बाबा साहब आंबेडकर कहते हैं कि भेद हिंदू धर्म की नींव है। यह उनका

कहना सही है ऐसा कौन सत्य-प्रेमी हिन्दू नहीं मानेगा। आज भारत स्वतन्त्र हुआ है। अतः हमारे सामने सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि हमारी स्वतन्त्रता अमर कैसे हो सकती है? भेद नाश का कारण होता है यह सीधी बात हमें नहीं भूलनी चाहिये। अतः भेद नष्ट करना हमारा आद्य कर्तव्य है। हम चार हैं ऐसा कहने की अपेक्षा अगर हम एक हैं ऐसा कहें तो हमारा समाज संघटित तथा बलवान बनता है। अतः चातुर्वर्ण्य की कल्पना हमें नष्ट करनी ही होगी। इस दृष्टि से यदि हम विचार करेंगे तो हमें पता लगेगा कि चातुर्वर्ण्य के नाम पर हमारे समाज में जो जातीयता का नंगा नाच चल रहा है उसपर यदि कोई यथार्थ दवा होगी तो वह दवा है भगवान् बुद्ध। और इसी कारण आज हमारे राष्ट्र ने भगवान् बुद्ध का 'धर्म-चक्र' जिसे हम 'अशोक चक्र' कहते हैं हमारे राष्ट्र ध्वज में ग्रहण किया है। हमारा राष्ट्रध्वज हमारा अभिमान है। वह हमारा सौभाग्य चिन्ह है। यदि हम लोग जातिहीन स्वरूप समाज निर्माण करना चाहते हैं तो हमें भगवान् बुद्ध को ही अपने जीवन में आदर्श रखना होगा। इस पर कुछ लोग कहेंगे कि यह तो सांप्रदायिकता निर्माण करना है। जिस महापुरुष के प्रभाव से हमारा सच्चा मार्ग-दर्शन होता है ऐसे महापुरुष को आदर्श मानना सांप्रदायिकता निर्माण करना नहीं होता। हम देख चुके हैं कि सच्चे धर्म के रास्ते में जो रुकावटें हैं उनके खिलाफ भगवान् बुद्ध ही एक अप्रतिम औषधि हैं। अतः भगवान् बुद्ध हमारे लिये सच्चे धर्म के प्रतीक हैं यह बिलकुल स्पष्ट है। और भगवान् बुद्ध को आदर्श मानने में कुछ अंश में सांप्रदायिकता है तो वह क्षम्य ही है, क्योंकि एक अनिष्ट सांप्रदायिकता नष्ट करने के लिये यदि हमें इष्ट सांप्रदायिकता का अवलंबन करना पड़ा तो वह अनिवार्य है। कम से कम हिंदू लोग तो ऐसा आरोप नहीं लगा सकते, क्योंकि वे तो भगवान् बुद्ध को विष्णु का ९ वाँ अवतार मानते हैं। हिंदुओं के शास्त्रों में कहा है:—

नमो वेद रहस्याय नमस्ते वेद योनये।
नमो बुद्धाय शुद्धाय नमस्ते ज्ञानरूपिणे॥

प्रत्येक हिंदू पूजा के समय अपने संकल्प में 'बुद्धावतारे' मंत्र कहकर प्रगट करता है कि आज वह बुद्ध के युग में हैं।

आज बहुत आनंद की बात है, कि भारत एक गैर-सांप्रदायिक गणराज्य है। यहाँ पर हमें 'सेक्युलर स्टेट' का अर्थ अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। 'सेक्युलर स्टेट' का अर्थ होता है 'ऐहिक' न कि पारमेश्वरिक राज्य। यहाँ पर मनुष्य अपने समस्त प्रश्न अपने सामर्थ्य पर ही निर्भर रहकर बिना किसी परमेश्वर की सहायता से हल कर लेता है। अतः यह एक मानवता का साम्राज्य है। यहाँ पर सांप्रदायिकता को बिलकुल स्थान नहीं है। इस दृष्टि से हम कह सकते हैं कि भारत में आज सच्चे धर्म का साम्राज्य निर्माण हुआ है और इसका प्रत्यक्ष प्रमाण अपने राष्ट्रध्वज में ग्रहण किया हुआ 'अशोक चक्र' है। इस चक्र को हम 'अशोक चक्र' के नाम से पहचानते हैं। परन्तु इस चक्र का निर्माता मानव धर्म प्रणेता भगवान् बुद्ध हैं इस बात को हम नही भूल सकते। वास्तव में यह है भगवान् बुद्ध का 'धर्मचक्र' जिसे भगवान् बुद्ध ने सर्वप्रथम आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व आषाढ़ पूर्णिमा को समस्त विश्व के कल्याण के लिये प्रवर्तित किया था। आज की तरह सम्राट् अशोक ने इसे अपना राज्य चिन्ह माना था। अतः इसको अशोक चक्र के नाम से जानते हैं। परन्तु यह भगवान् बुद्ध का 'धर्मचक्र' है यह एक निर्विवाद सत्य है। इसे बुद्ध ने 'धर्मचक्र' क्यों कहा? महापुरुष अधर्म का नाश धर्म से करते हैं। वे असत्य का नाश सत्य से करते हैं और हिंसा का नाश अहिंसा से। इसी नियम के अनुसार भगवान् बुद्ध ने अधर्म का नाश 'धर्मचक्र' चलाकर किया। अतः जो लोग सेक्युलर स्टेट का अर्थ धर्महीन राज्य करते हैं वे जानबूझकर समाज में भ्रम निर्माण करना चाहते हैं। वे तो सचमुच सांप्रदायिकता या मिथ्या धर्म का साम्राज्य चाहते हैं। ऐसी भ्रामक विचारधारासे हमें बचना चाहिये।

हम देख चुके हैं कि भगवान् बुद्ध ही हमारे लिये सच्चे धर्म के प्रतीक हैं। अतः आज भारत में भगवान् बुद्ध का जयघोष होना आवश्यक है। भगवान् बुद्ध से भारत को ठोस लाभ मिलते हैं। पहला लाभ यह है कि हमारे समाज में जो जातीयता और छूआछूत भेद

प्रचलित हैं, उन पर भगवान् बुद्ध एक प्रभावशाली औषधि हैं। इन रोगों के नष्ट होने पर हमारा समाज संघटित और बलवान बन जायेगा। यदि हम इन भेदों का नाश नहीं करेंगे तो ये भेद ही हमारा नाश करेंगे इस सीधी बात को हमें नहीं भूलना चाहिये। दूसरा लाभ यह है कि भारत को बुद्ध से संसार में पहला स्थान मिलता है।

अतः प्रत्येक भारतवासी का आद्य कर्तव्य है कि वह 'बुद्ध' सरणं गच्छामि' का जयघोष करे और हम दावे के साथ कह सकते हैं कि इसमें केवल भारत का ही नहीं, अपितु समस्त विश्व का कल्याण है।

पूजा

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

उन दिनों बौद्ध धर्म प्रचारार्थ इंग्लैण्ड में था। अब ८ साल हो चले। उन्हीं दिनों की डायरी का यह एक पृष्ठ है। आज की भाषा और भाव—दोनों बदल गये; लेकिन उस दिन का लिखा-लेखा तो उसी दिन की सम्पत्ति है। आज उसमें परिवर्तन कैसे करूँ?......

कुछ दिन से सन्ध्या काल की पूजा में रोज विघ्न पड़ जाता था। आज मैंने निश्चय किया कि पूजा के समय कोई दूसरा कार्य न करूँगा—पूजा ठीक छः बजे आरम्भ कर दूँगा।

अभी छः बजने में दस मिनट बाकी थे। किसी ने आ कर कहा—"एक आदमी आया है; बौद्ध धर्म के बारे में कुछ जानना चाहता है।" मैं दुविधा में फँस गया आज भी पूजा ठीक समय पर न हो सकेगी 'आगन्तुक दूर से आया होगा' सोच मैंने दस मिनट में उससे निबटने की ठानी। जो महाशय आगन्तुक को साथ लाये थे—"आप मि० आर्थर आर० रैडी" आगन्तुक का परिचय देकर चले गये।

मैंने अपने दस मिनट का ख्याल करके नपे तुले शब्दों में बैठने को कहा। वे बैठते ही बोले—"मैं धनी नहीं हूँ। आप की सभा का सभासद बनना चाहता हूँ। चन्दा कितना है?"

"मुझे ठीक-ठीक ज्ञात नहीं, आप चाहते हैं तो मैं पूछ दूँगा और कुछ?"

इन्होंने कहना शुरू किया—"मैं संगीतज्ञ हूँ। मैंने सब धर्मों का अध्ययन किया है ईसाई मत एक ढोंग (Humbug) है। मुझे क्षमा करें। शब्द कड़े हैं। एक बार आपके यहाँ बुद्ध की प्रतिमा को देखा था। कितनी सचाई थी।"

"आपने बुद्ध धर्म के बारे में क्या-क्या किताबें पढ़ी हैं?"

"मैंने एक मामुली किताब पढ़ी है। और हाँ, वृतानिया विश्वकोष (Encyclopedia Britanica) में पढ़ा है। हाँ, मैं आपके यहाँ से किताब लेनी चाहूँगा।"

"यदि आपके यहाँ से पुस्तक खरीदनी हो तो किसी समय भी खरीद सकते हैं, यदि पुस्तकालय से लेनी हो तो रविवार को ही पुस्तकाध्यक्ष से मिल सकती है।"

"मैं लाइब्रेरी से लेना चाहूँगा। आज मिल जाय तो रविवार को लौटा दूँगा।"

"आज तो पुस्तकाध्यक्ष के न होने से पुस्तक मिलनी कठिन है। रविवार को आएँ तो मिल सकेगी।"

मालूम होता था कि आगन्तुक कुछ कहना चाहता है लेकिन कह नहीं रहा है। वह बोला···

"आप मुझे मेरे कपड़े के लिये क्षमा करें। मैं—ठीक पहने नहीं हूँ। मेरा बूट टेढ़ा है। यह ओवरकोट बहुत नीचे तक···"

मैंने बीच में रोक कर कहा—"आदमी के कपड़े मुख्य चीज नहीं हैं। आदमी मुख्य है। मेरे ही कपड़े कौन अच्छे हैं?"

आगन्तुक—"मुझे आशा नहीं कि कभी मैं अमीर हो सकूँगा।...यद्यपि मैं गरीब हूँ, लेकिन फिर भी मैं

एक अच्छा आदमी हूँ ।”

कहना चाहा—‘अरे अच्छे आदमी तो गरीबों में ही होते हैं !’ कुछ सोच कर रुक गया ।

आगन्तुक—“मैं संगीतज्ञ हूँ । आज-कल वायरलेस (Wireless) हो गया है । संगीत की कदर नहीं ।”

मुझे अपने दस मिनट का ख्याल था । इसी से बोला—“ठीक कह रहे हैं ।”

आगन्तुक—“क्या मैं अपना पता दे दूँ ?”

मैंने कागज देते हुये कहा—“बड़ी खुशी से ।”

आगन्तुक ने लिखा—“ग्रो०...।” फिर बोला—“देखिये ! मुझे पाँच मील जाना है । मैं कोशिश कर रहा हूँ कि यहाँ समीप में कोई मकान ले लूँ ।”

मैं चुप रहा । दस मिनट बीत चुके थे ।

आगन्तुक—“आपके यहाँ अंग्रेजी बाजा (Organ) नहीं है ? मैं बाजा अच्छा बजाता हूँ ।”

“नहीं ।”

“आप मुझे जब चाहें बुला सकते हैं, मैं गरीब आदमी हूँ ।” “आप जब चाहें आएँ ।”

आगन्तुक उठा । दरवाजे तक गया । फिर लौटा—“क्या आप मेरी कुछ सहायता करेंगे ? मुझे पाँच मील पैदल जाना होगा ।”

“पैसा रखना भिक्षु-नियम के विरुद्ध है” मैंने भरसक नम्रता पूर्वक कहा—“मेरे पास पैसा नहीं है ।”

आगन्तुक ने एक बार मेरी ओर देखा और बाहर चला गया । मैं अपनी पूजा करने की जल्दी में अन्धा था । पूजा करने बैठा तो मानों कोई कुछ कह रहा था—“अरे ! असली पूजा का अवसर तो तूने गवाँ दिया । अब क्या पूजा करने बैठा है ? वह बौद्ध धर्म का अध्ययन करने नहीं आया था । वह आया था तुझसे कुछ सहायता माँगने । बिजली के लैम्प के प्रकाश में, जलती आग के पास, तुझे पुस्तकों से घिरे देख कर उसने सोचा होगा—जिसके बाहर आग जल रही है, उसके दिल में भी कुछ आग होगी । उसे क्या मालूम कि तेरा दिल बिलकुल ठंडा है, और तू पूजा करने की धुन में अन्धा है । वह इंगलैण्ड के तीस लाख बेकारों में से एक था ! तुझे कुछ ‘पुण्य’ कमाने का अवसर देने आया था—लेकिन तुझे तो पूजा करने की धुन थी ।”

नीचे उतर कर देखा । आदमी चला गया था । अब पूजा क्या खाक होती ?

नेपाल में वज्रयान का उदय

श्री अनन्त

नवीं शताब्दी में नेपाल में गुणकामदेव नामक एक धार्मिक राजा राज्य कर रहा था, उसके समय में नेपाल में बौद्ध धर्म की पुनः नव जागृति हुई थी । उसी समय भारत के गौड़ देश का राजा प्रचण्डदेव भिक्षु होकर नेपाल में वास करता था, जिसका भिक्षु नाम शान्तिकर वज्राचार्य था, उसने ही स्वयम्भू चैत्य का निर्माण कराया था—ऐसा स्वयम्भू पुराण में वर्णित है । किन्तु भली प्रकार नेपाल और तिब्बत के इतिहास-ग्रन्थ तथा स्वयम्भू पुराण के अध्ययन से विदित होता है कि शान्तिकर आचार्य कोई दूसरे नहीं, यह आचार्य शान्त रक्षित (७४०-८-४० ई०) का ही नाम है, जो अज्ञानतावश स्वयम्भू पुराण के लेखक ने शान्तरक्षित का शान्तिकर कर दिया है ।

तिब्बती इतिहास से हम जानते हैं कि आचार्य शान्तरक्षित का जन्म गौड़ देश में हुआ था । ये अपने समय के नालन्दा विश्वविद्यालय के प्रख्यात् बौद्ध विद्वान् थे । इन्होंने अनेक ग्रन्थ लिखे थे, जिनमें से निम्नलिखित भोट भाषा में अभी तक मिलते हैं ।

(१) सत्याद्वयविभंग पञ्जिका	(टीका)
(२) मध्यमकालङ्कार कारिका	,,
(३) मध्यमकालङ्कार वृत्ति	,,
(४) बोधिसत्वसंवर विंशिका वृत्ति	,,
(५) तत्व संग्रह कारिका	(मौलिक)
(६) ज्ञानसिद्धि	,,
(७) वादन्याय विपञ्चितार्थ	(टीका)

इनमें से केवल तत्वसंग्रह कारिका औन ज्ञानसिद्धि के ही मूल संस्कृत ग्रन्थ प्राप्त हुये हैं।

यद्यपि आचार्य शान्तरक्षित ने विशेष रूप से तिब्बत में धर्म का प्रचार किया था, किन्तु उन्हें नेपाल से बड़ा प्रेम था। उन्होंने नेपाल में अपने बहुत दिन व्यतीत किये थे। यों तो उन दिनों तिब्बत जाने के लिये सभी भारतीय नेपाल से होकर ही जाते थे और नेपाल की जनता द्वारा उनका पूरा आदर-सत्कार होता था। किन्तु आचार्य शान्तरक्षित पहले तिब्बत जाने के लिये नहीं, प्रत्युत नेपाल में बौद्ध धर्म के पुनरुत्थान हेतु भारत से गये थे। उन्होंने नेपाल में बहुत दिनों तक रह कर अपने गूढ़ ज्ञान का उपदेश दिया था। नेपालवासी आचार्य को बहुत मानते थे। आचार्य की भी उन पर विशेष कृपा थी। आचार्य ने नेपाल को अपना धर्मक्षेत्र समझ कर वहाँ वास किया था और स्वयम्भू जैसे महान् चैत्य का निर्माण-कार्य सम्पन्न कराया था। राजा गुणकामदेव ने उनका पूर्णरूप से सम्मान किया था। वे विद्वान् और योगी होने से नेपालवासियों के श्रद्धा-भाजन बन गये थे।

आचार्य को नेपाल गये अभी बहुत दिन नहीं हुये थे कि तिब्बत के सम्राट रिब्र स्रो ङ्ल्दे वचन (ठि सोङ् देचन्) ने आचार्य को अपने यहाँ बुलाने के लिये ज्ञानेन्द्र को भारत भेजा। वह महाबोधि (=बुद्ध गया) के दर्शन के बाद नालन्दा पहुँचा, किन्तु उसके नालन्दा पहुँचने से पूर्व ही आचार्य नेपाल चले गये थे, अतः उसने नेपाल के लिये प्रस्थान किया। जब नेपाल पहुँचा; तब वह उनका दर्शन कर फूला न समाया और अपने सम्राट् का सन्देश कह सुनाया। उन्होंने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

आचार्य सत्कार पूर्वक तिब्बत गये, किन्तु कई एक कारणों से कुछ ही दिनों में पुनः नेपाल लौट आये और वहाँ दो वर्ष रह कर धार्मिक कार्यों में समय व्यतीत किया।

दो वर्ष के पश्चात् ज्ञानेन्द्र फिर आचार्य के पास आया और बहुत आग्रह करके पुनः तिब्बत ले गया। भोट देश के ऐतिहासिकों का कहना है कि आचार्य ने इस बार राजा को उड़ीसा के राजवंशोत्पन्न आचार्य पद्मसम्भव को बुलाने को कहा। यह भी कहते हैं कि पद्मसम्भव ने मन्त्रबल से भोट के सभी देवी-देवता, डाकिनी, योगिनी, खसर्पिणी, यक्षिणी, भूत, प्रेत, वैताल आदि को परास्त करके उन्हें बौद्ध धर्म का सहायक होने के लिये प्रतिज्ञाबद्ध कराया।

आचार्य शान्तरक्षित तिब्बत जाकर संस्कृत भाषा में उपदेश देते थे, उसका अनुवाद कश्मीरी पण्डित अनन् तिब्बती में करते थे। वे वहाँ बहुत दिनों से थे, उन्हें तिब्बती का पूरा ज्ञान था। वे नेपाल होते हुये ही तिब्बत गये थे।

सौ वर्ष की अवस्था में आचार्य का तिब्बत में ही घोड़े के पैर से चोट लग जाने से ८४० ई० में देहान्त हो गया। उनकी धातुयें आज भी वहाँ एक प्रधान मन्दिर में शीशे के भीतर रक्खी गई हैं, जो पहले एक चैत्य में निधान करके रखी गई थीं।

आचार्य शान्तरक्षित के समय में नेपाल में बौद्ध धर्म को जो प्रोत्साहन मिला, उसका ही प्रताप है कि आज वह चैत्यों और विहारों का देश बना है।

आचार्य शान्तरक्षित के पश्चात् तिब्बत जानेवाले सभी कश्मीरी तथा भारतीय विद्वान् भिक्षु नेपाल से ही होकर गये, उन्होंने नेपाल में अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन अवश्य किया होगा। भिक्षुओं का उपदेश करना—एक बहुत बड़ा कर्त्तव्य है, अतः उन्होंने नेपाली बौद्धों को सदा अपने उपदेश दिये होंगे। उन धर्म-प्रचारक भिक्षुओं में कमलशील, दीपंकर श्रीज्ञान (=अतिशा) आदि उल्लेखनीय हैं। तिब्बत जाते समय जब दीपंकर श्रीज्ञान अपनी मंडली के साथ नेपाल पहुँचे थे तब नेपाल के तत्कालीन राजा ने उनको सम्मान के साथ अपना अतिथि बनाया था। उसने उन्हें नेपाल में रहने के लिये बहुत आग्रह किया था। उसके आग्रह के कारण दीपंकर श्रीज्ञान ने एक बरस नेपाल में व्यतीत किया और वहाँ अनेक धार्मिक

कार्यों को किया। उस समय नेपाल में पुनः बौद्ध धर्म की प्रभुता इस प्रकार फैली कि नेपाल-राजवंश का राजकुमार भी उनके पास भिक्षु बन गया। वहीं से उन्होंने गौडेश्वर महाराज नेपाल को एक पत्र लिखा, जिसका अनुवाद आज भी तंज्यूर में वर्तमान है।

तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जब भारत के बौद्ध केन्द्रों नालन्दा, विक्रमशिला, उडन्तपुरी का अन्त हो गया, तब विक्रमशिला के प्रधान विद्वान् और भारतीय बौद्ध संघराज शाक्य श्रीभद्र सन् ११२५ में शरणार्थी के रूपमें भारत से नेपाल गये। वे कश्मीर के रहनेवाले थे, किन्तु कश्मीर न जाकर उत्तर पार्वतीय प्रान्तों में ही जाना उन्होंने उचित समझा, क्योंकि भारत में मोहम्मद बिनबख्तियार खिलजी का ध्वंसकारी कार्य जारी था। वे नेपाल जाते समय नेपाली भिक्षु संघश्री की प्रार्थना से विभूतिचन्द्र, दानशील, सुगतश्री आदि अन्य आठ पंडितों के साथ गये और वहाँ कुछ दिनों तक रहे। वे वहाँ से तिब्बत को गये और फिर सन् १२१३ ई० में नेपाल से ही होते हुये अपनी जन्मभूमि कश्मीर को लौटे।

तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में पावा, कुशीनगर, देवदह, लुम्बिनी, कपिलवस्तु, श्रावस्ती आदि के सभी बौद्ध विहार मुसलमान आक्रमणकारियों द्वारा नष्ट कर दिये गये और वहाँ के भिक्षुओं को भाग कर नेपाल में शरण लेनी पड़ी। उस समय भारत में महायान का प्राबल्य था। जब ये भारतीय भिक्षु नेपाल पहुँचे, तब वहाँ वज्रयान और महायान ने बड़ा जोर पकड़ा। उस समय अनेक तन्त्र-मन्त्र के ग्रन्थों की रचनाएँ हुईं।

इधर खास नेपाल में नये-नये भिक्षुओं के आने से सदा नवीनता का भान होता रहा, नेपाल के बौद्ध उनका सम्मान करने में नहीं चूकते थे, उधर पश्चिमी नेपाल में ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से बौद्ध धर्म की पर्याप्त उन्नति होती चली आ रही थी। उत्तरकाशी की मिली बुद्धमूर्ति कभी नेपाल राज्यान्तर्गत थी, जिसका निर्माण ग्यारहवीं शताब्दी के प्रथमपाद में हुआ था। बद्रीनाथ का प्रसिद्ध मन्दिर जिसको आजकल हिन्दू लोग अपना देवालय समझते हैं। यह एक प्रसिद्ध बौद्धतीर्थ था, जिसे उन्हीं दिनों भोट देशवासियों ने निर्मित कराया था।

जयस्थिति मल्ल (ई० सन् १३८५-१३९२) के समय में नेपाल के बौद्ध धर्म को बड़ी ठेस लगी और तभी से उसका ह्रास होना प्रारम्भ हुआ। जयस्थिति मल्ल बौद्ध विरोधी राजा था, उसने बौद्धों पर अनेक अत्याचार किये। उनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं—

(१) भिक्षुओं के विहार और मन्दिर अपने अधिकार में कर लिया। देवोत्तर सम्पत्ति राज्यकीय कोष समझी जाने लगी। कोई भी व्यक्ति इसके विरुद्ध नहीं कर सकता था।

(२) जीवन-पर्यन्त के लिये भिक्षु बनना बन्द कर दिया गया। जो कोई भिक्षु बनना चाहता, वह चार दिन मात्र भिक्षु-चर्या का निर्वाह कर सकता था।

(३) भिक्षुओं की एक अलग जाति ही बना दी गई और उन्हें सोना का काम दिया गया। आज भी नेपाल में सभी शाक्य भिक्षु यही काम करते हैं।

(४) बौद्ध धर्म, जो जातिवाद को नहीं मानता था, जातिवाद को मानने के लिये बाध्य किया गया। भरपूर कोशिश करके सारे नेपाल में चार वर्ण और छत्तीस जातियों की मर्यादा स्थापित की गई।

जयस्थिति मल्लके समय से लेकर आज तक नेपाल का बौद्ध धर्म शिथिल ही होता आया है। बौद्ध राजाओं के अभाव में बौद्धों की सब प्रकार से दुर्दशा ही होती रही है।

इस समय नेपाल में चालीस लाख से भी अधिक बौद्धों की संख्या है। नेवारी, तामंग, ग्यरप, गुरुङ् आदि जातियाँ बौद्ध हैं। मगर, रायलिम्बू लोग भी पूर्वमें बौद्ध ही थे।

इनकी शाखायें-प्रशाखायें भी बौद्ध थीं। यथापि आजकल नेपाल का बौद्ध धर्म बहुत विकृत हो चुका है तथापि नेपाल के चैत्य और विहारों को देखकर ऐसा जान पड़ता है कि यह चैत्यों का देश है। जिधर देखो, उधर ही चैत्यों की भरमार है। मार्ग चलते समय सदा उन्हें दाहिने हाथ करके जाना पड़ता है। सम्प्रति इन चैत्यों की मरम्मत करने के लिये बौद्धों के पास पैसे नहीं हैं। जो देवोत्तर सम्पत्ति थी वह राजा द्वारा हड़प ली गई, किन्तु जीर्ण-शीर्ण दशा में भी ये अपने अतीत की याद दिलाते हुये खड़े हैं।

नेपाल में जब से वज्रयान, तन्त्रयान आदि का प्राबल्य हुआ और जयस्थिति मल्ल के समय में जब भिक्षुओं तथा बौद्ध-गृहस्थों को सताया गया, तब से यहाँ के भिक्षु घर-बारी हो गये और घर-गृहस्थी का जीवन व्यतीत करने लगे। सम्प्रति शाक्य भिक्षुओं की दशा बिल्कुल ही चिन्तनीय है। ये समयानुसार प्रव्रजित होते हैं। इन्हें प्रव्रजित करने के लिये वज्राचार्य (जो गृहस्थ होते हैं) आते हैं। पाटन, काठमाण्डू आदि नगरों में बहाल (=विहार) बने हुये हैं, इन्हीं बहालोंमें इनकी प्रव्रज्या होती है। वज्राचार्य इन्हें अष्ट परिष्कार के साथ श्रामणेर-शील देते हैं। ये प्रव्रजित होकर सात घरों में भिक्षाटन करते हैं। चार दिन के बाद चीवर छोड़ कर गृहस्थ हो जाते हैं। चीवर छोड़ने के समय भी अपने गृहस्थ-गुरु वज्राचार्य के पास जाकर ही छोड़ते हैं। उस समय वे कहते हैं—"इस भिक्षु-चर्या का पालन करना कठिन है, अतः मैं गृहस्थ धर्म का पालन करूँगा।"

शाक्य-भिक्षु-जाति का कोई भी व्यक्ति बिना प्रव्रजित हुये किसी शुभ-कार्य में सम्मिलित नहीं हो सकता है। प्रव्रजित न होकर यदि वह विवाह करता है, तो जिस जाति की स्त्री के साथ विवाह होता है, वह उसी जाति का हो जाता है और यदि विवाह के पश्चात् उस स्त्री के हाथ का भोजन ग्रहण नहीं करता है, तो शाक्य-भिक्षु ही रहता है। प्रायः विवाह शाक्य-भिक्षु परम्परा में ही होता है। विवाह-सम्बन्ध वज्राचार्यों के साथ भी होता है। शाक्य और वज्राचार्यों में केवल इतना ही अन्तर है कि शाक्य भिक्षु पुरोहिती नहीं करते और वज्राचार्य प्रव्रज्या के पश्चात् आचार्यत्व को ग्रहण करके वज्रयानी होकर पुरोहिती करते हैं। ये लोग माँस, सुरा, मैथुन, मद्य, मीन—इन पाँच मकारों का सेवन करते हैं। इन्होंने ऐसे मन्त्रों की रचनायें भी कर ली हैं—जिनके पढ़ देने मात्र से पाप दूर हो जाते हैं। इस 'सुरा-शोधन मंत्र' का इनमें खूब प्रचार है—

हकांर हरते वर्णं होकांर गन्धनाशनम्।
हीकांर वीर्यहन्ता च अमृताकार भावये॥

शाक्य भिक्षुओं में जो महास्थविर (वृद्ध भिक्षु) होते हैं, उन्हें 'थैपाजू' की उपाधि दी जाती है। यही एक प्रकार से संघनायक होते हैं। थैपाजू होने के लिये इन्हें बहुत धन भी व्यय करना पड़ता है।

हिन्दुओं की भाँति यद्यपि नेपाल के बौद्धों में जाति-भेद नहीं हैं, फिर भी वे तीन श्रेणियों में बँटे हुये हैं। (१) बाँड़ा (२) उराय (३) ज्यापू। बाँड़ा समाज में श्रे माने जाते हैं। इनमें भी नवश्रेणियाँ हैं, जिनमें गूभाजू (गुह्यवादी) पुरोहिती करते हैं। इन्हें वज्राचार्य भी कहते हैं। उराय लोग वाणिज्य-व्यवसाय करते हैं और ज्यापू खेती-गृहस्थी के कार्य।

नेपाल के बौद्धों का सामाजिक कार्य—"गुठी" (समिति) के विधान के अनुसार होता है। कोई विशेष बात आ पड़ने पर बौद्धों को भी हिन्दू राजगुरुके पास जाना पड़ता है और वह हिन्दू शास्त्र के अनुसा फैसला करता है। फैसले में वह धनदण्ड, कारावास, प्राणदण्ड आदि में से जो चाहे दे सकता है। राजगुरु ने बौद्धों को इस तरह जकड़ रखा है कि वे उसके भय से अपना सिर भी कभी नहीं उठा सकते। इसी राजगुरु के प्रताप से सन् १९४४ में नेपाल देशीय भिक्षुओं को राज्य से निर्वासित होना पड़ा था।

समदर्शी तथागत

श्री वेदराज प्रसाद

भगवान् बुद्ध सब पर समान दृष्टि रखते थे। राजा और रंक, पण्डित तथा मूर्ख सब उनके लिए समान थे। उन लोकगुरु ने सबके ऊपर मैत्री, करुणा, मुदिता आदि की जो अनुपमधारा प्रवाहित की उसमें किंचितमात्र भी विभिन्नता न थी। उन्होंने संसार के सभी प्राणियों को राग, द्वेष और मोह में पड़े छटपटाते हुए देखा। गृहस्थ जनों को सांसारिक बन्धनों में दुःख काटते तथा साधु-संन्यासियों को परस्पर द्वेष दृष्टि से देखते हुए कभी-कभी उन समदर्शी तथागत का हृदय धर्म-संवेग और करुणा से भर जाता था। तथागत में सम्प्रदायवाद के

लिए लेशमात्र भी स्थान न था। उन्होंने सभी धर्मावलम्बियों, सभी जातियों, सभी कुलों, सभी गाँवों एवं सभी समुदायों के साथ एक साथ व्यवहार किया, एक दृष्टि से देखा। हम देखेंगे कि उन लोकनाथ में किस प्रकार अन्य सम्प्रदायों के लिए समदर्शिता एवं महान् उदारता थी।

एक समय भगवान् नालन्दा में प्रावारिक के आम्रवन में विहार करते थे। उस समय निगंठ नातपुत्त जैन-साधुओं की बड़ी जमात के साथ नालन्दा में ही विहार करते थे। उनका दीर्घ-तपस्वी नामक एक शिष्य दोपहर के बाद भगवान् के पास गया। भगवान् के साथ धार्मिक शास्त्रार्थ कर जहाँ निगंठ नातपुत्त थे, वहाँ गया। निगंठ नातपुत्त ने दूर से ही दीर्घ-तपस्वी को आते देख पूछा—

'तपस्वी ! इस दोपहरी में तू कहाँ से आ रहा है ?''

"भन्ते ! श्रमण गौतम के पास से आ रहा हूँ।"

"तपस्वी ! क्या तेरा श्रमण गौतम के साथ कुछ वार्तालाप हुआ ?"

"हाँ भन्ते ! मेरा श्रमण गौतम के साथ वार्तालाप हुआ।"

"तपस्वी ! श्रमण गौतम के साथ तेरा क्या वार्तालाप हुआ ?"

तब दीर्घ-तपस्वी ने भगवान् के साथ जो कुछ बातें हुई थीं, वह सब कह सुनाया। इसे सुन निगंठ नातपुत्त ने दीर्घ-तपस्वी की बड़ी प्रशंसा की। उसी परिषद् में बैठा हुआ उपालि गृहपति उस प्रशंसा के शब्द सुन भगवान् के साथ शास्त्रार्थ करने के लिए निगंठ नातपुत्त से आज्ञा माँगते हुए कहा—"भन्ते ! यदि आप मुझे आज्ञा दें तो मैं श्रमण गौतम के साथ शास्त्रार्थ करूँ। यदि मेरे सामने श्रमण गौतम वैसे ही ठहरा रहा तो जैसे बलवान् पुरुष लम्बे बालवाली भेड़ को बालों से पकड़ कर निकाले, घुमावे, डुलावे, उसी प्रकार मैं श्रमण गौतम के वाद को निकालूँगा, घुमाऊँगा, डुलाऊँगा। अथवा जैसे कि शराब बनाने, वाला भट्टी के छन्ने को तालाब में फेंक कर, कानों को पकड़ निकाले, घुमावे, डुलावे। अथवा जैसे बलवान शराबी एक बच्चे के कान को पकड़ कर हिलावे, घुमावे, डुलावे; ऐसे ही मैं श्रमण गौतम के साथ वाद करूँ ?"

तब निगंठ नातपुत्त ने कहा—"जा गृहपति ! जा, श्रमण गौतम के साथ शास्त्रार्थ कर।" ऐसा कहने पर दीर्घ तपस्वी ने निगंठ नातपुत्त से कहा—"भन्ते आपको यह न पसन्द आये कि उपालि गृहपति श्रमण गौतम के पास जाकर शास्त्रार्थ करे। भन्ते ! श्रमण गौतम मायावी है। बुद्धि फेरनेवाली माया जानता है, जिससे दूसरे पन्थाइयों के श्रावकों को अपनी ओर फेर लेता है।"

"तपस्वी ! यह सम्भव नहीं कि उपालि गृहपति श्रमण गौतम का श्रावक हो जाय। सम्भव है कि श्रमण गौतम ही उपालि गृहपति का श्रावक हो जाय। जा गृहपति ! श्रमण गौतम के साथ शास्त्रार्थ कर।"

दीर्घ तपस्वी के बार-बार मना करने पर भी निगंठ नातपुत्त ने उपालि गृहपति को तथागत के पास भेजा ही। उपालि गृहपति भगवान् के पास गया और अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए उपालि गृहपति ने भगवान् से कहा—"भन्ते ! क्या दीर्घ-तपस्वी यहाँ आए थे ?"

"गृहपति ! दीर्घ-तपस्वी यहाँ आया था।"

"भन्ते ! दीर्घ तपस्वी के साथ आपका कुछ वार्तालाप हुआ ?"

''गृहपति ! हाँ कुछ बातें हुईं।"

"तो भन्ते ! दीर्घ-तपस्वी के साथ क्या-क्या बातें हुईं ?"

तब भगवान् ने दीर्घ-तपस्वी के साथ जो कुछ बातें हुई थीं सब कह सुनाया। उसे सुन उपालि गृहपति को पहले तो शास्त्रार्थ करने की इच्छा उत्पन्न हुई, किन्तु तथागत के एक-एक वचन ने उसके हृदय की भावना को पलट दिया। भगवान् ने उसे नाना प्रकार की उपमाओं से समझा-समझा कर दीर्घ तपस्वी के वाद एवं निगंठ नातपुत्त के सिद्धान्त का खण्डन किया। तथागत की वह मधुर वाणी आज भी हमें मज्झिम निकाय के उपालि सुत्त में उपलब्ध है। तथागत के उपदेश को सुन उपालि गृहपति ने कहा—"भन्ते ! भगवान् की पहली उपमा से ही मैं प्रसन्न हो गया था। विचित्र प्रश्नों की व्याख्या को और भी सुनने की इच्छा से ही मैंने भगवान् को प्रतिवादी बनाना पसन्द किया। आश्चर्य भन्ते ! अद्भुत भन्ते !! जैसे औंधे को

सीधा करदे, ढँके को उघाड़ दे, भूले को रास्ता बतला दे, अन्धकार में तेल का प्रदीप रख दे, जिससें कि आँख वाले रूप को देखें, ऐसे ही भगवान् ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित किया। आज से भगवान् मुझे करबद्ध शरण में आया हुआ अपना उपासक धारण करें।"

"गृहपति ! सोच-समझ कर काम करो। तुम्हारे जैसे मनुष्यों का सोच समझ कर ही करना अच्छा होता है।"

'भन्ते ! मैं भगवान् के इस कथन से और भी प्रसन्न हुआ। यदि भन्ते दूसरे पन्थाई मुझे श्रावक पाते, तो सारी नालन्दा में पताका उड़ाते कि उपालि गृहपति हमारा श्रावक हो गया और भगवान् मुझे कहते हैं—"गृहपति ! सोच समझ कर करो। भन्ते यह दूसरी बार मैं भगवान् की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु संघ की भी।"

'गृहपति ! दीर्घ-काल से तुम्हारा कुल निगंठों (जैनियों) के लिए प्याऊ की तरह रहा है, उनके जाने पर 'पिंड नहीं देना चाहिए'—ऐसा मत समझना।"

"भन्ते ! मैं आपकी इस बात से और भी प्रसन्न हू क्योंकि मैंने सुना था कि श्रमण गौतम ऐसा कहता है कि मुझे ही दान देना चाहिए, दूसरों को दान न देना चाहिए। मेरे ही श्रावकों को दान देना चाहिए दूसरों को दान न देना चाहिए। मुझे ही देने का महाफल होता है, दूसरों को देने का महाफल नहीं होता। और भगवान् तो मुझे निगंठों को भी दान देने के लिए कहते हैं। भन्ते ! हम भी इसे युक्त समझेंगे। यह मैं तीसरी बार भगवान् की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु संघ की भी।"

उपालिगृहपति भगवान् को प्रणाम् कर प्रसन्न मन घर लौट गया।

इस एक छोटी घटना से भी तथागत की महान् उदारता प्रगट हो रही है। जो लोग तथागत से ईर्ष्या एवं डाह रखते थे, जो भगवान् बुद्ध और भिक्षु संघ की अहित-कामना वाले थे, उन पर भी तथागत की दृष्टि समानरूप से पड़ती थी। निगंठों का प्रधान धनी गृहस्थ शिष्य यद्यपि बुद्ध धर्म और संघ की शरण आकर बौद्ध उपासक हो गया, किन्तु तथागत ने उसे निगंठों को भी भोजन देने के लिए साफ-साफ शब्दों में कहा। यह भगवान् बुद्ध की समदर्शिता की एक छोटी कहानी है, जिससे हम तथागत एवं उनके द्वारा उपदेशित धर्म की विशालता तथा संकीर्णतारहित सच्ची उदारता को समझ सकते हैं।

उन समदर्शी तथागत को बार-बार प्रणाम्।

भारत में चीनी बौद्धयात्री

श्री कृष्णकिंकर सिंह

[२]

शुआन् चङ् जब भारत में थे तभी शायद उनकी प्रेरणा से सम्राट हर्षवर्धन ने सन् ६४१ में अपना राजदूत थाङ् सम्राट थाइ चुङ् (६२७-६५०) के दरबार में भेजा था। यह मिशन सन् ६४३ में भारत लौटा। इसके साथ ही सम्राट् थाइ चुङ् ने लिमि पाव् के नायकत्व में एक मिशन सम्राट् हर्षवर्धन के दरबार में भेजा। मिशन ने अपना कामकर बौद्ध-तीर्थस्थानों का भी भ्रमण किया और वह सन् ६४६ में चीन लौट गया। इस मिशन के साथ वाङ शुआन्-छ नामक एक सरकारी अफसर भी था। इस अफसर के अधीन थाङ सम्राट् ने पुनः सन् ६४७ ई० में अपना एक मिशन भारत भेजा, पर इस बीच सम्राट् हर्षवर्धन की मृत्यु हो गयी और एक व्यक्ति ने गद्दी हड़प कर ली। उसने मिशन का स्वागत नहीं किया। इस पर वाङ शुआन्-छ ने तिब्बत और नेपाल की सहायता से उस गद्दी हड़पने वाले पर धावा किया, उसे हराया और बन्दी बनाकर चीन ले गया। वाङ शुआन्-छ तीसरी बार सन् ६५७ में एक भारतीय तांत्रिक को चीन से भारत रखने आया जो तृतीय थाङ-सम्राट् के निमंत्रण पर भारत के किसी राजा

द्वारा चीन भेजा गया था। इस बार वे अपने साथ भारत के बौद्ध-तीर्थस्थानों के लिये सम्राट् की भेंट भी लाये थे। वाङ शुआन-छ चौथी बार सन् ६६४ में एक चीनी भिक्षु हुआन चाव को भारत से चीन लौटा ले जाने के लिये आये थे। इन्होंने अपनी सभी यात्राओं का विवरण लिखा था जो अब नहीं मिलता।

शुआन चङ के बाद भारत में आनेवाले सबसे प्रसिद्ध चीनी भिक्षु इ-चिङ थे जो शुआन् चङ् के आधी शती बाद भारत आये। ये सन् ६७१ में जल-मार्ग से चीन से चले थे। दस वर्षों तक इन्होंने नालंदा में संस्कृत भाषा और बौद्ध-शास्त्रों का अध्ययन किया था तथा चीन ले जाने के लिए धर्मशास्त्रों की प्रतिलिपि की थी। सन् ६९५ में ये समुद्र-मार्ग से ४०० ग्रंथों का एक संग्रह लेकर चीन लौटे। इन ग्रंथों के श्लोकों की संख्या ५ लाख से ऊपर थी। इन्हें दर्शनग्रंथों से उतनी रुचि नहीं थी जितनी विनयग्रंथों से। चीन लौटकर इन्होंने अपना जीवन अनुवाद कार्य में ही लगाया। इन्होंने अधिकांश रूप से मूलसर्वास्तिवाद के विनयग्रंथों का ही अनुवाद किया। तबतक धर्मगुप्त सम्प्रदाय का विनय ही चीन में अधिक प्रचलित था, पर इन्होंने मूलसर्वास्तिवाद के विनय का प्रचार किया और वही मान्य हो गया। इन्होंने कुल ५६ ग्रंथों का अनुवाद किया और सब के सब वर्तमान हैं। इन्होंने चीनी लोगों की सुविधा के लिए एक चीनी-संस्कृत-कोष भी बनाया जो अब भी मिलता है। इन्होंने अपना यात्राविवरण "नान्-हाइ-चि-कुअइ चुआन्" यानी दक्षिण समुद्र का सन्देश नाम से लिखा, जिससे उस काल के भारत के इतिहास पर काफी प्रकाश पड़ता है। इ-चिङ ने "सि यु चिफा कुओ तङ् चुआन" नामक ग्रंथ लिखा जिसमें उन्होंने शुआन् चङ् के भारत आने के बाद से अपने समय तक के बीच के ५० वर्षों में भारत में आनेवाले ६० भिक्षुओं का वृत्त दिया है। इन ६० भिक्षुओं में कुछ तो कोरिया और मध्यएशिया के थे जिन्होंने चीन में रहकर अध्ययन किया था और चीन से ही भारत आये थे। आधी शती के अन्दर साठ-साठ भिक्षुओं का राह की कठिनाइयों को झेलते हुए भारत आना कम आश्चर्य की बात नहीं है। एक विदेशी विद्वान् की राय है कि इस काल में भारत आनेवाले भिक्षुओं की संख्या साठ नहीं, सैकड़ों थी जिनका वृत्त नहीं मिलता। इस काल में भारत आनेवाले भिक्षुओं में कितने तो स्वेच्छा से भारत में ही रह गये और उनकी मृत्यु यहाँ ही हुई। कहना नहीं होगा कि इस काल में चीनी भिक्षुओं में भारत आने की प्रवृत्ति शुआन चङ् की प्रेरणा से हुई। इन पचास वर्षों के बीच भारत आनेवाले कुछ प्रसिद्ध तीर्थयात्रियों की चर्चा हम नीचे करेंगे।

हम ऊपर कह आये हैं कि थाङ्-सम्राट् ने हुआन् चाव् नामक भिक्षु को भारत से लौटा ले जाने के लिये वाङ् शुआन्-छ नामक सरकारी अफसर को चौथी बार भारत भेजा था। हुआन् चाव् कब चीन से भारत आये थे यह पता नहीं है, पर ये सुग्ध, तुखारिस्तान होते हुए तिब्बत पार कर भारत के जालंधर नगर पहुँचे थे। जालंधर में चार वर्ष रहकर इन्होंने अपने संस्कृत ज्ञान को बढ़ाया। उसके बाद ये उत्तर भारत के प्रमुख तीर्थ-स्थानों का भ्रमण करते हुए मगध पहुँचे। नालंदा में रहकर इन्होंने अध्ययन किया। वाङ् शुआन्-छ जब तीसरी बार सन् ६५७ में भारत आये थे तब नालंदा में ही हुआन् चाव् से उनकी मुलाकात हुई थी। चीन लौटकर वाङ् शुआन्-छ ने थाङ्-सम्राट् से हुआन चाव की बड़ी प्रशंसा की थी और इसी पर थाङ् सम्राट् ने सन् ६६४ में वाङ् शुआन्-छ को चौथी बार भारत हुआन् चाव् को लौटा ले जाने के लिये भेजा था। हुआन् चाव् सन् ६६४ में ही लौटकर चीन गये। सम्राट् ने इनका बड़ा स्वागत किया। ये वहाँ धर्मग्रंथ के अनुवाद में लग गये। पर थोड़े दिनों बाद इन्हें थाङ्-सम्राट् ने पुनः एक लोकायत चीन ले जाने के लिए भारत भेजा पर ये फिर लौटकर चीन नहीं जा सके। उत्तर भारत के किसी विहार में ही इनकी मृत्यु हो गयी। दूसरी बार जब ये भारत आये थे तब नालंदा-विहार में इनकी भेंट इ-चिङ् से हुई थी।

ताव हि नामक भिक्षु मध्यएशिया के स्थलमार्ग से भारत आये थे। इन्होंने महाबोधि की पूजा की, नालंदा में रहकर संस्कृत भाषा सीखी और विनय ग्रंथों का अध्ययन किया तथा चीन ले जाने के लिये संस्कृत-ग्रंथों

की प्रतिलिपि की। पर ये लौटकर चीन नहीं जा सके; इनकी मृत्यु भारत में ही हो गयी। शे पिएन् नामक भिक्षु उपर्युक्त हुआन् चाव् के साथ ही भारत आये थे। इनकी भी मृत्यु भारत में ही हो गयी। ताव् फाङ् नामक भिक्षु तिब्बत और नेपाल की राह से भारत आये थे और महाबोधि में कई वर्ष रहे थे। ताव् वशङ् नामक भिक्षु सन् ६४९ में तिब्बत होकर भारत आये थे। इनका भारतीय नाम चन्द्रदेव था। इन्होंने भी भारत में रहकर हीनयान-ग्रंथों का अध्ययन किया था। लौटकर चीन जाते हुये राह में ही इनकी मृत्यु हो गयी। लुङ् नामक एक चीनी भिक्षु स्थलमार्ग से भारत आये। इन्हें मध्यदेश (चीनी वाङ्मय में पंजाब से बिहार तक के भूभाग के लिये मध्यदेश का प्रयोग आया है) में सद्धर्मपुंडरीक की एक प्रति मिली। चीन लौटते हुए गंधार में इनकी मृत्यु हो गयी। सिन् चिन (श्रद्धावर्मन) नामक भिक्षु स्थलमार्ग से भारत आये। अमरावती के एक विहार में रहकर ये अध्ययन करते थे और वहाँ ही इनकी मृत्यु हो गयी। चि हिङ् नामक भिक्षु भी इसी काल में भारत आये। इनका भारतीय नाम प्रज्ञादेव था। ये भारत के सिन्-छे (भारतीय नाम अज्ञात) नामक विहार में रहते थे। इनकी मृत्यु भी यहाँ ही हुई। सन् ६६५ में हुई निङ् नामक भिक्षु जलमार्ग से जावा होते हुए भारत आये। इन्होंने जावा में महापरिनिर्वाण सूत्र के एक भाग का चीनी में अनुवाद किया था। महायानप्रदीप चीन भिक्षु का भारतीय नाम था। इनके असली चीनी नाम का पता नहीं। ये जलमार्ग से लंका होते हुए भारत आये थे। ताम्रलिप्ति में बारह वर्ष रहकर इन्होंने संस्कृत भाषा पर अधिकार किया। फिर महाबोधि, नालंदा, वैशाली होते हुए कुशीनगर पहुँचे और वहाँ ही इनकी मृत्यु हो गयी। ताव् लिन् नामक एक चीनी भिक्षु का भारतीय नाम शीलभद्र था। ये जलमार्ग से जावा होते हुए ताम्रलिप्ति पहुँचे थे। ताम्रलिप्ति में तीन वर्षों तक इन्होंने संस्कृत सीखी। इन्होंने सर्वास्तिवाद-सम्प्रदाय के विनय का तथा योग और तंत्र का भी अध्ययन किया। तब ये महाबोधि गये और फिर नालंदा। नालंदा में इन्होंने महायानशास्त्रों तथा अभिधर्मकोश का अध्ययन किया। इन्होंने प्रायः सभी प्रमुख बौद्ध-तीर्थस्थानों की यात्रा की। फिर ये कश्मीर और उड्डीयान गये। वहाँ से कपिशा होकर ये कहाँ गये कुछ पता नहीं। लिङ् युन् और शङ् शे नामक भिक्षु अन्नाम होते हुए भारत आये थे। लिङ् युन् ने महाबोधि वृक्ष के नीचे मैत्रेय बुद्ध की एक बड़ी ही कलात्मक मूर्ति की स्थापना की थी। उपर्युक्त वाङ् नामक सरकारी अफसर का भतीजा शे हुङ् जलमार्ग से भारत आया था। महाबोधि में दो वर्ष रहकर इसने संस्कृत अभिधर्मकोश, तर्कशास्त्र और भैषज्यशास्त्र का अध्ययन किया। इन्होंने नालंदा में महायानशास्त्रों का तथा एवं दूसरे विहार में हीनयानशास्त्रों का भी अध्ययन किया। ये प्रमुख-प्रमुख तीर्थस्थानों का भ्रमण करते हुए कश्मीर गये। फिर इनका कुछ पता नहीं चला। वु हिङ् नामक भिक्षु उपर्युक्त शेहुङ् के साथ ही चले थे। ये श्रीविजय, मलाया, सुमात्रा, लंका होते हुए पूर्वी भारत पहुँचे। फिर ये महाबोधि और नालंदा गये। इन्होंने योग और अभिधर्मकोश का अध्ययन किया तथा न्यायशास्त्र का भी। इन्होंने कुछ संस्कृत-ग्रंथों का चीनी में अनुवाद भी किया। इन उपर्युक्त भिक्षुओं के अलावा कितने ही और भिक्षु भारत आये तथा कितनों की मृत्यु भारत आते हुए राह में ही हो गयी। कुछ तो जावा, श्रीविजय तथा लंका तक आकर पुनः चीन लौट गये।

थाङ्-राजवंश के समय भारत आनेवाले सबसे अंतिम चीनी भिक्षु वु कुङ् थे। ये सन् ७५१ में चीन से भारत आये थे और ७९० में लौटकर चीन पहुँचे थे। इनका भारतीय नाम धर्मधातु था। इनका यात्रा-विवरण अभीतक मिलता। सन् ६४३-७५८ तक चीन का लंका, कपिशा, उड्डीयान, गंधार, मगध, कश्मीर आदि देशों से राजनीतिक संबन्ध भी था और चीन तथा इन देशों के बीच बराबर राजदूत और मिशन आते-जाते रहते थे। थाङ्-राजकाल के प्रथम एक सौ वर्षों में ही भारत और चीन के बीच आवागमन खूब रहा। आठवीं शती के मध्य से दसवीं शती के मध्य तक कोई भी चीनी भिक्षु भारत नहीं आया। ठीक इसी काल में भारत से भी कोई धर्म प्रचारक चीन नहीं गया। पर

दो शतियों का काल चीन और भारत के सम्पर्क के इतिहास का वीरान-युग है।

सन् ९०७ ई० में थाङ्-राजवंश समाप्त हो गया और उसके बाद के ५३ वर्षों के बीच चीन में पांच राजवंशों की स्थापना हुई और फिर सुङ् राजवंश (९६०–१२७९) की। इन पाँच राजवंशों में हान्-राजवंश (सन् ९४७-९५१) के समय ताव् युएन् नामक भिक्षु भारत आये। ये अठारह वर्षों तक विदेश में थे तथा १२ वर्ष रास्ते के देशो में। ये भगवान् बुद्ध की धातु तथा ताल-पत्रों पर लिखा चालीस पृष्ठों का संस्कृतग्रन्थ लेकर चीन लौटे और ये चीज़ें प्रथम सुङ्-सम्राट् थाइ चु को भेंट की। सन् ९४७–५१ के बीच चे यि नामक भिक्षु भारत आये। प्रथम सुङ्-सम्राट् के शासनकाल में सन् ९६४–९७६ के बीच तीन सौ भिक्षु भारत आये थे। ये लोग १२ वर्षों तक बाहर रहे। इनमें से एक यात्री कि ये ने अपना यात्रा-विवरण भी लिखा था जो अब नहीं मिलता। सन् ९६६ में सुङ्-सम्राट् ने बौद्ध-भिक्षुओं को बौद्ध-धर्म की पुस्तकों की खोज में भारत भेजना चाहा। इस पर १५७ भिक्षु भारत आने को तैयार हुए। उनमें एक भिक्षु शिङ् चिन् भी था। यह दल काशगर, कूचा, खोतान, पेशावर होता कश्मीर पहुँचा। पर इसके बाद इस दल का क्या हुआ, कुछ पता नहीं चलता। द्वितीय सुङ्-सम्राट् थाइ चुङ् के दरबार में कुआङ् युएन् नामक चीनी भिक्षु भारत से लौटकर पहुँचा था। ये अपने साथ भगवान् बुद्ध के कपाल की छाप, तालपत्र पर लिखे कुछ ग्रन्थ तथा बोधिवृक्ष के कुछ पत्ते ले आये थे जिन्हें इन्होंने सम्राट् को भेंट में दिया। ये भारत के किसी भाग के एक राजा महासेन का पत्र भी सुङ्-सम्राट् के नाम लाये थे जिसका चीनी अनुवाद आज भी मौजूद है। सन् ९८२ में घायु नामक चीनी यात्री भारत से चीन लौटा। ये भी अपने साथ बुद्ध धातु तथा ताल-पत्र पर लिखे संस्कृत ग्रन्थ लेकर चीन लौटे थे और इन चीजों को इन्होंने सम्राट् को भेंट में दिया। सन् ९८२–८९ के बीच छे होडन नामक चीनी भिक्षु भारत से एक राजा का पत्र लेकर चीन लौटे। उन्होंने बुद्ध-गया और नालंदा की भी यात्रा की थी। इसी काल में चुङ् नामक चीनी यात्री भी भारत से चीन लौटकर गये। सन् १०३१ ई० में हुआइवन् नामक भिक्षु भारत आये जो कुछ वर्ष बाद चीन लौट गये। ये पहले भी दो बार भारत आ चुके थे। इन्होंने सन् १०३३ में बुद्धगया में चीन की विधवा राजमाता और राजा के नाम दो स्तूप बनवाये और चीनी भाषा में एक शिलालेख स्थापित किया जो आज भी प्राप्य हैं। हुवाइवन् ही भारत में आनेवाले अंतिम चीनी तीर्थयात्री थे। इनके बाद हम किसी चीनी तीर्थयात्री को भारत आते नहीं देखते। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि लगभग इसी काल में यानी सन् १०५३ में अंतिम भारतीय धर्मप्रचारक चीन पहुँचे थे। इस प्रकार ई० सन् की पहली शती के मध्य में भारत और चीन के बीच जो आवागमन प्रारम्भ हुआ था वह लगभग १,००० वर्षों के बाद ग्यारहवीं शती के मध्य में बन्द हो गया।

बुद्धगया में सुङ् राजवंश के समय भारत आये भिक्षुओं के पाँच शिलालेख पाये गये हैं। उनमें एक शिलालेख का उल्लेख ऊपर हो चुका है जिसे हुवाइवन् ने सन् १०३३ में लगवाया था। एक शिलालेख लगभग ९५० ई० का है जिसे चेयि नामक भिक्षु ने लगवाया था। शेष तीन शिलालेख सन् १०२२ के हैं जिन्हें युन् शु, यि छिङ् तथा शाव फिन् नामक भिक्षुओं ने लगवाया था। पता नहीं, ये भिक्षु कब चीन से भारत आये थे।

भारत में आनेवाले चीनी तीर्थयात्रियों के सम्बन्ध में चीनी भाषा में एक कहावत है कि 'सौ में दस भी लौटकर नहीं आते' इसका अर्थ यह है कि अधिकांश तीर्थयात्री राह के संकट को झेल न सकने के कारण काल के गाल में चले जाते थे। कौन बता सकता है कि इस तरह कितने चीनी तीर्थयात्रियों ने तथा भारतीय धर्म प्रचारकों ने राह में प्राण गँवाया होगा। उन दिनों चीन और भारत के बीच का जल तथा स्थल दोनों ही मार्ग इतने दुर्गम, भयंकर तथा आपदाओं से भरे थे कि एक देश से दूसरे देश की यात्रा करने का अर्थ अपने प्राण की बाजी लगाना था। पर अप्रतिहत उत्साह और अटूट लगन के कारण ही ये तीर्थयात्री सभी प्रकार की बाधा विपदाओं को झेलकर आते थे। उन लोगों ने विद्याध्ययन तथा अपनी उद्देश्य-पूर्ति के लिए प्रयत्नशील होने का जो उदाहरण हम लोगों के सामने रखा वह अद्वितीय है, शायद ही मानव-इतिहास में ऐसा उदाहरण कहीं मिलता हो।

लज्जा आदि की कोई भावना उसके अन्दर न होने के कारण उसका नाम 'पटाचारा' पड़ा। जिस समय वह पागली होकर इधर-उधर घूम रही थी और लोग उसे शरण न देते थे, भगवान् बुद्ध श्रावस्तीके जेतवन-आराम में विहर रहे थे। पटाचारा भी उधर बहकती हुई आ निकली। आश्रमवासियोंने कहा—"इस उन्मत्त स्त्री को इधर न आने दो।" किन्तु भगवान् ने उसे देख लिया और कहा—"इसे मत रोको, इसे इधर आने दो।" जैसे ही पटाचारा भगवान् के समीप आई, भगवान् ने कहा—"भगिनी! चैतन्य लाभ कर, तू अपनी खोई स्मृति को पुनः प्राप्त कर।" भगवान् बुद्ध की कृपा के अनुभाव से पटाचारा को होश आ गया। वस्त्रहीन होने के कारण उसे लज्जा की भावना भी अनुभव होने लगी। किसी ने उस पर वस्त्र डाल दिया, जिसे उसने पहन लिया। शास्ता के पैरों पर पड़कर फूट-फूट कर रोने लगी। पाँच बार प्रदक्षिणा कर बोली—"देव! मेरी रक्षा करो, मेरे एक पुत्र को बाज मार गया, दूसरा पुत्र नदीमें डूबकर मर गया। पति रास्ते में मर गया। मेरे पिता, माता और भाई एक ही चिता में जलाये गये। देव! मेरी रक्षा करो।" भगवान् ने आश्वासन देते हुए कहा—"पटाचारे! चिन्ता मत कर। तू ऐसे ही व्यक्ति के समीप आ गई है जो तेरी रक्षा करने में समर्थ है।"

भगवान् ने पटाचारा को धर्मोपदेश दिया, जिससे उसके चित्त को शान्ति मिली। भगवान् ने आगे कहा—"पटाचारे! तेरे पुत्र आदि तेरी शरण नहीं हो सकते। तू अपने शील को विशुद्ध कर। निर्वाणगामी मार्ग की पथिक बन। यही तेरे लिए उत्तम शरण होगी।" उपदेश के अनन्तर ही पटाचारा स्रोतापन्न हो गई। भिक्षुणियों के पास जाकर साधना करने लगी। एक दिन घड़े में पानी भरकर वह पैर धो रही थी। पैर धोकर उसने पानी फेंका तो देखा कि कुछ दूर जाकर वह सूख गया। फिर दूसरी बार फेंका तो वह उससे कुछ अधिक दूर जाकर सूख गया। तीसरी बार फेंका तो वह उससे भी कुछ अधिक दूर जाकर सूख गया। इस दृश्य को देखकर पटाचारा सोचने लगी—"इसी प्रकार कुछ प्राणी प्रथम आयु में भी मर जाते हैं, कुछ मध्यम आयु में भी मर जाते हैं, कुछ अन्तिम आयु में भी मर जाते हैं। सभी अनित्य हैं।" इसी पर विचार करते हुए उसने अर्हत्व पा लिया। पटाचारा जीवन्मुक्त हो गई।

पृष्ठ १५८ का शेषांश

व्यावहारिक आत्म-विद्या—अनुवादक : रविशरण वर्मा। प्रकाशक : उपर्युक्त ही। मूल्य १=)

यह पुस्तिका तीन भागों में विभक्त है। पहले भाग में आत्मविद्या के विद्यार्थियों के लिए कुछ महत्व की बातें बतलाई गई हैं। दूसरे भाग में आत्म-विद्या की कला पर प्रकाश डाला गया है और तीसरे भाग में दैनिक जीवन के लिए कुछ व्यवहारिक परामर्श दिये गये हैं। इस पुस्तिका की मूल लेखिका मैडम एच० पी० ब्लेवेडस्की हैं, जो आत्म-विद्या की पंडिता थीं। अनुवादक ने इसका सफल अनुवाद उपस्थित किया है। पुस्तिका संग्रहणीय एवं पठनीय है। विशेषकर आत्म-विद्या के जिज्ञासुओं के लिए यह बहुत उपयोगी है।

जातक-कथा—सम्पादक : भदन्त आनन्द कौसल्यायन और सुशीलकुमार। प्रकाशक : सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली। पृष्ठ २०३ मूल्य ३)

इसमें 'जातकट्ठकथा' से चुनी हुई ७७ कथायें दी गई हैं। जातक में आई कथाओंके प्रारम्भ एवं अन्त के कुछ भागों को छोड़कर इन कथाओं में केवल प्राचीन कथा ही सम्मिलित की गई हैं। प्रत्येक का शीर्षक विषय के अनुसार स्वतन्त्ररूप से रखा गया है। प्रचार की दृष्टि से यह कथा-संग्रह बड़ा उपयोगी है। सम्पादन एवं संकलन दोनों का सुयोग बड़ा सुन्दर है। भाषा आदि के सम्बन्ध में पूज्य आनन्द जी का नाम ही परिचायक है। सस्ता साहित्य-मण्डल ने इस ग्रंथ को प्रकाशित कर हिन्दी-जगत् का बहुत बड़ा हित किया है। आशा है इसका दूसरा भाग भी शीघ्र प्रकाशित होगा। सस्ता साहित्य मण्डल यदि इसी प्रकार सम्पूर्ण जातक-कथाओं को प्रकाशित करने का सौभाग्य प्राप्त कर सके, तो हिन्दी भाषा-भाषी उसके बड़े कृतज्ञ होंगे।

स्वातन्त्र्य-सन्देश—(संस्कृत) सम्पादक : 'पंडित प्रवीण' कर्णवीर नागेश्वर राव। प्रकाशक : आन्ध्र-राष्ट्र-संस्कृत-प्रचार समिति, वेटपालेम। पृष्ठ ११ मूल्य ।=)।

यह कुल १०० श्लोकों की एक छोटी पुस्तिका है। इसमें भारतीय स्वतन्त्रता के वीर सेनानियोंका गुण-गान एवं कांग्रेस का महत्व वर्णित है, सदाचार-प्रेम एवं भ्रष्टाचार-त्याग का यश बतलाया गया है। मूल्य बहुत अधिक है।

पटाचारा की शोक-मुक्ति

भिक्षु आर्यवंश

सर्वाङ्ग सम्पन्न एवं सौंदर्य-विभूषित श्रावस्ती के मध्य एक भव्य महल था। उसमें एक सेठ निवास करता था। श्रावस्ती के चारों ओर उसकी ख्याति थी। उसे एक पुत्री थी। सेठ उसे बहुत प्यार करता था। वह सयानी होने पर एक नौकर के प्रेम में फँस गई। विवाह होने से पहले ही उसके साथ भाग गई। दोनों एक छोटे गाँव में जाकर रहने लगे। कुछ समय बाद जब वह गर्भवती हुई तो अपने माता-पिता के घर जाने की इच्छा पति से प्रगट की। किंतु पति ने बहाने बनाकर टाल-मटोल कर दी। किन्तु वहाँ प्रसव का समुचित प्रबन्ध न देखकर सेठ की पुत्री अपने पति से बिना पूछे ही अपने मायके चल दी और पड़ोस वालों से कह गई कि यदि उसका पति पूछे कि कहाँ गई तो कह दें अपने माता-पिता के घर चली गई। जब उसका पति लौटकर आया तो उसके विषय में बड़ा चिंतित हुआ। सोचने लगा—"मेरे ही कारण इस कुलकन्या की यह अनाथों की सी दुर्गति हुई।" वह भी उसके पीछे-पीछे चल दिया और रास्ते में वह उसे मिल गई। रास्ते में ही उसको प्रसव भी हुआ। दोनों पति-पत्नी प्रसन्नतापूर्वक घर लौटकर आये। दूसरी बार जब वह गर्भवती हुई तो फिर इसी प्रकार चल दी। इस बार जब वे दोनों जंगल में ही थे, एक बड़ा तूफान आया और घोर वर्षा होने लगी। कोई आश्रय लेने योग्य स्थान नहीं था। प्रसव भी होने को ही था। पत्नी की प्रार्थना पर पति शरण-स्थान बनाने के लिए लकड़ी काटने चला गया। जब वह लकड़ी काट ही रहा था, वहीं झाड़ी के समीप एक साँप ने काट लिया। वह तत्काल वहीं मर गया। इधर रात को पटाचारा को प्रसव हुआ और बेचारी निराश्रय होकर भयंकर वर्षा में वहीं पड़ी रही। सबेरे पति की तलाश में निकली तो उसे मरा पाया। "हाय! मेरे ही कारण मेरे पति की मृत्यु हो गई!" विलाप करती हुई वह अपने पिता के घर को ही चलने को प्रस्तुत हुई। रास्ते में एक नदी पड़ती थी। परन्तु दोनों बच्चों को लेकर पार कर कैसे उतरे? शरीर में भी बिलकुल शक्ति नहीं थी। बड़े पुत्र को उधर नदी के किनारे पर ही रखकर वह छोटे शिशु को लेकर दूसरे किनारे पर गई और उसे एक कपड़े में लपेटकर एक झाड़ी में रख दिया। बड़े पुत्र को लेने के लिए वह नदी को पार करने लगी। किन्तु उसकी दृष्टि झाड़ी में रखे हुए छोटे बच्चे की ओर ही लगी हुई थी। अभाग्यवश एक बाज ने सद्यःजात शिशु को मांसपेशी समझकर उस पर झपट्टा मारी। पटाचारा जल के बीच में थी। बड़ी तालियाँ दीं, चीत्कार किया, किन्तु कुछ परिणाम नहीं हुआ। हाँ, इधर रखे हुए सयाने बच्चे ने सोचा कि माँ मुझे ही ताली देकर बुला रही है वह झट पानी में कूद पड़ा और बह गया। एक बच्चे को बाज मार गया, दूसरा पानी में बहकर मर गया! अब तो वह शोक में पागल ही हो गई। वह रो-रोकर चिल्लाने लगी—मेरा पति रास्ते में मर गया, एक पुत्र बाज ने मार दिया, दूसरा जल में डूबकर मर गया। विलाप करती हुई वह श्रावस्ती के मार्ग में बढ़ी जाती थी कि उसे एक पथिक मिला। उससे उसने पूछा—'भाई तू कहाँ का रहने वाला है?' उसने कहा—'माँ! मैं श्रावस्ती का रहने वाला हूँ।' माता-पिता का कुशल-समाचार पूछने पर पथिक ने कहा—"माँ! आज रात को सेठ, उसकी भार्या और उसका पुत्र तीनों प्राणी घर की छत गिर जाने से मर गये और अभी एक ही चिता में जलने को श्मशान-भूमि में ले जाये जा रहे हैं। देख, यह धुँवा उनका ही दिखाई दे रहा है।"

वह पछाड़ खाकर धरती पर गिर पड़ी। उसे अपने देह का होश नहीं रहा। वह विक्षिप्त होकर इधर-उधर घूमने लगी। बस कभी-कभी उसे लोग यही चिल्लाते सुनते थे:—

"उभो पुत्ता कालकता पन्थे मय्हं पती मतो।
माता पिता च भाता च एक चितकस्मिं डय्हरे॥"

दोनों पुत्र मर गये, पति रास्तेमें मर गया, माता-पिता और भाई एक ही चितामें जल रहे हैं।

उसको अपने वस्त्रों तक का होश न था। वस्त्रों के उसके शरीर से सरक जाने के कारण और इस प्रकार

लज्जा आदि की कोई भावना उसके अन्दर न होने के कारण उसका नाम 'पटाचारा' पड़ा। जिस समय वह पागली होकर इधर-उधर घूम रही थी और लोग उसे शरण न देते थे, भगवान् बुद्ध श्रावस्तीके जेतवन-आराम में विहर रहे थे। पटाचारा भी उधर बहकती हुई आ निकली। आश्रमवासियोंने कहा—"इस उन्मत्त स्त्री को इधर न आने दो।" किन्तु भगवान् ने उसे देख लिया और कहा—"इसे मत रोको, इसे इधर आने दो।" जैसे ही पटाचारा भगवान् के समीप आई, भगवान् ने कहा—"भगिनी! चैतन्य लाभ कर, तू अपनी खोई स्मृति को पुनः प्राप्त कर।" भगवान् बुद्ध की कृपा के अनुभाव से पटाचारा को होश आ गया। वस्त्रहीन होने के कारण उसे लज्जा की भावना भी अनुभव होने लगी। किसी ने उस पर वस्त्र डाल दिया, जिसे उसने पहन लिया। शास्ता के पैरों पर पड़कर फूट-फूट कर रोने लगी। पाँच बार प्रदक्षिणा कर बोली—"देव! मेरी रक्षा करो, मेरे एक पुत्र को बाज मार गया, दूसरा पुत्र नदीमें डूबकर मर गया। पति रास्ते में मर गया। मेरे पिता, माता और भाई एक ही चिता में जलाये गये। देव! मेरी रक्षा करो।" भगवान् ने आश्वासन देते हुए कहा—"पटाचारे! चिन्ता मत कर। तू ऐसे ही व्यक्ति के समीप आ गई है जो तेरी रक्षा करने में समर्थ है।"

भगवान् ने पटाचारा को धर्मोपदेश दिया, जिससे उसके चित्त को शान्ति मिली। भगवान् ने आगे कहा—"पटाचारे! तेरे पुत्र आदि तेरी शरण नहीं हो सकते। तू अपने शील को विशुद्ध कर। निर्वाणगामी मार्ग की पथिक बन। यही तेरे लिए उत्तम शरण होगी।" उपदेश के अनन्तर ही पटाचारा स्रोतापन्न हो गई। भिक्षुणियों के पास जाकर साधना करने लगी। एक दिन घड़े में पानी भरकर वह पैर धो रही थी। पैर धोकर उसने पानी फेंका तो देखा कि कुछ दूर जाकर वह सूख गया। फिर दूसरी बार फेंका तो वह उससे कुछ अधिक दूर जाकर सूख गया। तीसरी बार फेंका तो वह उससे भी कुछ अधिक दूर जाकर सूख गया। इस दृश्य को देखकर पटाचारा सोचने लगी—"इसी प्रकार कुछ प्राणी प्रथम आयु में भी मर जाते हैं, कुछ मध्यम आयु में भी मर जाते हैं, कुछ अन्तिम आयु में भी मर जाते हैं। सभी अनित्य हैं।" इसी पर विचार करते हुए उसने अर्हत्त्व पा लिया। पटाचारा जीवन्मुक्त हो गई।

पृष्ठ १५८ का शेषांश

व्यावहारिक आत्म-विद्या—अनुवादक : रविशरण वर्मा। प्रकाशक : उपर्युक्त ही। मूल्य १=)

यह पुस्तिका तीन भागों में विभक्त है। पहले भाग में आत्मविद्या के विद्यार्थियों के लिए कुछ महत्त्व की बातें बतलाई गई हैं। दूसरे भाग में आत्म-विद्या की कला पर प्रकाश डाला गया है और तीसरे भाग में दैनिक जीवन के लिए कुछ व्यवहारिक परामर्श दिये गये हैं। इस पुस्तिका की मूल लेखिका मैडम एच० पी० ब्लेवेडस्की हैं, जो आत्म-विद्या की पंडिता थीं। अनुवादक ने इसका सफल अनुवाद उपस्थित किया है। पुस्तिका संग्रहणीय एवं पठनीय है। विशेषकर आत्म-विद्या के जिज्ञासुओं के लिए यह बहुत उपयोगी है।

जातक-कथा—सम्पादक : भदन्त आनन्द कौसल्यायन और सुशीलकुमार। प्रकाशक : सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली। पृष्ठ २०३ मूल्य ३)

इसमें 'जातकट्ठकथा' से चुनी हुई ७७ कथायें दी गई हैं। जातक में आई कथाओंके प्रारम्भ एवं अन्त के कुछ भागों को छोड़कर इन कथाओं में केवल प्राचीन कथा ही सम्मिलित की गई हैं। प्रत्येक का शीर्षक विषय के अनुसार स्वतन्त्ररूप से रखा गया है। प्रचार की दृष्टि से यह कथा-संग्रह बड़ा उपयोगी है। सम्पादन एवं संकलन दोनों का सुयोग बड़ा सुन्दर है। भाषा आदि के सम्बन्ध में पूज्य आनन्द जी का नाम ही परिचायक है। सस्ता साहित्य-मण्डल ने इस ग्रंथ को प्रकाशित कर हिन्दी-जगत् का बहुत बड़ा हित किया है। आशा है इसका दूसरा भाग भी शीघ्र प्रकाशित होगा। सस्ता साहित्य मण्डल यदि इसी प्रकार सम्पूर्ण जातक-कथाओं को प्रकाशित करने का सौभाग्य प्राप्त कर सके, तो हिन्दी भाषा-भाषी उसके बड़े कृतज्ञ होंगे।

स्वातन्त्र्य-सन्देश—(संस्कृत) सम्पादक : 'पंडित प्रवीण' कर्णवीर नागेश्वर राव। प्रकाशक : आन्ध्र-राष्ट्र-संस्कृत-प्रचार समिति, वेटपालेम। पृष्ठ ११ मूल्य ।=)।

यह कुल १०० श्लोकों की एक छोटी पुस्तिका है। इसमें भारतीय स्वतन्त्रता के वीर सेनानियोंका गुण-गान एवं कांग्रेस का महत्व वर्णित है, सदाचार-प्रेम एवं भ्रष्टाचार-त्याग का यश बतलाया गया है। मूल्य बहुत अधिक है।

बौद्ध-जगत्

पवित्र अस्थियाँ अगले वर्ष उड़ीसा जायेंगी

उड़ीसा की प्रान्तीय सरकार ने भगवान् बुद्ध के अग्रश्रावकों की पवित्र अस्थियों को भुवनेश्वर में लाने के लिए निमंत्रण भेजा है। एक समय उड़ीसा बौद्ध धर्म का प्रधान केन्द्र था और सारे प्रान्त में बौद्ध विहार एवं बुद्ध-मन्दिर थे। आज भी इस प्रान्त की कुछ जातियों में परम्परा से बौद्ध धर्म किसी न किसी रूप में वर्तमान है। सम्राट् अशोक ने उड़ीसा (कलिंग) प्रदेश पर चढ़ाई करके ही इसकी काया को पलट दिया था और उसी समय इस प्रदेश ने बौद्ध धर्म को अपना लिया था। इसी प्रदेश ने तो अशोक के जीवन को भी बदला था, जिससे वह जीवन-पर्यन्त राज्य-विजय की लिप्सा को छोड़ धर्म विजय को श्रेष्ठ समझने लगा। वह एक ऐतिहासिक घड़ी होगी, जब इस प्रदेश की नई राजधानी भुवनेश्वर के लोग पवित्र अस्थियों का स्वागत करेंगे।

अस्थियाँ १५ सितम्बर को भुवनेश्वर जाने वाली थीं, किन्तु अब अगले वर्ष जायेंगी। उस समय वहाँ भारतीय महाबोधि सभा का ब्रांच भी स्थापित होगा।

युद्ध के पश्चात् प्रथम जर्मन भिक्षु का आगमन—यह लिखते हुए प्रसन्नता हो रही है कि युद्ध के बाद प्रथम जर्मन भिक्षु महाबोधि-सभा के प्रधान केन्द्र कलकत्ता में गत मास में आये। भिक्षु काश्यप (जिनका गृहस्थ-नाम हेन्स उल्रिच रेकर था) त्रिपिटक का अध्ययन करने के लिए बर्मा को प्रस्थान किये हैं। उन्होंने बर्मा जाने से पूर्व कालिंपोंग आदि भारत के बहुत से दर्शनीय स्थानों का दर्शन भी किया है। उन्होंने महाबोधि हॉल में "जर्मनी में बौद्ध प्रवृत्तियाँ" शीर्षक पर एक सुन्दर भाषण दिया। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि जर्मनी में द्वितीय युद्ध के पश्चात् लोगों में बौद्ध धर्म के प्रति विशेष रुचि उत्पन्न हो गई है।

आदर्श दान—लंका-महाबोधि सभा के आनरेरी सेक्रेटरी श्री एन० मुनिसिंह की धर्मपत्नी ने सारनाथ के मूलगन्ध कुटी विहार की बुद्ध-मूर्ति पर सोना लगवाने के लिए १,५००) का आदर्श दान दिया है। इतने ही से सोसाइटी मूर्ति पर पूर्ण रूप से सोना लगाने में अभी सफल न हो सकेगी। हम श्रीमती एन० मुनिसिंह को धन्यवाद देते हुए आशा करते हैं कि दूसरे भाई-बहिन भी उनका अनुकरण कर इस कार्य को पूर्ण करायेंगे।

लंका के श्री पी० टी० हेनाया ने भी भारतीय महा- बोधि को १०००) का दान दिया है। श्री हेनाया अनेक बार बौद्ध तीर्थों के दर्शनार्थ भारत आ चुके हैं। इन्होंने सभा के प्रशंसनीय कार्यों से प्रभावित होकर उक्त दा दिया है।

कलकत्ता में धर्मचक्र महोत्सव—गत आषा पूर्णिमा को कलकत्ता में महाबोधि-सभा के हाल पश्चिमी बंगाल के राज्यपाल डा० कैलाशनाथ काटजू के सभापतित्व में धर्मचक्र महोत्सव मनाया गया। सभापति ने भाषण देते हुए कहा—

"१९वीं शताब्दी भारत में नये आविष्कारों का यु रही है। इस शताब्दी में बंगाल के राममोहन राय जै महान् सुधारकोंने जनता में शिक्षा के प्रचार द्वारा राष्ट्री भावना को जागृत किया था। साथ ही साथ भारत महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थानों की खोज भी आरम्भ ह गई। इसके फलस्वरूप लोग अपने अतीत गौरव का अनु भव करने लगे।

यह आश्चर्य की बात है कि ६०० वर्षों के काल में जब कि यह देश विदेशी शासकों के अधीन था, अपने अतीत को यहाँ तक विस्मृत कर गये कि भगव बुद्ध के जन्म, बुद्धत्व तथा महापरिनिर्वाण से सम्ब रखने वाले ऐतिहासिक स्थलों तक को एक दम भूल थे। लुम्बिनी, बुद्धगया, कुशीनगर जैसे तीर्थ स्थ १९ वीं शताब्दी के पहले, जब कि इसका आविष् हुआ था, अज्ञात पड़े थे।

ऋषिपत्तन अर्थात् सारनाथ का, जहाँ पर धर्म- का प्रवर्तन हुआ था। विशेष उल्लेख करते हुए आप कहा—कि जब कभी मेरे मन में अशान्ति आ जाती है शान्ति पाने के लिए मैं उसी स्थान में जाता हूँ; उस पुनीत वातावरण भी शान्तिप्रद है।

यह महत्वपूर्ण बात है कि स्वतन्त्रता के आन्दोलन के साथ-साथ महाबोधि सभा की स्थापना हो गई और इस देश में बुद्ध-धर्म का प्रचार फिर से होने लगा। यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि स्वतन्त्र भारत में फिर भगवान् बुद्ध और उनके संदेश आ गये हैं। भगवान् बुद्ध भारत की महानता के प्रतीक थे यही कारण है कि धर्म-विशेष इस राष्ट्र में अशोक स्तम्भ पर अंकित भगवान् बुद्ध का धर्म-चक्र राष्ट्र-ध्वजा का चिह्न और उसी पर अंकित सिंह शीर्ष राष्ट्र मुद्रा का लांछन बन गये हैं। भारत ने भगवान् बुद्ध को भुलाकर अपनी स्वतन्त्रता को खोया था यदि हमें अपनी नव प्राप्त स्वतन्त्रता को कायम रखना हो तो भगवान् बुद्ध और उनके संदेश को नहीं भूलना चाहिए।"

सभा में निम्नलिखित सज्जनोंके भाषण हुए--

श्री सी. सी. विकास, डा. जष्टिस बी. के. मुखर्जी, भिक्षु शीलभद्र, श्री खगेन्द्रनाथ मित्र, डा. सुमिति कुमार शर्मा, डा. कालिदास नाग, भिक्षु धर्मरत्न एम. ए. और श्री उमाशंकर त्रिपाठी।

रायबरेली में बुद्ध जयन्ती—गत मई मास में वैशाख पूर्णिमा के दिन रायबरेली में श्री कोली राजपूत सभा की ओर से विशेष समारोह पूर्वक 'बुद्ध जयन्ती' महोत्सव मनाया गय। कार्यक्रम अत्यन्त ही आकर्षक था। छाया-चित्र (सिनेमा) द्वारा कोलिय जाति के इतिहास पर प्रकाश डाला गया।

अजमेर में बुद्ध कथायें—आजकल अजमेर में सर्वत्र ही 'बुद्ध कथा' एवं 'बुद्ध कीर्तन' का मनोहारी कर्यक्रम रहता है। कथा तथा कीर्तन होने के पश्चात् स्वादिष्ट खीर का प्रसाद वितरण किया जाता है, जिसे प्रत्येक गृहस्थ ग्रहण करने में अपना परम सौभाग्य समझता है। पिछले दिनों 'कोली-राजपूत' पत्र के सम्पादक श्री एम. के. नाथूसिंह तँवर, श्री मानसिंह तथा तरुण बौद्ध समिति के मन्त्री श्री रामसिंह छावरा के जन्मोत्सव 'बुद्ध कथा' एवं 'कीर्तन' के शुभ समारोह सहित मनाये गये।

अजमेर में वैशाखी पूर्णिमा—गत २० मई को अजमेर में तरुण बौद्ध समिति की ओर से बड़े ही उत्साह के साथ वैशाखी पूर्णिमा मनाई गई। प्रात:काल पुष्कर में बुद्ध-कीर्तन एवं बुद्ध-पूजा हुए, जिसमें कई सौ लोग सम्मिलित हुए थे। सन्ध्या समय श्री भवानी प्रसाद की अध्यक्षता में सभा हुई, वक्ताओं ने भगवान् बुद्ध के जीवन और शिक्षा पर भाषण दिया। २१ मई को गौतम नगर में श्री के० के० राय एम. ए. की अध्यक्षता में सभा हुई। प्रारम्भ में सभापति के द्वारा "गौमतविद्या मन्दिर" का शिलान्यास हुआ। सभापति के भाषण के बाद कविता-पाठ एवं बुद्ध-कीर्तन का भी आयोजन था।

मुसलमानों ने बौद्ध धम अपनाया—गत ११ जुलाई को लंका के बलंगोड के श्री बोधि रुक्खाराम के श्री विमलवंस स्थविर के धर्मोपदेश को सुनकर कई मुसलमानों ने बौद्ध धर्म ग्रहण किया। शीघ्र ही कुछ और मुसलमान बौद्ध धर्म में दीक्षित होने की तैयारी कर रहे हैं।

महाबोधि बुद्धिष्ट मिशन मालाबार—यह मिशन दक्षिण भारत में बौद्ध धर्म-प्रचार का प्रशंसनीय कार्य कर रहा है। पत्रिका, ग्रन्थ आदि का प्रकाशन, अनाथों की सेवा, मन्दिरों एवं आश्रमों का निर्माण और बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए विविध प्रकार के यत्न करना इस मिशन का उद्देश्य है। मिशन ने थोड़े ही दिनों में काफी उन्नति कर ली है। वार्षिक विशेषांक के रूप में लगभग २०० पृष्ठों की एक रिपोर्ट प्रकाशित हुई है, जिसे देखकर ही मिशन की प्रगति को भली प्रकार जाना जा सकता है।

कम्यूनिस्ट देशों में बौद्ध धर्म के प्रसार का कार्यक्रम— गत २६ जुलाई को लंका में भाषण देते हुए "विश्व बौद्ध भ्रातृत्व संघ" के अध्यक्ष डा० जी० मललसेकर ने कहा कि चीन देशीय धर्म-प्रचारकों द्वारा रूस एवं अन्य कम्यूनिस्ट देशों में बौद्ध धर्म का प्रसार किया जा रहा है। श्री मललसेकर अभी हाल ही में पूर्वी देशों की यात्रा कर लौटे हैं, उनका कथन है कि दक्षिणी-पूर्वी एशिया में बौद्ध धर्म के प्रचार में किसी प्रकार की भी कठिनाई नहीं पड़ेगी। 'विश्व बौद्ध भ्रातृत्व संघ' की स्थापना गत वर्ष कोलम्बो में हुई थी, अब वह कम्यूनिस्ट देशों में धर्म-प्रचार के लिए भिक्षुओं को ट्रेनिंग देने की व्यवस्था करने जा रहा है। अगले महीने में वीयतनाम के कुछ भिक्षु आ रहे हैं। यह प्रथम ग्रूप होगा। दूसरे ग्रूप में कम्बोडिया के भिक्षु आयेंगे।

नये प्रकाशन

कबीर-बीजक—सम्पादक : हंसदास शास्त्री और महावीर प्रसाद। प्रकाशक : कबीर ग्रन्थ प्रकाशन समिति, मु० पो० हरक, जिला-बाराबंकी (यू० पी०), साइज-डिमाइ अठपेजी, पृष्ठ संख्या लगभग सवातीन सौ, कपड़े की पक्की जिल्द। मूल्य ५॥)

आज तक कबीर बीजक के प्रामाणिक ग्रन्थ की बहुत कमी रही है, जो भी प्रतियाँ उपलब्ध रही हैं, सब अनेक प्रकार के दोषों से पूर्ण रही हैं। हमें प्रसन्नता है कि योग्य एवं विद्वान् सम्पादकों के प्रयत्न तथा परिश्रम से कबीर बीजक का यह प्रामाणिक संस्करण प्राप्त हुआ। सम्पादकद्वय इस विषय के ज्ञाता हैं, उन्होंने इसके सम्पादन-कार्य को बड़ी विद्वत्ता से किया है। ग्रन्थ में बीजक के मूल पाठों के साथ पाँच परिशिष्ट दिये गये हैं जो बड़े उपयोगी हैं। इनसे पाठकों को बीजक का अर्थ समझने में बड़ी सहायता मिलेगी। पहले परिशिष्ट में शब्दकोश, दूसरे में अन्तर्गत कथायें तथा परिचय, तीसरे में संख्यावाची शब्द, पाँचवें में योग सम्बन्धी शब्द और छठें में रूपक उल्टवांसी तथा प्रतीकात्मक शब्द हैं। अन्त में शुद्धि-पत्र एवं सहायक ग्रन्थों की सूची भी दी गई हैं।

यहाँ हमें ग्रन्थ की उपयोगिता के सम्बन्ध में कुछ कहना नहीं है। इतना ही कह देना पर्याप्त है कि यह ग्रन्थ पन्द्रहवीं शताब्दी के महान् सुधारक, त्यागी महात्मा एवं कवि 'कबीर साहेब' की अमर वाणियों का संग्रह है, जिसे बीजक कहा जाता है और जिसे सुनकर भारत के अगणित पीड़ित एवं आर्त व्यक्तियों ने शान्ति लाभ की है। हम ऐसे ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए प्रकाशक-समिति के आभारी हैं और आशा करते हैं कि वह हमें और भी उपयोगी ग्रन्थों को प्रदान करेगी।

गहरे पानी पैठ—लेखक : अयोध्या प्रसाद गोयलीय प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड रोड बनारस। मूल्य २॥)

इस ग्रंथ में ११८ कहानियाँ, किंवदतियाँ, संस्मरण, आख्यान और चुटकुले हैं, जो तीन भागों में विभक्त हैं—गुरुजनों के चरणों में बैठकर जो सुना (५५ शीर्षक), इतिहास और धर्म ग्रन्थों में जो पढ़ा (४७ शीर्षक) और हिये की आँखों से जो देखा (१६ शीर्षक)। ग्रंथ में दी गई अधिकांश रचनायें ऐसी हैं जिन्हें हमने सुना है, किन्तु लेखक ने उन्हें ऐसे ढंग से उपस्थित किया है कि जिन्हें हम एक नये ही रूप में पाते हैं। रचनायें छोटी किन्तु मार्मिक, शिक्षाप्रद और प्रभावशाली हैं। ग्रन्थ को उठाने के पश्चात् जब तक समाप्त नहीं कर लेते, तब तक छोड़ने का मन नहीं करता। अनेक रचनाओं को तो मैंने कई बार पढ़ा। 'हिये की आँखों से जो देखा' भाग की रचनायें बड़ी ही प्रभावोत्पादक हैं। शैली सरल एवं सुबोध है। छपाई-सफाई सब सुन्दर है।

आध्यात्मिक जीवन—अनुवादिका : कौशल्या दे मेहता, प्रकाशक : आनन्द पब्लिशिंग हाउस, थिऑसोफिकल सोसाइटी, बनारस। पृष्ठ ५८९, मूल्य ४॥)

यह ग्रन्थ श्री ऑक्लियोनी द्वारा रचित 'श्री गुरु चरणेषु' पर श्रीमती एनी बेसेंट तथा सी० डब्ल्यू० लेडबीटर के भाष्य का हिन्दी रूपान्तर है। ग्रन्थ पाँच खण्डों में विभक्त है—विषय प्रवेश, विवेक, वैराग्य, सदाचार और प्रेम। ग्रन्थ में आध्यात्मिक बातों पर बड़े ही सुन्दर, सरस एवं सुबोध ढंग से प्रकाश डाला गया है। यह आध्यात्मिक-मार्ग पर चलने के लिए कृत-संकल्प व्यक्ति के लिए एक प्रकाश के समान है, जो उसके जीवन पथ को आलोकित करता है। 'ब्रह्म-विद्या' के दृष्टिकोण से आध्यात्म सम्बन्धी प्रायः सभो विषयों पर इस ग्रन्थ में व्याख्या की गई है। नित्य जीवन में पग-पगपर आनेवाली समस्याओं की वैज्ञानिक साधना और उनके साथ अनिवार्य रूप से आनेवाली अनेक मनोवैज्ञानिक कठिनाइयों पर विजय पाने का सरल और व्यवहारिक मार्ग वर्णित है।

अनुवादिका ने ऐसे परमपोयगी, आध्यात्मिक ग्रन्थ का हिन्दी में अनुवाद कर एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति की हैं। अनुवाद की भाषा सरल, सुबोध एवं भावाभि-व्यक्ति की क्षमता से पूर्ण है। आज के दुःख आदि से सन्तप्त मानव को ऐसे ग्रन्थ के अध्ययन की बहुत बड़ी आवश्यकता है। आशा है हिन्दी-जगत् इस ग्रन्थ को अपनाकर अपनी आध्यात्मिक-तृषा को तृप्त करेगा।

(शेष पृष्ठ १५५ में)

आवश्यकता है

हमारे नये डिजाइन के फाउन्टेनपेनों को बेचने के लिये ३००) से ५००) तक मासिक वेतन या कमीशन पर एजेन्टों की आवश्यकता है। नमूना और नियमावली के लिये लिखें—

लावरेन्स ब्रदर्स (डी. डी. बी.),
नागदेवी, बम्बई ३

एकमात्र बौद्ध मासिक 'धर्मदूत' के वार्षिक ग्राहक क्यों बनें ?

१. क्योंकि धर्मदूत के प्रत्येक अंक में बौद्ध धर्म सम्बन्धी गवेषणात्मक महत्वपूर्ण लेख रहते हैं।
२. अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध प्रवृत्तियों, सांस्कृतिक प्रगतियों एवं विश्व के बौद्धों की अवस्थाओं पर प्रकाश डाला जाता है।
३. इसे भारत के सभी बड़े बौद्ध लेखकों का सहयोग प्राप्त है।
४. आप थोड़े ही मूल्य में संसार भर के बौद्धों से परिचय प्राप्त कर सकते हैं।
५. धर्म के गूढ़ सिद्धान्तों इतिहास की गुत्थियों एवं सामाजिक-समस्याओं पर इसमें पूर्ण प्रकाश डाला जाता है। 'धर्मदूत' का ग्राहक किसी भी अंक से बना जा सकता है। 'धर्मदूत' के समस्त प्रेमी सज्जनों से विनम्र निवेदन है कि वे अधिकाधिक संख्या में ग्राहक बनाकर 'धर्मदूत' के प्रचार में सहयोग दें।

व्यवस्थापक 'धर्मदूत' सारनाथ, बनारस।

धर्मदूत की पुरानी फाइलें।

धर्मदूत की पिछले वर्ष की पूरी फाइल सजिल्द उपलब्ध है। एक जिल्द का दाम ५) है, अपनी फाइल के लिए शीघ्र लिखें।

भारतीय ज्ञानपीठ काशी के सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

शेर ओ शयरी

(उर्दू के सर्वोत्तम १५०० शेर और १६० नज़्म)

ले० अयोध्याप्रसाद गोयलीय

[प्राचीन और वर्तमान कवियों में सर्व प्रधान लोकप्रिय ३१ कलाकारों के मर्मस्पर्शी पद्यों का संकलन और उर्दू कविता की गतिविधि का आलोचनात्मक परिचय।]

पृष्ठ संख्या ४६०। मूल्य आठ रुपये

मुक्तिदूत (उपन्यास)

ले० वीरेन्द्रकुमार एम० ए०

[हिन्दी में अपने ढंग का सबसे पहला पौराणिक रोमांस। आधुनिक भारतीय साहित्य में जैन संस्कृति पर आधारित प्रथम कलाकृति।]

पृष्ठ सं० ३४० मूल्य ३॥)

पथचिन्ह

(स्मृति रेखायें और निबन्ध)

ले० शान्तिप्रिय द्विवेदी

(हिन्दी साहित्य की अनुपम पुस्तिका जो आज की गतिविधि की निःसारता दिखाती है और पाठक को रुकने के लिये बाध्य करती है।) मूल्य २)

ज्ञानोदय

व्यक्ति स्वातंत्र्यमूलक श्रमण संस्कृति के सन्देश द्वारा श्रम, शम, सम-स्वावलम्बन, शान्ति और समता का सार्वजनीन उद्बोधन करने वाला मासिक पत्र।

वार्षिक ६) एक प्रति ।≈)

व्यवस्थापक- भारतीय ज्ञानपीठ काशी दुर्गाकुण्ड बनारस सिटी।

हिन्दी में बौद्ध-साहित्य

वार्तिकालंकार—राहुल सांकृत्यायन	३)
दीघ-निकाय— ,, ,,	६)
मज्झिम-निकाय— ,, ,,	८)
विनय-पिटक— ,, ,,	८)
पेतवत्थु— राहुल सांकृत्यायन	।।)
जातक—आनन्द कौसल्यायन भाग १, २ और ३	७।।), ७।।), १०)
तथागत—आनन्द कौसल्यायन	।।।)
बुद्ध और उनके अनुचर—आनन्द कौसल्यायन	१।।।)
भगवान् बुद्ध— ,, ,,	=)
जो लिखना पड़ा— ,, ,,	३)
बुद्ध-शतकम्— ,, ,,	।)
बुद्ध-वचन— ,, ,,	।।)
जातक-कथा— ,, ,,	३)
पालि महाव्याकरण—भिक्षु जगदीश काश्यप	५।।)
पालि जातकावाली—बटुकनाथ शर्मा एम० ए०	२)
धम्मपद—अवधकिशोर नारायण	१।।)
भगवान् बुद्ध की शिक्षा—श्री देवमित्त धर्मपाल	।-)
पंचशील और बुद्ध-वन्दना—बोधानन्द स्थविर	=)
बौद्धचर्य्या-पद्धति—भदन्त बोधानन्द	१।।)
बौद्ध-दर्शन मीमांसा—बलदेव उपाध्याय	६)
भारतीय दर्शन— ,, ,,	८)
हर्षचरित (दो भाग) सूर्यनारायण चौधरी	२।।, ३।।)
सौन्दरनन्द काव्य— ,, ,,	३)
महापरिनिर्वाण सुत्त—भिक्षु ऊ कित्तिमा	१।)
सिङ्गाल-सुत्तं—(बौद्ध-गृहस्थाश्रम धर्म) ,,	।।)
बुद्ध और बौद्ध साधक—भरतसिंह उपाध्याय	१।।)
सुत्तनिपात—भिक्षु धर्मरत्न	२।।)
खुद्दकपाठ— ,,	।)

बुद्ध कीर्त्तन—प्रेमसिंह चौहान	१।।)
बुद्धार्चन—प्रेमसिंह चौहान	।)
बुद्ध चित्रावली—(अर्थ सहित हिन्दी में)	२)
बौद्ध धर्म तीर्थावली—फोटो का सेट या किताब	३)
भगवान् बुद्ध ने कहा था—सुमन वात्स्यायन	।।=)
बोधिद्रुम (कविता)— ,, ,,	।=)
बुद्धदेव—शरत कुमार राय	१।।।)
बुद्धचरित—(दो भाग) सूर्यनारायण चौ०	२।।), १।।)
भगवान् बुद्ध का जीवन चरित्र	२)
अभिधम्मत्थ सङ्गहो (बौद्ध-दर्शन) —भिक्षु वरसम्बोधि	२।।)
तथागत का प्रथम उपदेश—भिक्षु धर्मरक्षित	।)
जातकट्ठ कथा—(मूलपालि) ,, ,,	८
बौद्ध-शिशुबोध— ,, ,,	।)
तेल कटाह गाथा— ,, ,,	।)
सारनाथ-दिग्दर्शन— ,, ,,	।)
कुशीनगर का इतिहास— ,, ,,	२।।)
पालि-पाठ-माला— ,, ,,	१)
जाति भेद और बुद्ध— ,, ,,	।।)
ब्राह्मणधम्मिय सुत्त— ,, ,,	=)
लंका-यात्रा— ,, ,,	१।।)
सरल पालि शिक्षा—भिक्षु सद्धातिस्स	१।।)
पालि धातुरूपावलि—ना. वर तुंगार	।।=
भगवान् हमारे गौतम बुद्ध—प्रो० मनोरञ्जन प्र०	-)
सारिपुत्र तथा मौद्गल्यायन—पं० विश्वनाथ शास्त्री	।।)
बौद्ध कहानियाँ—केदारनाथ गुप्त, एम० ए०	१।।)
महावंसो—एन० के० भागवत	२।।)
बौद्ध-धर्म सवाल-जवाब (उर्दू में)	।=)
थेरी गाथाएँ—भरतसिंह उपाध्याय	१।।)

सूचीपत्र के लिए =) की टिकट के साथ लिखें।

प्राप्ति-स्थान :—

महाबोधि पुस्तक भण्डार, सारनाथ, बनारस।

प्रकाशक—भिक्षु एम० संघरत्न, महाबोधि सभा, सारनाथ, (बनारस)
मुद्रक—ओम् प्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, कबीर चौरा, बनारस।

धर्मदूत

पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी

गुरुकुल-पत्रिका,
गुरुकुल काँगड़ी

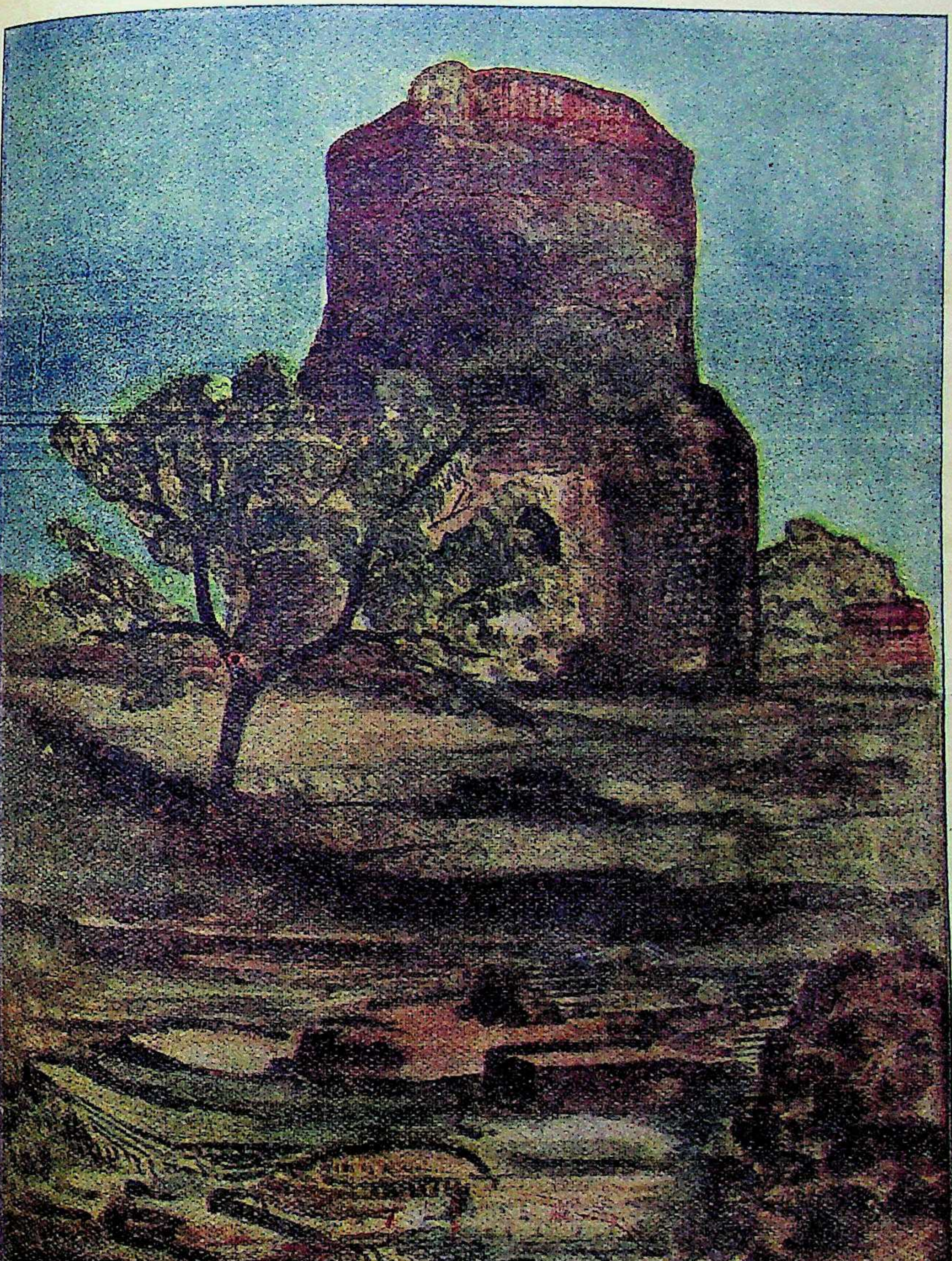

विशेषाङ्क

अप्रैल-मई १९५१

वार्षिक चन्दा—३)
इस अङ्क का—।।)

विषय-सूची

—:❀:—

विषय — पृष्ठ

१. बुद्ध-वचनामृत — १
२. वैशाखी-पूर्णिमा-महापण्डित राहुल सांकृत्यायन — २
३. मनुष्य का स्वभाव—भिक्षु जगदीश काश्यप — २
४. मुक्ति का सच्चा मार्ग—श्री प्रशान्त — ४
५. चार आर्य सत्य—श्रीअनन्त रामचन्द्र कुलकर्णी — ४
६. शान्ति का अनुपम केन्द्र—श्री बी० शिवाइव — ७
७. निर्वाण (कविता)—श्री रत्नशंकर — ८
८. नालन्दा का आदर्श—श्री टी० एल० वासवानी — ९
९. इच्छाशक्ति की कमजोरी और उसका निराकरण—श्री लालजीराम शुक्ल — १०
१०. उद्योग—श्री सूर्यनारायण चौधरी — १४
११. वाराणसी का प्राचीन भास्कर्य—श्री अद्रीशचन्द्र वन्दोपाध्याय — १५
१२. पालि साहित्य में प्रकृति वर्णन—भरत सिंह उपाध्याय — २०

विषय — पृष्ठ

१३. कोढ़ी से सन्त—भिक्षु मेत्तेय्य — २६
१४. दृष्टि-विशुद्धि—(विशुद्धि मार्ग से) — ३०
१५. तथागत का शान्त विहार—श्री अनन्त — ३२
१६. पड़ोसी देशोंमें बौद्ध संस्कृति-श्रीसुमन वात्स्यायन — ३४
१७. स्वानुभूति (कविता)—श्री गुलाब — ४०
१८. पुरानी पोथियोंकी लूट-खसोट-श्रीप्रह्लाद प्रधान — ४०
१९. चीना बाबा—भिक्षु धर्मरक्षित — ४४
२०. मृगदाव की शिलाने कहा-श्री बी.एन. सरस्वती
२१. तृष्णा, पूँजीवाद, विकेंद्रीकरण—श्री चन्द्रिका प्रसाद 'जिज्ञासु'
२२. नमो बुद्धाय—कुमारी सावित्री थैन
२३. धम्मपद—भदन्त आनन्द कौसल्यायन
२४. सम्पादकीय
२५. बौद्ध-जगत्

धर्मदूत की पुरानी फाइलें

धर्मदूत के पिछले वर्ष की पूरी फाइल सजिल्द उपलब्ध है । एक जिल्द का दाम ५) है अपनी फाइल के लिए शीघ्र लिखें ।

व्यवस्थापक - धर्मदूत

कहानी, कला व व्यवहारिक ज्ञान का भारत का सबसे अधिक पठनीय मासिक—

मानसरोवर

❀ सामाजिक व पारिवारिक समस्याओं पर कहानियाँ जो न केवल मनोरंजन ही करतीं वरन् मार्ग प्रदर्शन भी करती हैं ।
❀ सहज, सुलभ भाषा में सभी प्रकार के विषयों पर लेख ।
❀ आकर्षक छपाई व गेट अप ।
❀ बहुत साधारण मूल्य—६ आने प्रति, ४) वार्षिक, नमूना मुफ़्त ।

दिल्ली प्रेस, पोस्ट बाक्स १७, नई दिल्ली ।

धर्म-दूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय वमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवल-परिपुरणं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ । महावग्ग, (विनय-पिटक)

सम्पादकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

वर्ष १६ } सारनाथ, अप्रैल—मई बु० सं० २४९५ / ई० सं० १९५१ { अङ्क १-२

बुद्ध-वचनामृत

धर्म-विवाद न करे

"लोग विवाद करते हैं कि शुद्धि यहीं अपने ही धर्म में है और विशुद्धि दूसरे धर्मों में नहीं है। वे अपने मत में आसक्त हो उसीका गुण गाते हैं। मनुष्य अलग-अलग धर्मों में निविष्ट हैं। विवाद के इच्छुक वे परिषद् में जाकर एक दूसरे को मूर्ख बताते हैं। प्रशंसा के इच्छुक वे अपने को कुशलवादी समझ कर अपने धर्म में आसक्त हो विवाद में पड़ते हैं। प्रशंसा के इच्छुक हो परिषद् के बीच में पड़ने पर संघर्ष होता है। रन्ध्रगवेषी दोष दिखाने पर उदास होता है और निन्दा से कुपित होता है। प्रश्न पूछनेवालों से पराजित हो,' पराजय को दिखाने पर वह परास्त मनुष्य विलाप करता है, पछतावा करता है और वह दुखित होता है कि उसने मुझे हराया है।

"ये विवाद श्रमणों में उठते हैं और उनमें प्रहार तथा प्रतिप्रहार होते हैं। इस बात को देखकर विवाद से विरत रहे। विवाद में प्रशंसा-प्राप्ति के अतिरिक्त कोई लाभ नहीं है। वह परिषद् के बीच अपने मत का समर्थन कर प्रशंसित होता है। वह मन के अनुसार इच्छा को पूराकर उससे फूलकर हँसता है।

"विवाद में मानातिमान रूपी जो फूलना है, वह उसकी पराजय-भूमि भी है। इस बात को भी देखकर विवाद न करे। कुशल लोग इससे शुद्धि नहीं बताते।"

वैशाखी-पूर्णिमा

महापण्डित श्री राहुल सांकृत्यायन

एक बार फिर वह पुण्यतिथि आई, जब कि ढाई हजार वर्ष पूर्व लुम्बिनीके पावन वन में सदा के लिए पुरुषोत्तम सिद्धार्थ गौतम ने जन्म लिया था। वह जन्म सचमुच बहुजनहिताय था, जिसका प्रमाण है तथागत की वाणी का भूगोल पर मधुर प्रसार। वह मधुर प्रसार था, कहीं बलात्कार नहीं हुआ, कहीं किसी की जाति, संस्कृति या इतिहास को मिटाने की कोशिश नहीं की गई। तथागत की मध्यम-प्रतिप्रदा ने नष्ट करना नहीं चाहा, बल्कि अपनी भेंट द्वारा परिपूर्णता को प्राप्त कराना चाहा। सामाजिक, आर्थिक, दार्शनिक जिस किसी दृष्टि से भी देखा जाये, तथागत अद्वितीय हैं। उन्होंने सभी क्षेत्रों में मुक्ति का सन्देश प्रदान किया, गति-अवरोध की वहाँ कहीं गुंजाइश नहीं।

भारत के इन महान् पुत्र का महत्त्व मानवता के लिये सदा अधिकाधिक होता जायेगा, और भारत के लिये तो वे अनुपम निधि हैं ही। भारत की सामाजिक समस्याओं को सुलझाने का एक मात्र सुगम और आशुतोष उपाय है तथागत का सन्देश।

इसी वैशाखी पूर्णिमा को कुसीनारा के युगलशालों के बीच में तथागत ने निर्वाण प्राप्त किया था, किन्तु वह निर्वाण व्यक्ति का था, तथागत का उपदेश आज भी उसी तरह अक्षुण्ण चला आ रहा है, उसे बहुत से झंझावातों ने बुझाना चाहा, किन्तु वह किसी की लपेट में नहीं आया, न आयेगा।

मनुष्य का स्वभाव

भिक्षु जगदीश काश्यप

मनुष्य का स्वभाव मनोविज्ञान के लिए एक अत्यंत जटिल समस्या है। जन्म से ही कोई बालक अत्यंत चिड़चिड़ा होता है तो दूसरा अत्यंत प्रियशील, एक अत्यंत रुक्ष होता है तो दूसरा अत्यंत मृदु, एक अत्यंत लोभी और कृपण होता है तो दूसरा अत्यंत त्यागशील। बालकों के स्वभाव में इस अंतर के होने का क्या कारण है? कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इसका कारण उनकी परिस्थितियों की भिन्नता को बताया है जिनमें वे जन्मे और बढ़े। माता पिता की स्थिति का भी प्रभाव बच्चों के स्वभाव पर अपने ढंग से पड़ता ही है। किंतु प्रश्न होता है कि बच्चे के स्वभाव की धारणा क्या उसके माता-पिता तथा उसके अन्य भौतिक कारणों से की जा सकती है? यदि ऐसा हो सकता तो इसका भरोसा होना चाहिए था कि समान माता-पिता के बच्चे, समान परिस्थितियों में जन्मे और बढ़े, समान ही स्वभाव के होने चाहिए थे। किन्तु ऐसा होता नहीं है। ऐसे उदाहरणों की प्रचुरता है जिनमें समान माता-पिता के दो बच्चे, बिल्कुल समान परिस्थितियों में जन्मे और बढ़े, एकदम भिन्न प्रकृति के पाये जाते हैं। एक भाई साधु होता है तो दूसरा चोर, एक भाई महा कृपण होता है तो दूसरा मुक्त हस्तदानी, इत्यादि। कुछ लोगों ने मन की पृथक् सत्ता नहीं स्वीकार की है; उन्होंने सारी मानसिक क्रिआओं की धारणा भौतिक कार्यों से ही करने की कोशिश की है। मनोविज्ञान में इनका एक अपना पृथक् स्कूल ही रहा है। इन लोगों ने लाल बुझ-

[illegible] जैसी दुरूह कल्पनाएँ करके मनुष्य के स्वभाव की भिन्नता का कारण भौतिक अवस्थाओं को ही बताने का प्रयत्न किया है। किन्तु विचारकों ने यह स्पष्ट देख लिया है कि मन की धारणा भौतिक कारणों से पूर्णतः नहीं की जा सकती है। मन की सत्ता स्वतन्त्र माननी ही पड़ेगी।

बौद्ध-दर्शन के अनुसार भी मन की सत्ता भौतिक से पृथक् है। भौतिक कारणों का प्रभाव मन पर, और मन का प्रभाव भौतिक शरीर पर कुछ अंश तक पड़ता अवश्य है तो भी मन और शरीर की धाराएँ दो भिन्न हैं।

इसी दृष्टि को सामने रख बौद्ध-दर्शन ने मनुष्य के स्वभाव में भिन्नता का कारण उनके मानसिक परिस्थितियों की भिन्नता को ही बताया है। मनुष्य के जन्म के पहले उसके पूर्वभव में उसकी जैसी मानसिक स्थिति रही उसके संस्कार-फल-स्वरूप उसका स्वभाव इस जन्म में बना है। वह इस बात को मानने के लिए हमें बाध्य करता है कि इस जन्म के पूर्व मनुष्य की स्थिति किसी न किसी रूप में अवश्य थी। यह मानना असम्भव है कि मनुष्य के जन्म से ही उसकी मानसिक क्रियाएँ आरंभ होती हैं।

बौद्ध-दर्शन ने इसकी व्याख्या मन की छः प्रवृत्तियों से की है। यह छः प्रवृत्तियाँ हैं—लोभ, द्वेष, मोह; अलोभ (त्याग-शीलता), अद्वेष (मैत्री) और अमोह (प्रज्ञा)। पहली तीन प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं जो पशुओं में भी समान रूप से पायी जाती हैं; और अगली तीन प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं जो विकसित मनुष्यता की परिचायक हैं। जिस मनुष्य में पशुता अधिक है वह उतना ही अधिक लोभी, द्वेषी और मोही होगा। और जिस मनुष्य में जितनी अधिक मनुष्यता होगी वह उतना ही अधिक त्यागशील, मैत्रीशील और प्रज्ञाशील होगा। यह इतना स्पष्ट है कि इसके समझने में किसीको कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

मनुष्य अपने जीवन भर जितने कर्म करता है सभी के संकलित फलस्वरूप अपनी एक प्रवृत्ति पैदाकर लेता है। जिस मनुष्य ने अपने जीवन भर लोभ-द्वेष-मोह से ही प्रवृत्त होकर कार्य किये हैं उसने अपने में पाशविक प्रवृत्ति उपार्जित कर ली है। और, जिस मनुष्य ने अपने जीवन भर पदार्थ में आत्म-त्याग किये हैं, मैत्री चित्त बढ़ाया है और प्रज्ञा उपार्जित की है उसने अपने में एक उच्च मानवीय ही नहीं दैवी प्रवृत्ति भी प्राप्त कर ली है। जो मनुष्य जैसी प्रवृत्ति प्राप्त कर मरता है वह वैसी ही प्रवृति के स्वभाव का होकर फिर जन्म ग्रहण करता है।

लंका में एक पादरी महोदय ने कहा—"मैं यह मान नहीं सकता कि मनुष्य मर कर कुत्ता भी हो सकता है"। इसके उत्तर में कहा गया—"हाँ पादरी साहब, यह ठीक है कि मनुष्य मर कर कुत्ता नहीं हो सकता; कुत्ता ही मर कर कुत्ता होता है। किन्तु आपको जानना होगा कि हम मनुष्य की प्रवृत्ति लेकर मर रहे हैं या कुत्ते की मनुष्य का शरीर धारण करते हुए भी यदि कुत्ते जैसे लोभ-द्वेष-मोह अपने में बढ़ाया है तो हमें मर कर कुत्ता होना ही होगा"।

मनुष्य और कुत्ता में शरीर का अंतर तो है ही, किंतु उनका असल अंतर है उनके स्वभाव का। उसी तरह मनुष्यों में भी हम शरीर के रूप-रंग में जो अंतर पाते हैं उससे कहीं अधिक महत्त्व-पूर्ण अंतर उनके स्वभाव का है और यह स्वभाव का अन्तर उनके अपने पूर्व कर्म का फल है।

बौद्ध-दर्शन बताता है कि अच्छा या बुरा जैसा हम होना चाहें हम स्वयं अपने कर्म से वैसे हो सकते हैं। मनुष्य का स्वभाव उसकी अपनी पूर्व प्रवृत्तियों का फल है। अतः उसे सतत् जागरूक रहना चाहिए कि वह क्या कर रहा है और अपनी प्रवृत्ति के निर्माण में किस दिशा की ओर जा रहा है।

मुक्ति का सच्चा मार्ग

श्री प्रशान्त

संसार के नाना प्रकार के दुःखों से पीड़ित मानव उनसे मुक्ति का मार्ग ढूँढ़ते हैं। वे अपने इस प्रयत्न में नाना प्रकार के मार्गों को ग्रहण कर आगे बढ़ने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु सद्-प्रयत्न एवं सन्मार्ग के अभाव में वे दुःखों से नहीं ही छूट पाते। उन्हीं के द्वारा उत्पादित दोषों से उनके लिए शान्ति के स्थान पर भय उत्पन्न हो जाता है। वे मार्गामार्ग के नाना-कलहों में पड़कर मुक्ति से दूर ही भटकते फिरते हैं। वे अल्प जल में रहनेवाली मछलियों की भाँति व्याकुल रहा करते हैं। सिद्धार्थ कुमारको अपनी तरुणाई में इन सब बातों का कुछ ज्ञान हुआ था और उन्होंने समझ लिया था कि यह संसार असार है। इसकी असारता को देखते हुए ही उन्होंने मुक्ति-मार्ग का अन्वेषण करने के लिए गृह-त्याग किया था—

''सारा संसार असार है। सभी दिशाएँ विचलित हैं। अपने लिए क्षेम-स्थान की इच्छा करते हुए मैंने कही आपत्तियों से खाली नहीं पाया। अन्त में सर्वत्र विरोध-भाव को देखकर मुझे वैराग्य हुआ। तब मैंने यहाँ देखने में दुष्कर हृदय में लगे तीर को देखा। तृष्णारूपी जिस तीर के लगने से प्राणी सभी दिशाओं में दौड़ता है, उसके निकलने से वह न तो दौड़ता है न बैठता है।

बुद्धत्व-प्राप्त कर बुद्ध ने संसार की गति एवं सांसारिक शिक्षकों को देखते हुए कहा था—''संसार में आसक्ति-जनक बहुत-सी शिक्षायें दी जाती हैं, उनमें न लगे। सर्वथा कामनाओं की ओर से उदास हो अपनी मुक्ति के लिए सीखे। पुराने का अभिनन्दन न करे, नये की अपेक्षा न करे, खोये की चिन्ता न करे और तृष्णा में लिप्त न हो।''

भगवान् बुद्ध की उक्त शिक्षायें मुक्ति की ओर ले जाने वाली हैं। मुक्ति का यदि सच्चा मार्ग अपनाना है तो इन शिक्षाओं का ही अवलम्बन लेना होगा। इन शिक्षाओं में मुक्ति का वह सामीप्य-एवं सरल-मार्ग वर्णित है, जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं। भगवान् बुद्ध ने स्वयं भी कहा था--

''सुभद्र! उन्तीस वर्ष की अवस्था में कुशलमार्ग (=मुक्तिमार्ग) का खोजी हो प्रव्रजित हुआ, तब से इक्कावन वर्ष हुए, किन्तु मैंने यहाँ से बाहर अन्य किसी को भी सत्य धर्म के एक देश को भी देखने वाला नहीं पाया।''

चार आर्य-सत्य

श्री अनन्त रामचन्द्र कुलकर्णी

जिस प्रकार एक सच्चा वैद्य रोगी के रोग की परीक्षा करते समय रोग, रोग का निदान, रोग का नाश और उसके नाश का उपाय रोगी को बतलाता है, वैसे ही समस्त विश्व के कल्याण के लिए परम कारुणिक, सम्पूर्ण ज्ञानी बुद्ध ने संसार को सुखी करने के उद्देश्य से चार आर्य सत्य का उपदेश दिया है। ये चार आर्य सत्य कौन-से हैं? संसार दुःख है—यह पहला आर्य सत्य है। संसार यदि दुःख है, तो उस दुःख का कारण क्या है! क्योंकि बिना कारण कोई कार्य नहीं होता। इस दुःख का कारण तृष्णा है—यह दूसरा आर्य सत्य है। दुःख का नाश अर्थात् तृष्णा का नाश अथवा निर्वाण-प्राप्ति-यह तीसरा आर्य सत्य है। इसी तृष्णा के नाश का मार्ग

अर्थात आर्य अष्टांगिक मार्ग—चौथा आर्य सत्य है।

कुछ लोग कहेंगे कि सत्य तो एक ही होता है, सत्य कभी चार नहीं हो सकता। एक दृष्टि से यह कथन सत्य हो सकता है। जिस मनुष्य ने निर्वाण, परब्रह्म, शान्तिमय ब्राह्मीस्थिति या सच्चिदानन्द की अवस्था को प्राप्त कर लिया है, उसके लिए तो यह पद ही एक सत्य है और शेष सब मिथ्या है। परन्तु उस पद को प्राप्त करने की पूर्व अवस्था में जब मनुष्य रहता है, तब 'मैं दुःखी हूँ' इस बात का उसे अनुभव होगा। चार आर्य सत्यों पर जोर देने का उद्देश्य यही है कि मनुष्य आत्म-वंचना न करे। दुःख को दु.ख समझने पर ही मनुष्य दुःख का अन्त करने का प्रयत्न करेगा। यदि वह दुःख को ही सुख मानेगा, तो उसको सच्चे सुख की प्राप्ति कभी भी नहीं होगी। समुद्र के खारे पानी को ही अगर हम अमृत मानेंगे, तो हमें वास्तविक अमृत का ज्ञान नहीं होगा। अतः परम सुख की अवस्था अर्थात् निर्वाण-पद प्राप्त करने के लिए पहले हम दुःखी हैं—इसे जानना पड़ेगा। यदि हम दुःखी हैं, तो क्यों? और इस दुःख का अन्त कैसे हो सकता है? ये प्रश्न स्वभावतः ही उत्पन्न होते हैं। इस दृष्टि से चार सत्यों की कल्पना प्रामाणिक एवं यथार्थ है।

अब दूसरा प्रश्न यह उपस्थित होता है कि बुद्ध ने इन सत्यों को आर्य सत्य क्यों कहा? आर्य का तात्पर्य है श्रेष्ठ, उत्तम। अतः इसका अर्थ यह है कि इन आर्य सत्यों का अवबोध आर्य लोग ही कर सकते हैं न कि पृथग्जन; अर्थात् वे साधारण लोग जो आदर्श-हीन जीवन व्यतीत करते हैं।

कुछ लोग कहेंगे कि बुद्ध ने संसार दुःख है इसे सत्य कह कर संसार में निराशावाद को प्रश्रय दिया, किन्तु यह आरोप यथार्थ नहीं। दुःख को दुःख कह कर बुद्ध ने निराशावाद को प्रश्रय नहीं दिया, प्रत्युत इस सत्यको कह कर उन्होंने एक स्वयं सिद्ध बात संसार को कही। इच्छित वस्तु की अप्राप्ति दुःख है, प्रिय वस्तु का वियोग दुःख है, अप्रिय वस्तु का संयोग भी दुःख है और इन दुःखों से ही जो संसार परिव्याप्त है, तो फिर 'संसार दुःख है'—ऐसा कह कर बुद्ध ने वास्तविकता का ही वर्णन किया। यदि बुद्ध पहले आर्य सत्य पर ही रुक जाते, तो हम कह सकते थे कि बुद्ध की शिक्षा निराशाजनक है, किन्तु उन्होंने तो हमें इस दुःख से छुटकारा पाने का आश्वासन देते हुए, छुटकारा पाने के प्रशस्त मार्ग को भी बतलाया। यही नहीं, दुःख से मुक्ति अर्थात् निर्वाण-पद की प्राप्ति को परम-सुख कहा—"निब्बानं परमं सुखं"। अतः जो लोग ऐसा करते हैं कि बुद्ध का निर्वाण नकारात्मक है, वे यथार्थ सत्य नहीं कहते। भगवान् बुद्ध का निर्वाण प्रभावात्मक भी है। दुःखका अभाव ही तो सुख है। दुःख से मुक्त होकर मनुष्य जब सुखी हो सकता है, तब बुद्ध की शिक्षा निराशाजनक कैसे हो सकती है?

रोग का अभाव ही निरोगी होना है और यही निरोगिता है। जहाँ रोग है, वहाँ निरोगिता नहीं। वैसे ही जहाँ दुःख है, वहाँ सुख नहीं होता। जहाँ अन्धकार है, वहाँ प्रकाश कैसे रह सकता है? अतः सुख-दुःखके अभाव की अपेक्षा कोई भिन्न और स्वतन्त्र वस्तु या अवस्था है—यह कहना परम विरुद्ध होता है। यदि सुख ऐसी कोई स्वतन्त्र वस्तु या अवस्था है तो फिर उसके रहते हुये भी मनुष्य दुःखी क्यों है? क्या एक ही स्थान में, एक ही समय अन्धेरा और उजाला दोनों बास कर सकते हैं? अतः दुःख के अभाव की अपेक्षा सुख कोई स्वतन्त्र वस्तु है—ऐसा मानना बुद्धि-हीन मालूम होता है। इसलिए वह विचारधारा त्याज्य है। यह निर्विवाद है कि बुद्ध की विचारधारा ही सरल स्पष्ट तथा प्रामाणिक है।

अब हम चार आर्य सत्यों का विस्तार पूर्वक विचार करेंगे। संसार दुःख है—यह एक स्वयं सिद्ध बात है। इस संसार का निर्माण किसने किया? यह निरर्थक प्रश्न है (अकल्लोयं पन्हो)। ऐसे प्रश्न की चर्चा से कोई लाभ नहीं। अतः भगवान् बुद्ध कहते हैं ऐसा प्रश्न मत पूछो। वे बतलाते हैं यदि तुम प्रश्न करना और जानना चाहते हो तो पूछो 'इस दुःख का कारण क्या है?' इस दुःख का कारण है तृष्णा या अविद्या। तृष्णा का नाश करने पर हम दुःख का अन्त करते और सुखी बनते हैं। इस अवस्था को ही भगवान् बुद्ध 'निर्वाण' कहते हैं। तृष्णा के नाश के लिए तथागत ने जो मार्ग बतलाया है उसे आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग कहते हैं। सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन,

सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि ही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग है।

पहले हमें सम्यक् शब्द का अर्थ भलीभाँति समझ लेना चाहिए। सम्यक् शब्द का तात्पर्य है सच्चा। इस शब्द का प्रयोग मिथ्या शब्द के विरोधाभाव में किया गया है। और इसी कारण सम्यक् शब्द पर भगवान् बुद्ध बहुत जोर देते हैं क्योंकि जब तक मनुष्य मिथ्या को मिथ्या नहीं समझेगा; तब तक उसको सम्यक् शब्द की यथार्थ कल्पना नही होगी। जैसे असली और नकली रुपयों में भेद होता है। वैसे ही सम्यक् और मिथ्या शब्द में भेद मानना चाहिए। तो फिर सम्यक् दृष्टि क्या है? हमारा संसार की ओर दृष्टिकोण सच्चा होना चाहिए। जब हम चार आर्य सत्यों पर श्रद्धा रख संसार की ओर देखेंगे तो हमारा दृष्टिकोण सच्चा होगा अन्यथा नहीं। सम्यक् संकल्प अर्थात् हमें ऐसा संकल्प करना चाहिए कि संसार में हम अहिंसक वृत्ति से रहेंगे, नैष्कर्म्य वृत्ति से रहेंगे और सब प्राणिमात्र पर दया करेंगे। दुःखी संसार को हम अपनी हिंसक वृत्ति से और भी दुःखी नहीं करेंगे, प्रत्युत उसके दुःख को कम करने के इरादे से हम अहिंसक तथा दयालु वृत्ति से ही घूमेंगे। ऐसे संकल्प को सम्यक् संकल्प कहते हैं। भगवान् बुद्ध अपनी अमर वाणी में कहते हैं—

"यथापि भमरो पुप्फं वण्णगन्धं अहेठयं।
पलेति रसमादाय एवं गामे मुनी चरे॥

अर्थ—भ्रमर पुष्पके वर्ण और गन्ध को बिना हानि पहुँचाये, रस को लेकर चल देता है। वैसे ही मुनि ग्राम में भिक्षाटन करे।

आर्यजन को अकिंचन तथा अपरिग्रह वृति से ही समाज में विचरण करना चाहिए—यह भगवान् बुद्ध का संसार को आदेश है, अमर सन्देश है। इससे ऊँची शिक्षा क्या हो सकती है? इससे ऊँचा साम्यवाद क्या हो सकता है?

झूठ न बोलना, कटुवचन न बोलना, चुगली न करना और वृथा बड़बड़ न करना—इन्हें सम्यक् वचन कहते हैं। सम्यक् कर्मान्त का तात्पर्य कायिक पाप कर्मों से विरत रहते काम करना है। हिंसा, चोरी, और व्यभिचार—ये कायिक पाप-कर्म है। सम्यक् आजीव से यह तात्पर्य है कि हमारी जीविका सच्चे साधनों पर ही निर्भर रहनी चाहिए।

प्रत्येक मनुष्यमें दो प्रवृत्तियाँ हैं—सात्विक तथा राक्षसी। यदि मनुष्य सात्विक-प्रवृत्ति का अवलम्बन करेगा, तो वह अपना विकास कर शान्तिपद को प्राप्त करेगा, परन्तु ऐसा न करते हुए यदि वह राक्षसी प्रवृत्ति का अवलम्बन करेगा, तो अपना नाश कर बन्धन में ही रहेगा। अतः प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह सात्विक प्रवृत्ति का ही अवलम्बन करे और राक्षसी प्रवृत्ति का नाश करे। यही निर्वाण का मार्ग है। ऐसे प्रयत्न को ही भगवान् बुद्ध ने सम्यक् व्यायाम कहा है। भगवान् बुद्ध की शिक्षा अगर हम एक गाथा में कह सकते हैं, तो वह यह है—

"सब्ब पापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा।
सचित्त परियोदपनं एतं बुद्धान सासनं॥"

अर्थ—सारे पापों का न "करना, पुण्यों का संचय करना, अपने चित्त को परिशुद्ध करना, यह बुद्धों की शिक्षा है।

सम्यक् स्मृति का अर्थ है साधक को सदा स्मृतिमान अर्थात् जागरूक रहना चाहिए। जैसे चिड़िया चावल के दाने खाते समय सावधानी से विचरती है, वैसे ही साधक को अपने जीवन में दक्षता एव तत्परता रखनी चाहिए। बिल्ली के डर से जैसे चिड़िया चारों दिशा में नजर डाल कर चावल खाती है। वैसे ही काम, क्रोध, आदि के चंगुल में हम न फँसें, साधक में ऐसी सतर्कता होनी चाहिए। ऐसा सतर्क व्यक्ति अवश्य ही अमृतपद को प्राप्त करता है—

अप्पमादो अमतपदं पमादो मच्चुनो पदं।
अप्पमत्ता न मीयन्ति ये पमत्ता यथा मता॥

सतत सतर्कता अमृतपद का साधक है और प्रमाद मृत्यु-पद का। सतर्क युक्त व्यक्ति मृत्यु को नहीं प्राप्त होते, किन्तु सतर्कता-हीन तो मृत ही हैं।

सम्यक् समाधि का अर्थ है चित्त को स्थिर करना। सब काम-वासनाओं का त्याग करने पर मनुष्य एकाग्र-चित्त होता है। चित्त की एकाग्रता से वह सुखी, होता है अर्थात् निर्वाण-पद प्राप्त करता है।

इसी आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग को मध्यम मार्ग भी कहते हैं, क्योंकि यह मध्यम मार्ग दोनों अन्तों——देह-मण्डन, जो हीन, ग्राम्य, अनर्थ और निरर्थक जीवन है और देह-दण्डन अर्थात् कष्टमय एवं निरर्थक जीवन——को छोड़ मनुष्य को शुद्धता और पवित्रता की ओर ले जाता है।

इस विवेचन से स्पष्ट ज्ञात होगा कि बुद्ध ने जो परम शान्ति या निर्वाण-प्राप्ति का मार्ग बतलाया है, इसमें ईश्वर का कोई स्थान नहीं है। मनुष्य ही अपना स्वामी है—यह बुद्ध-शासन का सार है:——

अत्ता हि अत्तनो नाथो को हि नाथो परो सिया।
अत्तना'व सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभं ॥

अर्थ——व्यक्ति अपना स्वामी आप है, भला दूसरा इसका स्वामी कौन हो सकता है? अपने ही को अच्छी तरह शमन कर लेने से वह दुर्लभ स्वामी (=निर्वाण) का लाभ करता है।

इस घोषणा से भगवान् बुद्ध ने मनुष्य को मानसिक स्वतंत्रता दी और उसे एक स्वयं स्थान दिया। इसी कारण बुद्ध की शिक्षा को संसार में आज इतना ऊँचा स्थान मिला है, क्योंकि वह प्रामाणिक एवं बुद्धिग्राह्य है। अगर ईश्वर की कृपा से ही हमारा दुःख-निवारण हो सकता है, तो हम सर्वदा ईश्वर के हाथ की कठपुतली ही रहेंगे, और हमारी स्वतंत्रता का मार्ग बन्द रहेगा। अर्थात् हम हमेशा के लिए ईश्वर के गुलाम बने रहेंगे। फिर मोक्ष और शान्ति——ये सब शब्द-जाल हो जाते हैं। ऐसी विचार-धारा किसी विचारवान् मनुष्य को मान्य नहीं हो सकती है। मनुष्य स्वतंत्र होता है। इसका सरल अर्थ यही है कि वह किसी अन्य शक्ति या व्यक्ति पर निर्भर नहीं रहता, यही स्वतंत्रता की सच्ची कल्पना है। परवशता दुःख और आत्मवशता सुख है। यह संसार का अटल नियम है और यही बुद्ध-शासन का सार है। दूसरे शब्दों में अगर हम कहें कि मनुष्य अपने कर्म से ही नारायण हो सकता है तो यही बुद्धवचनामृत है। आज संसार को इसी शिक्षा की अवश्यकता है। यदि ईश्वर ही सब कुछ करता है, तो इस संसार में हमारा कुछ भी कर्तव्य नहीं होता। फिर धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य, न्याय-अन्याय ये सब कल्पनाएँ झूठी कहनी पड़ेंगी। ऐसी विचारधारा में मनुष्य निष्क्रिय तथा निरंकुश बनता है और पापके साम्राज्य को प्रोत्साहन देता है। अतः बुद्धकी विचार-प्रणाली ही आज एटम् बम् के युग में मनुष्य को तार सकती है। अतः उसका अवलम्बन करना हमारा परम पवित्र कर्तव्य है।

शान्ति का अनुपम केन्द्र

श्री वी० शिवाड्व

शान्ति मस्तिष्क की चीज है। किसी वाह्य साधन द्वारा शान्ति स्थापित नहीं हो सकती। भले ही वह अतुल-शक्ति-सम्पन्न एवं विश्व-विदित हो। संसार में सुरक्षा-परिषद् द्वारा अणुबम् पर प्रतिबन्ध लगाकर तथा अन्तर्राष्ट्रीय सेना आदि साधनों द्वारा शान्ति-स्थापन का ख्याल करना नासमझी की बात होगी। यदि मनुष्य के अन्तस्तल में शान्ति नहीं है, तो वाह्य संसार में शान्ति का वातावरण लाने का प्रयत्न करना व्यर्थ है।

अतः हमें चाहिए कि यह ज्ञान सबके अन्तस्तल तक पहुँचाने का प्रयत्न करें। बौद्ध धर्म के अतिरिक्त अन्य किसी धर्म की शिक्षा ने इसका स्पष्ट विश्लेषण नहीं किया है और सम्भवतः यही कारण है जिससे बौद्ध धर्म संसार में सबसे अधिक आदरणीय है। इस धर्म को गर्व हो सकता है कि सम्पूर्ण एशिया में फैलते हुए भी इसके नाम पर एक बूँद भी रक्त नहीं गिरा। वे सभी, जो बौद्ध धर्म को जानते हैं और समझते हैं, इसकी शिक्षा का आदर करते हैं। यदि इसकी शिक्षा अधिक व्यापक हो सकी है, तो इसमें इसकी अमर-शान्ति के निर्देश का प्रमुख स्थान है। सुत्तनिपात में भगवान् बुद्ध द्वारा उपदिष्ट ये वचन वास्तव में यथार्थ हैं—

"चोरी न करे, असत्य न बोले, दुर्बलों तथा सबलों के प्रति मैत्री करे। यदि मन को व्याकुल जाने तो उसे मार का पक्षपाती जान दूर करे। क्रोध तथा अभिमान के वश में न जावे, उनके मूल को उखाड़ दे। अवश्य ही प्रिय-अप्रिय दोनों को दूर करे। प्रज्ञापूर्वक कल्याणरत हो उन बाधाओं को दूर करे। एकान्त-स्थान में अरति पर विजय पा ले, चार विलाप की बातों पर विजय पा ले। क्या खाऊँ! कहाँ खाऊँ? कल दुःख से सोया था, आज कहाँ सोऊँ?—परिदेवनीय इन वितर्कों को बेघर हो बिचरने वाला शिष्य दूर करे।

"समय पर अन्न तथा वस्त्र पाकर वह वहाँ अपने संतोष की यात्रा को जान ले। वह उनके विषय में संयत हो, संयम से गाँव में विचरे। रुष्ट होने पर भी कठोर बात न करे। नीचे की हुई आँख हो घुमक्कड़ न हो, ध्यानानुरत हो, सदा जागरूक हो, उपेक्षावान् हो, समाधिस्थ हो, संशय के आश्रय तथा व्याकुलता का नाश करे। किसी के द्वारा दोष दिखाने पर स्मृतिमान् उसका अभिनन्दन करे। कल्याणकारी वचन कहे जो कि असङ्गत न हो। लोगों में विवाद उठाने की न सोचे।"

तथागत के ये अमर सन्देश शान्ति के अमर मार्ग हैं। यह शिक्षा परम शुद्धि के लिए है, जो प्रत्येक युग में अमर रहेगी और मानव जाति को आध्यात्मिक शान्ति प्राप्त करने की शिक्षा देती रहेगी। जब हम इन शिक्षाओं को हृदय से मनन करेंगे एवं इनके अनुसार अपने जीवन को बनाने का प्रयत्न करेंगे, तभी पूर्ण शान्ति हो सकती है, और तभी हम उसे व्यवहार में भी ला सकेंगे, उसके लिए न किसी बाह्य नियम की आवश्यकता होगी, न सुरक्षा की और न तो सेना की ही।

इस सत्य एवं यथार्थता का अनुभव कर मनुष्य आध्यात्मिक प्रकाश की एक अद्भुत ज्योति जगाता है, जिसे शान्ति कहते हैं। हमें संसार में शान्ति-स्थापनार्थ इन परम—शान्तिदायिनी शिक्षाओं को शान्तिपूर्वक मनन करना होगा और ऐसा करने से ही हमें पूर्ण शांति की प्राप्ति होगी। अतः स्पष्ट है कि शांति वहीं होगी, जहाँ सत्य, धर्म, न्याय, प्रेम एवं सद्भाव होंगे। वे ही शान्ति के अनुपम केन्द्र हैं।

निर्वाण

श्री रत्नशंकर

वात वासना क्षुब्ध जगत में आत्मशरण होकर विहरो
रोग जरा कृश क्लिन्न जुगुप्सा काम विपाकों पर सिहरो
इसी देह से इसी धरणि पर इसी जन्म में मुक्ति तुम्हारी
इसी मार्ग से इसी धर्म में है संगति औ' मुक्ति तुम्हारी
अरे अमरता का स्वप्निल वह मृषा लोक विस्मृत कर दो
सुयश सुभरता मध्य मार्ग की पुण्य पन्थ विस्तृत कर दो
जीवन के दावानल पर तुम बनो श्याम जलधर गम्भीर
वसुधा तड़प रही ज्वाला में खुले मूक हैं नयन अधीर
नील व्योम में चिर विषाद की अमा अरे ढलनेवाली
तिमिर मेघ को उठा मिहिर संशय मिहिका गलनेवाली
क्रूर सुखों की अन्ध निशा में लहर वासना कंपन भीम
बनो भिक्षु आलोक वर्ष भर अन्तर में ज्योतिष्क असीम
उस दिन पिंडपात अन्तिम था हुआ महाशय गृहपति चुन्द
अरे देख संस्कार अचिर हैं फिर भी क्यों रोता आनन्द!
अग्र पिंडदायिनी सुजाता और चुन्द कर्मार सुपुत्र
दोनों ही समयश के भागी तुषित लोक में हैं सुर मित्र
शांति कूट पर मोक्ष दीप जल उठा तुमुल रव भास्वर में
हुए निनादित अनिल वाद्य सब देवराग देवस्वर में।

नालन्दा का आदर्श

श्री टी. एल. वासवानी

विश्वविद्यालय संस्कृति का मन्दिर है। इसलिए उसमें किसी प्रकार की दलबन्दी या साम्प्रदायिकता नहीं होनी चाहिए। विद्वानों को एक ही सांस्कृतिक मंच पर लाना सच्चे विश्वविद्यालय का उद्देश्य होना चाहिए।

मैं यहाँ पर एक ऐसे विश्वविद्यालय का उल्लेख करना चाहता हूँ। कुरुक्षेत्र, काशी तथा नदिया में भी बड़े-बड़े विद्यापीठ रहे हैं। लेकिन जिस विश्वविद्यालय का उल्लेख यहाँ पर करना चाहता हूँ वह बिहार का महान् नालन्दा विश्वविद्यालय है। दस हजार विद्यार्थी उसमें विद्या पाते थे। एक विवरण के अनुसार किसी समय वहाँ बारह हजार विद्यार्थी रहा करते थे। नालन्दा का निर्माण प्रथम शताब्दी में ही हुआ था और बारहवीं शताब्दी तक कायम रहा।

कितनी भक्ति के साथ सेठों तथा राजाओं द्वारा उस का निर्माण हुआ था। हाँ, राजाओं ने यह अच्छी तरह समझ लिया था कि अपनी सहायता के बावजूद शासकों को उस के सांस्कृतिक कार्य में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। छः राजाओं ने नालन्दा को सहायता की थी। वे दीन दुखियों की सेवा करते थे और विद्वानों तथा सन्तों का आदर सत्कार करते थे।

क्या आप ने कभी नालन्दा के शाब्दिक अर्थ पर विचार किया है। उसका अर्थ है अनवरत सेवा। उस महान् विश्वविद्यालय का कितना महान् उद्देश्य था।

नालन्दा विश्वविद्यालय के बहुत से आचार्य थे। वे सब पवित्र चरित्र वाले विद्वान् थे। आज अपनी चारों ओर दृष्टिपात करें! जरा भारत की वर्तमान अवस्था पर सोचें! क्षण भर विचार करें कि हमारे स्कूलों तथा कालेजों का सारा प्रयत्न किस दिशा में है? केवल उपाधियों की प्राप्ति के लिए! मेरा व्याकुल हृदय पूछ रहा है कि अब चरित्र निर्माण कहा है? आज मेरे प्यारे भारत को सब से बड़ी आवश्यकता ऐसे चरित्रवानों की है, ऐसे वीरों की है, ऐसे पवित्र आत्माओं की है और ऐसे निःस्वार्थी व्यक्तियों की है जो कि मानवता के महायज्ञ में अपने जीवन की आहुति दे सकें।

महास्थविर शीलभद्र नालन्दा विश्वविद्यालय के अध्यक्ष थे। वे प्रकाण्ड पण्डित थे। वे सारे भारत का भ्रमण कर चुके थे। वे चाहते तो आसानी से पूर्वी बंगाल का राज्य प्राप्त कर सकते थे। लेकिन उन्होंने अच्छी तरह जान लिया था कि ज्ञान स्वर्ण तथा मणिमुक्ताओं से कहीं अधिक मूल्यवान् है। इसलिए शीलभद्र सब कुछ त्याग कर ज्ञान की खोज में निकले। अन्त में वे नालन्दा पहुँचे और एक दिन वहाँ के संघ स्थविर बने।

इसके बाद ही चीनी यात्री ह्वेनसांग नालन्दा में आते हैं और श्रद्धा पूर्वक नतमस्तक हो संघस्थविर शीलभद्र को प्रणाम् करते हैं। तब दोनों के बीच संवाद आरम्भ होता है। इस सम्वाद में चीनी यात्री शीलभद्र से बोलते हैं—"मैं स्वदेश को छोड़ कर ज्ञान की खोज में जम्बूद्वीप में आया हूँ। गुरुदेव, मुझे बतावें कि ज्ञान का स्वरूप क्या है?"

शीलभद्र न केवल महान पण्डित थे अपितु ज्ञानी और सन्त भी थे। उनकी प्रबुद्ध बुद्धि थी। वे बोले—"जीवन तथा संसार का तत्वावबोध ही ज्ञान है।"

यह एक ऐसा सूत्र है जिसे कि हृदयङ्गम करना चाहिए। वह ज्ञान पुस्तकों में नहीं है। वह तत्वावबोध ही में है।

इस अशान्ति के समय में भारत को ऐसे ज्ञानियों की बड़ी आवश्यकता है जो कि दूरदर्शी हो और दूसरों के मार्ग दर्शक बन सकते हों।

क्या आप भारत में सच्चे विश्वविद्यालयों का निर्माण करना चाहते हैं! तब भारतवर्ष की, इस प्राचीन देश की

सन्तानों के रूप में अपने उत्तराधिकार के महत्व को समझने का प्रयत्न करें। एशिया की संस्कृति में, भारत की संस्कृति में सारे विश्व को एक नया जीवन प्रदान करने की शक्ति है। लगन के साथ उसका अध्ययन करें। उसके अनुसार अपने जीवन को बनावें और सारे विश्व के हित के लिए उसका प्रचार करें।

इच्छाशक्ति की कमजोरी और उसका निराकरण

श्री लालजीराम शुक्ल

जिस मनुष्य की इच्छाशक्ति कमजोर होती है उसके समान दुःखी कोई नहीं होता। कमजोर इच्छाशक्ति का व्यक्ति अपने निश्चय पर दृढ़ नहीं रह पाता। वह जिस किसी निर्णय पर आवे उसमें थोड़ी ही देर में दोष दिखाई देने लगता है और वह अपने किये के लिये पछताने लगता है। उसे बाध्य होकर अपने पुराने निर्णय को बदल देना पड़ता है। इस प्रकार जब वह नये निर्णय पर आता है तो उसे फिर चैन नहीं मिलता। वह इस निर्णय को मिटाने के लिये बाध्य हो जाता है। सदा डावाँडोल मन रहने के कारण वह अनेक कामों में हाथ डालता है परन्तु किसी को भी पूरा नहीं कर पाता? इस प्रकार की मनोवृत्तिका उदाहरण श्री माटगन महाशय ने अपनी साइकोलोजी आफ दी अनएडजस्टेड स्कूल चाइल्ड नामक पुस्तक में दिया है।

एक नवयुवक एक दूकान पर एक नया टोप खरीदने गया। उसने कई टोपों को देख कर एक खरीद लिया। परन्तु ज्यों ही वह उसे लेकर चला उसके मन में अकारण ही विचार आया कि उसे टोप को खरीदना न चाहिये था। कुछ दूर जाकर वह लौटने लगा। फिर कुछ कदम चल के उसके मन में विचार आया कि मैं अनुचित कार्य कर रहा हूँ। मैं टोप वाले से क्या कह कर इस टोप को लौटाऊँगा। वह मेरे बारे में क्या सोचेगा। इन विचारों ने उसे फिर आगे बढ़ने को बाध्य किया। दो बार फिर भी उसके मनमें टोप को वापस करने और न वापस करने के विचार आये और इसके कारण वह आगे पीछे आता रहा।

इसी प्रकार जब उसने एक नई चेक बुक बैंक से ली थी तो उसके लौटा देने के विषय में विचार आये थे। एक बार उसने अपने मित्र को सेना में भरती होने के इरादे को लिखा था तब भी बारबार डाँवाडोल मन होगया था। कभी वह लिखता था कि वह सेना में भरती होगा कभी नहीं भरती होगा। और यह सब अकारण सा ही होते दिखाई पड़ता था।

इस प्रकार की मानसिक अवस्था उन लोगों के मन की हो जाती है जो विद्वान् और प्रतिभावान व्यक्ति हैं। इस प्रकार की मानसिक स्थिति के कारण समाज उनकी सेवा से वंचित रह जाता है। उन्हें विश्वास ही नहीं रह जाता कि वे अपने किसी भी निश्चय पर दृढ़ रह सकेंगे अथवा नहीं। मन की डँवाडोल अवस्था प्रतिभावान व्यक्ति की मानसिक शक्ति को नष्टकर डालती है। इसके कारण कभी-कभी भेद बुद्धि के लोग तीव्र बुद्धि के लोगों की अपेक्षा अधिक काम कर डालते हैं। संसार का बिरला ही तीव्र बुद्धि का व्यक्ति कर्तव्य क्षेत्र का सामाजिक नेता होता है। जिस प्रकार व्यावहारिक प्रश्नों के विषयमें कम सोचना हानिकारक है इसी प्रकार अधिक सोचना भी हानिकारक है। व्यावहारिक प्रश्नों के विषय में अधिक सोचने वाला व्यक्ति जब कभी किसी काम की योजना बनाता है तो दूसरे ही क्षण उसे अपनी योजना छुद्र दिखाई देने लगती है। उस के मनमें उसकी सफलता के विषय में अनेक संदेह उत्पन्न होने लगते हैं और इस कारण वह अपने पहले के चिन्तन के फल को नष्ट कर डालता है।

किसी भी विचार के फलित होने के लिये उसे देर तक पकड़े रहना आवश्यक है। जब कोई विचार मनुष्य के चेतन मन से अचेतन मन में चला जाता है तभी उसमें फलित होने की शक्ति आती है। जब किसी विचार को

हम आशायुक्त भावना से देरतक धारण किये रहते हैं तो यह विचार अपने फलित होने के लिये अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण भी कर लेता है। बाह्य जगत हमारे आन्तरिक जगत की स्थिति के सापेक्ष होता है। जैसी हमारी मानसिक, परिस्थिति होती है उसी प्रकार का बाहरी जगत भी दिखाई देता है। जो मनुष्य अपने संकल्प पर दृढ़ है उसे बाहर से भी अपने काम में पर्याप्त सहायता मिल जाती है। संकल्प की दृढ़ता न रहने पर बाहरी सहायक भी अपना हाथ खींच लेते हैं।

जब कोई मनुष्य अपने पहले के निश्चय को पलट देता है तब वह अपनी पुरानी मानसिक शक्ति को नष्ट कर डालता है। मनुष्य की बुद्धि किसी काम का निश्चय करती है और उसकी कल्पना उसके निश्चय को बाह्य जगत में व्यक्त होने में कारण बनती है। क्रिया कल्पना की अनुगामी है न कि बौद्धिक विचार की। जब कोई विचार स्थिर हो जाता है तब कल्पना उसके पीछे पीछे जाने लगती है अर्थात् कल्पना छोटी छोटी बातों का चित्रण करने लगती है फिर जिस प्रकार का चित्र कल्पना मनुष्य के मन में खींचती है उसी प्रकार का कार्य अपने आप ही होने लगता है। कार्य के करने पर मनुष्य को अपनी शक्ति का ज्ञान होता है और यही ज्ञान उसकी इच्छाशक्ति का बल बन जाता है। जिस मनुष्यमें जितनी अधिक कार्यक्षमता रहती है उसकी इच्छाशक्ति उतनी ही अधिक बलवान होती है। मनुष्य में कार्यक्षमता अनायास नहीं आ जाती, वह काम करने से ही आती है। जिस मनुष्य का कार्य करने का अभ्यास जितना अधिक होता है उसकी इच्छाशक्ति उतनी ही बलवान होता है।

पुस्तक के पढ़नेवाले विद्वानों की इच्छाशक्ति प्रायः निर्बल होती है। पहले तो पंडितोंको अपने स्वतन्त्र निर्णय का अवसर ही कम मिलता है। अनेक विचारों का प्रवाह एक साथ मनमें दौड़ने से मनुष्य की स्वतन्त्र चिन्तन की शक्ति जाती रहती है। वह क्या ठीक है और क्या नहीं, यह निश्चय नहीं कर पाता। फिर विद्वान लोग केवल विचार के क्षेत्र में ही रह जाते हैं, विरले ही विद्वान् व्यावहारिक कार्य क्षेत्र में पैर रखते हैं। इसके कारण उन्हें अपने निश्चयों की मौलिकता समझने का अवसर ही नहीं मिलता। फिर व्यावहारिक जगत में कार्य न करने के कारण इन बुद्धि में प्रवीण पण्डितों की कल्पनाशक्ति और इच्छाशक्ति को बली बनने का अवसर ही नहीं मिलता। अतएव ऐसे लोग सरलता से ही अपने सिद्धान्तों के प्रतिकूल आचरण कर डालते हैं और इस प्रकार के आचरण को ठीक बताने के लिये कोई झूठा सन्तोष देने वाला कारण मन से गढ़ लेते हैं। अतएव केवल पोथी पंडितों की नैतिकता का भरोसा नहीं रहता। जिस मनुष्य की इच्छाशक्ति कमजोर है उसके सिद्धान्तों का क्या भरोसा।

देखा जाता है कि साधारण आदर्श वालों की अपेक्षा ऊँचे आदर्श वाले व्यक्तियों की इच्छाशक्ति बलवान नहीं निर्बल ही होती है। इसका एक कारण यह है कि अत्युच्च आदर्शवाले व्यक्ति कभी भी अपने आदर्श के अनुरूप अपने आचरण को नहीं बना पाते। अपने आचरण में थोड़ी सी कमी रह जाने पर वे आत्म-भर्त्सना करने लगते हैं। इससे उनकी इच्छा शक्ति और भी निर्बल हो जाती है। आत्मभर्त्सना से इच्छाशक्ति का बल जितना नष्ट होता है दूसरी किसी बात से उतना नष्ट नहीं होता। अत्युच्च आदर्शवादी व्यक्ति जब अपने आप को कोसते कोसते थक जाता है तो वह अपनी विफलता का प्रमुख कारण भूल जाता है और उस कारण को किसी बाहरी पदार्थ पर अथवा व्यक्ति पर आरोपित कर देता है। अर्थात् वह समाज को, किसी व्यक्ति को, अथवा काल को ही दोषी ठहराने लगता है। इस प्रकार संसार में निकम्मे लोग अपनी इच्छाशक्ति की कमजोरी को बाहरी परिस्थिति को दोष देकर छिपाने की चेष्टा करते हैं। पर इस प्रकार वे अपनी इच्छा शक्ति को और भी कमजोर कर लेते हैं।

अत्युच्च आदर्शवादिता वास्तव में अपनी कमजोरी का आवरण होती है। अपनी प्राकृतिक इच्छाओं के प्रवाह में बह जाने वाला व्यक्ति जब पश्चात्ताप करते-करते थक जाता है तो वह एक झूठी आदर्शवादिता को धारण कर लेता है। ऐसा व्यक्ति अपने आप को दूसरे लोगों से विलक्षण बनाने की चेष्टा करता है। परन्तु उसकी प्राकृतिक शक्ति उसके काबू में न रहने के कारण वह क्रियाशील नहीं होता। वह थोड़ा काम करने पर ही थक जाता है। उसे अपना कोई भी काम संतोष नहीं

देता। वह फिर अपनी कमजोरी छिपाने के लिये रोग का आवाहन करता है और इस प्रकार रोगी बन जाता है। ये रोग व्यक्ति की झूठी आदर्शवादिता के परिणाम होते हैं। ऐसा व्यक्ति अपने किसी भी निर्णय को दोष रहित नहीं देखता। वास्तव में उसका भीतरी मन उसकी आदर्शवादिता का साथ नहीं देना चाहता, इसलिये ही वह अपने सभी निश्चयात्मक विचारों में दोष देखने लगता है। मनुष्य का अचेतन मन ही कल्पनाओं की रचना करता है जिनके अनुसार क्रिया होती है। जब मनुष्य के चेतन और अचेतन मन में विषमता रहती है तो कल्पना विचार का साथ नहीं देती, अतएव मनुष्य में क्रिया करने की प्रेरणा भी उत्पन्न नहीं होती। इस तरह अधिक ऊँचे आदर्शवादी व्यक्ति अपनी इच्छाशक्ति का बल दिन प्रतिदिन खोते ही जाता है।

इच्छाशक्तिको बलवान् बनाने के लिए मनुष्य को पहले-पहल अपने आपको भली प्रकार से समझना चाहिये। जब वह अपने आपमें ऐसी आदर्शवादिता देखे कि जो उसे निकम्मा बनाने लगे तो उसे आत्म-विश्लेषण करके समझ लेना चाहिये कि यह आदर्शवादिता झूठी है। निज आदर्शवादिता का आधार मनुष्य के स्वभाव में नहीं होता वह मनुष्य की मानसिक प्रगति का साधक न बनकर उसकी बाधक ही बनती है। मनुष्य की कार्य-क्षमता मनुष्य की स्वाभाविक कृतियों की शक्ति के ऊपर ही निर्भर करती है। अतएव हमारी आदर्शवादिता का इनसे सम्बन्ध न छूटना चाहिये। आदर्शवादिता इनका उदात्तीकरण करे, उनका दमन करने और उनकी विकृत अवज्ञा पर पर्दा डालने की चेष्टा न करे। तभी मनुष्य की इच्छाशक्ति बलवान् होती है।

जिस प्रकार आत्म-ज्ञान की वृद्धि, अर्थात् अपनी वास्तविक कमजोरियों और वास्तविक शक्ति का ज्ञान मनुष्य की इच्छाशक्ति को दृढ़ बनाता है। इसी प्रकार रचनात्मक कार्य में लगे रहना मनुष्य की इच्छाशक्ति को दृढ़ बनाता है। कितने ही विद्यार्थी बहुत देर तक सोचते रहते हैं कि वे एक पुस्तक को पढ़ें अथवा दूसरी को। इसी बीच कर्मठ विद्यार्थी उन दोनों पुस्तकों को ही पढ़ डालता है। कुछ न करने से कुछ करते रहना ही चरित्र निर्माण की दृष्टि से भला है। जो व्यक्ति एक काम का सकता है वह दूसरा काम भी समय आने पर कर सकता है। हाथ के काम को कभी भी महत्वहीन न समझना चाहिये। दूर के काम से हाथ का काम भले नीचा क्यों न हो, वह इच्छाशक्ति को बलवती बनाने के लिये दूर के काम से अधिक महत्व रखता है।

मन की डवाँडोल अवस्था को किसी न किसी प्रका अन्त कर देना और एक निर्णय पर आ जाना साधारण मनुष्य को भी समाज का प्रतिष्ठित व्यक्ति बना देता है। संसार के बड़े बड़े चिन्तक अपने निर्णयों के विरुद्ध सरलत से आचरण नहीं करते थे। यदि वे ऐसा करते तो वे कु भी कार्य संसार में न कर पाते और अपने आपकी भर्त्स करते हुए ही मरते। अपने निश्चय को बराबर उलट की मनोवृत्ति छिपी हुई पाप की मानसिक ग्रन्थि की सूच होती है। इस प्रकार की मनोवृत्ति दबी हुई अभद्र भाव का परिणाम होती है। मनुष्य जिस बात से डरकर आ कदम रखने से रुकता है वह बात उसकी दबी हुई विस पाप भावना से सम्बन्धित रहती है। जब इस भाव का रेचन हो जाता है तो मनुष्य के निर्णय की शक्ति बढ़ जाती है।

मान लीजिये किसी व्यक्ति के मन में किसी सम्ब की हत्या करने की भावना उठी। इस भावना को अनैति जान कर दबा दिया गया और उसकी स्मृति भुलाने लिये पर्याप्त यत्न किया गया। अब यह पुरानी भाव अपनी शक्ति को न खोकर चेतन मन के किसी भी सा के निर्णय में बाधक बन जाती है। एक व्यक्ति अप विमाता के व्यवहार से रुष्ट होकर उसके मार डा अथवा अपने पिता पर बदला निकालने की बात सोच है। परन्तु इस प्रकार की कल्पना मन में आते ही व अपने आपको धिक्कारने लगता है। पीछे वह साधु जै बन जाता है। उसकी पुरानी अनीति की भावना दब जा है। ऐसा ही व्यक्ति आगे चल कर बात बात में अ कामों की नुक्ताचीनी करने लगता है। जब कभी वह इ मनोवृत्ति के पार जाता तो वह दूसरे लोगों के च की आलोचना में लग जाता है। वह शीघ्र ही अपने आ पास दुःख का और निकम्मे मन का वातावरण तैयार क

होता है। अब उसका जीवन उसे भार रूप हो जाता है।

भगवान् बुद्ध ने कहा है कि मनुष्य को एकान्तता का जीवन छोड़कर मध्यम मार्ग का अनुसरण करना कल्याणकारी है। यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू ने भी बीच के मार्ग को श्रेयस्कर बताया है। उनके ये उपदेश आधुनिक मनोविज्ञान की खोजों द्वारा उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। अपनी नैतिक बुद्धि को व्यावहारिक बनाना अपनी इच्छा शक्ति को बलवती बनाने का सर्वोत्तम उपाय है। इससे मनुष्य के कार्य क्षेत्र का विस्तार होता है और जो मनुष्य जितना ही अधिक अपने आपको रचनात्मक कार्य में लगाये रहता है वह उतना ही अधिक इच्छा शक्ति में दृढ़ होता है। कड़ी आलोचना चाहे वह दूसरों की हो अथवा अपनी ही मनुष्य की रचनात्मक शक्ति और कार्य क्षमता की विनाशक होती है। जो मनुष्य केवल देवताओं जैसा ही बनना चाहता है वह अन्त में रोते रोते मरता है।

किसी भले काम करने का समय न टालना अच्छा नहीं। एक क्षण का भला काम दूसरे क्षण के भले काम के लिये सहायक होता है। इच्छा शक्ति के बली बनाने के लिये अपने प्रत्येक भले निर्णय के अनुसार काम करने लग जाना आवश्यक है। "एक एक डग चलत चलते एक कोस मा जाता है।" इस प्रकार एक एक काम करके चरित्र की भव्य इमारत तैयार हो जाती है। मनुष्य का मन अभ्यास का दास है।

जिस प्रकार अभ्यास से मनुष्य का स्वभाव एक प्रकार का रहता है उसी प्रकार वह अभ्यास से दूसरे प्रकार का बन जाता है। अतएव जो मनुष्य जितना ही रचनात्मक कार्य कर सका उसे उतना ही अपने आपको भाग्यशाली मानना चाहिये। एक काम दूसरे काम के करने की योग्यता मनुष्य में बढ़ाता है।

मनुष्य को अपनी इच्छाशक्ति का बल बढ़ाने के लिए अपनी कमजोरियों का अत्यधिक चिन्तन करना हानिकारक होता है। अंग्रेजी में कहावत है कि जो व्यक्ति सोचता है कि मैं अमुक कार्य कर सकता हूँ वह उस कार्य को कर सकता है। जो व्यक्ति सोचता है कि मेरी कमजोरियाँ मुझे खाई जा रही हैं उनसे छुटकारा नहीं पा सकता। उसका अपनी कमजोरियों से मुक्त होना कठिन है। उसे जितना ही कम यह विचार आवे उतना ही भला है। नकारात्मक विचारों को मन से अलग करने के लिए ही रचनात्मक कार्य करते रहना आवश्यक होता है।

इच्छाशक्ति को बलवान बनाने के लिए मनोवृत्तियों को विषय सुख में जाने से रोकने का प्रयास करने की अपेक्षा उन्हें किसी भले काम में लगाना अधिक अच्छा है। पहला उपाय नकारात्मक है। इस प्रकार के प्रयास से मनुष्य को आत्म-सन्तोष न होकर केवल आत्म-भर्त्सना ही होता है। वह कहीं न कहीं भूल कर देता है। इस भूल से उसे आत्म-भर्त्सना होती है। फिर नकारात्मक आत्म-नियंत्रण के यत्न से मनुष्य का अभिमान बढ़ता है। यह एक प्रकार का मानसिक रोग है जो अन्य रोगों को जन्म देता है। मन को भले काम में लगाने का परिणाम आत्म-सन्तोष है और आत्म-संतोष मनुष्य के मन को नई शक्ति प्रदान करता है। अपनी ही सफलता को देखकर मनुष्य आगे भी काम करने का उत्साह मनमें लाता है। फिर वह धीरे-धीरे आगे बढ़ता जाता है। उसकी सफलता जैसे जैसे बढ़ती है उसका आत्म-विश्वास भी वैसा वैसा बढ़ता है और इसके साथ साथ उसकी इच्छाशक्ति भी दृढ़ होती जाती है। अतएव केवल मन और इन्द्रिय-निग्रह की अपेक्षा इन्हें कुछ भले काम के करने में लगाना इच्छाशक्तिको दृढ़ बनाने का अच्छा साधन है।

उद्योग

श्री सूर्यनारायण चौधरी

हमारे कष्ट और पतन का कारण हमारे अन्दर ही हमारा आलस्य है। हम अपना समय व्यर्थ खोते हैं, अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करते हैं। हम अपने इस दोष को सम्यक् रूप से पहचानें और तब उसे दूर करने का यत्न करें।

हम जिस किसी भी क्षेत्र में—अध्ययन, अध्यापन, सेवा-कार्य या धनोपार्जन में—हैं उसमें अपनी सारी शक्तियाँ लगाकर कार्य नहीं कर रहे हैं। हमारे मन में प्रतिक्षण नाना प्रकार के मोहक और व्यर्थ विचार-तरंग उठते रहते हैं। ये विचार प्रायः उठकर नष्ट हो जाते हैं, द्वेषात्मक होने पर दुःख देते हैं, कार्य में परिणत होने पर कष्ट पहुँचाते हैं और लक्ष्य के प्रतिकूल ले जाते हैं। इसी प्रकार हम अपनी वाणी का भी बहुत दुरुपयोग करते हैं। व्यर्थ की बातों में समय नष्ट करते हैं या विवाद बढ़ाकर एक दूसरे की हानि भी करते हैं।

विचार और वाणी का निरन्तर निरीक्षण करते रहने पर उसकी व्यर्थता और हानिकारिता का भान होगा और तब व्यर्थ और हानिकारक विचारों को छोड़ने की दिशा में अग्रसर हो सकेंगे।

इस प्रयत्न में बाधाएँ आयेंगी। यदि हमारा निश्चय दृढ़ होगा तो उन्हें दूर करने का उपाय भी हमें क्रमशः ज्ञात होता जायगा। यदि हम किसी व्यर्थ की बातें करने वाली मण्डली में कभी फँस जायँ तो तबतक उससे छुटकारा मिलना कठिन है जबतक हम स्वयं उस में रस लेते रहेंगे। उस समय यदि उसकी अनावश्यकता और व्यर्थता का अनुभव कर कुछ देर तक मौन धारण कर तटस्थ हो जायँ तो आसानी से उस मण्डली से छुटकारा हो सकता है। विचारों पर विजय प्राप्त करने के लिए स्वादेन्द्रिय-सम्बन्धी, काम-विषयक या द्वेषात्मक विचार उत्पन्न होने पर उन्हें अनर्थकारी और विनाशक समझ कर छोड़ना चाहिए और उन के स्थानपर कार्य में सहायक रचनात्मक, लोकोपकारक तथा मैत्री पूर्ण विचारों को प्रश्रय देना चाहिए।

हम क्या और कितना खायें, कब और कितना सोयें इसकी भी जानकारी आवश्यक है। भोजन भारी और अधिक होने से नींद और आलस्य अधिक होता है, भोजन कम करने से भी शक्ति क्षीण होती है। किंतु आवश्यक मात्रा में संतुलित भोजन करने से शक्ति और स्फूर्ति प्राप्त होगी। अपनी शारीरिक अवस्था के अनुसार ही सोना चाहिए, न अधिक न कम।

हम ऐसा प्रयत्न करें कि हमारा प्रत्येक विचार, प्रत्येक शब्द और प्रत्येक कार्य हमें लक्ष्य की ओर ही बढ़ायें। गर्मी-सर्दी-वर्षा या पर्व-त्योहार हमारे कार्य में बाधक होने का बहाना न बने। हम नदी की तरह निरन्तर द्रुतगति से चलते हुए मार्ग की चट्टानों को भी फोड़कर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ें। तब हमारी दीनता-हीनता व अशान्ति दूर होगी; शान्ति-समृद्धि हमारे पास आयेगी।

अब मैं अश्वघोष-कृत सौन्दरनन्द काव्य के सोलहवें सर्ग के उद्योग-प्रेरक अन्तिम छः श्लोक यहाँ उद्धृत करता हूँ:—

द्रव्यं यथा स्यात् कटुकं रसेन
तच्चोपयुक्तं मधुरं विपाके।
तथैव वीर्यं कटुकं श्रमेण
तस्यार्थसिद्ध्यै मधुरो विपाकः।

जिस प्रकार द्रव्य-विशेष का रस कटु होता है और उसका उपयोग करने पर मीठा फल मिलता है, उसी प्रकार थकावट के कारण उद्योग कटु (कष्ट-प्रद और अप्रिय) होता है, किंतु लक्ष्य की सिद्धि हो जाने पर मीठा फल मिलता है।

वीर्यं परं कार्यकृतौ हि मूलं
वीर्यादृते काचन नास्ति सिद्धिः।

उदेति वीर्यादिह सर्वसंपन्—
निर्वीर्यता चेत्सकलश्च पाप्मा ॥९४॥

कार्य की सफलता का मूल कारण है उत्तम उद्योग, उद्योग के बिना कोई भी सिद्धि नहीं होती है, उद्योग से ही सब समृद्धियों का उदय होता है और जहाँ उद्योग नहीं है वहाँ पाप ही पाप है।

अलब्धस्यालाभो नियतमुपलब्धस्य विगम—
स्तथैवात्मावज्ञा कृपणमधिकेभ्यः परिभवः।
तमो निस्तेजस्त्वं श्रुतिनियमतुष्टिव्युपरमो।
नृणां निर्वीर्याणां भवति विनिपातश्च भवति ॥९५॥

अनुद्योगी मनुष्यों को निश्चय ही अप्राप्त वस्तुओं की प्राप्ति नहीं होती है और उनकी प्राप्त वस्तुओं का भी नाश हो जाता है, उनका आत्म-सम्मान चला जाता है, वे दीन-हीन हो जाते हैं, बलवानों से अपमानित होते हैं, मानसिक अन्धकार में रहते हैं, उनका तेज क्षीण हो जाता है, विद्या संयम और संतोष नष्ट हो जाता है, (सब प्रकार से) उनका पतन होता है।

नयं श्रुत्वा शक्तो यदयमभिवृद्धिं न लभते
परं धर्मं ज्ञात्वा यदुपरि निवासं न लभते।
गृहं त्यक्त्वा मुक्तौ यदयमुपशान्तिं न लभते
निमित्तं कौसीद्यं भवति पुरुषस्यात्र न रिपुः ॥९६॥

शक्तिशाली मनुष्य उपाय सुनकर अपनी उन्नति जो नहीं करता है, उत्तम धर्म सुनकर ऊपर का निवास (उत्तम पद) जो नहीं प्राप्त करता है और मुक्ति के लिए घर छोड़कर शान्ति लाभ जो नहीं करता है, इस का कारण उसका अपना ही आलस्य है, न कि (कोई बाहरी) शत्रु।

अनिक्षिप्तोत्साहो यदि खनति गां वारि लभते
प्रसक्तं व्यामथ्नन् ज्वलनमरणिभ्यां जनयति।
प्रयुक्ता योगे तु ध्रुवमुपलभन्ते श्रमफलं
द्रुतं नित्यं यान्त्योगिरिमपि हि भिदन्ति सरितः॥९७॥

उत्साह को खोये बिना पृथ्वी को खोदने वाला मनुष्य जल प्राप्त करता है, लकड़ियों को लगातार रगड़ने वाला आदमी अग्नि उत्पन्न करता है, योगाभ्यासी पुरुष अवश्य अपने परिश्रम का फल प्राप्त करते हैं और निरन्तर द्रुतगति से बहने वाली नदियाँ पर्वत को भी फोड़ती हैं।

कृष्ट्वा गां परिपाल्य च श्रमशतैरश्नोति सस्यश्रियं
यत्नेन प्रविगाह्य सागरजलं रत्नश्रिया क्रीडति।
शत्रूणामवधूय वीर्यमिषुभिर्भुङ्क्ते नरेन्द्रश्रियं
तद्वीर्यं कुरु शान्तये विनियतं वीर्ये हि सर्वर्द्धयः॥९८॥

भूमि को जोतकर और अत्यन्त परिश्रम पूर्वक (खेत की) रखवाली कर मनुष्य उत्तम सस्य प्राप्त करता है, प्रयत्न पूर्वक समुद्र के जल में प्रविष्ट हो कर वह उत्तम रत्न-राशि से क्रीड़ा करता है, तीरों से शत्रुओं के उद्योग को निष्फल कर वह राज-लक्ष्मी का उपभोग करता है; अतः शान्ति प्राप्त करने के लिए उद्योग करो; क्योंकि उद्योग में ही सब सिद्धियों का निवास है।

वाराणसी का प्राचीन भास्कर्य

श्री अद्रीशचन्द्र वन्द्योपाध्याय

आदिम मानव का जीवन-यापन-प्रवाह अति साधारण था। सूखी लकड़ियों को इकट्ठा करना, सुविधाजनक पत्थरों के हथियार बनाना और साधारण जीव-जन्तुओं के शिकार द्वारा जीवन-यापन करना आदिम मानव के काम थे। उनके लिए पहाड़ के गुहा ही काफी उपयोगी थे, किन्तु इस आदिम मानव के अन्दर प्रकृति की लीला किस तरह की भाव-तरङ्ग पैदा करती थी, उसे आज तक नहीं जाना जा सका। सुदूर पाश्चात्य गिरिगुहा में पूर्व-प्रस्तर-युग का मानव चित्रांकन द्वारा अपने अन्तर निहित कल्पना को रूप प्रदान करने में सचेष्ट था। भारतवर्ष के विभिन्न स्थानों में प्रस्तर मात्र में जो सब चित्र आज भी हमारी दृष्टि को आकर्षित करते हैं उनकी

प्राचीनता के सम्बन्ध में काफी सन्देह है। नव-प्रस्तर-युग के अन्त में मनुष्य जीवन-यापनकी नयी-नयी प्रक्रियाओं के आविष्कार करने में समर्थ हुआ, किन्तु उस युग के भी भास्कर्य, चित्रादि हमें प्राप्त नहीं हैं। इसलिए गंगा प्रदेश के अन्यतम नगर प्राचीन वाराणसी में चारु शिल्प का क्रमबद्ध इतिहास हम नहीं जान पाते हैं। प्रस्तर-युग के अन्त में मानव जब धातु का व्यवहार सीख गया, तब जो धातु सर्व प्रथम मानव समाज की कर्मोन्नति में सहायक हुआ वह है ताँबा। इसीलिये ऐतिहासिक लोग इसे ताम्रयुग कहते हैं। एक समय था जब मध्य-प्रदेश की पार्वत्य उपत्यका और गंगा जल सदृश्य स्वच्छ तीर के फलक, फरसा आदि हमें भारतवर्ष के ताम्रयुगका पता देते थे, किन्तु सिन्धु नदी के किनारे प्राचीन मोहनजोंदड़ों, हड़प्पा आदि स्थानों की खुदाई ने भारतीय शिल्प-आलोचना में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया। इस ताम्रयुग में गांगेय प्रदेश का इतिहास अब भी सम्पूर्ण रूप से अज्ञात है। निकट भविष्य में कोई भाग्यवान खोदने वाला इस अन्धकार को दूर कर सकेगा। उसी शुभ दिन में वाराणसी के भास्कर्य के इतिहास की उपक्रमणिका को लिपिबद्ध करना सहज साध्य होगा।

भास्कर्य्य सोलह कलाओं में अन्यतम कला है। मनुष्य हृदय से रूप का पुजारी है। प्रकृति ने भारतवर्ष को उस रूप उपादान समूह को दान देने में कृपणता-प्रदर्शन नहीं किया है। प्रथमतः श्यामल वनराजि, लता-गुल्म, पुष्प, जीवजन्तु आदि समस्त वस्तु इस महादेश में पायी जाती हैं। दूसरा, शिल्पका प्रथम उपादान सहज साध्य जीवन-यापना इस नदी प्रधान देश में जिस रूप में संभव है उस रूप में और किसी देश में नहीं है। तीसरा, तीव्र सूर्यरश्मि की सहायता पाकर किस प्रकार से पाषाण के हृदय पर विभिन्न अलंकार के प्रकाश और छाया द्वारा सर्व्वापेक्षा सुषमामण्डित किया जाय। यह अति प्राचीन काल से इस देश के अधिवासी लोगों को मालूम था। सदा कुहरे से ढँका इंग्लैंड, धूमिल स्निग्ध सूर्य किरण से प्रकाशित फ्रान्स, इटली और उसी प्रकार ग्रीस देश में प्रकाश—छाया की यह अपूर्व लीला संभव नहीं थी, ऐसा कह कर उन सब देशों की मस्तिष्क शक्ति संपन्न स्थापत्य अथवा कारीगरोंके विभिन्न आदर्शों के वशवर्ती होने को वाध्य होना पड़ा। भारतीय कृषि की आलोचना के प्रथम युग में पाश्चात्य समालोचकगण इस प्राकृतिक एवं आदर्श वैशिष्ट्य के हेतु विभिन्न भाँति की शिल्पचर्या की (जो विभिन्न मार्ग का अवलम्बन करने को वाध्य हुई होंगीं,) हृदयंगम करने में सक्षम न होकर भारतीय भास्कर्य के ऊपर अनुचित रूप से विचार कर गये हैं। दर्पण में, हमारे शरीरके अवयवों की प्रतिच्छाया दिखाई देती है। किन्तु इस दर्पण के तारतम्य के हेतु प्रतिच्छायामें भी यथेष्ट अन्तर होता है। हाथ की पाँचों अँगुलियाँ समान नहीं हैं। उसी प्रकार विश्व के मनुष्य का हृदय-दर्पण में अरूप का जो रूप होता था उसे देश, काल और जाति से भिन्न हो विचार करने का प्रयोजन है। कारण, जातीय कला कारीगरी के हथियार (औजार) पर सम्पूर्णतः निर्भर नहीं करता। जातीय आदर्श, समाज, साहित्य, दर्शन, एवं पद्धति के ऊपर निर्भर करता है; सुतरां जिस आदर्श से अनुप्राणित होकर प्राचीन ग्रीस के शिल्पी ने माँसपेशी सम्पन्न व्यायाम द्वारा वर्द्धित मानव शरीर को पाषाण में धातु से खुदा हुआ अथवा ढाल करके जातीय कला की सृष्टि किया था, वह आदर्श प्राचीन मिस्र में, सुमेर, ईरान, अथवा भारतवर्ष में आशा करना असम्भव है। इन सब प्राचीन महाजाति के साहित्य, दर्शन और धर्म ने उन लोगों के सम्पूर्ण अन्य आदर्शों को प्रभावान्वित किया था। इसलिये ग्रीस के आदर्शानुसार उत्कीर्ण सुगठित मानव-मूर्ति की पूजा एशिया और अफ्रिका महादेश में असम्भव है। प्राचीन बनारस इसी भावधारासे अनुप्राणित हुआ था। इसलिये उसके इतिहास की आलोचना करने के पहले ही इन कई बातों पर विचार करना योग्य है।

प्राचीन भारतीय शिल्प का पर्य्यालोचन करने पर मालूम होता है कि विभिन्न जाति का अति प्राचीन काल से समावेश के लिये आदर्श का घात-प्रतिघात भारतीय भास्कर्य्य में लक्षित होता है। रूपकार के उद्वेलित हृदय की अञ्जलि सभी समय में पृष्ठपोषक का जाति और धर्म का सम्मान करके चलना संभव नहीं। उसके फल में एक चमत्कार और क्रमावर्तन का इतिहास पाया जाता है।

श्रद्धेय अध्यापक राधा-कुमुद मुखोपाध्याय, महापद्म नन्द के पहले भारतवर्ष में जो एक राष्ट्रीय ऐक्य अनुभव हो रहा था, उसे साबित करने की कोशिश करते हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य में एवं राजनीति से सार्वभौम राष्ट्रतत्त्वका आदर्श परिलक्षित होता है। किन्तु स्वाभाविक रूप से यह आदर्श कहाँ तक व्यावहारिक हुआ था यह अनुमान पर ही निर्भर करता है। रायबहादुर रमाप्रसाद चन्द अध्यापक मुखोपाध्याय के मत का समर्थन नहीं करते हैं।

राष्ट्रीय एकता होकर भी एक निखिल भारतीय भास्कर्य की सृष्टि नहीं हो सकी। प्राचीन भारत का चतुःषष्ठी कला का इतिहास प्रादेशिक शैली का समष्टि मात्र है। इसका प्रथम कारण राष्ट्रीय अनैक्य है। द्वितीय कारण था कि विभिन्न प्रदेश स्वाधीन भाव से अपना भाग्य निर्दिष्ट मार्ग से ले जाते थे। तृतीय कारण था इस महादेश का सभी स्थानों पर जाना-आना संभव नहीं था, इसीलिये उत्तरापथ और दक्षिणापथ के शिल्पचर्या में प्रभेद ज्यादा है। उत्तरापथ में भी विभिन्न प्रदेश की शैली में प्रभेद देखा जाता है। यथा गन्धार की शैली, सिन्धु देश की शैली, मालव एवं मध्यदेश की शैली, मथुरा की शैली, काशी की शैली, पूर्व भारत की शैली और उड़ीसा की शैली। ये विभिन्न शैलियों, विभिन्न युग में अपने प्रादेशिक प्रतिभा के बल से स्वदेशवासी की रूप-तृष्ण मिटाती रही। विभिन्न शैली प्रादेशिक विभिन्न प्रस्तर के ऊपर अपने अपने आदर्शों को मूर्त्त रूप देने में लगे थे। उनकी इस साधना का क्रमावर्तन निखिल भारत के इतिहास में छिपा रहा। जब तक इन विभिन्न शैलियों का स्वरूप और विशेषता यथार्थ भाव से निर्द्धारित नहीं होता है तब तक भारतीय शिल्प का धारावाहिक इतिहास रचना करना असंभव है।

ठीक किस समय अतीत के किस अज्ञात मुहूर्त्त में, प्राचीन काशी जनपद में रूपोपासना आरंभ हुई, यह बताना अभी असंभव है। गांगेय प्रदेश के प्राचीनत्व के सम्बन्ध में मैं अपने वाराणसी के इतिहास में यत्किंचित् आलोचना करता हूँ; और यह दिखाने की चेष्टा करता हूँ कि गंगा के दोनों किनारे आर्य उपनिवेश संस्थापित होने के बहुत पहले अत्यन्त सुप्राचीन सभ्यता के अस्तित्व के सम्बन्ध में यथेष्ट प्रमाण हैं। किन्तु उस प्रागैतिहासिक युग का कोई निदर्शन आज तक आविष्कृत नहीं हुआ। प्रायः एक शताब्दी हो रहा है कि कारलाइल नाम के एक अंग्रेज अधिकारी, वर्तमान गाजीपुर जिले में जौहरगंज नाम के स्थान की खोदाई के समय प्रस्तर युग का निदर्शन पाये थे। इलाहाबाद जिले में भीटा नामक स्थान पर सर जान मार्शल को प्राग्मौर्य काल का निदर्शन मिला था। किन्तु ये सब किसी भी प्रकार से भारतीय शिल्प साधना के उपादान गृहीत नहीं हो सकते, इसलिये उनकी आलोचना इस प्रबन्ध में अवान्तर होगी। सारनाथ की विभिन्न खुदाई में प्राक्मौर्यकालीन कोई निदर्शन नहीं मिला; और एक सारनाथ को छोड़ कर अन्य किसी ध्वंसित स्तूपका अस्तित्व वर्त्तमान बनारस जिले में नहीं पाया जाता है। सारनाथ से डेढ़ मील दूर अवस्थित तिलमापुर नामक ग्राम में एक अत्यंत छोटा ध्वंसित स्तूप दृष्टिगोचर होता है। किन्तु खोदाई न होने से इसके सम्बन्ध में आलोचना करना असंभव है। राजघाट में प्राप्त जो सारी प्राचीन सम्पदा भारत-कलाभवन में संग्रहीत है, उसे विज्ञान-सम्मत प्रणाली से खोदने पर नहीं पाया जाता। रायबहादुर काशीनाथ नारायण दीक्षित के आदेशानुसार जो खुदाई हुई थी, उसमें मौर्य युग के मृतशिल्प का निदर्शन गुप्तस्तर पर पाया गया था। इसलिये इन सब प्राचीन ऐश्वर्यों का मूल्य गुप्त युग के भास्कर्य की आलोचना के समय विचारणीय होगा। इस प्रबन्ध में भास्कार्य्य का अर्थ प्रस्तर-मूर्ति रखा गया है। वाराणसी प्राचीन भास्कर्य्य के प्रारंभिक सम्बन्ध के बारे में पंडितों में मतभेद हैं। यहाँ भास्कर्य्य के अनुशीलन एवं शैली में प्रभेद का ध्यान रखना आवश्यक है। रूप-उपासक मानव उनके अन्तर की प्रेरणा द्वारा मूर्त्तिकाय, पाषाण में, काष्ट में, हाथी के दाँतों पर ऐसा कलेवर कैसे प्रदान किया। यह उत्प्रोत भाव उसके नक्कासी के इतिहास सहित जड़ा हुआ है और वह असभ्य एवं सुसभ्य सारी जाति के बीच दृष्टिगोचर होता है। शैली का प्रारम्भ उसी जगह होता है, जहाँ एक महाजाति के रूपादर्श के बीच विभिन्न स्थान का

शिल्पचातुर्य एवं वैशिष्ठ्य परिलक्षित होता है। यही वैशिष्ठ्य जो केवल आदर्श की विभिन्नता के ऊपर निर्भर करता है–यह बोलना भ्रमपूर्ण होगा। तक्षण रीति, केश, वेश, शरीर का अलंकार प्रभृति शैली की विशेषता निर्द्धारित करते हैं। स्वर्गीय श्री राखालदास वन्दोपाध्याय के मतानुसार वाराणसी का भास्कर्य्य मौर्ययुग से आरंभ हुआ था। किन्तु हम बाद में देखेंगे कि मौर्ययुग के शिल्पादर्शक के साथ शुंगयुग, गुप्तयुग और परवर्ती युगसमूह के शिल्पादर्शका प्रभेद असीमित है। स्वाभाविक वाराणसी शैली का सूत्रपात समुद्रगुप्त द्वारा संस्थापित उत्तरापथ के साम्राज्य के बाद हुआ था–यह वर्त्तमान लेखकों की धारणा है। इस वाराणसी की शैली के इतिहास को भारतीय सुधी समाज में उपहार देने का प्रधान कारण यह है कि भारतवर्ष की अन्यान्य शैली से यह न्यून नहीं है। दूसरा कारण, समस्त उत्तरापथ एवं आर्यावर्त्त मुसलमानों द्वारा विजय करने के फलस्वरूप जातीय शिल्पादर्श को खो दिया। तब काशी जनपद में, भगवान् की कृपा से यह शिल्प सम्पूर्णतः नष्ट नहीं हुआ। इस्लाम का मूर्त्ति-विद्वेष उन्हें पूर्णरूप से नष्ट नहीं कर सका। इसका प्रधान प्रमाण एकाधिक बार वर्त्तमान लेखक उसकी गवेषणा के समय पाते हैं। अनुमान होता है कि ई. पू. तीसरी शताब्दी से ई. सन् की सोलहवीं शताब्दी पर्यन्त यही शैली नष्टप्रायः होकर भी प्रचलित रही; किन्तु सत्रहवीं शताब्दी से औरंगजेब के गद्दी पर बैठने के बाद इसका कोई निदर्शन नहीं मिलता। मुगल साम्राज्य के अधःपतन के युग में प्रातः स्मरणीया अहल्याबाई जब विश्वनाथ के तिरस्कृत देवमंदिर पर नवनिर्मित देवालय को प्रतिष्ठित किया था। तब शिल्पादर्श के साथ वाराणसी का किसी प्राचीन शैली का एक्य नहीं था। इस प्रकार मंदिर का शिखर उत्तरापथ के पुराने समय से चले आते हुये प्रथानुसार निर्मित नहीं हुआ था, बल्कि गुजरात के शिखरगुच्छ समन्वित शैली का प्रभाव प्रमाणित होता है। मालवा में इस प्रकार के शिखर की अवस्थिति परमार राजकाल से पायी जाती है। वर्त्तमान काशी में मौर्य युग के भास्कर्य्य का उत्कृष्ट निदर्शन है। सारनाथ के प्रधान मंदिर के दक्षिण अर्द्ध मण्डप पर अवस्थित वेष्टनी, जो सर जान मार्शल की राय में धर्म्मराजिका स्तूप का 'हर्मिका' है। और किसी एक अज्ञात खुदाई में प्राप्त मौर्य युग के दरवाजे का 'सद्दल' और बहुत दिनों तक अवज्ञात धर्मराजिका स्तूप का अपूर्व छत्र का भग्नांश है। जिस शिल्पादर्श से प्रभावान्वित होकर मौर्यगण भारतीय इतिहास में अमरत्व लाभ किया है और उनकी शैली से जो अभिजात्यगौरव लक्षित होता है, वह उत्तर पश्चिम सीमान्त की पर्वतमाला को लाँघ कर के प्राचीन ईरान से आया था, ऐसा अनुमान किया जाता है। हरवामनी-साम्राज्य के लुप्त होने के बाद वहाँ का शिल्पादर्श बोध होता है। मौर्य साम्राज्य में साम्राज्यवादित्व सुप्रतिष्ठि करने के लिये व्यवहृत हुआ था। इसमें आश्चर्य होने की कोई बात नहीं है। कारण, मौर्य साम्राज्य के ध्वंस होने के बाद भी पश्चिम एशिया की विभिन्न सभ्यता का प्रभाव भारत के शुंगकालीन भास्कर्य में परिलक्षित होता है। यह पश्चिम एशिया अत्यंत प्राचीन काल से सुप्राचीन सेमेटिक जाति का आवास स्थान था और एशिया महादेश में सब से प्राचीन साम्राज्यों की लीला भूमि था। इसका प्रभाव बहुत समय तक इस सब देश के अधिवासियों को प्रभावित करने में सक्षम हुआ था। इस देश के शिल्पादर्शका मुख्य उद्देश्य था राजा और भगवान् की महिमा प्रमाणित करना। शिल्प भास्कर्य्य, चित्रकला राजनैतिक चाल का एक प्रधान भाग था। राजा की महिमा एवं उसका देवताओं सहित एकांत आत्मीयता-सूत्र में बद्ध रहने का आदर्श नियत जनसमाज में प्रदर्शन करना प्राचीन मिश्र, वाविरूस, असुर देशीय शिल्पियों का प्रधान कर्तव्य था। समाज, धर्म्म और प्रथा उनके निकट यही आशा करती थी। मौर्य युग की प्राचीन कीर्तियों का विराटत्व प्रमाणित करता है कि यह आदर्श उस युग का स्वराष्ट्रतंत्र को आछन्न कर लिया था। परवर्ती युग में जब मौर्य शिल्पियों का नश्वर देह पंच-तत्त्व में मिल गया, तब उस युग के भारतवासी यह सोचते थे कि यह सब विराट् स्तम्भ स्तूप–वेष्टनी देवताओं द्वारा बनायी गयी हैं। सारनाथ में प्राप्त मौर्यकालीन स्तूप चूड़ा वाराणसी (काशी) की अमूल्य सम्पदा है। इसके अति-

कि सारनाथ में बहुत सी खण्डित प्राचीन कीर्ति पायी गयी हैं।

शुंग युग में काशी के भास्कर्य में दो शैलियाँ प्रधान रूप से परिलक्षित होती हैं। पहली वन-प्रदेश के अन्तर्गत भरहुत नामक स्थान में प्राप्त स्तूप का शिल्पादर्श है। इसकी तक्षण रीति अति प्राचीन है और इस वन-भूमि का निर्माल्य है। यहाँ से आदिम वन-भूमि के पत्र मरमर ध्वनि, श्यामल लता-कुंज और झरनों का पानी साधारण जीवन यापन की कहानी अज्ञात शिल्पी के अस्त्राघात से पाषाण के हृदय पर विभिन्न दृश्यों को अंकित किया है। भरहुत की यक्षिणी लज्जा से झुकी हुयी वन-बाला और सांची के शाल भञ्जिका को पकड़ कर झुकी हुयी शिक्षिता नागरिका की तरह लास्यमयी मालूम पड़ती है। ये दोनों शिल्प हमारे प्राचीन भारत के दो विभिन्न जीवन प्रवाहों से परिचय कराते हैं। सांची में प्राप्त अभिजात्य हीन अर्थ-गर्वित वणिक् संप्रदाय के वैभव प्रदर्शन स्पृहणीय है। भरहुत में पवन के झोंकों से सदा प्रकम्पित वन-पत्रों के मरमर शब्द श्रुति गोचर होते हैं और वन्य दृश्य दृष्टिगत होता है। गहन जंगल में वन्य-जाति समूह के जीवन यापन, नगर के जीवन-यापन की स्पृहा का अभाव—इन दो शिल्पों की धाराओं का प्रभाव काशी के नव—प्रयाग में लक्षित होता है। कुषाण युग के अन्त में एक नवीन शैली की सृष्टि हुयी। मौर्य-युग में इसका प्रारंभ असंभव था, कारण राष्ट्रीय ऐक्य के विनाश के साथ साथ आर्यावर्त्त से यह शिल्पादर्श लुप्त हो गया था। शुंग युग की दो विभिन्न शैलियों की मिश्रित धारा इस क्षेत्र को संचित करके अंकुरोद्गम में सहायता की। कुषाणयुग में वह लताकुंज प्रस्फुटित हुआ। किन्तु जादू के जिस मायादण्ड के स्पर्श से प्रस्फुटित पुष्प के सुवास ने त्रिभुवन को आमोदित किया था, कालिन्दी की तटभूमि से भारतीय एवं पाश्चात्य शिल्पादर्श से प्रभावान्वित हो मथुरा शैली के सृष्टिकर्त्तागण वर्बर राजप्रासाद में वह प्राच्य भूखंड के विभिन्न स्थानपर विस्तार लाभ करने पर भी उनकी इस प्रकार की कोई मौलिकता नहीं थी जिससे उनका दान भारत का चिरन्तन भाव-धारा को अनुप्राणित कर सकता। किन्तु काशी की शैली से प्रभावान्वित होकर परवर्त्ती युग में मथुरा के शिल्पियों ने यह महासत्य प्रामाणित कर दिया है।

काशी पर कुषाणों का अधिकार बहुत थोड़े समय के लिये था। सारनाथ में प्राप्त एक वृहदाकार बोधिसत्व की मूर्ति, और एक मूर्ति का प्रभामंडल कुषाणों के अधिकार का परिचय देते हैं। मूर्ति के पादपीठ पर, पीछे और छत्रदंड के ऊपर उत्कीर्ण लिपि—ये प्रामाणित करते हैं कि ईसवी सन् ८१ में प्राचीन मृगदाव महाराजाधिराज कनिष्क के साम्राज्य के अन्तर्गत था। इस समय महाक्षत्रप खरपल्लन एवं क्षत्रप वनस्पर इस प्रदेश के शासनकर्ता थे। शकराजाओं के व्यवस्थानुयायी क्षत्रप साधारणतः महाक्षत्रप के पुत्र ही होते थे। इसलिये वनस्पर को खरपल्लन का पुत्र होना स्वाभाविक ही था। किन्तु यह व्यवस्था कुषाण युग में बलवती थी या नहीं—इस विषय में विशेष संदेह है। बोधिसत्व की मूर्त्ति मथुरा के रक्तवर्ण पत्थर एवं वहीं की शैली में बनी है। इसकी प्रधान विशेषता यह है कि यह बोधिसत्व की अन्यतम प्राचीन मूर्त्ति है। उत्तर काल में बौद्ध लोग किसी अज्ञात कारण से बुद्ध की मूर्त्ति खोदते नहीं थे। आकार और निराकार का झगड़ा अति प्राचीन काल से है। प्राचीन यहूदी जाति में मूर्त्ति पूजा प्रचलित नहीं थी। मरूभूमि की अनेक खाना-बदोश जातियाँ, जो मूर्त्ति पूजा की पक्षपाती नहीं थीं, उनकी संख्या काफी थी। महायान मत के प्राबल्य के साथ साथ गौतम बुद्ध की मूर्त्ति बौद्ध-संघ में प्रविष्ट हुई। ये तीनों लिपि (लेख ?) प्रामाणित करते हैं कि 'त्रिपिटक' का अध्ययन ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी से ही सम्पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका था। इस मूर्त्ति के सारनाथ में प्रतिष्ठित होने के बाद वाराणसी के भास्कर्य का चुनार के बालुका पत्थर से इसकी एक नकल तैयार की गई। सारनाथ की खुदाई में इसके भी भग्नावशेष पाये गये हैं। इसमें मौलिकता का अभाव है। नकल के जितने दोष होते हैं वे सब इन मूर्तियों में विराजमान हैं। इस मूर्त्ति के अलावे एक और विशाल बोधिसत्व की मूर्त्ति प्राचीन मृगदाव में प्रतिष्ठित हुई थी। ये दोनों मूर्त्तियाँ हमें कुषाण युग के मथुरा शैली से गुप्त युग के वाराणसी

शैली का क्रमावर्त्तन प्रदर्शित करती हैं। धीरे धीरे नवीन रूपादर्श की सृष्टि एवं भाव-प्रवाह के प्रकाश का नया नया मार्ग और युगधर्म्मानुसार नवीन अभिव्यक्ति का उदाहरण देता है। यवन-शिल्पादर्श से अनुप्राणित तरंगित त्रिचीवर के बदले हमारे भगवान् बुद्ध की मूर्त्तियों के नये कलेवर ही दिखाई देते हैं।

पालि साहित्य में प्रकृति-वर्णन

श्री भरत सिंह उपाध्याय

पालि साहित्य विचार-प्रधान साहित्य है। भारतीय साहित्य में वस्तुतः मनन के विषय ही दो हैं—उपनिषद् और बुद्ध-वचन। पालि साहित्य में बुद्ध-वचन के अतिरिक्त भी कुछ है। पर जो है वह भी प्रायः उन्हीं पर आश्रित है। विचार की प्रधानता के साथ-साथ पालि साहित्य में भावना भी है। यदि मानवीय भावनाएँ उसमें न होतीं तो उस विशाल-जन-समाज को वह कैसे प्रभावित करता जैसा कि उसने किया है। जाति-धर्म-निर्विशेष मानवीय भावनाओं की बहुलता पालि साहित्य का एक गुण है। पर भावुकता से भी अधिक प्रमुख गुण है उसका विवेकवाद। वह हृदय-स्पर्श करने की अद्‌भुत क्षमता रखता है, पर साथ ही मनोरागों की अतिशयता को वहाँ हेयता की दृष्टि से देखा गया है। संक्षेपतः विवेक और भावना का एक अद्‌भुत सामंजस्य हम पालि साहित्य में पाते हैं।

सबसे बड़ी बात यह है कि प्रकृति को ज्ञान-साधना के सहायक के रूप में पालिसाहित्य में देखा गया है। बुद्ध-जीवन में भी हम यही बात पाते हैं। यह कितने आश्चर्य की बात है और यह आकस्मिक भी नहीं है कि भगवान् का जन्म भी एक पेड़ के नीचे ही हुआ, ज्ञान भी उन्होंने एक पेड़ के नीचे ही! लुम्बिनी के शालवन में भगवान् का जन्म, गया के पीपल के पेड़ के नीचे उनकी बुद्धत्व-प्राप्ति और कुशीनारा के दो शाल-वृक्षों के नीचे उनका महापरिनिर्वाण, तथागत के जीवन के तीनों महान् व्यापार प्रकृति की खुली गोद में, वृक्षों के नीचे ही, होते हैं। प्रासादों में रहकर बुद्धों का निर्माण नहीं हो सकता। उनके लिए खुली वायु चाहिए। महाभिनिष्क्रमण के बाद अनेक स्थानों में घूमते हुए भगवान् उरुवेला की भूमि में पहुँचे। भगवान् ने देखा "यह भूमि भाग रमणीय है। यह वनखंड प्रसन्नताकारी है। श्वेत, सुन्दर घाट वाली रमणीय नदी बह रही है। चारों ओर फिरने लिए गाँव हैं। परमार्थ में उद्योगी कुल-पुत्र के लिए ध्यान-रत होने के लिए यह बहुत उपयोगी है। यही ध्यान-योग्य स्थान है।" भगवान् बैठ गये। छः वर्ष यहीं तपस्या किये। यहीं बोधि-वृक्ष के नीचे एक दिन उषा के उदय होने के साथ-साथ भगवान् ने ज्ञान प्राप्त किया। बाद में कई सप्ताह तक भिन्न-भिन्न पेड़ों के नीचे ध्यान-सुख अनुभव करते हुए भगवान् बैठे रहे। वृक्षों के नीचे ध्यान करने का उपदेश सदा भगवान् अपने शिष्यों को भी देते थे। 'यह सामने वृक्षों की छाया है···ध्यान करो, प्रमाद मत करो' ऐसा हम उन्हें अनेक बार कहते हुए, सुनते हैं। वन की शोभा ध्यानी भिक्षु से ही है, ऐसा भाव भगवान् ने महागोसिंग-सुत्तन्त (मज्झिम० १।४।२) प्रकट किया है। जिन-जिन वनों, वनखंडों, पर्वत-प्रदेशों और नदियों-पुष्करिणियों आदि के किनारे भगवान् ने समय-समय पर निवास किया, उनकी सूची बनाई जाय तो विदित होगा कि भगवान् का प्रायः सारा जीवन प्रकृति के बीच ही व्यतीत हुआ। मनुष्य-समाज में वे उसके कल्याण के लिए आये, पर वहाँ भी उनका निवास किसी एकान्त, निःशब्द और प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण स्थान में ही होता था। प्रायः आम्रवनों में विचरण करते हुए हम भगवान् को अनेक बार देखते हैं। यदि इन आम्रवनों की भी सूची बनाई जाय तो बहुत लम्बी होगी।

प्रकृतिक जीवन की पूरी पृष्ठ भूमि इस प्रकार हम भगवान् बुद्ध की जीवन-साधना में पाते हैं। पर इस जीवन

का साक्षात् सम्पर्क और अनुभवके बलपर वर्णन हम उनके समकालिक अनेक भिक्षु-शिष्यों के उद्गारों में ही पाते हैं। भिक्षुओं का जीवन प्रकृति से गहरे रूप से सम्बद्ध था। गिरि गुहा, नदी-तट, वन-प्रस्थ, श्मशान, वृक्ष-मूल, पुआल-पुंज अथवा किसी छाई हुई या बिना छाई हुई ही[1] कुटिया में ध्यान करते भिक्षुओं को वर्षा, शीत आदि ऋतु-परिवर्तन का और पृथ्वी और आकाश के अनेक रंगों और रूपों के परिवर्तन का साक्षात् अनुभव होता था। उनका सारा मानसिक जीवन ध्यान-मय होता था। प्रकृति के अनेक रूपों की प्रतिक्रिया उनके चित्त पर वैसी होती है, इसके अद्भुत रूप से सच्चे चित्र अनेक भिक्षु हमारे लिए छोड़ गये हैं। 'थेरगाथा' में ये संगृहीत हैं और पालि साहित्य में प्रकृति-वर्णन के सर्वोत्तम उदाहरण माने जा सकते हैं। विन्टर नित्ज ने उन्हें सम्पूर्ण 'भारतीय गीति-काव्य के सच्चे रत्न' कहा है[2] जो अतिशयोक्ति नहीं कहा जा सकता। मूसलाधार वर्षा हो रही है। ध्यानस्थ भिक्षु अपनी कुटिया में बैठा है। हाँ, उसकी कुटिया छाई हुई है। भिक्षु उद्गार करता है—

बरसो देव ! यथा सुख बरसो।
मेरी कुटिया छाई हुई है।
(ठंडी) हवा अन्दर न आ सकने के कारण वह
सुखकारी है !
मेरा चित्त समाधि में दृढ़तापूर्वक लीन है,
(कामासक्ति से) विमुक्त हो चुका है,
निर्माण के लिए उद्योग चल रहा है।
बरसो देव ! यथासुख बरसो ![3]

एक दूसरे भिक्षु ने इसी अनुभव को इनसे भी अधिक सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया है:—

सुन्दर गीत के समान देव बरसता है !
मेरी कुटिया छाई हुई है !
(ठंडी) हवा न आ सकने के कारण वह
सुखकारी है !
उसमें शान्त-चित्त, ध्यानस्थ मैं बैठा हूँ।
बरसो देव ! जितनी तुम्हारी इच्छा हो बरसो !
सुन्दर गीत के समान देव बरसता है !
मेरी कुटिया छाई हुई है !
(ठंडी) हवा न आ सकने के कारण वह सुखकारी है।
उसमें शान्त-चित्त ध्यानस्थ मैं बैठा हूँ।
बरसो देव। जितनी तुम्हारी इच्छा हो बरसो।[4]

'वस्सति देवो यथा सुगीतं' (सुन्दर गीत के समान देव बरसता है) कैसी सुन्दर उपमा है। प्राकृतिक सौन्दर्य का कैसा मनोज्ञ प्रत्यक्षीकरण है। झड़ी लगाकर बरसते हुए बादल के समान सुन्दर गीत की वर्षा के सौन्दर्य को भी देखने की क्षमता वीतराग भिक्षु में है। पर ध्यान का सुख तो इससे भी बड़ा है:—

पञ्चङ्गिकेन तुरियेन न रति होति तादिसी।
यथा एकग्गचित्तस्स सम्मा धम्मं विपस्सतो ॥[5]

पञ्चविध तूर्य ध्वनि (सङ्गीत) से भी वैसा आनन्द प्राप्त नहीं होता, जैसा एकाग्र-चित्त पुरुष का धर्म के सम्यक् दर्शन करनेसे उत्पन्न होता है। अतः ध्यान का सुख

---

[1] वर्षा होने वाली है। भगवान् मही (गंडक) नदी के तट पर खुली कुटिया (विवटा कुटि) में बैठे हैं। देखिये सुत्त-निपात, गाथा १९ (धनिय-सुत्त)

[2] "Real gems of Indian lyric poetry" इण्डियन लिटरेचर जिल्द दूसरी, पृष्ठ १०६।

[3] छन्ना मे कुटिका सुखा निवाता वस्स देव यथा सुखं। चित्तं मे सुसमाहितं विमुत्तं आतापी विहरामि वस्स देवाति ॥ थेरगाथा, गाथा १

[4] वस्सति देवो यथा सुगीतं,
छन्ना मे कुटिका सुखा निवाता।
तस्सं विहरामि वूपसन्तो,
अथ चे पत्थयसि पवस्स देव ॥३२५
वस्सति देवो यथा सुगीतं,
छन्ना मे कुटिका सुखा निवाता।
तस्सं विहरामि सन्त चित्तो,
अथ चे पत्थयसि पवस्स देव ॥३२६
बीतरागो…बीतदोसो……बीतमोहो…अथ चे
पत्थदसि पवस्स देवाति'।३२७-३२९

[5] गाथा ३९८, मिलाइये गाथा १०७१

ही भिक्षु के लिए सबसे बड़ा सुख है । प्राकृतिक सौन्दर्य जो साधारण लोगों के लिए आँख के उपभोग की वस्तु है, भिक्षु के लिए ध्यान का उद्दीपन बन जाता है । विश्व के अधिकांश काव्य-साहित्य में वर्षा-वर्णन या सामान्यतः ऋतु-वर्णन काम-रति के उद्दीपन के रूप में ही किया गया है । भारतीय साहित्य में महर्षि बाल्मीकि ने अवश्य प्रकृति को आलम्बन मानकर स्वतन्त्र रूप से उसका उदात्त वर्णन किया है । गोस्वामी तुलसीदास जी के वर्षा और शरद ऋतुओं के वर्णन, जो श्री मद्भागवत पर आधारित हैं, वैराग्य के वर्द्धक अवश्य हैं, परन्तु वहाँ नीति का उपदेश इतना स्फुट हो गया है कि उसे वास्तविक अर्थों में प्रकृति-वर्णन ही नहीं कहा जा सकता । अंग्रेजी कवि जेम्स थोमसन ने 'दि सीजन्स' में ऋतुओं का सुन्दर वर्णन किया है जो उदात्त है और शुभ है । इसी प्रकार प्रकृति के पुजारी वर्डसवर्थ ने भी प्रकृति की आश्वासनकारी शक्ति को दिखाने के साथ-साथ उसके अनेक उदात्त, सुन्दर चित्र भी अङ्कित किये हैं । ये सब बातें अन्य साहित्यों में भी मिल जायँगी । पर प्राकृतिक सौन्दर्य को देखने के साथ ही मन की वह प्रसन्नतामयी स्थिति हो जाना जिसमें वह पूर्ण निर्विकार हो कर सत्य को देख लेना चाहता है, पवित्रता और सुन्दरता के स्रोत को अपने अन्दर ही उद्घाटित करने के लिए व्यग्र हो उठता है, मानव-मन की यह उच्च स्थिति तो केवल थेरगाथा में ही मिलेगी । विश्व के प्रकृति-कवियों में मानसिक पक्ष की दृष्टि से (बाह्य सौंदर्य-वर्णन की दृष्टि से नहीं) सम्भवतः वर्डस्वर्थ से आगे कोई नहीं गया है । अंग्रेजी के प्रकृति-वर्णन करने वाले कवियों का तो वह सिरमौर ही है । हम उसे आसानी से उनका प्रतिनिधि मान सकते हैं । मानव-मन के प्रकृति के साथ सम्पर्क के वर्णन में वर्डस्वर्थ सबसे अधिक ऊँचा अपनी इन प्रसिद्ध पंक्तियों में गया है जो उसने टिंटर्न एबे नामक गिर्जे के समीप लिखी थी । इन पंक्तियों में जिनके उद्धरण की यहाँ कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, कवि ने मुख्यतः यह भाव व्यक्त किया है कि प्रकृति के साथ सम्पृक्त हुआ मानव-मन एकता की आनन्दानुभूति करता हुआ उस अवस्था तक पहुँच जाता है जहाँ उसे 'मानवता का शान्त, करुण संगीत' (the still, sad music of humanity) सुनाई पड़ने लगता है जो न कर्कश है और न घर्षात्मक (nor harsh nor grating) बल्कि जिसमें (मनको) पवित्र करने और संयमित करने की बहुल शक्ति है (but with ample power to chasten and subdue) वर्डस्वर्थ के प्रकृति-वर्णन के साथ 'थेरगाथा' के प्रकृति-वर्णन की एकता की आतुरता न दिखाते हुए (दोनों में अनेक मौलिक विभिन्नताएँ हैं) हमें केवल यहाँ यही कहना है कि 'पुरिसदम्मसारथि' (पुरुषों को संयमी बनाने के लिए सारथी-स्वरूप, भगवान् बुद्ध) के शिष्यों ने प्राकृतिक दृश्यों के बीच ध्यानस्थ होकर मानवता का जितना अधिक 'शान्त, करुण संगीत' सुना है, और सुनकर 'संयमकारी' और 'पवित्रताकारी' जिस विशाल शक्ति का उन्होंने अपने अन्तस् में उद्घाटन किया है, वह साधना के इतिहास में सदा अमर रहेगा । विशेष प्रभावशाली प्राकृतिक दृश्यों की तो बात ही क्या, एक भिक्षुणी ने तो एक अत्यन्त साधारण परिस्थिति के दर्शन से ही अपने चित्त को पवित्र और संयमित कर लिया है । वह कहती है:—' दिन में विहार करने के लिए मैं बाहर निकली थी । जाकर गृध्रकूट पर्वत के शिखर पर बैठ गई । वहाँ देखती हूँ कि एक हाथी-जल में अवगाहन करने के बाद नदी के किनारे पर बैठा है । एक अंकुशधारी मनुष्य ने उसे आदेश दिया—"पैर पसार" हाथी ने पैर पसार दिया । मनुष्य उस पर चढ़ गया । अदान्त (हाथी) को दमित होते और मनुष्य की अधीनता स्वीकार करते देख, उस गम्भीर अरण्य में प्रवेश कर मैंने भी अपने चित्त को दमित और वशीभूत कर लिया ।'' जब जीवन की साधारण घटनाओं में इतनी महती शक्ति(Ample power) मानव-मन को विशुद्ध और संयमित करने के लिए (to chasten and snbdue) भरी पड़ी है, तो प्रकृति के शीत, वर्षा, वन, नदी, निर्झर आदि भव्य दृश्य इन साधक-साधिकाओं को ध्यान की किन उच्च अवस्थाओं में ले पहुँचते होंगे, यह सोचना कठिन नहीं है ।

वर्षा काल है । सुन्दर नीली ग्रीवा वाले, कलँगी धारी मोर अपने सुन्दर मुखों से बोल रहे हैं । कितनी मधुर है उनकी गर्जन ! विस्तृत पृथ्वी चारों ओर हरियाली से भरी हुई है । सारी सृष्टि जल से व्याप्त है । आकाश में जल-

पृति कृष्ण मेघ छाये हुए हैं। ध्यान के लिए यह उपयुक्त अवसर है। भिक्षु को प्रसन्नता है कि उसका ध्यान अत्यन्त उत्तम, अनुकूल रूप से चल रहा है। बुद्ध-शासन के अभ्यास में वह सुन्दर रूप से अप्रमादी है। यदि प्रकृति में उल्लास और उत्साह है तो भिक्षु का मन भी सुन्दर है। उसे भी उत्साह होता है। अत्यन्त पवित्र, कुशल, दुर्दर्श, उत्तम अच्युत पद (निर्वाण) का साक्षात्कार करने के लिए। वर्षा कालीन सौन्दर्य के बीच ध्यानस्थ भिक्षु के इस पराक्रम को देखिये—

नन्दन्ति मोरा सुसिखा सुपेखुणा
सुनीलगीवा सुमुखा सुगज्जिनो।
सुसद्दला चापि महा मही अयं
सुब्यापितम्बु, सुवलाहकं नभं ॥
सुकल्लरूपो सुमनस्स झायितं
सुनिक्खमो साधु सुबुद्ध सासने।
सुसुक्क - सुक्कं निपुणं सुदुद्दसं
फुसाहितं उत्तममच्चुतं पदं ॥[1]

छत के नीचे बैठे हुए, मित्र-परिजनादि से घिरे हुए; सांसारिक मनुष्य के समान वर्षा का सौन्दर्य केवल दूर से अवलोकन करने की वस्तु भिक्षु के लिए नहीं थी। उस के लिए वर्षा अपने सम्पूर्ण आकर्षण और भय के साथ ही आती थी। उसके रौद्र रूप का भी वह इसी प्रकार प्रत्यक्ष अनुभव करता था जैसे उसके मधुर गीत के समान ध्वनित होने का। अकेला ध्यानस्थ भिक्षु भयंकर गुफा में बैठा है। बादल बरस रहा है और आकाश में गड़गड़ा रहा है। भयंकर मूसलाधार वर्षा और आकाश में निरन्तर बिजली की गड़गड़ाहट ! पर भिक्षु को भय कहाँ ? निर्भयता उसका स्वभाव है, उसकी 'धम्मता' है ! अतः उसे न भय है, न स्तम्भ है, और न रोमांच ! स्थविर सम्बुल के ध्यान के अनुभव को उनके शब्दों में ही सुनिये—

देवो च वस्सति देवो च गलगलायति
एकको चाहं भेरवे बिले विहरामि।
तस्स मय्हं एककस्स भेरवे बिले विहरतो
नत्थि भयं वा छम्भितत्तं वा लोमहंसो वा ॥
धम्मता ममेसा यस्स मे एककस्स भेरवे बिले
विहरतो नत्थि भयं वा छम्भितत्तं वा लोमहंसो वा ॥[2]

भिक्षुओं की वृत्ति वर्षाकालीन प्राकृतिक सौन्दर्य और विशेषतः ध्यान के लिए उसकी उपयुक्तता पर बहुत रमी है। सुन्दर ग्रीवा वाले, नीले मोरों का बोलना, और एक दूसरे को बुलाना भिक्षुओं के लिए ध्यान का निमन्त्रण है। शीत वायु में कलित विहार करते हुए मोर भिक्षु को ध्यान के लिए उद्बोधन करते हैं:—

नीला सुगीवा सिखिनो मोरा कारंवियं अभिनदन्ति।
ते सीतवातकलिता सुत्तं झायं निबोधेन्ति ॥[3]

इसी प्रकार सप्पक स्थविर का भी वर्षा-कालीन सौन्दर्य से प्राप्त कर ध्यान के लिए बैठ जाना एक पवित्रताकारी वस्तु है। महास्थविर अपने प्रकृति-प्रेम और उससे उत्पन्न ध्यान की इच्छा का वर्णन करते हुए कहते हैं:—

जब स्वच्छ पांडुर पंख वाले बगुले काले मेघ से
भयभीत हुए अपनी खोहों की खोज करते हुए उड़ते हैं,
उस समय बाढ़ में उफान लेती हुई यह नदी
मुझे कितनी प्रिय लगती है !
जब स्वच्छ पांडुर पंख वाले बगुले काले मेघ से
भयभीत हुए अपनी खोहों की खोज करते हुए
उड़ते हैं,
और उनकी गुफाएँ वर्षा के अन्धकार से ढँकी हुई हैं;
उस समय बाढ़ में उफान लेती हुई यह नदी
मुझे कितनी प्रिय लगती है !
इस नदी के दोनों ओर जामुन के पेड़ हैं,
वहाँ मेरा मन कैसे न रमेगा ?
महामार्ग के पीछे, नदी के किनारे पर अन्य
अनेक निर्झरिणियाँ सुशोभित हैं !
जगे हुए मेंढक मृदुल नाद कर रहे हैं।
आज गिरि और नदीसे अलग होने का समय नहीं है?

---

[1] गाथाएँ २१२-२१२

[2] गाथाएँ १८९-९० ; निर्भयता विहार के लिए देखिए स्थविर न्यग्रोध का उद्गार भी "नाहं भयस्स भयामि सत्था नो अमतस्स कोविदो। यत्थ भयं नावतिट्ठति तेन मग्गेन वजन्ति भिक्खवो ॥" गाथा २१

[3] गाथा २२

बाढ़ में उफान लेती हुई यह नदी कितनी सुरम्य, शिव और क्षेमकारी है !

मैं यहाँ ध्यान करूँगा ।[१]

वर्षा कालीन प्राकृतिक दृश्य का कितना सुन्दर संश्लिष्ट वर्णन है । इतना सूक्ष्म निरीक्षण भिक्षु के प्रकृति के साथ गहरे सम्पर्क में ही प्राप्त हुआ है । उसके ऊपर उसकी ध्यानमयता है। काले बादलों में होना स्वच्छ पांडुर वर्ण वाले बगुलों का उड़ना वर्षा ऋतु का एक सुन्दर और चिरपरिचित दृश्य है। वर्षाकाल में चित्रकूट की शोभा का वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी इसके सौन्दर्य को देखा है—

सिखर परस घन घटहिं मिलति
बग पाँति सो छबि कबि बरनी।
आदि बराह बिहरि बारिधि मनो
उठ्यौ है दसन धरि धरनी॥

महाकवि सूरदास ने इसी प्रकार वर्षा-काल में शुकों की पंक्तियों को उड़ते हुए देखा है और उसके सौन्दर्य को उत्प्रेक्षा के रूप में व्यवहृत किया है —

स्याम देह दुकूल दुति छवि लसति तुलसी माल।
तड़ित घन संयोग मानो सेनिका सुक जाल॥

जैसा स्पष्ट है, भिक्षु के वर्णन का सौन्दर्य अपना है। उसका प्रकृति-प्रेम न वस्तुवर्णनात्मक है और न केवल एक संश्लिष्ट चित्र के रूप में। उसका ध्यान अविभक्त रूप से उसके साथ संलग्न है। यह उसकी एक अपनी विशेषता है। और जब वह यह कहता है 'आज गिरि और नदी से अलग होने का समय नहीं है' (नाज्ज गिरि नदीहि विप्पवाससमयो) तब तो निश्चय ही छठी शताब्दी पूर्व के इस उद्गार में वह प्रकृति-प्रेम की उस पूरी निष्ठा को रख देता है जो विश्व-साहित्य में आज तक कहीं भी व्यक्त नहीं हुई है।

प्राकृतिक सौन्दर्य के बीच एकान्त ध्यान करते हुए जो आनन्द प्राप्त होता है उससे अधिक आनन्द और कुछ नहीं है, ऐसा साक्ष्य देते हुए एक स्थविर साधक ने प्रभावशाली शब्दों में कहा है:—

जब आकाश में मेघों की दुन्दुभी बजती है, और पक्षियों के मार्गों में चारों ओर धाराकुल बादल चक्कर लगाते हैं;

उस समय भिक्षु पहाड़ पर जाकर ध्यान करता है-

जब कुसुमों से आच्छादित नदियों के.........

किनारे पर बैठ कर सुन्दर मन वाला भिक्षु ध्यान करता है—इससे बड़ा आनन्द और कुछ नहीं है !

जब एकान्त वन में, अर्द्ध रात्रि में, बादल गड़गड़ा रहा है और शूकर दहाड़ रहे हैं,

उस समय पर्वत पर बैठा हुआ भिक्षु ध्यान करता है—इससे बड़ा आनन्द और कुछ नहीं है।[२]

---

[१] यदा बलाका सुचिपण्डरच्छदा
कालस्स मेघस्स भयेन तज्जिता।
पलेहिति आलयमालयेसिनि,
तदा नदी अजकरणी रमेति मं ॥
यदा बलाका सुविसुद्धपण्डरा
कालस्स मेघस्स भयेन तज्जिता।
परियेसतिलेन मलेन- दस्सिनी
तदा नदी अजकरणी रमेति मं ॥
कन्नु तत्थ न रमेन्ति
जम्बुयो उभतो तहिं,
सोभेन्ति आपगा कूलं
महालेनस्स पच्छतो ॥
तामतमदसं घसुप्प हीना
भेका मन्दवती पनादयन्ति,
नाज्ज गिरिनदीहि विप्पवाससमयो,
खेमा अजकरणी सिवा सुरम्माति॥
—थेरगाथा, गाथाएँ ३०७-३१०

[२] यदा नभे गज्जति मेघदुन्दुभि धाराकुला विहङ्गपथे समन्ततो।
भिक्खु च पब्भारगतो' व झायति
ततो रतिं परमतरं न विन्दति ॥
यदा नदीनं कुसुमाकुलानं......
तीरे निसिन्नो सुमनो' व झायति
ततो रतिं परमतरं न विन्दति ॥

इसी परमानन्द को प्राप्त करने के लिए एक भिक्षु गिरिव्रज (राजगृह के समीप गृद्धकूट पर्वत) जाने का उत्सुक है—

अहो! कब मैं बुद्ध द्वारा प्रशंसित वन को जाऊँगा!
योगियों को प्रसन्नताकारी, मत्त कुंजरों से सेवित,
रमणीय, उस वन में मैं कब प्रवेश करूँगा!
उस सुपुष्पित शीत वन में, गिरि और कन्दराओं में,
वन में अकेला चंक्रमण करूँगा!
अकेला, विना साथी के, उस रमणीय महा वन में,
एकान्त, शीतल, पुष्पों से आच्छादित पर्वत पर,
विमुक्ति सुख से सुखी, मैं गिरि-व्रज में कब विचरण
करूँगा![1]

एक दूसरे ध्यानी भिक्षु को भी पर्वत कितने प्रिय हैं!:
करेरि-पंक्तियों से पूर्ण, मनोरम भूमिभाग वाले,
कुंजरों से अभिरुद्ध, रमणीय—वे पर्वत मुझे प्रिय हैं!
नील आकाश के समान वर्ण वाले, सुन्दर,
शीतल जल से परिपूर्ण पवित्रताकारी,
पक्षियों के शब्दों से परिपूर्ण—वे पर्वत मुझे प्रिय हैं
मुझ ध्यानेच्छु, आत्म संयमी, स्मृतिमान् भिक्षु के!
लिए पर्याप्त, मृग समूहों से सेवित,
अनेक पक्षि-समूहों से आकीर्ण
—वे पर्वत मुझे प्रिय हैं![2]

इसी प्रकार एक-दूसरे भिक्षु ने 'चारों ओर मनोरम द्रुम फूले हुए हैं' (दुमानि फुल्लानि मनोरमानि)[3] आदि रूप से वसन्त की शोभा का वर्णन करते हुए 'कालो इतो पक्कमनाय वीर' (हे वीर! यह प्रक्रमण करनेका समय है–गाथा ५२८) कहकर ध्यानमयी प्रेरणा दी है। वसन्त की शोभा का सुन्दर वर्णन 'थेरी गाथा' में भी उपलब्ध होता है। एक कामी, लम्पट पुरुष भिक्षुणी शुभा से कहता है—

"पुष्परेणियों से मस्त हुए वृक्ष चारों ओर मधुर गन्ध विकीर्ण कर रहे हैं,

प्रथम वसन्तका सुखकारी समय है, चल इस पुष्पित वन में हम रमण करें,

पुष्पों को सिर पर धारण किये हुए ये वृक्ष वायु से प्रकम्पित होकर कैसी सुन्दर मर्मर ध्वनि कर रहे हैं।"[4] आदि।

यह वसन्त का वर्णन 'थेरी गाथा' में केवल पृष्ठभूमि तैयार करने के लिए है। इसमें अभी बौद्ध तत्त्व कुछ नहीं है। संसार का कोई भी कल्पनाशील एवं सूक्ष्म-निरीक्षण-सम्पन्न कवि ऐसा वर्णन कर सकता है और अनेक ने किये भी हैं। पर इस वसन्त की शोभा की पृष्ठभूमि में ही आगे चल कर शुभा भिक्षुणी अपनी आँख को दिखाती हुई, जिसकी सुन्दरता को देखकर ही वह पुरुष कामासक्त हो गया था, कहती है "आँखें क्या हैं? दो गड्ढों में स्थित,

---

यदा निसीथे रहितम्हि कानने
देवे गलन्तम्हि नदन्ति दाहिनो।
भिक्खु च पब्भारगतो' व झायति ततो रतिं परमतरं न विन्दति॥ थेर गाथा, गाथाएँ ५२२-५२४

१. हन्द एको गमिस्सामि अरञ्ञं बुद्धवण्णितं। ५३८
योगि पीतकरं रम्मं मत्तकुञ्जर सेवितं। ५३९
सुपुप्फिते सीतवने सीतले गिरिकन्दरे।
..........चङ्कमिस्सामि एकको॥ ५४०
एकाकियो अदुतियो रमणीये महावने। ५४१
विने कुसुमसञ्छन्ने पब्भारे नून सीतले।
विमुत्तिसुखेन सुखितो रमिस्सामि गिरिब्बजे॥ ५४५

२. करेरिमालावितता भूमिभागा मनोरमा।
कुञ्जराभिरुद्धा ते सेला रमयन्ति मं॥ १०६२
नीलब्भवण्णा रुचिरा वारिसीता सुचिन्धरा। १०६३
वारणाभिरुदा रम्मा ते सेला रमयन्ति मं॥ १०६४
अलं झायितुकामस्स पहितत्तस्स मे सतो। १०६६
......................मिगसंघनिसेविता।
नानादिजगणाकिण्णा ते सेला रमयन्ति मं॥ १०६९

३. गाथाएँ ३७१–३७२ आदि (थेरीगाथा)।

४. गाथा ३९५ (थेरीगाथा)।

अश्रुओं से सिंचित, जलबुद्बुद मात्र !" यह बौद्ध है। बसन्त का वर्णन इस प्रभाव की तीव्रता के लिए ही किया गया है। वसन्त-वर्णन काव्य का सत्य है, आँख का वर्णन विज्ञान का सत्य है। इन दोनों सत्यों को इससे अधिक सुन्दर रूप से आमने-सामने रखकर नहीं दिखाया जा सकता। आँख के आलम्बन से उत्पन्न होनेवाला जितना भी राग है उस सबको शमन करने की शक्ति भिक्षुणी शुभा के उपर्युक्त कथन में है।

शीतकाल का पूरा अनुभव लेते हुए भी ध्यानी भिक्षुओं को हम 'थेर गाथा' में देखते हैं:—

हेमन्त की शीतल काली-रात्रि है !

खाल को भी पार करने वाली, मन को भी विदीर्ण करने वाली, ठंडी हवा है !

भिक्षु ! तू क्या करेगा ?

मैंने सुना है मगध निवासी लोग शस्यों की पूर्णता से सम्पन्न हैं !

उनका जीवन सुखी है। मैं भी उनके समान सुख अनुभव करता हूँ।

शीत की यह रात मैं इस पुआल-पुंज में लेटकर बिताऊँगा।[1]

भगवान् ने मध्य रात्रि में उठकर बोधि पक्षीय धर्मों की भावना करने का आदेश दिया है। भिक्षु की रात्रि ध्यान करने के लिए है। एक भिक्षु का कहना है—

न ताव सुपितं होति रत्ति नक्खत्तमालिनी।
पटिजग्गितुमेवेसा रत्ति होति विजानता ॥[2]

यह तारों भरी रात सोने के लिए नहीं है। ज्ञानी के लिए यह रात जाग कर ध्यान करने के लिए है।

गिरिव्रज में जाकर ध्यान करने की एक भिक्षु की इच्छा का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं (गाथाएँ ५३८-५४५) उनसे भी अधिक प्रभावशाली शब्दों में एक दूसरे स्थवि (तालपुट) ने अपनी इस इच्छा को व्यक्त किया है।

कब मैं अकेला, बिना किसी साथी के, (गिरिव्रज के पर्वत-कन्दराओं में ध्यान करता हुआ विचरूँगा। क कभी मेरे ऐसे दिन आयेंगे ?[3]

कब मैं एकान्त वन में विदर्शना भावना का अभ्या करता हुआ निर्भय विचरूँगा ! क्या कभी मेरे ऐसे दि आयेंगे ? कब मैं वन के उन मार्गों पर जिन पर क (बुद्ध) चले, चलता रहूँगा और वर्षाकाल के मेघ न जल की वृष्टि सचीवर मुझ पर करते होंगे। क्या क मेरे ऐसे दिन आयेंगे ?[4] कब मैं वन और गिरि-गुहाओं कलँगीधारी मयूर पक्षियों की मधुर ध्वनि को सुन अमृत की प्राप्ति के लिए जागरूक होकर ध्यान करूँगा क्या कभी मेरे ऐसे दिन आयेंगे ?[5] फिर अपने मन

---

[1] छविपापक चित्तभद्दक·······

हेमन्तिकसीतकालरत्तियो, भिक्खु त्वं सि कथं करिस्ससि ॥
सम्पन्नसस्सा मगधा केवला इति मे सुतं।
पलालच्छन्नको सेय्यं यथञ्ञे सुखजीविनो ॥२०७-२०८

[2] थेरगाथा, गाथा १९३; मिलाइये गीता "या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।" थेरगाथा ने निशा के साथ 'नक्खत्तमालिनी' कह कर उसकी ध्यानमयता अधिक बढ़ा दी है और काव्यमयता भी। नक्षत्रोंसे भरी यह रात. ध्यान करने के लिए है, इसमें नक्षत्रों को आवलम्बन बना कर ध्यान करने की ओर संकेत है। मनुष्य और उसके शान्त जगत् की अल्पता की अ भूति कराने वाला नक्षत्रों से अधिक शायद ही को दूसरा ध्यान का विषय हो। दुःख, अनित्य औ अनात्म का विराट् दर्शन यहाँ होता है। 'मानवता शान्त, करुणा संगीत' को यहीं ध्यानी भिक्षु सुनते

[3] कदा नु' हं पब्बतकन्दरासु एकाकियो अदुतियो विहर
······तं मे इदं तं नु कदा भविस्सति ॥१०९१॥
विपस्समानो वीतभयो विहस्सं,
एको वने तं नु कदा भविस्सति ॥१०९

[4] कदा नु मं पावुसकालमेघो,
नवेन तोयेन सचीवर वने।
इसिप्पयातम्हि पथे वजन्तं ओवस्ससे,
तं नु कदा भविस्सति ॥११०२॥

[5] कदा मयूरस्स सिखण्डिनो वने,
दिजस्स सुत्वा गिरिगब्भरे हतं।
पच्चुट्ठहित्वा अमतस्स पत्तिया,
संचिन्तये तं नु कदा भविस्सति ॥११०३॥

सम्बोधनकर भिक्षु कहता है। हे चित्त! उस गिरिव्रज में अनेक विचित्र और रंग-विरंगे पंखधारी पक्षी हैं। सुन्दर नील ग्रीवावाले मोर हैं। (इन्द्र के दोष को सुनकर उसका अभिनन्दन करते हुए) वे नित्य ही मंजुल ध्वनि करते हैं। हे चित्त! जब तू ध्यानी होकर वहाँ विचरेगा तो तुझे ये कितने प्रीतिकर होंगे![1]

नये वर्षा-जल से सिक्त कानन में किसी गुहा-गृह में ध्यान लगाते हुए[2]······मयूर और क्रौंच के रवसे पूरित उस वन में, हाथी और व्याघ्रों के सामने बसते हुए[3] हे चित्त! तुझ ध्यानी को ये कितने प्रीतिकर होंगे।

तालपुट स्थविर के 'क्या कभी मेरे ऐसे दिन आयेंगे?' इन शब्दों की प्रतिध्वनि हमें भर्तृहरि के इन शब्दोंमें मिलती है· "गङ्गातीरे हिमगिरि शिलाबद्ध पद्मासनस्य ब्रह्मध्यानाभ्यसनविधिना योगनिद्रां गतस्य। किं तैर्भाव्य मम सुदिवसैर्यत्र ते निर्विशङ्काः कण्डूयन्ये जरठहरिणाः स्वाङ्गमङ्गे मदीये।" उन्होंने यह भी भावना प्रकट की है "एकाकी निस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः। कदा शम्भो भविष्यामि कर्मनिर्मूलनक्षमः।" इ-त्सिंग् के साक्ष्य से हम जानते हैं कि भर्तृहरि कई बार बौद्ध भिक्षु और कई बार शैव हुए थे। इस आधारपर इन भावनाओं का सम्मिश्रण आसानी से समझा जा सकता है। ऊपर हमने तालपुट स्थविर की उस भावना का उद्धरण दिया है जिसमें वे गिरिव्रज में उस मार्ग पर चलते हुए अपने को देखना चाहते हैं जिस पर भगवान् बुद्ध स्वयं चले (इसिप्पयातम्हि पथे वजन्तं)। गोस्वामी तुलसीदास ने चित्रकूट के विषय में ऐसी ही भावना प्रकट की है—'रे चित चेत चित्रकूटहिं चल। थल विलोकि राम-पद-अङ्कित........।' राम-पद-अङ्कित स्थल देखने के लिए तुलसी विकल हैं और बुद्ध-प्रयात मार्ग पर चलते के लिए स्थविर तालपुट। बौद्ध भिक्षु के समान तुलसीदासकी भी वृत्ति चित्रकूट के विशेषतः वर्षा कालीन सौन्दर्य (सब दिन चित्रकूट नीको लागत...वर्षा ऋतु प्रवेश...) पर ही अधिक रमी है और 'गीतावली' के समान रामचरितमानस' के अयोध्या काण्ड में भी उसके वर्षा कालीन सौन्दर्य का वर्णन किया है। गृध्रकूट और चित्रकूट में क्रमशः निदर्शना भावना-शील ध्यानी भिक्षु और 'राम-नाम जय निरत' वैष्णव साधु की साधनाओं में यहाँ कितना भेद है, यह अच्छी प्रकार दिखाया जा सकता है, पर यहाँ अप्रासङ्गिक होगा। इसी प्रकार स्थविर तालपुट ने अपने मन को सम्बोधन करते हुए 'हे मन! मैंने सदा तेरा आदेश पालन किया है। अनेक जन्मों में तुझे कभी कुपित भी नहीं किया।······तेरे लिये अनेक बार जन्म ले लेकर मैंने चिरकाल तक दुःख को सहा है'[4] (मोहि मूढ़ मन बहुत विगोयो! याके लिये···मैं जग जनमि जनमि दुख रोयो'—तुलसी। आदि रूप से अनेक आत्मोद्बोधक उद्गार किये हैं, जिनकी तुलना बड़ी अच्छी प्रकार समर्थ रामदास के 'मनाचे श्लोक' और गोस्वामी तुलसीदासके विनय पत्रिका के अनेक पदों से की जा सकती है। अनेकता में एकता की अनुभूति साधना के इन विभिन्न रूपों में भली प्रकार होती है, परन्तु यहाँ हमें प्रकृतिक-वर्णन तक ही अपने को सीमित रखना है।

'थेरगाथा' के प्रकृति-वर्णन के समान भारतीय साहित्य में अन्य कुछ भी नहीं है। उसका सौन्दर्य अपना है। यह बात नहीं है कि भारतीग्र साहित्य में प्रकृति-काव्य की कमी है। या जो है वह सुन्दर और मेध्य नहीं है। ऋग्वेद में उषस् की छटा कितनी मनोहर है। जब वह अपने परिधान को हटाती हुई प्राची दिशि में उदित होती है तो ऋषि की आत्मा खिल उठती है। पर भिक्षु की सी वह ध्यानमयता यहाँ दिखाई नहीं देती। ऋषि की दृष्टि

---

[1] सुनीलगीवा सुसिखा सुपेखुणा,
सुचित्तपत्तच्छदना विहंगमा।
सुमञ्जुघोसत्थ निताभिगज्जिनो ते,
तं रमिस्सन्ति वनम्हि झायिनं ॥११३६॥

[2] नवाम्बुना पावुससित्त कानने,
तहिं गुहागेहगतो रमिस्ससि ॥११३५॥

[3] मयूरकोञ्चाभिरुदम्हि कानने,
दीपीहि ब्यग्घहि पुरक्खती वसं ॥१११३॥
ते तं रमिस्सन्ति वनम्हि झायिनं, ॥११३६॥ आदि

[4] सब्बत्थ ते चित्त वचो कतं मया,
बहूसु जातिसु न मेसि कोपितो।
·············दुक्खे चिरं संसरितं तया कते।
थेरगाथा, गाथा ११२६

बाह्य सौन्दर्य पर ही अधिक लगी हुई मालूम पड़ती है। फिर उषस् को सूर्य की पुत्री कहकर ऋग्वेद में ही सूर्य को पुरुष के समान उषस् रूपी स्त्री का पीछा करते हुए भी दिखा दिया गया है। यह शुभ्र कल्पना नहीं कही जा सकती। मानवीय अनैतिकता का सूर्य और उषस् पर आरोप है। कुमारिल ने इसे समझा है और अन्योक्ति बताते हुए इसकी व्याख्या करने की चेष्टा की है, जैसा उन्हें करना ही चाहिए। कुछ भी हो, उषस् का पीछा करते हुए सूर्य की कल्पना निर्विकार चित्त की प्रसूति मालूम नहीं देती, फिर चाहे उसमें काव्यगत सौन्दर्य और ज्योतिष सम्बन्धी रहस्य कितना भी हो। 'थेरगाथ' के प्रकृति-वर्णन की तुलना बहुत कुछ महर्षि वाल्मीकि के वर्णन से की जा सकती है। प्राचीन संस्कृत-साहित्य में वाल्मीकि सबसे बड़े प्रकृति-कवि हैं। आधुनिक काल तक भी उनका प्रकृति-वर्ण अपनी उदात्तता के कारण अद्वितीय बना हुआ है। वन्य और पार्वत्य प्रकृति के जितने सुन्दर, संश्लिष्ट चित्रण 'थेरगाथा' या अन्य पालि साहित्य में हैं उनसे भी कुछ अंशों में अधिक सुन्दर चित्र आदि कवि ने खींचे हैं। 'थेरगाथा' के वर्षा वर्णन को हम देख चुके हैं। अब महर्षि वाल्मीकि के इस सम्बन्धी वर्णन से उसे मिलाइये:—

क्वचित्प्रकाशं क्वचिदप्रकाशं
नभः प्रकीर्णाम्बुघनं विभाति।
(…………सुब्यापिताम्बु सुबला-
हकं नभं—थेरगाथा, गाथा २११)
व्यामिश्रितं सर्जकदम्बपुष्पैर्नवं
जलं पर्वत धातुताम्रम्।
मयूर केकाभिरनु प्रयातं
शैलापगाः शीघ्रतरं वहन्ति॥

(पावुसकालमेघो नवेन तोयेन……गाथा ११०२; नवाम्बुना पावुस सित्तकानने……गाथा ११३५; मयूरकोञ्चाभिरुदम्हि कानने। गाथा १११३; सुनीलगीवा सुसिखाः………सुमनुघोसत्थनिताभि गज्जिनो। गाथा ११४८, आदि आदि)

इसी प्रकार शरद ऋतु आदि के वर्णन भी मिलाये जा सकते हैं। दोनों में सूक्ष्म अन्तर यह है कि महर्षि वाल्मीकि के प्रकृति-वर्णन में अत्यन्त सूक्ष्म निरीक्षण है और प्रकृ को आलम्बन मान कर उसका उदात्त वर्णन है, जब कि शास्त्रीय दृष्टि से 'थेरगाथा' का प्रकृति-वर्णन शान्त रस के उद्दीपन विभाग के अन्तर्गत ही माना जायेगा, जिसका स्थायी भाव निर्वेद है। एक वाह्य-प्रधान है, दूसरा अन् प्रधान या दूसरे शब्दों में एक में अन्तर्तत्त्व अव्यक्त है औ कि दूसरे में वह व्यक्त है। बिना अन्तस के प्रभावित हु वैसा सूक्ष्म और हृदयग्राही वर्णन नहीं हो सकता, जैस महर्षि वाल्मीकि के किया है। फिर वेस्सन्तर जात (५४७) के वन और तपोवनों के संश्लिष्ट वर्णन तो बिलकुल वाल्मीकि के समान हैं तथा, संस्कृत साहित्य में अन्यत्र भी अशुभ, तसोबक, पर्वत तथा बक आदि वर्णन किये गये हैं। वहाँ हिंस पशुओं के परस्पर मैत्री विहार आदि पर जोर दिया गया है। अतः अन्तर्प्रभाव का दर्शन तो वहाँ है, पर ध्यान की वह प्रेरणा जो 'थेरगाथा' में है वह तो पालि साहित्य के ही प्रकृति-दर्शन की ए विशेषता है और अपना सौन्दर्य लिए हुए है। कवि-कुल गुरु कालिदास ने 'मेघदूत' में प्रायः सारे भारत के प्राकृतिक वैभव का वर्णन किया है। 'अभिज्ञान शाकुन्तल' में आश्रम का वर्णन तो अपार्थिव ही है और उसी प्रक 'कुमार सम्भव' में नगाधिराज हिमालय का वर्णन भी 'रघुवंश' के अनेक वर्णन, विशेषतः गङ्गा-यमुना के सङ्ग का वर्णन और तेरहवें सर्ग के अन्य कई दृश्य, विश्व क की प्रतिभा के अनुरूप ही है। परन्तु यदि यह पूछा जा कि क्या कालिदास कहीं 'थेरगाथा' के समीप भी पहुँ हैं, तो इसका उत्तर हाँ में ही देना पड़ेगा। कवि-कुल-गु के अधिकांश वर्णन श्रृङ्गार रस से ही अनुरंजित हैं, परन् अपनी दो पंक्तियों में वे 'थेरगाथा' के समीप भी पहुँ गये हैं। शान्त वायु में निश्चल खड़े हुए आश्रम-वृक्षों को उन्होंने ध्यान-मग्न स्थिति में देखा है—

निवात निष्कम्पतया विभान्ति
योगाधिरूढा इव शाखिनोऽपि। रघुवंश, सर्ग १

भवभूति ने भी पंचवटी, दण्डकारण्य और विन्ध्याटवी के सुन्दर चित्र खींचे हैं, जिनका रूप भव्य और उदात्त है। संस्कृत के उत्तरकालीन कवियों ने तो प्रकृति को

ङ्गार के उद्दीपन विभाव के अतिरिक्त और किसी रूप में खा ही नहीं। इन्हीं की विरासत हमारे हिन्दी कवियों को मिली जिनका प्रधान व्यवसाय रहा है प्राकृतिक सौन्दर्य के बीच नायक-नायिकाओं को हँसाना या रुलाना। यह एक विकार ग्रस्त स्थिति है। वर्तमान हिन्दी साहित्य में मानवीय भावनाओं के प्रकृति पर आरोप की जो पद्धति पड़ी है, वह भी इसी मानसिक रोग का परवर्तित रूप है। जिस प्रकार इस रोग की शान्ति के लिए हम कवियों का ध्यान वाल्मीकि आदि की ओर आकर्षित करते हैं उसी प्रकार, बल्कि उससे अधिक, हमें 'थेरगाथा' और और सामान्यतः पालि साहित्य की ओर करना चाहिए, क्योंकि इसका सही इलाज यहीं पर है। एक ओर राग का उद्दीपन है, दूसरी ओर विराग का उद्दीपन है। विष के लिए प्रशमन उपस्थित है। क्या हम इस ओर मुड़ेंगे?

कोढ़ी से सन्त

भिक्षु मैत्रेय

सुप्रबुद्ध राजगृह का सबसे दुःखी आदमी था। वह कोढ़ी था और चिथड़े पहन कर हाथ में एक कटोरा लिए, इधर घूमता फिरता था। उसे कभी पेट भर भोजन हीं मिलता था।

एक दिन जब वह भोजनकी तलाश में निकला तो अकस्मात् उस स्थान पर पहुँचा जहाँ तथागत एक बड़ी परिषद् के बीच बैठे उपदेश दे रहे थे।

सुप्रबुद्ध ने दूर ही से उस विशाल परिषद् को देखा और सोचा, "अवश्य वहाँ पर स्वादिष्ट भोजन का वितरण होता होगा। यदि मैं वहाँ जाऊँ, तो अपनी भूख शान्त करने के लिए कुछ मिल जाय।"

सुप्रबुद्ध धीरे-धीरे उस परिषद् के पास पहुँचा और उसने उस विशाल परिषद् के बीच विराजमान् हो उपदेश करते भगवान् को देखा।

उस परिषद् में शान्ति, निःशब्दता और गम्भीरता छाई हुई थीं। भगवान् अपने प्रकाश में सुशोभित थे। वे तारों से परिवृत्त पूर्णचन्द्र से भी अधिक शोभायमान् थे।

भगवान् के पवित्र और सुन्दर मुखमण्डल को देखते ही उस दुखिया के मन में शान्ति और पवित्रता आ गई। वह अपने सब दुखड़ों को, उस असह्य क्षुधा तक को, भूल गया और एक नई स्फूर्तिके साथ आगे बढ़ कर कुछ दूर पर बैठ गया।

महाकारुणिक की दयापूर्ण दृष्टि उस पर पड़ी और उनकी करुणा का प्रवाह उसकी ओर बहने लगा। तब देवाधिदेव ने सरल शब्दों में, चार आर्य सत्यों पर, उसके अनुकूल एक उपदेश दिया। मैत्री और दयापूर्ण उनका एक-एक शब्द उस पर प्रभाव डालता गया।

उपदेश के अन्त में सुप्रबुद्ध एक नये जीवन को अनुभव करने लगा। भगवान् बुद्ध के उपदेशामृतपान से मानो उसके सारे जीवन-तन्तु ही बदल गये थे, उसके स्वभाव में परिवर्तन हो गया था। चित्त-परिशुद्धि की वृद्धि के साथ-साथ उसका दुःख भी दूर होता गया। वह अधम निर्धन आध्यात्मिक धन को पाकर पूर्णता को प्राप्त हुआ और बुद्ध-पुत्र बना।

यह तथागत की महाकरुणा की महिमा है।

दृष्टि-विशुद्धि

(विशुद्धि मार्ग से)

सत्व के अभाव का मनन

योगी स्पर्श आदि के अनुसार मनन कर चार अरूपी स्कन्धों को नाम, उनके आलम्बनभूत चार महाभूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु) और चारों महाभूतों से प्रवर्तित रूप 'रूप' है—ऐसा मनन करता है। इस प्रकार अठारह धातुयें, बारह आयतन, पाँच स्कन्ध—सम्पूर्ण त्रैभूमिक धर्मों को तलवार से पेटी को उघाड़ने के समान और जोड़े ताड़ के स्कन्धों को चीरने के समान नाम और रूप को दो भागों में मनन करता है, तब वह जानता है कि नामरूप के अतिरिक्त इस शरीर में अन्य सत्व, पुद्गल, देव या ब्रह्मा नहीं है। वह ऐसे यथार्थ रूप से नामरूप का मनन करके भलीप्रकार—'सत्व', 'पुद्गल'—इस लोक—व्यवहार के प्रहाण के लिए सत्व संमोह के समतिक्रमण तथा असम्मोह-भूमि में चित्त को रखने के लिए बहुत से सूत्रों के अनुसार "यह नामरूप मात्र है, सत्व नहीं है, पुद्गल नहीं है" इस अर्थ का मेल बैठाकर मनन करता है। कहा गया है:—

यथापि अङ्ग सम्भारा होति सद्दो रथो इति।
एवं खन्धेसु सन्तेसु होति सत्तोति सम्मुति॥

जैसे अंगों के सम्भार से 'रथ' शब्द होता है, ऐसे ही स्कन्धों के होने पर 'सत्व' है—ऐसा व्यवहार होता है।

दूसरा भी कहा है—"आवुस, जैसे काष्ठ, वल्ली, मिट्टी और तृण से घिरा हुआ आकाश 'घर' कहा जाता है। ऐसे ही आवुस, हड्डी, स्नायु, मांस और चमड़े से घिरा हुआ आकाश रूप कहा जाता है।"

दूसरा भी कहा गया है—

दुक्खमेव हि सम्भोति दुक्खं तिट्ठति वेति च।
नाञ्ञत्र दुक्खा सम्भोति नाञ्ञं दुक्खा निरुज्झति॥

दुःख ही उत्पन्न होता है, दुःख रहता और नाश होता है। दुःख के अतिरिक्त दूसरा उत्पन्न नहीं होता है और न दुःख के अतिरिक्त दुसरा निरुद्ध ही होता है।

ऐसे अनेक सौ सूत्रान्तों से नामरूप ही प्रकाशित किया गया है न सत्व न पुद्गल। इसलिए जैसे धुरी, चक्का, पञ्जर (रथ का खजाना) ईषा (हरिसा) आदि अंग-संभारों के एक आकार से बने होने पर 'रथ' व्यवहार मात्र होता है, परमार्थ से एक-एक अंग की भली प्रकार परीक्षा करने पर 'रथ' नहीं है। जैसे काष्ठ आदि घर के सम्भारों के एक आकार से आकाश को घेर कर रहने पर 'घर' व्यवहार मात्र होता है, परमार्थ से 'घर' नहीं है। जैसे अंगुली, अंगूठा आदि के एक आकार से रहने पर 'मुट्ठी' व्यवहार मात्र होती है; द्रोणी, तन्त्री (=ताँत) आदि के 'वीणा'; हाथी-घोड़े आदि के 'सेना'; प्रकार, गृह, गोपुर (पुरद्वार) आदि के 'नगर' और स्कन्ध, शाखा, पल्लव आदि के एक आकार से रहने पर 'वृक्ष' व्यवहार मात्र होता है। परमार्थ से एक-एक धर्म में भली-प्रकार परीक्षा किये जाने पर 'मैं हूँ' या 'मैं'—इस प्रकार ग्रहण करने की वस्तु हुआ 'सत्व' नहीं है। परमार्थ से नामरूप मात्र ही है। ऐसे देखने वाले का दर्शन यथार्थ-दर्शन होता है।

जो इस यथार्थ-दर्शन को त्याग कर 'सत्व है' ऐसा ग्रहण करता है, वह उसके विनाश या अविनाश को मानेगा। अविनाश को मानते हुए शाश्वत-दृष्टि में पड़ जाता है और विनाश को मानते हुए उच्छेद में। क्यों? दूध के अन्वय दही के समान उसके अन्वय से अन्य के अभाव से। वह 'सत्व शाश्वत है' ग्रहण करते हुए पिछड़ जाता है और 'उच्छेद हो जाता है' ग्रहण करते हुए अतिधावन करता है। इसीलिए भगवान् ने कहा है:—

"भिक्षुओ! दो दृष्टियों से पछाड़े गये देव-मनुष्यों में से कोई पिछड़ जाते हैं, कोई अतिधावन करते हैं। आँख

वाले ही देखते हैं। भिक्षुओ ! कैसे कोई पिछड़ जाते हैं ? भिक्षुओ ! देव-मनुष्य भव में रमने वाले हैं, भव में रत रहने वाले हैं, भव में मुदित हैं। उन्हें भव के निरोध के लिए धर्म का उपदेश किये जाने पर चित्त नहीं दौड़ता है, नहीं प्रसन्न होता है, नहीं ठहरता है, नहीं लगता है। भिक्षुओ ? ऐसे कोई भव में लग जाते हैं। और भिक्षुओ ! कैसे कोई अतिधावन करते हैं ? भव से ही कोई दुःखित होते हुए, लज्जित होते हुए, घृणा करते हैं, विनाश का अभिनन्दन करते हैं, कि यह 'आत्मा' काय के भेद से उच्छेद को प्राप्त हो जाता है, विनष्ट हो जाता है, परम मृत्यु के बाद नहीं होता है। यह शान्त है, यह प्रणीत (उत्तम) है, यह यथार्थ है। भिक्षुओ ! ऐसे कोई अतिधावन करते हैं। और कैसे भिक्षुओ ! आँख वाले ही देखते हैं ? यहाँ भिक्षुओ ! भिक्षु भूत (पञ्च-स्कन्ध) को भूत के रूप में देखता है, भूत को भूत के रूप में देखकर भूत के निर्वेद, विराग, निरोध के लिए जुटता है। ऐसे भिक्षुओ ! आँख वाले ही देखते हैं।''

नाम-रूप का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध

इसलिए, जैसे लकड़ी का यन्त्र शून्य, निर्जीव, निरीह (=चेष्टा रहित) होता है, किन्तु लकड़ी और रस्सी के योग से चलता भी है, खड़ा भी होता है, सचेष्ट और स-व्यापार के समान जान पड़ता है, ऐसे ही यह नामरूप भी शून्य, निर्जीव, निरीह है, किन्तु एक दूसरे के समायोग से चलता भी है, खड़ा भी होता है, सचेष्ट और स-व्यापार के समान जान पड़ता है—ऐसा समझना चाहिए। इसीलिए पुराने लोगों ने कहा है:—

नामञ्च रूपञ्च इधत्थि सच्चतो,
न हेत्थ सत्तो मनुजो च विज्जति।
सुञ्ञं इदं यन्तमिवाभिसङ्खतं,
दुक्खस्स पुञ्जो तिणकट्ठ सादिसो ॥

सत्यतः इस शरीर में नाम और रूप मात्र हैं। इसमें सत्त्व और मनुज विद्यमान नहीं है। बनाये हुए यन्त्र के समान यह शून्य है, तृण-काष्ठ के समान दुःख का पुञ्ज है। न केवल इसे लकड़ी के यन्त्र की उपमा से, प्रत्युत अन्य भी नरकट के कलाप (=बोझा) आदि उपमाओं से भी स्पष्ट करना चाहिए। जैसे दो नरकट के बोझों को एक दूसरे के सहारे रखे गये होने पर एक-एक का अवलम्बन होता है, एक के गिरते हुए दूसरा भी गिरता है, ऐसे ही पञ्चवोकार भव (नाम रूप वाला संसार) में नाम और रूप एक दूसरे के सहारे प्रवर्तित होते हैं। एक-एक का अवलम्ब होता है। मरण के अनुसार एक के गिरने पर दूसरा भी गिर पड़ता है। इसीलिए पुराने लोगों ने कहा है—

यमकं नामरूपञ्च उभो अञ्ञोञ्ञ निस्सिता।
एकस्मिं भिज्जमानस्मिं उभो भिज्जन्ति पच्चया ॥

नाम और रूप दोनों जोड़े अन्योन्याश्रित हैं। एक के नाश होने पर दोनों के प्रत्यय नष्ट हो जाते हैं।

जैसे डण्डे से पीटी गई भेरी से शब्द होने पर भेरी दूसरी ही है और शब्द दूसरा है। भेरी और शब्द मिले नहीं हैं। भेरी शब्द से शून्य है और शब्द भेरी से। ऐसे ही वस्तु, द्वार, आलम्बन कहे जाने वाले रूप के सहारे नाम के प्रवर्तित होने पर दूसरा रूप है, दूसरा नाम है। नाम और रूप मिले नहीं हैं। नाम रूप से शून्य है, और रूप नाम से। फिर भी भेरी से शब्द के समान, रूप से नाम प्रवर्तित होता है। इसीलिए पुराने लोगों ने कहा है:—

न चक्खुतो जायरे फस्सपञ्चमा,
न रूपतो नो च उभिन्नमन्तरा।
हेतुं पटिच्च पभवन्ति संखता,
यथापि सद्दो पहटाय भेरिया।

चक्षु से स्पर्श-पञ्चम नहीं उत्पन्न होते हैं। न तो रूप से और न दोनों के मध्य से। हेतु के कारण संस्कृत (प्रत्ययों से उत्पन्न) उत्पन्न होते हैं। ऐसे ही न श्रोत्र, न घ्राण, न जिह्वा और न काय से। वस्तुरूप से भी संस्कृत नहीं उत्पन्न होते हैं और धर्मायतन से भी निकले नहीं हैं। हेतु के कारण संस्कृत उत्पन्न होते हैं जैसे कि पीटी गई भेरी से शब्द।

नाम निस्तेज है, वह अपने तेज से प्रवर्तित नहीं हो सकता। वह न खाता है, न पीता है, न ईर्यापथ करता है। रूप भी निस्तेज है, अपने तेज से प्रवर्तित नहीं हो सकता। उसे खाने की इच्छा नहीं है, नहीं है पीने की

इच्छा, न बोलने की इच्छा, न ईर्य्यापथ करने की इच्छा। किन्तु नाम के सहारे रूप प्रवर्तित होता है और रूप के सहारे नाम। नाम के खाने की इच्छा, पीने की इच्छा, बोलने की इच्छा, ईर्य्यापथ करने की इच्छा होने पर रूप खाता है, पीता है, बोलता है, ईर्य्यापथ करता है।

इस बात को स्पष्ट करने के लिए यह उपमा कहते हैं—जैसे जन्मान्ध और लँगड़ा दिशा में जाने की इच्छा वाले हुए। जन्मान्ध ने लँगड़े से कहा—"मित्र! मैं पैर से चल सकता हूँ, किन्तु मुझे आँखें नहीं हैं, जिनसे सम-विषम देखूँ।" लँगड़े ने भी जन्मान्ध से कहा—"मित्र! मैं आँख से देख सकता हूँ, किन्तु मुझे पैर नहीं हैं, जिनसे चलूँ।,' वह बहुत ही प्रसन्न हुआ। जन्मान्ध ने लँगड़े को कन्धे पर रख लिया। लँगड़े ने जन्मान्ध के कन्धे पर बैठकर ऐसा कहा—'बाँयें छोड़ो, दाँये पकड़ो, दाँयें छोड़ो, बाँये पकड़ो।" उनमें जन्मान्ध भी निस्तेज, दुर्बल है, अपने तेज से, अपने बल से नहीं चल सकता है। लँगड़ा भी निस्तेज है, दुर्बल है, अपने तेज से नहीं जा सकता है, किन्तु उनका एक दूसरे के सहारे गमन नहीं होता है—ऐसा नहीं। ऐसे ही नाम भी निस्तेज है, अपने तेज से नहीं उत्पन्न होता है, उन क्रियाओं में नहीं प्रवर्तित होता है। रूप भी निस्तेज है, अपने तेज से नहीं उत्पन्न होता है, उन-उन क्रियाओं में नहीं प्रवर्तित होता है और एक दूसरे के सहारे उनकी उत्पत्ति प्रवर्तित नहीं होती है—ऐसा नहीं। इसीलिए यह कहा जाता है—

न सकेन बलेन जायरे, नोपि सकेन बलेन तिट्ठरे।
परधम्म वसानुवत्तिनो, जायरे संखता अत्तदुब्बला॥

अपने बल से नहीं उत्पन्न होते हैं, अपने बल से नहीं स्थित हैं, दूसरे धर्मों के सहारे प्रवर्तित होने वाले संस्कृत आत्म-दुर्बल धर्म उत्पन्न होते हैं। अन्य धर्म के 'प्रत्यय' से उत्पन्न होते हैं।

जैसे नौका के सहारे मनुष्य समुद्र में जाते हैं, ऐसे ही रूप के सहारे नाम-काय प्रवर्तित हो रहा है। जैसे मनुष्यों के सहारे नौका समुद्र में जाती है, ऐसे ही नाम के सहारे रूप-काय प्रवर्तित हो रहा है। मनुष्य और नौका दोनों एक दूसरे के सहारे जैसे समुद्र में जाते हैं, ऐसे ही नाम और रूप दोनों अन्योन्याश्रित हैं।

तथागत का शान्त विहार

श्री अनन्त

भगवान् बुद्ध शान्त-विहार के बड़े प्रशंसक थे। वे स्वयं शान्त विहार से विहरते थे तथा भिक्षुओं को भी उसकी ही शिक्षा देते थे। भगवान् बुद्ध के जीवन की यह सबसे बड़ी बड़ी विचित्र घटना थी कि उनके जीवन का प्रायः अधिकांश भाग अरण्य आदि शान्त स्थानों में ही व्यतीत हुआ।

पुरुषोत्तम सिद्धार्थ गौतम का जन्म लुम्बिनी के पावन उद्यान में एक साल-वृक्ष के नीचे हुआ था। महातपस्वी सिद्धार्थ ने उरुवेला जंगल के बोधिवृक्ष (पीपल) के नीचे परम ज्ञान को प्राप्त किया था और भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध ने कुसीनारा के शालवन में जोड़े शाल-वृक्षों के बीच बीच ही परिनिर्वाण को भी प्राप्त किया था। यह कैसी थीं उनके जीवन की अद्भुत घटनायें, जो तीनों वृक्षों के नीचे ही घटीं!

तथागत जंगलों में रहना अधिक पसन्द करते थे। वे दो बातों को देखते हुए अरण्य का सेवन करते थे—"(१) शरीर में अपने सुख-विहार के ख्याल से और (२) आने वाली जनता पर अनुकम्पा के लिये, जिससे वह उनका अनुगमन कर सुफलभागी हो!" वे भिक्षाटन से और भोजन कर प्रायः जंगल में चले जाते थे और जंगल के पत्ते, तृण आदि को एकत्रकर उसपर बैठ दिवाविहार करते थे।

बुद्धकालीन विहारों (मठों) की स्थिति पर यदि ध्यान दिया जाय, तो स्पष्ट ज्ञात होगा कि भगवान् बुद्ध जहाँ-जहाँ रहते थे, वे सभी स्थान नगर और बस्ती से दूर

प्रायः वन या उद्यान में थे। जेतवन श्रावस्ती से एक मील दक्षिण-पश्चिम अन्धवन के पास था। इसिपतन मृगदाय (सारनाथ) वाराणसी से काफी दूर उत्तर एक वाटिका में था। वेणुवन राजगृह से दूर पहाड़ियों के पास राजोद्यान में था। कूटागार महाशाला वैशाली से दूर महावन में थी। पावा का विहार नगर से दूर आम्रवन में था। कुसीनारा का विहार राजधानी से दूर शालवन उपवत्तन में था। कपिलवस्तु का निग्रोधाराम नगर से दूर वन्य प्रदेश में था। कौशाम्बी के घोसिताराम तथा कुक्कुटाराम नगर से दूर यमुना के किनारे वाली वाटिका में थे। भर्ग देश का विहार सुंसुमारगिरि के भेसकलावन मृगदाव में था। चम्पा का विहार गग्गरा पुष्करिणी के किनारे था। इस प्रकार हम देखते हैं कि कोई भी विहार ऐसा न था जो नगर से दूर न रहा हो।

भगवान् बुद्ध केवल अकेले वृक्ष के नीचे भी विहार करते थे। उन्होंने उकट्ठा के सुभगवन में शालराज के नीचे दिवाविहार किया था, जब कि मागन्दी ब्राह्मण उन्हें देख अपनी पुत्री के लिये अनुकूल वर समझा था। प्राचीन वंश मृगदाय के शालवृक्ष के नीचे उन्होंने वर्षावास किया था। उरुवेला के अजपाल न्यग्रोध (बरगद) और बोधि वृक्ष के नीचे विहार किया था। इस प्रकार से तथागत के शान्त-विहार की गणना नहीं।

भगवान् तथा भिक्षु संघ का शान्त-विहार कैसा था? इसका अनुमान इस घटना से किया जा सकता है—

मगध-नरेश अजातशत्रु अपने पिता बिम्बिसार को जेलमें रख कर भूखों मार डाला। पिता की मृत्यु के पश्चात् उसे बड़ा सन्ताप हुआ। वह जीवक के साथ, भगवान् के पास जाना चाहा। उस समय तथागत राजगृह में जीवक के आम्रवन में साढ़े बारह सौ महाभिक्षु संघ के साथ विहार कर रहे थे। अजातशत्रु ने जीवक से कहा—"सौम्य जीवक! हाथियों की सवारी तैयार कराओ।" जीवक ने हाथियों को सजवाकर राजा को सूचना दी—"देव! सवारी के लिये हाथी तैयार हैं।"

तब अजातशत्रु पाँच सौ हाथियों पर अपनी रानियों को बैठा स्वयं राजहाथी पर सवार हो मशालों की रोशनी के साथ राजगृह से बड़े राजकीय ठाट-बाट से निकला और जहाँ जीवक का आम्रवन था, वहाँ गया। आम्रवन के पास पहुँचने पर अजातशत्रु को भय, घबराहट और रोमांच होने लगा। अजातशत्रु डरकर जीवक से बोला—"सौम्य जीवक! कहीं तुम मुझे धोखा तो नहीं दे रहे हो? कहीं तुम मुझे दगा तो नहीं दे रहे हो? कहीं तुम मुझे शत्रुओं के हाथ तो नहीं दे रहे हो? बारह सौ पचास भिक्षुओं के बड़े संघ के यहाँ रहने पर भी भला कैसे थूकने खांसने तक का या किसी दूसरे प्रकार का शब्द न होगा?"

"महाराज! मत डरें, आपको मैं धोखा नहीं दे रहा हूँ, न आपको दगा दे रहा हूँ, न आपको शत्रुओं के हाथ दे रहा हूँ, आगे चलें महाराज! आगे चलें। यह मण्डप में दीये जल रहे हैं।"

भगवान् बुद्ध इतने शान्तिप्रिय थे कि जहाँ पर वह रहते थे, जरा भी शब्द नहीं होता था। जब कभी शब्द होता था, तब या तो स्वयं दूर हट जाते थे या भिक्षुओं को दूर कर देते थे। ऐसी अनेक घटनायें उनके जीवन में मिलती हैं। हम देखते हैं कि एक बार सारिपुत्र और मौद्गल्यायन के साथ रहनेवाले भिक्षुओं ने शोर किया। बस, तथागत ने उन्हें वहाँ से चले जाने को कहा। इसी प्रकार पाँच सौ भिक्षुओं के साथ यशोज स्थविर को भी।

दूसरे लोग राज-कथा, चोर-कथा आदि निरर्थक बातों में लगे रहते थे, किन्तु तथागत को यह पसन्द नहीं था। वे भिक्षुओं को सिखाते थे—"भिक्षुओ! श्रद्धापूर्वक घर से बेघर हो प्रव्रजित हुए तुम कुलपुत्रों के लिए यह अनुचित है कि निरर्थक चर्चामें पड़ो। भिक्षुओ! इकट्ठे होकर तुम्हें दो ही काम करना चाहिए (१) धार्मिक कथा या (२) उत्तम मौन-भाव।" तथागत शोरगुल को एकान्तवास का बाधक समझते थे। इसीलिये उन्होंने खड़ाऊँ पहनना तक मना कर दिया था, क्योंकि खड़ाऊँ से खट्-खट् के शब्द होने से ध्यान एवं शांत-विहार में बाधा पड़ती थी। जब कभी ऊँचे शब्द होते थे, तब तथागत उसकी उपमा "केवटों के मछली मारने के शब्द" से देते थे। तथागत कहा करते थे—"भिक्षुओ! आर्य-विनय में गीत रोना है, नाच पागलपन है, दाँत दिखा-दिखाकर बड़ी देरतक हँसना लड़कपन है। इसलिए भिक्षुओ! गीत, नाच और हँसी को

बिल्कुल ही त्याग दो। तुम्हें धार्मिक प्रमोद के लिये मुस्करा लेना भर काफी है।''

तथागत का शान्त-विहार बड़ा प्रसिद्ध था। जब कभी वे दूसरे मतवाले परिव्राजकों के आश्रम में जाते थे, तब वे तथागत को देखते ही चुप हो जाते थे और अपने शिष्यों को भी चुप करते हुए कहते थे—''आप सब चुप रहें, मत शब्द करें। श्रमण गौतम आ रहे हैं। वह आयुष्मान् निःशब्दप्रेमी तथा निःशब्द के प्रशंसक हैं। परिषद् को निःशब्द देख सम्भव है इधर आयें।''

तथागत के गृहस्थ-शिष्य भी शान्त-पसन्द थे। एक बार राजगृह का सन्धान गृहपति न्यग्रोध परिव्राजक अपनी शिष्य-मण्डली के साथ व्यर्थ की गप्प में लगा था। तीन हजार की उसकी शिष्य मण्डली थी। उसने सन्धान गृहपति को दूर से ही आते देखा। देख कर अपनी मण्डली को शान्त करते हुए कहा—''आप लोग चुप हो जायँ, हल्ला न मचावें। यह श्रमण गौतम का श्रावक सन्धान गृहपति आ रहा है। श्रमण गौतम के जितने उजले वस्त्र पहनने वाले गृहस्थ श्रावक राजगृह में रहते हैं, उनमें वह भी एक हैं। ये आयुष्मान् निःशब्द चाहने वाले हैं, निःशब्द में विनीत हैं, निःशब्द की प्रशंसा करने वाले हैं। ये निःशब्द मण्डली में ही जाना अच्छा समझते हैं।''

शान्त विहार के प्रशंसक तथागत अपने जीवन में शान्त-विहार के हेतु शून्यागार, वृक्ष मूल, अरण्य, गिरि-गुहा, वनप्रस्थ, नदी-तीर आदि एकान्त स्थानों में प्रायः विहार किये। तथागत तथा भिक्षुओं के शान्त और एकान्त-विहार को देखकर देवताओं को भी स्पृहा होती थी। एक बार एक देवपुत्र ने भगवान् के पास आकर पूछा—

''अरण्य में विहार वाले ब्रह्मचारियों का—
जो एकाहारी हैं, किस से वर्ण निखरता है?''

तथागत ने उत्तर दिया—

''बीते की चिन्ता नहीं करते, भविष्य की चर्चा भी नहीं करते। केवल वर्तमान से निर्वाह करते हैं उसी से उनका वर्ण निखरता है।''

भगवान् ने अरण्य एवं एकान्तवास की प्रशंसा करते हुए कहा था—

''जो शून्यघरों का सेवन करता है, वह आत्मसंयमी मुनि श्रेष्ठ है। भिक्षु को चाहिए कि सं बन्धनों को त्याग कर वैसे अनुकूल अरण्य, शून्य घर और वृक्ष-मूल में विहार करे।''

उन्होंने यह भी कहा था—

''रमणीय वन, जहाँ साधारण-जन रमण नहीं करते, वहाँ काम-भोगों के पीछे न भटकने वाले वीतराग रमण करेंगे।''

तथागत ने अन्त में अनुकम्पापूर्वक कहा था—

''भिक्षुओ! मत प्रमाद करो। पीछे पश्चाताप मत करना। यह तुम्हारे लिये हमारे अनुशासन हैं।''

अहा! तथागत की हम पर कितनी महती कृपा थी! उन्होंने हमारी ही भलाई के लिये सदा शान्त-विहार किया। वे करुणावतार हमारे लिये कितने कष्ट उठाये!

उस शान्त-विहारी तथागत को शत-शत प्रणाम् है।

पड़ोसी देशों में बौद्ध संस्कृति

श्री सुमन वात्स्यायन

डाक्टर मेंडिसके कथनानुसार—''भारतमें होनेवाले प्रत्येक महान् परिवर्तन—राजनीतिक, धार्मिक सामाजिक या आर्थिक—का प्रतिघात इस टापूपर होता है और १५ वीं सदी तक भारतीय सभ्यताकी प्रत्येक लहरने इस द्वीप को अपना रास्ता बनाया तथा यहाँ के निवासियों के जीवन और विचारों पर अपना चिह्न छोड़ गया।'' भूगर्भशास्त्रियों के मतानुसार लंका का सारा टापू ही किसी समय दक्षिण प्रायद्वीप के साथ मिला हुआ था। प्राचीन साहित्य के

अनुसार लंका टापू, जिसका सिंहल, ताम्रपर्णी आदि नामों से भी उल्लेख किया गया है, आठ उपद्वीपों* में से एक था।

भारत और लंका का व्यापार-सम्बन्ध बहुत पुराना है। साधारणतया भारत के व्यापार को हम तीन हिस्सों में बाँट सकते हैं—भूमि द्वारा, किनारे का और समुद्र-पार द्वारा। देश के अन्दर जिन नदियों में नाव चल सकती थी, वहाँ नाव द्वारा व्यापार होता था और ज्यादातर बैलगाड़ियों द्वारा दो मुख्य भूमि मार्गों में—दक्षिणापथ और उत्तरापथ—द्वारा होता था। तटवर्त्ती व्यापार काफी उन्नत था। भिन्न-भिन्न आकार-प्रकार के जहाज तमलि, बंग, ताम्रलिप्ति, सुप्पारक, भरुकच्छ, सौराष्ट्र आदिसे किनारे-किनारे चीन तक पहुँच जाते थे। समुद्र-पार का व्यापार भी बहुत बढ़ा-चढ़ा था। भारतीय व्यापारी भरुकच्छ और सोपारा से बैबिलोन और भूमध्यसागर के देशों तक जाते थे। भारत और चीन का व्यापार लंका होकर जावा के रास्ते होता था। बालाहस्स जातक के अनुसार एक बार समुद्र से भारतीय व्यापारी, शायद जहाज टूट जाने के कारण लंका के सिरीसवत्थु बन्दरगाह पर जा उतरे। उस नगर की स्त्रियाँ उनके साथ अपने पति की तरह व्यवहार करना चाहती थीं; क्योंकि उनके पति भी इन्हीं व्यापारियों की तरह कहाँ गए, इसका पता नहीं था। लंका का राजा देवानंपियतिस्स का राजदूत समुद्र के रास्ते ताम्रलिप्ति बन्दरगाह होकर पाटलिपुत्र आता है और फिर उसी रास्ते से वापस जाता है।

आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व बंगाल के किसी राजकुल से एक दुश्चरित्रा राजकुमारी स्वेच्छाचारिणी हो घर से निकल गई। उसकी दो सन्तानें हुईं--एक लड़का और एक लड़की, जिनके नाम थे सिंहबाहु और सिंहसिवली। बंग राजा की मृत्यु के बाद सिंहबाहु ही राजा बना। उसके कई पुत्र थे, जिनमें विजय सबसे बड़ा था। यद्यपि विजय युवराज बनाया गया, तथापि वह बड़ा ही दुस्साहसी, उपद्रवी और उच्छृंखल था। उसकी उच्छृंखलता से तंग आकर राजा ने उसे साथियों सहित नाव में बैठाकर समुद्र में बहा दिया। जहाज सोपारा (जिला थाना) बन्दरगाह पर जा लगा। पर वहाँ भी उपद्रव करने के कारण इस दुस्साहसी युवक को समुद्र की शरण लेनी पड़ी। इस बार जहाज लंका द्वीप के समुद्र तट पर जा लगा। विजय के साथ उसके सात सौ बहादुर साथी भी थे। वहाँ के बाशिन्दों से इनकी लड़ाई हुई। अन्त में विजय विजयी हुआ। लंका के बहुत बड़े भूभाग पर विजय ने अधिकार कर लिया।

साथियों ने बाजाप्ता विजय का राज्याभिषेक करना चाहा। पर बिना क्षत्रिय पटरानी के उसने राजमुकुट धारण करने से इन्कार कर दिया। मन्त्रियों ने दक्षिण के पाण्डु राजा के पास दूत भेजा। पाण्डु राजा ने प्रसन्न होकर विजय के लिए अपनी पुत्री और अन्य साथियों के लिए यथायोग्य लड़कियाँ भिजवा दीं। इस तरह विजय का राज्याभिषेक सम्पन्न हुआ। आज के लंका निवासी अपने को इन्हीं की संतान कहते हैं। जिन मूल निवासियों के साथ विजय को लड़ना पड़ा था, वे आज भी जंगली इलाकों में मौजूद हैं और उन्हें वेद्दा (व्याध) कहते हैं। आर्थिक, राजनीतिक, सैनिक और वैवाहिक सम्बन्धों से लंका और द्रविड़ राज्यों में बड़ा अच्छा सम्बन्ध रहा। ई० पूर्व १४१ में चोल देश के द्रविड़ राजा एलार ने लंका को जीत कर २६ वर्ष तक राज्य किया। ई० पूर्व १८७ में सेनगुत्तक नामक द्रविड़ ने भी लंका को जीता था। इस तरह लंका के इतिहास में भारतीयों की भी प्रमुखता दिखलाई देती है।

लंका के लोगों का विश्वास है कि उनके देश में भगवान् बुद्ध तीन बार आए। लंका के प्राचीन साहित्य में इसका कई जगह उल्लेख भी है। पर इस कथन में ऐतिहासिक तथ्य का अभाव है। सम्राट अशोक के समय में ही बौद्ध धर्म प्रचारक संगठित रूप से भारत से बाहर गए। महावंश के अनुसार—"समीति समाप्त कर के बुद्ध-धर्म-प्रकाशक स्थविर मोग्गलिपुत्ततिष्य ने भविष्य को देखते हुए प्रत्यन्त (सीमान्त) देशों में शासन (बौद्ध धर्म की स्थापना) का विचार करके कार्त्तिक मास में स्थविर मज्झन्तिक को कश्मीर और गन्धार में, स्थविर

---

* इन्द्रद्वीप, कसेरू, यमस्तीमत्, सागर, सौम, गन्धर्व, वरुण, लंका।

महादेव को महिष्मण्डल में, स्थविर रक्षित को बनवास में, यवनधर्मरक्षित को अपरान्त में, स्थविर महाधर्मरक्षित को महाराष्ट्र में, स्थविर महारक्षित को यवनदेश में, स्थविर मज्झिम को हिमवन्त में, सोण और उत्तर स्थविर को बर्मा में और अपने शिष्य महामहेन्द्र तथा इट्टीय, उत्तीय, संबल और भद्दशाल—इन पाँच स्थविरों को लंकाद्वीप में बुद्ध-धर्म की स्थापना के लिए भेजा।"

अशोक के शिलालेख में महेन्द्र का नाम अशोक के पुत्र के रूप में नहीं आया है। बहुत सम्भव है कि शिलालेख में इसका उल्लेख आवश्यक नहीं माना गया हो; पर बौद्ध अनुश्रुति के अनुसार लंका जानेवाले महामहेन्द्र और संघमित्रा अशोक के पुत्र और पुत्री माने गए हैं। उस समय से आज तक लंका में बौद्ध धर्म की ही प्रधानता रही है। लंका का साहित्य, स्थापत्य-कला, ललित-कला आदि भारत की ही देन हैं। वास्तव में लंका के बसाने वाले, उसे ऐश्वर्यपूर्ण करने वाले तथा शिक्षा, कला और उच्च सांस्कृतिक धरातल पर पहुँचाने वाले भारतीय ही हैं।

बर्मा

बर्मा भारत के समीप होते हुए भी समुद्र तथा पहाड़ी दलदलों के कारण भारत से पृथक् रहा है। बर्मी लोग रक्त से मंगोल हैं। फिर भी जन-साधारण का विश्वास है कि वे भगवान् बुद्ध के पवित्र वंश—शाक्य-कुल—के हैं। अराकान और चटगाँव में—खासकर पार्वत्य चटगाँव और आसाम की पहाड़ी जातियों में—निश्चय ही रक्त की काफी मेल-मिलावट हो गई है। चपटी नाक, छोटी-छोटी दबी आँखें और पीला-सा रंग बर्मियों को हमसे अलग कर देता है। प्राचीनकाल में भारत और बर्मा का व्यापार काफी उन्नत था; किन्तु सांस्कृतिक सम्बन्ध अशोक के समय से विशेष मालूम पड़ता है। सोण और उत्तर स्थविर बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए अशोक के समय में बर्मा भेजे गए। जिस समय यह भारतीय मिशन बर्मा पहुँचा, उस समय देश में अशान्ति फैली हुई थी। कुछ समय बाद वहाँ शान्ति कायम हुई, जिसका श्रेय इन्हीं भारतीयों को मिला। इसलिए बर्मी जनता इनकी ओर काफी आकर्षित हुई। कहते हैं, इनका प्रथम उपदेश सुनकर ही "३५०० कुलपुत्र भिक्षु और १५०० कुलपुत्रियाँ भिक्षुणी बनीं।" इसी समय से बर्मियों ने भारतीय धर्म के साथ-साथ संस्कृति, साहित्य, रस्मरिवाज को अपनाना शुरू किया। आज हम बर्माको भारतीय सांस्कृतिक जीवन से पृथक् नहीं कर सकते।

प्रत्येक बर्मी अपने बच्चोंको छोटेपन से ही धार्मिक शिक्षा देना शुरू करता है। आमतौर से बच्चे का नामकरण उसकी पैदाइश के १४-१५ दिन बाद होता है। हिन्दुस्तान की तरह ही बर्मी लोग भी पुत्र को पुत्री से अधिक महत्त्व देते हैं। नामकरण का तरीका बहुत-कुछ भारतीय राशिक्रमानुसार ही होता है। जन्म का समय बहुत होशियारी से याद रखा जाता है, ताकि उसका जादा (जन्मकुण्डली) बनाई जा सके। वे इस मामले में ज्योतिषियों की राय लेते हैं, जो अमतौर से बर्मी ब्राह्मण समझे जाते हैं। बर्मा ही नहीं, प्रायः सभी बौद्ध देशों में बौद्ध मठ ही विद्यापीठ का काम देते हैं। इसलिए अधिकांश बर्मी बालक अपनी प्रारम्भिक शिक्षा मठ में ही समाप्त करते हैं। मठ में पढ़ाई का मुख्य विषय बर्मी भाषा, पालि और लेखन-कला एवं साधारण गणित, इतिहास और भूगोल आदि होते हैं। पालिभाषा भारत की एक प्राचीन भाषा है और इसी में भगवान् बुद्ध ने अपना उपदेश दिया था। इसलिए बर्मी लोग इसे सीखना अपना धार्मिक कर्त्तव्य समझते हैं। इसी तरह बर्मी बौद्ध विचार से भिक्षुसंघ में शामिल होनेपर ही मनुष्य मनुष्यत्व को प्राप्त करता है। अधिकांश बर्मी पुरुष अपने जीवन में एक बार, चाहे वह थोड़े ही समय के लिए क्यों न हो, प्रव्रज्या (संन्यास) अवश्य ग्रहण करते हैं।

बर्मा का प्राचीन साहित्य पालि-त्रिपिटक और उसमें आई अन्तर्कथाओं का विस्तार-मात्र है। हिन्दी की तरह बर्मी का आधुनिक साहित्य भी उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक आदि अनेक अंगों से परिपूर्ण है। पालिका पठन-पाठन काफी होता है। बर्मी भिक्षुओं में संस्कृत के अनेक अच्छे पंडित हैं। भारतीय वाङ्मय का एक महान् अंग पालि-साहित्य की रक्षा करने में बर्मी लोगों ने बड़ा काम किया है। माण्डले में संगमरमर पत्थर पर सारा त्रिपिटक

खुदवाकर रखा गया है। बर्मी राजा के समय में कानून था कि जो गाय की हत्या करेगा, उसे प्राणदण्ड दिया जाएगा। बर्मा के किसी लेखक ने 'लोकनीति' नामक नीति-ग्रन्थ में लिखा है—"येच खादन्ति गोमंसं मातुमंसं न खादये।" अर्थात् जो गाय के मांस को खाते हैं, वे माता का मांस खायें। यह भारतीय संस्कृति की ही देन है। बर्मी जीवन पर सभी दृष्टि से भारतीयता की अमिट छाप पड़ी है।

स्याम

स्याम और भारत का सम्बन्ध बहुत पुराना है। थाई लोग जब स्याम में आए, उससे भी बहुत पहले वहाँ भारतीयों का उपनिवेश था। मलय प्रायद्वीप में दक्षिणी भाग को छोड़कर शेष सारी भूमि द्वारावती (४५७-६५७ ई०) और कम्बोडिया साम्राज्य (९५७-१२५७ ई०) के अधीन थी। मलय प्रायद्वीप सुमात्रा के श्रीविजय के साम्राज्य (६५७-११५७ ई०) के अधीन था। ये दोनों ही साम्राज्य सभी दृष्टि से भारतीय थे। कहते हैं, अरुणरथ नामक एक प्रतिभाशाली व्यक्ति ने स्याम को दासता के बन्धन से मुक्त किया। उसीने स्याम में भारतीय वर्णमाला (नागरी) का प्रचार किया।

स्यामी लोग थाई-परिवार के हैं, जिनमें शान और लाव शामिल हैं। शान पूर्वी बर्मा में छोटे-छोटे राज्यों में बँटे हुए हैं और लाव पूर्वी स्याम तथा हिन्दचीन में। विद्वानों की राय है कि थाई लोगों का मूल निवास चीन के उत्तर-पश्चिम में आधुनिक शेन-सी प्रान्त में था। जब वे स्याम में आए, तब वहाँ के अधिकांश भू भाग पर आस्ट्रो-एशियाटिक मान लोगों का अधिकार था। ये मान लोग भाषा, धर्म, सभ्यता और रक्त से भारतीयों में काफी घुल-मिल चुके थे। कालान्तर में खमेरों (कम्बोडियनों) ने मध्य और दक्षिणी स्याम पर अधिकार कर लिया। ये वे ही खमेर थे, जिन्होंने दसवीं सदी में एक महाशक्तिशाली साम्राज्य कायम किया था, जिसकी राजधानी अंकोर थी। अंकोर बहुत दिनों तक दक्षिण-पूर्वी एशिया में भारतीय सभ्यता और कला का केन्द्र था। मानकी तरह खमेरने भी अपनी संस्कृति, धर्म और साहित्य भारत से पाया था। यही कारण था कि जब थाई लोग स्याम में आए, तो उन्होंने भी अपने से उन्नत लोगों में मिलकर भारतीय संस्कृति और धर्म को अपना लिया। १३५० ई० में स्याम के एक शक्तिशाली राजा ने अयुथिया (अयोध्या) नाम का शहर बसाया। बाद में यही राजा रामथिबोदी के नाम से प्रसिद्ध हुआ। ठीक भी था, अयोध्या बसाने वाले का नाम 'राम' होना ही चाहिए था। १७६७ ई० में बर्मियों द्वारा नष्ट किए जाने तक अयोध्या स्याम की राजधानी रही।

बौद्ध धर्म स्याम का राज्य-धर्म है। स्याम के धार्मिक जीवन पर प्राचीन भारतीय विधि-विधान की अमिट छाप है। आज स्याम में लगभग पौने दो करोड़ बौद्ध मतावलम्बी हैं। नये आँकड़े के अनुसार यहाँ १९१५० मठ और २३०२६० भिक्षु तथा श्रामणेर हैं। भिक्षुओं की ज्यादा संख्या इसलिए है कि बर्मा की तरह स्याम में भी प्रायः जीवनमें एक बार सभी आदमी कुछ समय के लिए प्रव्रज्या (संन्यास) लेते हैं। स्याम के लोगों का भी विश्वास है कि भगवान् बुद्ध उनके देश में आए थे। उनके चरण-चिह्न आज भी स्यामी भक्तों द्वारा पूजे जाते हैं। पर ऐतिहासिक दृष्टि से इसमें सचाई का बिलकुल अभाव है। स्याम के हजारों मठ-मन्दिर, स्तूप और महल भारतीय वस्तुकला के जीवित नमूने हैं। यहाँ की कतिपय इमारतों के भित्तिचित्र अजंता की प्राचीन भारतीय चित्रकारी की याद दिलाते हैं। इतिहासकारों का मत है कि जब भारत में बौद्ध धर्म का प्रचार था, तब एक ही परिवार में बौद्ध, शैव और वैष्णव मतानुयायी रहते थे। इसीलिए आज स्याम में जहाँ दीवारों पर भगवान् तथागत के जीवन से सम्बन्धित चित्र अंकित किए जाते हैं, वहाँ पुरुषोत्तम राम के भी। राम-भक्त हनुमान का स्याम में बड़ा आदर है। स्यामी दन्त-कथाएँ और साहित्य रामायण की कथाओं से भरे पड़े हैं। विष्णु, शिव और गणेश ही नहीं, विशालकाय कुम्भकर्ण से लेकर साधारण भारतीय देवी-देवताओं की मूर्तियों की भी कमी नहीं। राजधानी के एक शिखर पर बजरंगबली का एक विशाल मन्दिर है, जहाँ हर वर्ष मेला लगता है।

स्यामी लोग भाषाको 'फासा' कहते हैं। स्यामी भाषा

में अनगिनत संस्कृत और पालिके शब्द हैं। पालि-भाषा उनकी धर्म-भाषा है। अतः उसके पठन-पाठन की भी अच्छी व्यवस्था है। वहाँ संस्कृत के अध्ययन अध्यापन की वैसे कोई विशेष व्यवस्था नहीं है; पर उसे आदर की दृष्टि से देखा जाता है। संस्कृत के कितने ही नाटकोंका स्यामी में अनुवाद हुआ है। सभ्य पुरुष और राजकीय कामोंमें संस्कृत के नाम काफी हैं। स्यामी मन्त्रिमण्डल में कोई 'विपुलसंग्राम' है, तो कोई 'नीतिशास्त्र'; कोई मनुधर्म' है, तो कोई 'संग्रामजय'; कोई 'धर्मदिव्य' है; तो कोई 'मानवराजसेवी'। राज-परिवार में प्रायः संस्कृत के ही गलत उच्चरित नाम हैं, जैसे—अरुणरथ, राम, फरानरेत (प्रभुनरेश), प्रजाधियोक (प्रजादीपक), आनन्द महीदोल, इन्दिरा, पद्मराजदेवी, कल्याणीवदन, इन्द्रशक्ति शची, हेमवती आदि। स्यामी साहित्य पर प्राचीन भारतीय साहित्य का गहरा असर पड़ा है। संस्कृत के रामायण, महाभारत, काव्य, नाटक और पौराणिक कथाओं से स्यामी साहित्य भरा पड़ा है।

इण्डोनीशिया

प्रसिद्ध विद्वान सिल्व्याँ लेवीने ने लिखा था—"भारत ने साइबेरिया के हिम-प्रदेशों से लेकर जावा और बोर्नियो के द्वीपों तक तथा ओशेनिया से लेकर सोकोत्रा तक अपने सिद्धान्त, अपनी कथाओं तथा अपनी सभ्यताका प्रचार किया। सदियों की दीर्घ परम्परा के फल-स्वरूप उसने मानव-समाज के चतुर्थांश पर अपनी संस्कृति की अमिट छाप अंकित कर दी।" भारत और इण्डोनीशिया का सम्बन्ध बहुत पुराने समयसे चला आ रहा है। पिछली सदियोंमें इण्डोनीशिया के मसाले ने ही पोर्तुगीज़ों, अंगरेज़ों और डचों को इस द्वीप-समूह की ओर आकर्षित किया था। मालूम होता है, ई० सन्के बहुत पहले से ही मसाले, खनिज पदार्थ, कीमती पत्थर और अन्य मूल्यवान धातुओंने भारतीय व्यापारियोंको भी इण्डोनीशिया पहुँचाया था। भारतीय व्यापारी इन चीज़ोंको इंडोनीशिया से जहाज द्वारा दक्षिण-भारत के बन्दरगाहोंपर लाते थे और फिर वहाँ से यह माल रोमन साम्राज्य के विभिन्न बाजारों में जाता था। वाल्मीकि रामायण के अनुसार सीता की खोज के लिए सुग्रीव ने अपने चरों को जावा (यवद्वीप) भी भेजा था। अलेक्जेंड्रिया का प्रसिद्ध ज्योतिषी टालेमीन ने अपने भूगोल में, जो दूसरी सदी के मध्य में लिखा गया था, जवदिउ (यवद्वीप) का उल्लेख किया है। इस 'जवदिउ' का अनुवाद उसने खुद 'जौ का टापू' किया है। इससे स्पष्ट है कि जावा का संस्कृत नाम विदेशों में भी प्रचलित था। चीनी इतिहास के अनुसार १३२ ई० में ये-तियाओ (यवद्वीप) का राजा तियाओ-पियेन (देववर्मन ?) ने अपना राजदूत चीन भेजा था।

मालूम होता है कि भारत और इंडोनीशियाके संबंध के प्रारम्भिक काल में भारतीयों ने कोई उपनिवेश नहीं बसाया था। उनका उद्देश्य देश जीतना या उपनिवेश बसाना नहीं था। पर ज्यों-ज्यों व्यापार बढ़ता गया, त्यों-त्यों मुख्य भूमि से माल के साथ-साथ आदमियोंका भी यातायात बढ़ता गया। धीरे-धीरे व्यापारिक नगर बस गये और ये ही नगर बढ़कर राज्य में परिणत हो गये। पर यह उपनिवेशीकरण विजयी और विजित के सम्बन्ध का द्योतक नहीं था, बल्कि भारतीयों ने वहाँ बसकर, वहाँ के निवासियों में घुल-मिलकर, उनके जीवन-स्तर को ऊँचा उठाया और उन्हें उन्नत भारतीय सभ्यता, कला और साहित्यका ज्ञान कराया। यही कारण है कि आज हम इण्डोनीशिया में भारतीय स्मारक-चिह्नोंके अलावा विशुद्ध भारतीयोंकी कोई बस्ती नहीं पाते हैं। यह सभ्यता की उदार भावना का ही द्योतक है।

प्रारम्भिक शिलालेख, जो विशेष रूपसे बोर्नियो में मिले हैं, बिना तिथिके हैं। ये शिलालेख दक्षिण-भारत और कम्बोडिया तथा कम्बोज में मिले शिलालेखों से मिलते हैं। इन शिलालेखोंकी भाषा संस्कृत और लिपि प्रारम्भिक पल्लव-लिपि के समान है। एक शिलालेखमें अश्ववर्मन राजा का जिक्र है। उसके पुत्रोंमें प्रमुख मूलवर्मन ने बहुसवर्णक-यज्ञ किया था, जिसका यूप ब्राह्मणों ने गाड़ा था। दूसरे शिलालेखों में, जो पश्चिमी जावा के हैं, पूर्णवर्मन का जिक्र आता है। पूर्णवर्मन ने चन्द्रभागा और गोमती नामक दो नहरें बनवाई थीं। ये दोनों नदियाँ उत्तर-भारत की हैं। इन्हीं दिनों (४१

(सन् ४१३ ई०) प्रसिद्ध चीनी यात्री फाहियान भारत से बौद्ध ग्रन्थों के साथ लंका होते हुए जावा पहुँचा था। उसने लिखा है कि यहाँ ब्राह्मणों की ही प्रमुखता है। बौद्ध धर्म की स्थिति उल्लेखनीय नहीं है। चीन से फाहियान भूमि-मार्ग से भारत आया था। उसे रास्ते में जितने देश मिले, सब पूर्णरूपेण बौद्ध थे। कुछ दिनों तक जावा में रहकर वह एक भारतीय जहाज से कैन्तन के लिए रवाना हो गया। उसने लिखा है कि इस जहाज पर २०० हिन्दू व्यापारी थे। इससे स्पष्ट है कि आरम्भ में इण्डोनीशिया में बौद्ध धर्मका विशेष प्रभाव नहीं था।

कश्मीर के गुणवर्मन नामक राजकुमार ने इण्डोनीशिया में बौद्ध धर्म का संगठित रूप से प्रचार किया। यह गुणवर्मन कश्मीर का राजा था। राजगद्दी छोड़ कर यह भिक्षु बन गया। अनेक प्रदेशों का भ्रमण करते हुए यह लंका पहुँचा और फिर वहाँ से जावा (४२३ ई०)। वहाँ सबसे पहले उसने राजमाता को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया। पीछे राजा भी बौद्ध हो गया। जावा से गुणवर्मन नन्दी नामक एक हिन्दू व्यापारी के जहाज में बैठकर चीन चला गया। सुङ्-वंश के इतिहास के अनुसार ४३५ ई० में जावा के श्रीपद धरावर्मन ने चीन के दरबार में अपना एक राजदूत भेजा था। इसी तरह सातवीं सदी में भी मध्य-जावा के कलिंगराज की ओर से राजदूत चीन जाता है। ६७४ ई० में कलिंगराज की गद्दी पर सीमा नाम की एक स्त्री बैठती है। उसकी शासन-व्यवस्था बहुत ही अच्छी थी। भारत का कलिंग (वर्त्तमान उड़ीसा) के नाम पर ही जावा के भारतीयों ने शायद यह राज्य कायम किया था। मध्य-जावा के एक शिलालेख के अनुसार सन्नह और संजय नामक दो राजाओं (पिता-पुत्र) ने इस पृथ्वी पर मनु के समान न्याय से राज्य किया था।

इण्डोनीशिया में लगभग १५ सौ वर्षों तक भारतीय सभ्यता, साहित्य और कला की बड़ी उन्नति रही। वैष्णव, शैव और बौद्ध धर्म साथ-साथ अपने-अपने क्षेत्रों में उन्नति करते रहे। शैव और वैष्णव धर्म में काफी परिवर्त्तन होते रहे। इन दोनों सम्प्रदायों पर स्थानीय प्रभाव बहुत पड़ा; पर बौद्ध सम्प्रदाय एक अन्तर्राष्ट्रीय धर्म होने के कारण स्थानीय प्रभावसे मकावितप्रभ हुआ। पहले वहाँ हीनयान-सम्प्रदाय की प्रबलता रही और बाद में महायान की। इण्डोनीशिया ने बौद्ध धर्म के साथ बौद्ध संस्कृत-साहित्य के प्रचार में बहुत सहयोग दिया। वहाँ जो वैष्णव, शैव और बौद्ध स्मारक-चिह्न मिले हैं, उन पर स्थानीय प्रभाव पर्याप्त लक्षित होता है। वहाँ के स्मारकों में दिएङ् के आठ मन्दिर महत्त्वपूर्ण हैं। ये सातवीं सदी के बने हैं और शिव को अर्पण किए गए हैं। ७७८ ई० में स्थापित चण्डीकलसन का बौद्ध मन्दिर है। यह तारादेवी को अर्पण किया गया है। इसकी सजावट दिएङ् के शैव मन्दिरों से अधिक उन्नत है। ७ वीं सदी में चन्डीसेवूका मन्दिर बना। यह बहुत विशाल है और २५० छोटे-छोटे मन्दिरों से घिरा है। यद्यपि आज इस विशाल मन्दिर का भग्नावशेष ही बाकी है, फिर भी इसकी सजावट देखने योग्य है। बोरोबुदुर का जगत-प्रसिद्ध स्मारक भारतीय कला का सर्वोत्तम निदर्शन है। यह आठवीं सदी के अन्तिम हिस्से में बना था। यह कोई बौद्ध विहार था या स्तूप, इसका निर्णय करना कठिन है। इसे हम विहार, स्तूप और चैत्य का सम्मिश्रण कहें, तो कोई हर्ज नहीं। केदुके मैदान में एक वृत्ताकार पहाड़ समतल बनाया गया है। पिरामिड के आकार का यह पहाड़ सात मंजिले मकान के रूप में बदल गया है। इसकी दीवारों पर कर्मविभंग, ललितविस्तर, दिव्यावदान, जातक और गंडव्यूह आदि ग्रन्थों से बुद्ध का जीवन चित्रित किया गया है। ध्यानी बुद्ध की अनेक मूर्तियाँ हैं, जो गुप्तकालीन भारतीय मूर्तियों से मिलती हैं। इसमें चार गैलरियाँ हैं, जिनमें कोई १३०० मूर्त्तियाँ हैं। लोगों ने हिसाब लगाया है कि यदि इन मूर्त्तियों को एक पंक्ति में रखा जाय, तो इनकी लम्बाई तीन मील होगी। अन्त में फार्ग्युसन साहब के इस कथन की ओर भी हम ध्यान दें—"जावा ही एक ऐसा मुल्क है, जहाँ भारतीय पूरी तरह छा गए और वहाँ उन्होंने अपनी सभ्यता एवं कला की पूर्ण प्रतिष्ठा की। भारतीयों ने स्थापत्य और चित्रांकन द्वारा अपने इस उपनिवेश को कला और सभ्यता के शाश्वत चिह्नों से गौरवान्वित किया।"

स्वानुभूति

श्री गुलाब

उस दिन बोधिवृक्ष के नीचे एक अबोध-हृदय आया
जीवन के दुःखों से विस्मित कातर, थकित, अधीर, उदास।
'शान्ति कहाँ ?' बोला वह, तरुके पत्र पत्र ने दुहराया,
'शान्ति कहाँ ?' बोली धरती, सागर, समीर बोला आकाश

× × ×

देवों ने आपस में पूछा, लगे ढूँढ़ने विकल सभी,
निज निज प्रेयसि के नयनों में, मनुजदेव-गृह में जाकर।
विकल पुकार उठे शिशुओं से, महाकाल हँस पड़ा तभी,
मुझमें शान्ति भरी है, वसुधा के प्राणी देखो आकर।

बोला वह अविकल स्वर में है शान्ति नहीं अमरत्व-रहित
मधुर ऊर्वसी के अधरों में, नहीं मृत्यु में शान्ति कभी
वह प्रत्यावर्तन परिवर्तन, नहीं मनुज का होगा हित
मृग-तृष्णा की भाग-दौड़ में, नश्वर हैं ये आप सभी

× × ×

शान्ति धर्म में ही है, धर्म अहिंसा में, भव कारागार
शान्ति अहिंसा ही है 'मानव तेरी महामुक्ति के द्वार।

पुरानी पोथियों की लूट-खसोट

श्री प्रह्लाद प्रधान

दसवीं शताब्दी के बाद भारतवर्ष में हिन्दुओं की केन्द्रिय शक्ति दुर्बल हो गई। उपनिवेशों से उसका सम्बन्ध टूट गया। उपनिवेशों को एक जबर्दस्त तूफान का धक्का सम्हालना पड़ा। भारतवर्ष में बौद्ध धर्म कूलद्रुम की भाँति अपने पतन की घड़िया गिन रहा था और विशाल चीन में भी उसपर विपत्ति के काले बादल मँडराने लगे थे। यहाँ की कहानी भी बड़ी ही करुण है। कहा जाता है कि चीन में तीन 'वु' हो गये हैं जो "बौद्ध धर्म पर कोड़ा" के नाम से विख्यात हैं। उनमें प्रधान ताओधर्म का अनुयायी राजा "वुत्सङ्ग' है जिसने १६६०० विहार, ४०००० छोटे विहार (मठ) और बहुत-सी बुद्ध-मूर्तियाँ नष्ट कर दी थीं। उसने १५०००० बुद्ध-सेवकों को मंदिर से भगा दिया, २६०००० भिक्षु-भिक्षुणियों को गृहस्थ बनने को मजबूर किया। 'वे-इ' लोगों ने जब धावा किया तो 'पुआन्-इ' ने विद्या और पोथियों को बेकार समझ कर १४०००० पोथियों का अपना विशाल ग्रन्थागार जला भस्म कर दिया। कौन कह सकता है कि इस हृदयद्रा ध्वंस लीला ने चीन और भारत के कितने बहुमूल्य ग्र को हमेशा के लिये बर्बाद कर दिया।

काल-परिवर्तन के साथ स्वयं बौद्ध भिक्षुओं में य विश्वास घर कर गया कि पुरानी पोथियों को गाड़ देने में बहुत पुण्य होता है। ऐसी बहुत-सी गाड़ी हुई पोथियों का उद्धार इन दिनों कुछ कुछ हो सका है। हुएन्त्सांग ने लिखा है कि महाराज कनिष्क ने त्रिपिटक का नूतन संस्करण करा के ताम्रपत्रों पर खुदवा कर किसी स्तूप में गड़वा दिया था। अभी तक पुरातत्त्व-वेत्ता लोग इन गड़े ताम्रपत्रों को खोज निकालने में समर्थ नहीं हुए हैं। लंका के कैण्डी जिले में हङ्क रनूकेत विहार के चैत्य में हजारों रुप की बहुमूल्य पुस्तकें और अन्य वस्तुएँ गड़वा दी गई थीं। रौप्यपत्र पर विनयपिटक के दो प्रकरण, अभिधम्म के साथ

करण और दीवनिकाय तथा अन्य कुछ ग्रन्थों को खुदवा गड़वाने में १९२०००) खर्च किए गए थे। तालपत्र मज्झिमनिकाय, संयुक्त निकाय, अङ्गुत्तरनिकाय और खुद्दकनिकाय को लिखा कर गड़वाने में लगभग पौने तीन सौ रुपये खर्च हुए थे। और इसके सिवा अन्यान्य सोने के पत्तों पर भी ३७ पुस्तकें लिखी गई थीं। अन्यान्य सोना-चाँदी जवाहरात का कोई हिसाब ही नहीं। भारत-वर्ष के मुगल सम्राटों ने पुरानी पोथियों के संग्रह में बहुत उत्साह दिखाया था। रूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी के लिये दिल्ली के शाहंशाह ने नाना स्थानों से—विशेष कर राजपुताने के राजाओं से संग्रह कर बहुत सी पोथियाँ दी थीं। लेकिन वे भी आज वृन्दावन में 'समाधि' का सुख भोग रही हैं! बाद में चलकर पुरानी पोथियों के प्रति इस देश में एक प्रकार की अंधश्रद्धा बढ़ गई और वे पूजा और सम्मान का पात्र हो कर रह गईं। बहुत वार कि विदेशियों के हाथ में पड़ने से कहीं उनकी पवित्रता नष्ट हो जाय, इस डर से पोथियाँ गंगा में फेंक दी गईं। मराठा शासन-काल में पुरानी पोथियों को सुरक्षित करने की ओर एक वार फिर ध्यान गया था पर वह शासन जड़ जमाने के पहले ही खत्म हो गया।

भारत की भाग्यलक्ष्मी ने एक बार फिर पलटा खाया। अंगरेजों का राज हुआ। अंगरेजी की पढ़ाई जारी हुई। अंधश्रद्धा की जगह उपेक्षा और अनादर ने ली। पूजागृह से पोथियाँ उठकर रसोई घर के कोने में आने लगीं। आज का शिक्षित व्यक्ति एक दम बदल गया। उसे आज यह विश्वास करने में हिचक होती है कि कभी इस देश-वालों का भी मान था, वे दूर-दूर तक अपनी संस्कृति फैला सके थे। परन्तु विरोधाभास यह है कि यद्यपि इस युग के भारतीयों में अपनी पुरानी संस्कृति की महिमा का भाव घट चला था फिर भी बाद में चलकर पुरानी विद्याओं का पुनरुद्धार जितना इस युग में हुआ उतना कभी नहीं हुआ। अंगरेजों की जड़ जब यहाँ जम गई तो उनकी दृष्टि भारतवर्ष की सभ्यता और विद्याओं की ओर पड़ी। राजनीतिक दृष्टि से भारत वर्ष जैसे विशाल देश पर शासन करने के लिये उसकी सभ्यता और संस्कृति की जानकारी निहायत जरूरी थी। उन्होंने गम्भीरता पूर्वक भारतीय विद्याओं का अध्ययन शुरू किया। पर पुरानी पोथियों तथा अन्य प्राचीन महत्वपूर्ण सामग्री को उद्धार करने के लिये तो अंगरेजों को बाध्य होना पड़ा था। उन दिनों यूरोप में रोमान्टिक युग चल रहा था। सारा यूरोप रोमांस के पीछे पागल था। भारतवर्ष में जो ज्ञान की निधि कालक्रम से अन्तर्धान हो गई थी उसे खोज निकालने के लिये यूरोप व्यग्र था। यह एक रोमांस ही था। भारतीय गौरव का थोड़ा सा परिचय पाकर एक जर्मन विद्वान ने उन दिनों कहा था कि अंगरेज लोग भारत की दालचीनी पर और लौंग पर अपना अधिकार बनाए रहें लेकिन भारतीय चिन्तामणि के खजाने तो समस्त सभ्य-जगत् की साधारण संपत्ति है!

यूरोप में सर्वप्रथम ईसाई परिव्राजकों (पादरियों) द्वारा ही संस्कृत का परिचय हुआ। सन् १६५१ ई० में एक उच्च पादरी अब्राहम रोजर ने भर्तृहरि के कुछ श्लोकों का एक अनुवाद प्रकाशित किया। यह अनुवाद एक ब्राह्मण पंडित ने पोर्चुगीज भाषा में किया था। हार्डर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'जातियों की आवाज़' में इसे संग्रहीत किया। वास्तव में यूरोप की साहित्यिक दुनिया को यही सर्वप्रथम संस्कृत का परिचय हुआ। इधर अंग्रेज लोग भी चुप नहीं थे। बंगाल के तत्कालीन गवर्नर वारेन हेस्टिंग्स ने कुछ पंडितों की सहायता से धर्मशास्त्र-संगत कानून की एक पुस्तक बनाई थी जो धार्मिक निबन्धों का क़रीब-क़रीब अन्तिम ग्रन्थ है। इन्होंने अंग्रेजों को संस्कृत पढ़ने के लिये खूब उत्साहित किया। लेकिन इस दिशा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य सर विलयम जोन्स ने किया। इन्होंने 'बंगाल की एशियाटिक सोसायटी' नामक साहित्य-समाज का संघटन किया जो अब भी जीवित है। इस एक सभा ने पुरानी पोथियों और इतिहास के उद्धार में जो कार्य किया है वह अतुलनीय है। जोन्स ने ही कालिदास की शकुन्तला का प्रथम बार अनुवाद किया और उन्होंने सन् १७९२ ई० में ऋतुसंहार प्रकाशित किया जो मुद्रित संस्कृत ग्रन्थों में सर्व-प्रथम है। फिर तो देखते देखते सारे यूरोप में भारतीय विद्याओं की आलोचना की बाढ़ आ गई। धर्म, ज्योतिष, दर्शन, इतिहास-पुराण कुछ भी बाकी नहीं रहा।

यह कह रखना आवश्यक है कि सर विलयम जोन्स को मूल पोथियाँ नहीं मिली थीं। उन्हें बहुत-कुछ नकल ही प्राप्त थे जो आज कल लंडन के इंडिया आफिस में सुरक्षित हैं। जोन्स के बाद कोलब्रुक ने उक्त सोसायटी का भार लिया था। यह गणितज्ञ ही नहीं ने बल्कि सर्वतोमुखी प्रतिभा लिए हुए थे। इन्होंने नाना शास्त्रों के संबंध में विवेचनात्मक लेख लिखे जो अब भी प्रामाणिक माने जाते हैं। पुरानी पोथियों का संग्रह इनका सबसे बड़ा कार्य था। लगभग १० हजार पाउंड (करीब करीब १५००० रुपये) इन्होंने इस कार्य में व्यय किए थे।। इंग्लैण्ड लौटने के बाद ये सारी पुस्तकें इन्होंने ईष्ट इण्डिया कम्पनी को उपहार में दे दीं। ये आज कल इण्डिया आफिस में सुरक्षित हैं।

कोलब्रुक के बाद बहुत से सरकारी अंग्रेज कर्मचारियों ने पोथियों के संग्रह का प्रयत्न किया। फिर कुछ राजभक्त भारतीयों ने भी इण्डिया आफिस को दान में बहुत-सी पोथियाँ दीं। 'केटेलागस केटेलोगोरम्' की भूमिका में औफ्रेख्ट् ने इण्डिया आफिस के संग्रह के प्रसंग में कई प्रसिद्ध ग्रंथसंग्राहकों के नाम दिए हैं, जैसे, कोलब्रुक, बिल्किस, टेलर, गायकवाड़, जान्सन्, फ्लीट, वेलेन्टाइन, वर्नेल, मेकेन्जी इत्यादि। इनमें से कई तो हिन्दुस्तान से पोथियाँ बटोर कर इंग्लैण्ड ले गए थे। वहाँ उनके एकत्र करने की कोई व्यवस्था नहीं हो सकी थी। इन छितराई हुई पोथियों को एकत्र करने के लिये इंग्लैण्ड में जबर्दस्त आन्दोलन हुआ था। जब पुस्तकें फिर से एक जगह इकट्ठी हुईं तो कीथ ने आगे चलकर इनका वर्गीकरण किया। कुछ को उन्होंने साधारण श्रेणी में रखा और कुछ को विशेष में। विशेष श्रेणी में उन्होंने १. औफ्रेख्ट, २. बूलर ३. वर्नेल ४. हडसन् ५. मेकेन्जी और ६. टागोर के संग्रहों को रखा। विल्किस की पोथियों को उन्हों साधारण श्रेणी की ही माना।

इन संग्रहकर्त्ताओं का अध्यवसाय और धैर्य देख कर दंग रह जाना पड़ता है। एकाध उदाहरण यहाँ दिए जा रहे हैं। बूलर और कीलहार्न दोनों ही जर्मन पंडित थे। पोथियों के संग्रह करने के उद्देश्य से ही वे यहाँ आए थे। पहले वे बम्बई सरकार के अधीन काम करते थे, बाद में भारत सरकार के। फिर भी अन्यान्य विदेशी संस्थाओं के लिये भी पुस्तक संग्रह करने की उन्हें छूट थी। जैसलमेर का जैन पुस्तक-भण्डार देखने के लिये बूलर को बड़ा कष्ट भोगना पड़ा था। बिना पानी, बिना आश्रय के कड़ाके की गर्मी में उन्हें दूर जाना पड़ता था, सब प्रकार के कष्ट उन्होंने बर्दाश्त किए, फिर भी भण्डार को पूर्ण रूप से वे नहीं देख सके। भाण्डार के अधिकारी किसी विदेशी को उसे दिखाना नहीं चाहते थे। भण्डारकर जैसे ब्राह्मण पंडित को भी जब उसे देखने में बेहद कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था तो विदेशी विद्वानों की तो बात ही क्या है। भाण्डारकर ने लिखा है कि भण्डार एक पंचायत के हाथ में था। प्रत्येक पंच ने अलग-अलग ताला लगा रखा था। एक आता था तो दूसरा लापता, दूसरा आया तो पहला गायब। सब पंचों को जुटाना बहुत कठिन कार्य था।

कर्नेल का कार्य-क्षेत्र दक्षिण था। उन्होंने अपने संग्रह का जो विवरण दिया है उसमें एक मजेदार बात यह है कि एक बार एक दीवानी मुकदमे में ५०० प्राचीन पोथियाँ अन्य कागजपत्रों के साथ नत्थी करके पेश कर दी गई थीं जिनमें कई दुर्लभ और बहुमूल्य थीं। लेफ्टिनेंट कर्नेल कलिन मेकेन्जी पहले मद्रास के और बाद में भारत सरकार के सर्वेयर थे। अपनी पैमायशी यात्रा में इन्होंने बहुत से ताम्र-पत्र, शिलालेख और ग्रंथ संग्रह किए। १५००० पौंड खर्च करके जो बहुमूल्य संग्रह इन्होंने जुटाया था उसे बाद में १००००० पौंड पर इण्डिया आफिस को बेच दिया। इस में ८०० पुरानी पोथियाँ थीं। टागोर संग्रह की सारी पुस्तकें शायद बंगाल से संग्रहीत हुई थीं। पाथुरिया घाट (कलकत्ता) के यतीन्द्र मोहन ठाकुर के भाई सर सौरीन्द्र मोहन ठाकुर बहुत बड़े संगीतज्ञ और विद्याप्रेमी थे। इन्होंने ही यह संग्रह दान किया था। इसी तरह हडसन ने नेपाल से बौद्ध धर्म की अनेक पोथियाँ संग्रह कीं। मैंने सुना है कि जिस जहाज में इन पुस्तकों की प्रथम नकल भेजी गई वह जहाज समुद्र में डूब गया, पर हडसन फिर भी निरुत्साह नहीं हुए। उन्होंने दुबारा उनकी नकल कराके भेजा। उनके बाद डा० रिट नामक चिकित्सक ने हडसन के छोड़े कार्य को सम्हाला।

अपने रोगियों को वे पुरानी पोथियों के ले आने के लिये फुसलाया करते थे। इनके संग्रह का विस्तृत विवरण बेन्डेल ने तैयार किया है।

अब साधारण संग्रह की चर्चा की जाय। बहुत-सी पुस्तकें तो अनुसंधान-प्रेमी कर्मचारियों ने इकट्ठी की थीं, बहुत-कुछ इण्डिया आफिस ने दाम देकर खरीदा भी था। लेकिन बहुत अधिक पोथियाँ पुराने राजाओं के किले दखल करते समय मिली थीं। प्रत्येक दुर्ग में पुस्तकों का अच्छा संग्रह हुआ करता था। टीपू सुलतान के किले से १००० प्राचीन पोथियाँ मिली थीं जिनमें कुछ विलायत के पुस्तकालयों को भेज दी गईं और कुछ बंगाल की एसियाटिक सोसायटी को मिलीं। द्वितीय बाजीराव पेशवा जिस श्रीमद्भगवद्गीता का पाठ किया करते थे वह भी इण्डिया आफिस में सुरक्षित है। परन्तु इस प्रकार की संग्रहकारिणी वृत्ति अंग्रेजों में बाद में आई। अवध के नवाब जब कलकत्ते आए थे तो उनके साथ कुछ पोथियाँ गई थीं। जब लखनऊ का पतन हुआ तो अंग्रेज सैनिकों के हाथ बहुत बड़ा पुस्तक-संग्रह लगा जिसे असावधानी और बेदर्दी के साथ नष्ट कर दिया गया। सिपाहियों ने बहुतेरी पोथियाँ जला दीं। जो बचीं उन्हें नीलाम पर चढ़ाया गया और इस प्रकार वे बंगाल की एशियाटिक सोसायटी के हाथ लगीं।

इण्डिया आफिस के सिवा ब्रिटिश म्युज़ियम, रायल एशियाटिक सोसायटी तथा विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों में भी प्राचीन पोथियों का खासा संग्रह है। आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय ने हुल्स् का सारा संग्रह खरीद लिया था और जोन्स, विलसन और कोलब्रुक के संग्रहों का अच्छा-सा अंश भी वहाँ है। प्रथम बर्मा-युद्ध में बटोरी हुई पोथियाँ विशद्स कालेज के पुस्तकालय में हैं। इंग्लैंड की तरह फ्रान्स में भी पुरानी भारतीय पोथियों का अच्छा संग्रह है। फ्रांसीसी लोगों का भी भारत में राज्य है और वे भी बहुत पहले से इस दिशा में सयत्न हैं। डुप्ले ने ही करीब ५०० पोथियाँ पेरिस भेजी थीं।

परन्तु इस सम्बन्ध में जर्मनी के पंडितों ने सबसे अधिक कार्य किया है। यद्यपि फ्रांस और इंग्लैण्ड की भाँति इन लोगों का यहाँ साम्राज्य नहीं था फिर भी सब विषयों में मार्गदर्शक वे ही थे। सर विलिमय जोन्स के भी पहले (सन् १७७४ ई०) सर चामर्स ने २५००० स्टर्लिंग खर्च करके बहुमूल्य ग्रंथ संग्रह किए थे जिन्हें बाद में प्रशिया की सरकार ने खरीद कर बर्लिन की इंपीरीयल लाइब्रेरी को दे दिया। इसी संग्रह में एक सामवेद की प्रति है जो अली इब्राहीम खाँ से प्राप्त हुई थी। और भी अनेक जर्मन परिव्राजक इस देश में पुस्तक संग्रह कार्य में नियुक्त रहे। बूलर, कीलहार्न और वेबर भी जर्मन ही थे।

इन देशों के अतिरिक्त इगलैंड, रोम, रूस आदि देशों में भी प्रचुर पोथियाँ गई हैं। सेन्टपीटर्सवर्ग से संस्कृत का जो विशाल शब्दकोश प्रकाशित हुआ है वह अब तक संस्कृत का अद्वितीय कोष माना जाता है। स्व० महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री ने लिखा है कि सन् १८८६ ई० में उत्तरी बर्मा दखल करने के लिये जब एक घोषणा हुई तो उसी समय सेन्टपीटर्सवर्ग से प्रो० मिनायेफ़ (जो उन दिनों इटली में थे) को एक तार मिला कि तत्काल मांडले जाकर वहाँ से जो कुछ पोथियाँ पाई जा सकें उन्हें वे संग्रह करें। उक्त प्रोफेसर जब माण्डले पहुँचे तो वहाँ उन्होंने देखा कि सैनिक लोग पोथियों से सिगार सुलगा रहे हैं। उनके अनुरोध पर अंग्रेजी सेना के सेनापति ने यह कुकार्य बन्द करवाया और उन्होंने आज्ञा दी कि वे जितनी वे पोथियाँ ले जा सकते हैं उठा ले जायँ। उक्त प्रोफेसर ने सात बड़े बड़े सन्दूकों में पोथियाँ उठवा कर सेण्टपीटर्सवर्ग को रवाना किया। इस प्रकार भारतवर्ष, बर्मा, सीलोन और नेपाल से पुस्तकों की राशियाँ नाना भाव से यूरोप को पहुँचती रही हैं। वृहत्तर भारत के देशों से भी कम पुस्तकें नहीं गई हैं। जावा, सुमात्रा, कम्बोडिया, स्याम (वर्तमान थाईलैंड) आदि देशों से बहुमूल्य पुस्तकें यूरोप गई हैं। परन्तु इन सबकी अपेक्षा अधिक पुस्तकें मध्य एशिया, चीनी तुर्किस्तान आदि देशों से गई हैं। यह कहानी एक ही साथ मनोरंजक, करुण और स्फूर्तिदायिनी है। इस प्रसंग में सर्वप्रथम जो नाम स्मरणीय है वह लेफ्टिनेंट बावर का है। वे उन दिनों कुच में ब्रिटिश रेजिडेन्ट थे। सन् १८९० ई० में दो तुर्कों ने उन्हें भोजपत्र पर लिखी कुछ प्राचीन पोथियाँ दिखाईं।

बावर ने उन्हें खरीद कर बंगाल की एशियाटिक सोसायिटी के पास भेज दिया। ये पोथियाँ एक विध्वस्त बौद्धस्तूप में मिली थीं। इनकी परीक्षा हर्नैल ने की। परीक्षा से मालूम हुआ कि ये सन् इसवी की चौथी-पाँचवीं शताब्दी की हैं। इन पुस्तकों ने अनेक ग्रंथों के इतिहास निर्णय में कान्तिकारी सहायता पहुँचाई। फिर तो यूरोपीय और रूसी अनुसंधाताओं के दल उधर ही पिल पड़े। इस प्रकार अनेक ग्रंथों का उद्धार हुआ। परन्तु हम उसकी चर्चा फिर कभी करेंगे।

अद्भुत साधक

चीना बाबा

भिक्षु धर्मरक्षित

कुशीनगर दर्शनार्थ जाने वाले यात्रियों में से कोई भी ऐसा व्यक्ति न होगा, जो 'चीना बाबा' के दर्शन के लिये उत्सुक न रहता हो। 'चीना बाबा' उन्हीं कर्मठ, उत्साही और साहसी व्यक्तियों के सदृश एक अपूर्व जीव हैं, जिन्होंने प्राचीन काल में चीन से भारत की स्थल-मार्ग से यात्रा करके भारतीय संस्कृति एवं धर्म का अध्ययन किया अथवा भारत में ही रह कर अपने जीवन को भारतीय ढाँचे में ढालने का प्रयत्न कर भारतीय संस्कृति को अपनाया। फाहियान, हुएनसांग, इत्सिंग आदि चीन देशवासी भिक्षुओं ने शाक्यमुनि भगवान् बुद्ध के जन्म सम्बोधि और निर्वाण प्राप्त करने वाले देश की यात्रा कम साहस और निर्भीकता के साथ न की थीं। उन्हें जिन बनों, पर्वतमालाओं और मरुस्थलों को लाँघ कर आना पड़ा था, उनका ध्यानमात्र आज के पैदल यात्रा करने की बात सोचने वाले युवक के हृदय को दहला देने वाला है। फिर भी 'चीना बाबा' इस बीसवीं सदी में भी अपने पूर्वजों का अनुगमन करने में ही अपना गौरव समझते हैं। उनकी यात्रा और भारत में की गयी तपःसाधना इस बात के साक्षी हैं कि उनके नसों में उनके पूर्वजों के सच्चरित्रों से उद्‌बोधित रक्त संचार कर रहा है।

'चीना बाबा' ने अपनी मातृभूमि को चालीस वर्ष की अवस्था में छोड़ा और भारत के लिए अपूर्व उत्साह के साथ प्रस्थान किया। यद्यपि वे समुद्री मार्ग से सुख पूर्वक भारत आ सकते थे, किन्तु उन्हें अपने पूर्वजों के मार्ग पर चलना ही अच्छा लगा। उन्होंने तिब्बत की राह ली और विकट तथा दुर्गम पार्वतीय मार्ग से चलकर शाक्यमुनि के देश का दर्शन किया। उन्हें बौद्ध-धर्म के चार महातीर्थों में से कुशीनगर अधिक प्रिय लगा। चीन देशवासी आचार्य महायान प्रदीप की भी उन्हें याद थी जिन्होंने सब तीर्थों की यात्रा करते हुए कुशीनगर के परिनिर्वाण विहार में शरीर-त्याग किया था।

कुशीनगर पहुँच कर वे कुछ दिन वर्तमान् बौद्ध विहार में रहे और हिन्दी का अभ्यास करते रहे। उन्हें एकान्तवास अधिक रुचिकर था। अतः दो-चार वर्ष के उपरान्त ही वे बौद्ध विहार को छोड़कर रामाभार चले गए। रामाभार में ही हिरण्यवती नदी के किनारे भगवान् बुद्ध का मृत-शरीर जलाया गया था, जिसका नाम 'मुकुट-बन्धन चैत्य' था। मुसलमानी आक्रमणकाल में वह ध्वंसित हो गया तथा उसके ऊपर वटवृक्ष आदि उग आये। आए दिन उस ध्वस्त स्तूप के ऊपर बड़ा विशाल वट-वृक्ष है, जो चीना बाबा का वासस्थान है।

'चीना बाबा' सन्' ३० में रामाभार गये और स्तूप के ऊपर एक पर्णकुटी बनाकर रहने लगे। उस स्तूप के ऊपर अकेले रहना भी कम साहस का काम नहीं था, क्योंकि सारा स्तूप झाड़ी और वृक्षों से ढँका हुआ था। साँप-बिच्छू का वह घर था। गीदड़, लोमड़ी आदि दिन में भी निर्भय हो घूमते थे। जब पुरातत्व विभाग के कर्मचारियों को उनके इस कार्य का पता लगा, तब उन्होंने

'चीना बाबा' को उस स्थान को छोड़ देने की आज्ञा दी, किन्तु वे उनकी एक न सुने। जब पुरातत्व विभाग के कर्मचारी हार थके, तब पुलिस आयी। पुलिस ने जब आग्रह किया, तब वे ईंट उठा-उठाकर अपना सिर अपने ही फोड़ने लगे। पुलिस भी भयभीत और निराश होकर लौट गई।

'चीना बाबा' को रामाभार बड़ा प्रिय था। वे कहा करते थे—"जब इत्सिंग आया था, तब यहाँ सौ भिक्षु रहते थे। यहाँ का विहार भिक्षुओं से भरा रहता था। इस समय जब यहाँ कोई भी नहीं रहता है, तब मैं किसी भी प्रकार इस स्थान को नहीं छोड़ सकता। यदि पुरातत्व विभाग के कर्मचारी मुझे हटाने का प्रयत्न करेंगे, तो मैं इस बरगद के ऊपर रहूँगा। उन्हें मुझे हटाना है, तो पहले इस वृक्ष पर रहने वाले पक्षियों को हटायें। यदि पक्षियों को वृक्ष पर रहने की स्वतन्त्रता है, तो मुझे क्यों नहीं होगी? मैं भी पक्षी-तुल्य बरगद के ऊपर रहूँगा।"

'चीना बाबा' ने अपने निश्चय के अनुसार बरगद के ऊपर आसन जमाया। यद्यपि वह वृक्ष बहुत प्राचीन और विशाल है, उसकी ऊँचाई भी कम नहीं है, फिर भी 'चीना बाबा' बन्दरों की भाँति जल्दी-जल्दी उस पर चढ़ जाते थे और उसी पर रातो-दिन रहते थे। जब वे रात्रि में प्रदीप जलाते थे, तब आस-पास के दो-दो तीन-तीन मील चारों ओर के प्रदेश-वासियों को ऐसा जान पड़ता था, मानो कोई नया तारा चमक रहा है। 'चीना बाबा' का यह कार्य जनसाधारण को बहुत आकर्षित किया और प्रतिदिन वट-वृक्ष के नीचे भीड़ जमा होने लगी। दान-उपदान आदि की तब कोई कमी नहीं थी। किसी उनके भक्त ने वट-वृक्ष पर उनके निवास के योग्य एक लोहे की सन्दूक भी बनवा दी, जिसमें वे बैठे-बैठे ध्यान-भावना कर सकते थे। इस कार्य ने 'चीना बाबा' की ख्याति को इतना बढ़ा दिया कि दूर-दूर के लोग उनके दर्शनार्थ आने लगे। अब वे 'पेड़वा बाबा' भी कहलाने लगे।

'चीना बाबा' ने चीन देशवासी भिक्षुओं के नियमानुसार अपने सिर, बाँह, छाती, पैर, जाँघ आदि शरीर के विभिन्न अंगों पर घी की बत्तियाँ जला कर बुद्ध-पूजा की है, जिनके जले हुए चिह्नों को देखकर साधारण दर्शक का हृदय काँप उठता है। 'चीना बाबा' ने जिस दिन छाती पर घी की बत्ती जलायी थी, उस दिन वे कुछ घण्टों के लिए बेहोश भी हो गए थे। उनका सारा शरीर ऐसे चिह्नों से भरा हुआ है। उन्होंने यह पूजा तिब्बत, भारत और बर्मा में समय-समय पर की थी।

'चीना बाबा' जड़ी-बूटी भी बहुत जानते हैं। वे अपने औषधि-दान से सैकड़ों ग्रामीणों को चंगा कर दिये हैं। उन्हें अपने जीवन में साँपों से बड़ी मुठभेड़ करनी पड़ी है। वे साँपों से कभी नहीं डरते हैं। बरसात के दिनों में जब हिरण्यवती में बाढ़ आ जाती है और रामाभार स्तूप के चारों ओर पानी भर जाता है, तब उनकी पर्णकुटी साँपों का वासस्थान हो जाती है। वे उन्हें प्रेम से उठा कर दूर भगा देते हैं। साँप उन्हें कभी डँसते नहीं हैं। उनकी साँपों से प्रगाढ़ मैत्री है। हाँ, केवल एक बार ही उन्हें किसी विषधर साँप ने डँस लिया था। उस समय उनका सारा शरीर फूल गया था। गवर्नमेण्ट अस्पताल कसया के डाक्टर ने उनसे बहुत प्रार्थना की कि वे दवा करायें, किन्तु उन्होंने कोई दवा न करायी और कुछ ही दिनों में स्वतः स्वस्थ हो गए थे।

भारत में श्रमण-सन्यासियों के पीछे दौड़ने वाले स्वार्थ-लोलुप लोगों का अभाव नहीं है। वे ऐसे महात्मा को पाकर कभी नहीं चूकते। 'चीना बाबा' के पीछे ऐसे लोगों की भीड़-सी लगी रहती थी। कोई सन्तान की इच्छा से उनसे आशीष लेने आता, तो कोई विपत्ति से छुटकारा पाने के लिए। एक रात्रि बड़ी विचित्र घटना हुई। जब 'चीना बाबा' अपनी नीचे की पर्णकुटी में बैठे थे, अचानक पास के गाँव की कई सम्भ्रान्त कुल की महिलाएँ आकर उन्हें घेर लीं और सन्तान की याचना कीं। 'चीना बाबा' बालब्रह्मचारी और धर्मनिष्ठ भिक्षु हैं, उन्हें उनकी बातें बहुत कुछ समझ में तो नहीं आयीं, किन्तु उनके आशय को समझने में उन्हें देर न लगी, वे झट वट-वृक्ष पर चढ़ गए और प्रातःकाल उसकी खबर लोगों को दिये। लोगों में इसकी पर्याप्त हलचल मच गयी। लोगों का कहना है कि उन्हीं दिनों उन्होंने अपनी मूत्रेन्द्रिय को भी काट कर फेंक दिया! जो भी हो, 'चीना बाबा' को धर्म-च्युत करने के लिए स्वार्थान्ध लोगों ने

बहुत प्रयत्न किये, किन्तु वे तपाए हुए सोने की भाँति चमकते ही गए।

'चीना बाबा' में ऐसी शारीरिक शक्ति है कि वे यदि एक अच्छे पहलवान के हाथ को पकड़ लें तो छुड़ाना कठिन हो जाय। इस सम्बन्ध में अनेक दिलचस्प घटनाएँ हैं। जिन दिनों 'चीना बाबा' कुशीनगर में रहते थे और और अभी दो तीन वर्ष के ही चीन से आये हुए थे, किसी फीलवान ने उनकी फुलवाड़ी के फूलों को हाथी से उखड़वा डाला। इस पर चीना बाबा को बड़ा बुरा लगा। वे जाकर हाथी को एक बाँस से पीटने लगे, तब फीलवान ने क्रुद्ध होकर उनपर प्रहार किया। 'चीना बाबा' ने उसे ऐसा पकड़ कर दबाया कि फीलवान चिल्लाने लगा और उसके जान की आ बनी, यद्यपि वह एक नामी पर पहलवान था।

वे कुशीनगर आने के बाद केवल एक बार ही बाहर गए। उन्हें रंगून के स्वेडगौंनपैगोडा के पास प्रदीप-पूजा करने की इच्छा थी। वे बर्मा जाकर थेरवादी भिक्षु की प्रव्रज्या भी लिये, और तब से उनका नाम भिक्षु 'ऊसूरिया' पड़ा, किन्तु जनसाधारण उन्हें 'चीना बाबा' ही कहता है।

इस समय 'चीना बाबा' की आयु लगभग ६० वर्ष है, फिर भी उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा है। अब भी वे हट्टे-कट्टे तरुण-से लगते हैं। वे आसपास के गाँवों में भिक्षाटन करते और वट-वृक्ष के ऊपर तथा नीचे इच्छानुसार रहते हैं।

एक मार्मिक कहानी

मृगदाव की शिला ने कहा!

श्री बी० एन० सरस्वती

[गोधूलि के धूमिल प्रकाश में पथिक मृगदाव के खण्डहर में पहुँचता है, जहाँ उसे शिला (पत्थर का एक टुकड़ा) अपने अतीत की स्मृति दिलाती है। पथिक रुक जाता है और दो क्षण बैठ कर कुछ उसकी और कुछ अपनी भी सुनता-सुनाता है-]

शिला—पथिक ! रुको कुछ मेरी भी सुनते जाओ।

पथिक—(रुक कर) सुनूँगा। पर देखो शिले ! मेरी समझ में यह नहीं आता कि क्यों तुम्हारे इस बिखरे वैभव को देख कितने हँसते हैं, कितने रोते हैं और कितने श्रद्धा से नतमस्तक हो जाते हैं।

शिला—यह ठीक है पथिक, मेरी जीर्णावस्था पर कितने हँसनेवाले हँसते हैं, रोनेवाले रोते हैं और श्रद्धालु श्रद्धा से नतमस्तक हो जाते हैं। पर काश ! वे हँसने वाले कभी मेरे अतीत के वैभव देखे होते। आज अवश्य ही मेरा अङ्ग-भङ्ग हो गया है, मेरा सौन्दर्य बिखरा पड़ा है, मैं कुरूपा और ऐश्वर्य-हीना हो गयी हूँ। पर जानते हो कभी मेरे भी वैभव की शिखा जाज्वल्यमान हो उठी थी कभी मेरे भी घर दीपावली आयी थी। परन्तु आज मैं अतीत के स्मृति के गह्वर में छिपी हुई हूँ। अब कितने मुझे जानते तक नहीं। उल्टे मेरी दशा पर हँसते हैं।

पथिक—शिले, आज भले ही हम तुझे भूल जायँ पर इतिहास के पन्ने तुझे भूल नहीं सकते। विश्व की वीथिका पर तुम्हारी स्मृति-पट में कितने कलाकारों की तूलिका चली, कितने कवियों की कविता प्रवाहित हुई तथा कितने ही लेखकों के लेख से पन्ने रँग गये। तुम्हारी इस वैभव-विस्तार की रूप-रेखा में अवश्य ही कोई अलौकिक शक्ति का संचार हुआ होगा।

शिला—हाँ, इतना है। अलौकिक शक्तियाँ मेरे नस-नस में व्याप्त थीं। और वास्तव में मेरा आधार भी उन्हीं अलौकिक शक्तियों की पृष्ठ-भूमि थी। मेरे सुहाग-रैन अलौकिक थे और उनकी शक्तियाँ भी अलौकिक थीं। सुनो, मेरी उस रामकहानी के अन्तर सुख-दुख के मिश्रित स्रोत कितनी विकल वेदना और टीस छिये बहती हैं।

पथिक—(एक पत्थर पर बैठते हुये) अच्छा, तो कुछ अपनी भी सुनाओ।

शिला—सुनो, ध्यान से सुनो। वह, जो तुम्हारे इर्द-गिर्द फैली हुयी भूमि है, पवित्रता की खान है। इसके प्रत्येक अवयव में पवित्रता व्याप्त है। इसी भूमि पर कभी भगवान् बुद्ध के चरण-कमल पड़े थे। और इसी अमरावती में मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा की चतुःरसीय वर्षा हुयी थी। तभी से इस स्थान की महत्ता का अंकुर प्रस्फुटित हो उठा और तीर्थ सेवियों की धार्मिक भावना इस भूमि में आकर केन्द्रित हो गयीं। कालान्तर में जब सम्राट अशोक तथागत के चरणों में जाकर अपने पापों को धो डाला और उनकी पवित्रता में पवित्र हो प्रियदर्शी हो गया, तब उसका ध्यान इस भूमि की ओर गया और वह इस भूमि की महत्ता में अपना सक्रिय योग देना प्रारम्भ किया। प्रियदर्शी ने कहा—"तथागत की स्मृति एक ऐसी चीज़ रहे जो अनन्त काल तक उनकी स्मृतियों को ताजी बनाये रक्खे। अभी जो तुम अपने सामने उस विशाल 'धम्मेक स्तूप' को देख रहे हो, वह वस्तुतः उसी प्रियदर्शी के भगवान् के प्रति प्रेम-भावना का साकार रूप है।

पथिक—(धम्मेक स्तूप की ओर देखकर)—आश्चर्य है यह स्तूप। सचमुच अशोक का हृदय भी इतना विशाल रहा होगा।

शिला—हाँ, उसका हृदय बड़ा ही विशाल था। प्रारम्भ में तो वह कठोर रहा, पर भगवान् बुद्ध की शरण में जब से वह गया, तब से उसका हृदय उतना ही उदार बन गया। कलिङ्ग युद्ध के पश्चात् वह अत्यन्त भावुक बन गया। वह बहुधा अपना समय प्राणिमात्र की भलाई में बिताने लगा और बहुत दिनों तक इसी मृगदाव में रहा। विहार और राजमहल बनने की आज्ञा दी। सम्राट की आज्ञा थी और तथागत की श्रद्धा का था। देश-देश के शिल्पकार अपनी छेनी और हथौड़ी ले आये। घड़ी भर में असाधारण पत्थरों की ढेर लग गयी और कलाकारों की छेनियों से छिन-छिन कर मधुर ध्वनि थिरकने लगी। और तब तथागत की सत्य-प्रेम एवं करुणा की साकार मूर्तियाँ बन कर ढेर लग गयीं। राज-प्रासाद भी बन गये और विहार भी। सुनते हो?

पथिक—हाँ, हाँ, सुनता हूँ।

शिला—सम्राट् के लिये सिंहासन भी बने, और सिंहासन के ऊपर तथागत की एक बड़ी ही भव्य मूर्ति बनायी गयी। तभी चतुःसिंहयुक्त स्तम्भ भी बना था। कभी राजकुमारी अपने प्रासाद के झरोखे से झाँकती थी और निशि-दिन यहाँ सत्य, प्रेम एवं दया की वर्षा होती रहती थी। मेरा वह यौवन प्रभात था। उस समय मुझ पत्थर के हृदय में भी प्रेम एवं करुणा का अजीब रस उद्वेलित हो रहा था। फिर मनुष्यों की तो बात ही क्या? मैं तथागत का साकार रूप बन बैठी थी। सम्राट साम्राज्ञी, राजकुमार एवं राजकुमारी असंख्य जनसमुदाय के साथ मेरी अराधना करते थे। नित्य दीपावली होती थी यहाँ श्रद्धालुओं के पत्र-पुष्प से मेरा बहिरङ्ग और भी कमनीय हो उठा था। मेरे अनमोल हीरे और माणिक्य राका को भी मात किया करते थे। मेरे ऐश्वर्य की वह पराकाष्ठा थी। बस।

पथिक—तब, आज तुम इस दशा में क्यों हो शिले?

शिला—अहा, वह भी सुनना चाहते हो? पर वह है व्यथा की एक सिमटी कहानी। दर्द और टीस से भरी हुई। सुनोगे तो रोओगे। खैर, यदि तुम सुनना ही चाहते हो तो सुनो। कुछ दिन बाद प्रियदर्शी की जीवन-लीला समाप्त हो गयी। और वहीं पर मेरे ऐश्वर्य में भी आवर्त पड़ा। तत्पश्चात् कितने उथल पुथल हुये और धरती पर पुनः पाप की लहर उठी। भारतीय भी इसमें अपने हाथ बँटाये और तब तथागत के प्रेम एवं श्रद्धा से सींची हुई वे हरी भरी बल्लरियाँ स्वयं भारतवासियों के ज्ञान की आँख मूँद कर चलने से उन्हीं के पैरों में उलझ गयी। तुम भारत वासियों ने इसका थोड़ा-सा भी ख्याल न किया कि ये लता-बेलियाँ मेरी ही सींची हुई हैं दे दी एक झटका-अमरावती की वे हरी-भरी पत्तियाँ कुचल दी गयीं और वे छिन्न-भिन्न होकर लोटने लगीं। जब यहीं के भाइयों ने रुद्र रूप धारण कर हमें अपनी कठोरता का व्यवधान बनाया तो फिर विदेशी यवनों का क्या कहना, जो हमारी रक्त-मज्जा को चूसकर भी संतुष्ट न हुये। हमारे अङ्ग भङ्ग

कर दिये गये। तोड़ फोड़ कर भी वे लोग सन्तुष्ट न हुये। अहा ! क्या सुनोगे; इसी समय ब्राह्मणों की धर्म गण्डिका पर कितने बौद्ध भिक्षुओं का बलिदान हुआ। रक्त से हमारा सम्पूर्ण शरीर सिहर उठा। मैंने माँ धरती से शरण की याचना की और उसने मुझे अपनी गोद में छिपा लिया। पूछो इसी धरती माँ से पूछो।

क्यों माँ ?

[धरती का थोड़ा सा कम्पन हुआ और उसमें से आवाज आने लगी—]

धरती—हाँ पथिक, शिला ने जो कुछ कहा ठीक है। मेरे तो खुद सुहाग लुट गये। और यह बेचारी शिला तो…। अहा, मेरे कानन को मेरे ही बच्चों ने बीरान बना दिया। मेरा भी वह एक समय था, जब मैं शीतल सुन्दर और शान्त-कानन थी। मेरे वक्ष पर मृग और मयूर लोटते थे। मृगी आनन्द से छलागें मारती थीं और मयूर नाचते थे। रम्यता की अभिव्यञ्जना ने इसे अत्यन्त आकर्षक एवं मनोहर बना दिया था। तभी एक समय भटकते भटकते पाँच तपस्वी आये। समाधि में लग गये वे पाँचों और कुछ दिन यों ही बीत चला। तब भगवान् बुद्ध ने बुद्धगया से आकर मेरी रम्यता में चार चाँद लगा दी। मैं उनकी श्रद्धा का आभारी हुआ और वे सर्वप्रथम मेरे ही आँगन में ज्ञान के दीप जलाये। तब से नित्य ही दीपावली होती थी मेरे यहाँ। पशु-पक्षी भी ज्ञान के चिराग से आलोकित हुये थे। सुना ही होगा, मेरी एक सुवर्ण-मृगी ने काशी नरेश के ज्ञान की आँखें खोल दी थी।

पथिक—हाँ, उस सुवर्ण-मृगी की कहानी सुना है।

धरती—हाँ, तब दूर दूर से तीर्थयात्रियों की भीड़ बढ़ने लगी। मेरी मिट्टी पवित्र समझी जाने लगी और तीर्थ यात्रियों के मस्तक में लगी अत्यन्त पवित्रता से। ज्ञान के भूखे बच्चों को आकुलाते हुये देख मैंने उन्हें यह प्रासाद दिया था। दुखिया मेरी छाँह में विश्राम करते थे और भगवान् की शरण में होते थे। कृत-कृत कह नहीं सकते, पवित्रता से भींगी भीगी तथागत के सदुपदेशों की वे लड़ियाँ मेरी जीवन की घड़ियों में कितनी महत्त्वदायनी है। पर संसार की गति विचित्र है। एक दिन के मेरे वे ऐश्वर्य अपने ही बच्चों द्वारा लुट गये। तब शिला ने मुझे अपनी गर्भ में छिपाने को कहा। मैंने अपनी बेटी को गोद में छिपा लिया। बेटा गौर से देखो ! शिला आज भी कितनी सुन्दरी है। इसमें पवित्रता के मन्त्र फूँके गये थे। शुचिता की प्रतिमूर्ति है यह।

पथिक—(गहरी साँस लेकर) यह तो है माँ! प बताओ कि यह शिला तुम्हारी गोद से उछल कर बाह कैसे आयी ?

धरती—बेटा, तुमने बड़ी अच्छी कही। यह भी सु लो। जब हमारे वक्षस्थल पर हमारे ही पुत्र-पुत्रि के लहू बहने लगा तो मैं घबड़ा सी गयी। इधर शिला का अनुरोध तो था ही। मैंने उसे अपने गर्भ में रख लिया और वह सो गयी। तब मेरे ऊपर वि के घोर जंगल छा गये। नीम के वृक्ष देखते हो न? मेरे पुराने साथी हैं। मेरे ऊपर घना जंगल छा गया। कई शताब्दियों तक इस दशा में रही। अन्त में कहीं घूमता घामता सिंहल द्वीप का एक भिक्षु आया। ना तुम जानो।

पथिक—(सोत्साह से)—हाँ, हाँ, मैं जानता हूँ उस महान् आत्मा को क्यों न जानूँगा। नाम उनका—'अनागारिक धर्मपाल'।

धरती—ठीक जानते हो तुम। वही अनागारिक ध पाल। हाँ तो वे आये। कुछ दिन रहने के अनन्तर वे 'धम्मेक स्तूप' को देख आश्चर्य विस्मित हुये और उधर घूमने लगे। तभी उनकी दृष्टि एक शिला-खण्ड पड़ी, जिसमें प्रियदर्शी के युग के लिखित थे ये शब्द— "मूलगंध कुटि"। इसी के आधार पर, वह ज्ञानी अप अलौकिक प्रतिभा से हमारा सारा इतिहास जान गया। तब अपने कठिन अध्यवसाय से पुनः उसने मेरा जीर्णोद्धा भी किया। आज मेरा जो कुछ भी देखते हो वह उ महात्मा की देन है। उसे भूलना न बेटा और न मैं उसे भूलूँगी।

पथिक—(सजल नयन हो) माँ धरती ? रुको बीती बातें अन्तस्तल में एक अजीब कोलाहल ला हैं। वेदना के प्रशान्त सागर से विश्राम प्राप्त मस्तिष्क में टीस की एक आँधी आ गयी है। अहा, यह मान जीवन कैसी विचित्रता की शृंखला में बँधा है। इसके

बहिरङ्ग कितने सुन्दर हैं पर अन्तरङ्गमें कितना बड़ा संघर्ष। हम बहुत शीघ्र ही सुख के दिन भूल जाते हैं पर दुख की यामिनी लम्बी होती है और यह बेचारी शिला, अब पुरातत्व संग्रहालय की एक वस्तु मात्र रह गयी है। परन्तु गौरव है माँ, यहाँ आज भी तुम्हारी गोद में कतिपय महान् आत्मायें अपनी जीवन-क्रीड़ा की धूल उड़ा रही हैं।

शिला—ठीक कहते हो पथिक आज भी वे आत्मायें धन्य हैं। मैं तो उन आत्माओं की दासी हूँ, जिन्होंने अपनी करुणा के पंख के सहारे मेरे बिखरे वैभव को समेट कर कृतकृत्य किया है।

पथिक—(घुटने टेक कर प्रणाम् करता हुआ) धन्य हो माँ धरती! और धन्य हो तू शिले!! माँ धरती की गोद पुनः भर आयी है। आज यह भूमि पुनः एक धार्मिक रंगमञ्च बन गई है। यहाँ प्रतिवर्ष-सुदूर देशों से बहुसंख्यक मानव अपने परिवार के साथ श्रद्धा का सम्बल ले, थके-मादे, सत्य-प्रेम एवं करुणा का अभिनय करने आते हैं। आज इस भूमि की रेणु-राशियों के स्पर्श से ही मानव पवित्र हो उठता है, क्योंकि ये रेणु-राशियाँ कभी तथागत के चरणों को स्पर्श की थीं। आज तुम भी पवित्र हो शिले! जो उसी रेणु-राशियों के बीच इधर उधर पड़ी हो। उसी के इर्द-गिर्द।

तृष्णा, पूँजीवाद, विकेंद्रीकरण

श्री चन्द्रिकाप्रसाद 'जिज्ञासु'

तृष्णा, पूँजीवाद और विकेंद्रीकरण शब्दों में परस्पर वही सम्बन्ध है जो रोग, लक्षण और चिकित्सा शब्दों में एक दूसरे के साथ है। तृष्णा रोग है, पूँजीवाद रोग का लक्षण और विकेन्द्रीकरण उस रोग की चिकित्सा। इस तत्व का स्पष्टीकरण इन शब्दों से सम्बन्धित इतिहास द्वारा होगा जो संक्षेप में इस प्रकार है—

१. तृष्णा

ढाई हजार साल पहले की बात है जब भारत में भोगैश्वर्यवाद चरम सीमा में पहुँच गया था। वह सामंतशाही युग था। देश अगणित छोटे-बड़े राज्यों में विभक्त था और ये राजे तथा इनके साथी सामंतगण प्रजा के समस्त धन के स्वामी थे। उत्पादन और सेवा साधारण जनता करती थी। किन्तु उसका भोग और आनन्द राजे, सामन्त तथा उनके दरबारी व चटुकार करते थे। चतुर कोमल सुन्दरी स्त्रियाँ तथा उत्तम भोग्य सामग्री भेंटकर इन राजाओं के कृपापात्र बन जाते थे, और कामिनी व कंचन के लिए ये एक दूसरे से युद्ध-विग्रह भी करते थे। कविजन भी राजाओं व राजवंशों की कीर्ति के अत्युक्तिपूर्ण गुण-गान द्वारा उनके अहंकार को बढ़ाया अथवा नित नयी सरल-श्रृंगारमयी कविता-रूपी घृताहुति डालकर उनकी कामाग्नि को प्रज्वलित किया करते थे जिसके पुरस्कार में राज-सम्मानित होते व राजकवि बनते थे। धर्म-व्यवसायी पुरोहितगण भी सांसारिक भोगैश्वर्य की अभिवृद्धि तथा मरने के बाद अपरिमित भोग-सम्पन्न स्वर्ग की सम्प्राप्ति "यज्ञेन कल्पान्तम्" यज्ञों द्वारा सम्भव बताकर इन राजाओं से विविध प्रकार के बड़े-बड़े आडम्बरपूर्ण यज्ञ कराते रहते थे। इन यज्ञों के लिए नदियों के निकट विशाल मण्डप बनाये जाते थे, जिनमें महीनों तक रात्रि में यज्ञ हुआ करते थे, और हजारों मन विशुद्ध घृत, शर्करा और बहुमूल्य हवन सामग्री स्वाहा कर दी जाती थी। यह आहुत होनेवाली घृतादि यज्ञ-सामग्री तथा शत-शत, सहस्र-सहस्र याज्ञिकों के भोजन के लिये दुग्ध, मिष्टान्न, अन्न, फल आदि पदार्थ राजाओं के आतंक के कारण घर घर से असहाय जनता लाती थी। यज्ञों में देवताओं व सोमपा पितरों का सोम-सुरा द्वारा तर्पण तथा पान भी होता था और सामग्री के अतिरिक्त बलिपशु के मांस का भी हवन होता था। इतिहासविदों ने लिखा है कि उस समय देशव्याप

यज्ञों के अग्नि में आहुत होने वाले पशुमांस के 'चट-चट' शब्द से भारतीय आकाश गूँज उठा था। यज्ञांत में सोम-सुरा पान से उन्मत्त पुरोहित यज्ञशाला में समवेत स्त्रियों के साथ लज्जाहीन विनोद करते थे। इत्यादि। इस युग में राजाओं, सामन्तों और पुरोहितों आदि के निवास के लिए तो बड़े बड़े सुन्दर भवन होते थे, किन्तु सामान्य जनता, जो इनके लिए भोग्य सामग्री का उत्पादन तथा इनकी सेवा करती थी, कच्ची कोठरियों, झोपड़ियों, खोहों, कंदराओं तथा वृक्ष-कोटरों में रह कर अभाव और कष्ट का जीवन व्यतीत करती थी।

इस घोर वैषम्य-पूर्ण युग में भारत-भूमि में एक महा पुरुष ने जन्म ग्रहण किया। वह उन श्रेष्ठ इक्ष्वाकुवंशीय क्षत्रिय-कुल में पैदा हुआ था जहाँ भोगों की प्रचुरता थी किन्तु उसके करुणार्द्र हृदय को भोग भाये नहीं। उसे वे दुःखों के मूल दिखाई दिये और उपरति हुई। वह सत्य की खोज के लिए भोगों से परिपूर्ण गृह त्याग कर फकीर हो गया। वह कई साल तक तत्कालीन विख्यात विद्वानों व आचार्यों की सेवा में रह कर ज्ञानार्जन करता रहा, किंतु जब उसका समाधान न हुआ तो वह एकांत वन में योग-साधन व तप करने लगा। छः साल तक घोर तप करके उसने शरीर को सुखा दिया, पर जिसे वह खोजता था वह वस्तु उसे न मिली। तब उसने न कष्ट-न आराम दोनों के बीच माध्यमिक मार्ग को अपनाया, और वह सफल हुआ। एक रात जब वह स्थिर चित्त हो एकांत वन में एक विशाल वृक्ष के नीचे ध्यानासन पर बैठा तो उसके हृदय में प्रज्ञा का महाप्रकाश हो गया। उस प्रकाश में उसने जगत के कार्य-कारण को देखा, दुःखों के असली रूप को देखा, दुःखों के मूल को देखा और दुःखों के विनाश के उपायों को भी देख लिया। वह चिल्ला उठा—"अरे यह तृष्णा-तृष्णा-तृष्णा!" वह सम्यक् संबुद्ध हो दुखित संसार के सम्मुख आया और भारतीय मस्तिष्क को संबोधित कर उसने अपनी अलौकिक वाणी से भोगों की निस्सारता दिखाते हुए दुःखों के मूल तृष्णा के त्याग का उपदेश दिया। उसकी वाणी हृदयवेधिनी थी। बड़े बड़े विद्वानों राजाओं और सेठों ने शरणापन्न हो उसके विशुद्ध मार्ग का अनुसरण किया। देश की विचारधारा बदलगयी। भोगैश्वर्य-साधक द्रव्यमय यज्ञ बंद हुए और ज्ञानमय लोकोपकारी यज्ञ आरंभ हुए। नाशमान भोगों के प्रति लोगों को विराग हुआ और लोग बहुजन हिताय, बहुजनसुखाय, कूएँ-बावली-तालाब बनवाने, बाग लगवाने तथा लोक निवास, संघाराम, विहार, पुस्तकालय, विद्यालय, चिकित्सालय, पशुशाला आदि निर्माण के लोकोपयोगी सार्वजनिक कार्य करने लगे। धर्म का आधार क्रिया-विशेष-बहुल कर्मकांड न रह कर संयम, सदाचार और लोकोपकार हो गया। इस अभिनव ज्ञानालोक से न केवल देश प्रकाशमान हुआ वरन् यह भारतीय ज्ञानालोक समस्त संसार में फैल गया।

२. पूँजीवाद

इसके ढाई हजार साल बाद।

योरप में भौतिक विज्ञान का उदय हुआ—वाष्प-शक्ति, विद्युत-शक्ति तथा यंत्र-कला का विकास हुआ, और सम्मिलित विशाल पूंजी से बड़े-बड़े उद्योग धंधे जारी हुए। रेल, तार और जहाज चलने लगे, बड़ी बड़ी मिलें और बड़े बड़े कारखाने खुल गये, जिनमें रुई-रेशम-ऊन से बनने वाला कपड़ा तथा लोहा तांबा-पीतल आलमोनियम आदि धातुओं और चमड़े एवं मसाले इत्यादि से बनने वाली मानवीय आवश्यकता एवं आराम की विविध वस्तुओं का इतने प्रचुर परिणाम में उत्पादन होने लगा कि पाश्चात्य उद्योगपतियों को उनके विक्रय के लिए बाजारों की आवश्यकता हुई। उन्होंने बड़ी-बड़ी कंपनियाँ बनाकर जहाजों और रेलों द्वारा समस्त संसार के बाजारों में अपना माल पहुँचा दिया तथा वहाँ का कच्चा माल अधिक मूल्य देकर खरीदना आरंभ कर दिया। कल-कारखानों में बने माल का मुकाबला हाथों द्वारा बननेवाली चीजें न कर सकीं। फलतः गृह-उद्योग नष्ट होने लगा और जहाँ-जहाँ कारखाने खुले, कारीगर अपना हाथ का धंधा त्यागकर मिलों में मजदूरी करने को विवश हुए। इस प्रकार सस्ते मजदूरों द्वारा चलनेवाली मिलों की शक्ति से ये उद्योगपति संसार की संपत्ति का शोषण करने लगे। अरबों-खरबों की विशाल पूंजी से बड़ी-बड़ी कंपनियाँ चलाकर संसार के समस्त उत्पादन और व्यापार तथा बड़े-बड़े बैंकों को स्थापित करके अंतरराष्ट्रीय पूंजी पर इन पूंजीपतियों ने अधिकार कर लिया और बड़े-बड़े प्रेसों

द्वारा अखबारों को जारी कर संसार के लोकमत पर भी अपना अधिकार जमा लिया। लोकतंत्र-व्यवस्था का प्रयोजन यद्यपि राजाओं और सामंतों के हाथ से सत्ता छीनकर जनता के हाथ में देना था, किन्तु जब लोकतंत्रों की स्थापना हुई तो सत्ता सामंतों के हाथ से निकलकर पूंजीपतियों के हाथों में आ गयी, क्योंकि सामान्य जनता में खर्चीले चुनावों के लड़ने की शक्ति नहीं होती, फलतः विधान-सभाओं और संसदों में लोक प्रतिनिधित्व पूंजीपतियों व उनके आदमियों के हाथों में होता है मंत्रिमंडल उनके संकेतों के अनुसार नाचता है। इस प्रकार पूँजीवाद के समुदय से पाश्चात्य देशों का मानव समाज दो भागों में विभक्त हो गया—एक ओर पूंजीपति; दूसरी ओर श्रमजीवी। एक ओर अपरिमित भोगैश्वर्य; दूसरी ओर असीम कष्ट, अभाव, श्रम और संकट।

यह पूंजीवाद यरोप में जन्मा था, अतः यूरोप में ही इसका समुच्छेद करनेवाले एक महापुरुष का भी जन्म हुआ। इस महा पुरुष ने असीम यातनाओं को सहते हुए अपने जीवन को अध्ययन में लगा दिया। वह पुस्तकालयों का प्राणी बन गया। उसने समस्त संसार के इतिहास और व्यवस्थाओं को पढ़ा, अर्थशास्त्र को घोंटा, हर विभाग के आंकड़े एकत्रित किये और सब पर गंभीर मनन करके एक अद्भुत ग्रंथ लिखा। इस ग्रन्थ के द्वारा उसने मानव मस्तिष्क को संबोधित करते हुए घोषणा की, इतिहास को आर्थिक दृष्टि से देखो, समस्त संघर्षों, अनर्थों और युद्धों का मूल यह व्यक्तिगत पूंजीवाद है। उसने पीड़ित मानवता को उद्बोधित करके उसे पूंजीवाद के विरुद्ध महान सामाजिक क्रांति करने का संदेश दिया। उसके प्रमुख शिष्यों ने रूस में वह खूनी क्रांति कर दिखाई और उस क्रांति के बाद वहाँ साम्यवादी सरकार स्थापित हुई, देश की समस्त पूंजी तथा समस्त उद्योग-धंधों का राष्ट्रीयकरण होकर वैयक्तिक संपत्ति का विनाश हो गया।

३. विकेंद्रीकरण

अभी थोड़े दिनों की बात है जब पाश्चात्य पूंजीवाद के फलस्वरूप हमारा देश साम्राज्यवादिता का शिकार था। ब्रिटिश साम्राज्यशाही ने अपने फौलादी पंजे से देश की गर्दन इस तरह मरोड़ रखी थी कि वह आजादी से साँस न ले सकता था। कई सौ साल पहले अंग्रेज यहाँ व्यापारी के रूप में अपना माल बेचने आये थे और 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' के नाम से कारबार के लिए उन्होंने अपने कदम जमाये। व्यापार करते-करते कम्पनी राजनीति में भी दखल देने लगी। और कालचक्र के प्रभाव से बहुत जल्द यहाँ का शासन भी अँग्रेजों के हाथ में चला गया। शासन-सत्ता हाथ में आते ही ब्रिटिश पूंजीपतियों की बन आयी। उन्हें स्वच्छंदतापूर्वक यहाँ अपना माल बेचने और उद्योग-धंधे जारी करने का अवसर मिल गया। अब क्या पूछना था, न मालूम कितनी कम्पनियाँ यहाँ आ गयीं और उनके विशाल उद्योग-धंधे जारी हो गये। रेल, तार, जहाज, बिजली, कोयले की खानें, तेल के कूएँ, नहरें, चाय बगीचे, जंगलात, माहीगीरी, कपड़े और चीनी की मिलें, लोहे लकड़ी के कारखाने, बैंक, अखबार इत्यादि विविध प्रकार के बड़े-बड़े उद्योग यहाँ चलने लगे। ब्रिटिश करेंसी ने सिक्कों के साथ नोट भी निकाले। नोटों के सम्बन्ध में पहले ऐलान था कि जितने रुपयों के नोट जारी होंगे उतने का सोना करेंसी में रखा रहेगा। पीछे यह शर्त हट गयी, सोना समंदर पार पहुँच गया और अरबों-खरबों के कागज के टुकड़े देश में रह गये। संक्षेप में यह कि ब्रिटिश पूंजीवाद और साम्राज्यशाही के प्रताप से देश का समस्त उत्पादन और व्यवसाय विदेशियों के हाथ में चला गया। विदेशी माल से भारत के बाजार पट गये और यहाँ की शिल्प-कला का उन्मूलन हो गया। देश के असहाय कारीगर अपना पुश्तैनी गृहोद्योग त्याग कर मिलों की मजदूरी व कुलीगीरी करने को विवश हो गये। देश निरा खेतिहर तथा कच्चे माल का उत्पादक मात्र रह गया। व्यापारके नाम से यहाँ कुछ कमीशन एजेंट सेठ थे जिनका धंधा विदेशी माल को गाँव-गाँव में फैलाकर भारत का रुपया बटोर बटोरकर समुन्दर पार भेजकर विदेशी पूँजीपतियों के खजाने भरना था; देशी शासन के नाम से कुछ बचे-खुचे करद राजा और सामंत थे जो एक ओर अंग्रेज अधिकारियोंकी पूजा व खुशामद करते थे तथा दूसरी ओर गरीब जनता का दोहन व उत्पीड़न; विदेशी हुकूम के नाम से स्वामिभक्त नौकरशाही थी जो अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए अपने देशवासियों की दुश्मन थी, ब्रिटिश शासन के विरुद्ध आवाज उठाते ही

देशभक्तों को जेलों में बन्द कर देती थी। देश का दिन-रात मनमाना शोषण और दोहन होता था, पर कोई चूँ न कर सकता था।

इस तरह पूँजीवादी साम्राज्यशाही का जिस समय देश पर भयंकर आतंक छाया था, भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में एक महामानव आया। उस महात्मा ने पुराना और नया सब कुछ पढ़ा, सुना और देखा था। उसने अपने दिव्य ज्ञान से असहाय और निरुपाय देश को उसका प्राचीन अभेद्य अहिंसा-कवच पहना दिया और सत्याग्रह की तलवार हाथ में पकड़ाकर संसार की प्रबलतम साम्राज्यशाही के विरुद्ध सन्मुख युद्ध के लिए खड़ा कर दिया। उसने खुल्लम खुल्ला ललकार देकर असहयोग, सविनय अवज्ञा तथा करबन्दीकी साम्राज्यशाही से आजादी की लड़ाई छेड़ दी और देश के भीतर रचनात्मक कार्य आरंभ कर दिये। वह नहीं चाहता था कि स्वाधीन भारत में पूँजीवाद, जो समस्त अनर्थों का मूल है, पनपे और उसके परिणाम स्वरूप देश में रक्तमयी लालक्रांति हो, अतः उसने देश को एक महामन्त्र की सूझ दी। उसका वह महामन्त्र था "विकेंद्रीकरण" का सिद्धान्त। उसने घोषणा की—मैं अपने देश में बड़े-बड़े कल-कारखानों की वृद्धि नहीं चाहता कि सम्पत्ति केन्द्रीभूत हो और देश में बोलशेविज्म पैदा हो। उसने कहा—मैं अपने देश में गृहोद्योगों को पनपाना चाहता हूँ ताकि संपत्ति का समस्त जनता में स्वभावतः वितरण होता रहे। और संपत्ति का 'केन्द्रीकरण' न होने पाये। उसने कपड़े की समस्या की पूर्त्ति के लिए खादी का कार्यक्रम देश के आगे रखा, और शर्त लगाई—"तुम खादी का कार्यक्रम पूरा करो, देश को खादी का सफेद समुद्र बना दो, मैं तुम्हें एक साल के भीतर आजादी दिला दूँगा। यदि न दिला सका तो हिमालय गलने चला जाऊँगा।"

कहना न होगा उस युग-पुरुष की प्रतिज्ञा पूरी हुई। भारत सर्वतन्त्र स्वतन्त्र हो गया। किन्तु राष्ट्रपिता के महामन्त्र और आदेश 'विकेन्द्रीकरण' की पूर्ति उसके उत्तराधिकारी अथवा जनता की सरकार के शासनाधिकारी कहाँ तक कर सके हैं?

एक प्राचीन कथा

'नमो-बुद्धाय'

कुमारी सावित्री थैन

किसी समय भारतवर्ष के एक गाँव में एक बौद्ध परिवार रहता था। इस परिवार के सब लोग पवित्र जीवन व्यतीत करते थे। इसी कारण गाँव के सब लोग उनसे प्रेम करते थे। उनके दो बच्चे थे, एक लड़का और एक लड़की। वे दोनों बच्चे जन्म से ही दयालु थे। पशु-पक्षियों से प्रेम करना, अपने माता-पिता, बड़े बूढ़ों की आज्ञा का पालन करना तथा उनका आदर करना उनके मुख्य कर्त्तव्य थे।

प्रति दिन सायं-प्रातः यह परिवार पंच-शील ग्रहण करता था, वे दोनों बच्चे भी प्रसन्नता से भगवान् बुद्ध की वन्दना करते थे। तात्पर्य यह कि उस बौद्ध परिवार के लोग भगवान् बुद्ध की पूजा-अर्चना करते हुये, प्रसन्नतापूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे। माता ने बच्चों को शिशु-काल में ही भगवान् बुद्ध की जीवनी का सुन्दर इतिहास इस प्रकार बतला दिया था कि वह कहानी के रूप में बच्चों की कोमल बुद्धि में बैठ गया था। उनकी माता ने बतलाया था—

"भगवान् बुद्ध एक सुन्दर और कुलीन राज-वंशी राजकुमार थे। सुन्दर महल—जो कि सोने तथा बहुमूल्य रत्नों से सजाये हुए थे, और उपवन—जिनमें भिन्न

विविध प्रकार के फल, फूल एवं वृक्ष थे, निवास करते थे। उनके पहनने के लिए बहुमूल्य वस्त्र, खाने के लिए स्वादिष्ट भोजन थे। हीरे और रत्नों का भण्डार राज्य के कोष में उपस्थित था। इतना होने पर भी राजकुमार का हृदय बड़ा कोमल तथा दयालु था, वे हमेशा पशु-पक्षियों तथा गरीबों से प्रेम करते एवं उनकी सहायता करने की चेष्टा किया करते थे। इतने सुख के बीच रहते हुए भी राजकुमार प्रसन्न नहीं रहते थे, क्योंकि वे जानते थे कि संसार दुःखों से भरा है जन्म, बुढ़ापा, चिन्ता, दुःख और मृत्यु संसार के नियम हैं और जो मनुष्य के शत्रु हैं, इसलिये राजकुमार इन दुःखों को दूर करने के लिए और मनुष्य जाति को दुःख से विमुक्त करने के लिये मार्ग-अन्वेषण करने की सोचा करते थे। एक दिन राजकुमार ने इस वैभव, सुखी, सम्पन्न परिवार और रानी यशोधरा तथा राजकुमार राहुल को छोड़ कर साधु बन, जंगल को चल दिये। यह कार्य एक राजकुमार के लिए जो सुख की गोद में पला हो, बहुमूल्य कपड़े पहनता हो, उत्तम से उत्तम भोजन करता हो, एक पेड़ के नीचे जीवन बिताना कितना दुष्कर होगा, यह हम अनुमान कर सकते हैं। परन्तु राजकुमार ने हमारे कारण ये असीम दुःख उठाये, कारण कि वह हमको हृदय से प्रेम करते और हमको सांसारिक दुःखों से बचाना चाहते थे।

उन दो बच्चों की माता ने अपने बच्चों को 'नमो-बुद्धाय' का गूढ़ार्थ भी समझा दिया था और यह भी बतला दिया था कि ये दो शब्द उनको बड़े से बड़े दुःख में सहायता दे सकते हैं। 'नमो-बुद्धाय' शब्द हमेशा याद रखने से मनुष्य भाग्यवान तथा धनवान होता है। यही कारण था कि ये बच्चे जब कभी घर से बाहर जाते तो 'नमो-बुद्धाय' ही कहते थे। अगर वे अचानक डर जाते, तो वे तब भी इन्हीं दो शब्दों को दोहराते थे। रात को भी जब वे अचानक नींद से उठते, तो अंधेरे में भी नमो-बुद्धाय ही कहते थे और ये दो शब्द उनको हर तरह से शान्ति प्रदान करते थे। तात्पर्य यह है कि उन बच्चों की जबान पर नमो-बुद्धाय था और इस बात का उन्हें विश्वास था कि हमारी भगवान् बुद्ध सदैव रक्षा करते हैं।

एक दिन ये दोनों बच्चे अपने घर से बहुत दूर पर खेल रहे थे। एकाएक आसमान में बादल घिर आए और पानी पड़ने लगा। इन बच्चों ने भी एक पेड़ के नीचे शरण ली। पानी धीरे धीरे बढ़ने लगा। आँधी और तूफान भी बढ़ने लगे और बिजली कड़कने लगी। ये दोनों बच्चे डर कर एक दूसरे से चिपट गये। दोनों भींग रहे थे। और पेड़ के नीचे रहना भी उन्हें असह्य हो गया था। तब इन्होंने निश्चय किया कि घर को भाग चलें, परन्तु पानी की बूँदें जो उन पर पड़ रही थीं, बिजली की कड़कड़ाहट तथा चमक ने उनकी आँखों को बेकाम कर दिया। वे रास्ता भूल गये। दो घायल हिरनों की तरह वे बहुत डर गये और उन्हें यह भी विचार न रहा कि वे कहाँ हैं। दोनों भाई बहन एक दूसरे से अलग हो गये। लड़की तो भाग्य-वश घर पहुँच गई और लड़का रास्ता भूल कर जंगल में भटक गया। लड़की जब घर पहुँची तो उसने अपने माता-पिता से सब कथा कही। माता-पिता कथा सुनकर भयभीत हो गये। इसी समय तूफान जोरों से चलने लगी और दरवाजे से सिर निकालना इस अँधेरी और तूफानी रात में पिता के लिए कठिन हो गया। माता-पिता ने धूप, दीप जलाये और त्रिरत्न की वन्दना की कि त्रिरत्न उनके लड़के की जो इस तूफान में जंगल में रास्ता भूलकर भटक रहा है, रक्षा करे और उसको सकुशल घर पहुँचा दे। छोटी बहिन ने भी भगवान्-बुद्ध से प्रार्थना की कि उसका भाई सकुशल घर पहुँच जाय।

उनकी प्रार्थना सफल हुई। वह लड़का जो रास्ता भूल कर जंगल को चल दिया था, पानी से भींगा और कीचड़ में सना हुआ बिजली की चमक तथा अदृश्य देव के हाथ के सहारे एक पेड़ के नीचे लाया गया। देव ने माता पिता और छोटी लड़की को प्रार्थना करते सुन लिया था, इसलिए सहायता के लिए चल दिया। इसी बड़े पेड़ के खोखले में लड़के को शरण हेतु छोड़ दिया। इसी अदृश्य देव की सहायता से जो त्रिरत्न के अनुभाव से आया था, लड़के के खाने को फल तथा सूखी घास बिछाने को रख दी और लड़के के कपड़े अदृश्य देव की कृपा द्वारा सूख गये। लड़का बहुत थका हुआ था उसको घर और अपनी बहिन का विचार आया। लड़के ने पंचशील का उच्चारण कर और बहिन के लिए प्रार्थना की, कि वह भी कुशल मंगल

से हो और नमो-बुद्धाय कह कर सो गया । आधी रात में उस पेड़ के पास से दो यक्ष गुजरे उनमें से एक यक्ष निर्दयी था, जिसने लड़के को सोते देखा था । वह लड़के को खाना चाहता था, लेकिन उसका साथी यक्ष जो कुछ दयालु था ऐसा करने से उसे मना किया, परन्तु उसके कहने का उस पर कोई असर न हुआ क्रूर यक्ष उसको खाना चाहता था, और दयालु उसको बचाना चाहता था । वे झगड़ते-झगड़ते पेड़ के नजदीक पहुँच गये । ज्योंही क्रूर यक्ष ने लड़के पर हाथ डाला और झपट कर ऊपर उठा लिया, अपने क्रूर हाथों से उसको खाना ही चाहता था कि लड़का नमो-बुद्धाय के उच्चारण के साथ उठ बैठा । क्रूर यक्ष को ऐसा मालूम हुआ कि जैसे जलते हुए लोहे की लाल-लाल सलाखों पर उसका हाथ हो और उसने एकदम लड़के पर से अपना हाथ उठा लिया यक्ष को ऐसा मालूम हुआ कि उसका सारा शरीर जल रहा है और वह भाग गया । वह छोटा लड़का थका हुआ तो था ही, फिर जल्दी ही नमो-बुद्धाय कह कर सो गया । उस क्रूर यक्ष को कहीं भी शान्ति न थी । उसको ऐसा अनुभव हो रहा था कि वह सिर से पैर तक जल रहा है । इस यक्ष ने बहुत आदमी और बच्चे मारे और खाए थे, लेकिन आज जैसा अनुभव उसको कभी नहीं हुआ था । यह उसके लिए एक समस्या हो गई, जिसको वह सुलझाने में असमर्थ था । इसी विषय को लेकर वह यक्षपति के पास गया और उसको यह कहानी बताई । यक्षपति ने उससे कहा कि तूने उस बच्चे को कष्ट पहुँचाना चाहा जो बुद्ध की शरण में है । और यह भी उससे कहा कि जब तक वह प्रायश्चित न करेगा, तब तक वह स्वतंत्र नहीं । यक्ष ने विनय की कि मुझे प्रायश्चित के लिए क्या क्या करना होगा ? यक्षपति ने उसको सावधान करते हुए कहा कि तू अबसे किसी धार्मिक बौद्ध को हानि न पहुँचाना । यक्षपति ने उसे आज्ञा दी कि वह उस लड़के के पास सोने, हीरे और कीमती पत्थरों को लेकर जाए और उससे क्षमा मांगे । यक्ष भेंट लेकर लड़के के पास गया । लड़का अब तक गहरी नींद में सोया हुआ था, इसलिए वह लड़के के जगने तक ठहरा, सुबह को पश्चातापी यक्ष उस बौद्ध लड़के के पैरों पर गिर पड़ा, जो चीजें वह लाया था, उन्हें भेंट में दिया और क्षमा की भिक्षा मांगी । पर इस छोटे लड़के को कुछ भी मालूम न था । यक्ष ने ही सम्पूर्ण कथा सुनाई, यह बौद्ध लड़का उदास हुआ और तुरन्त क्षमा कर दिया । लड़के को अब भी अपने घर का रास्ता मालूम न था इसलिए इसी यक्ष ने द्रव्य सहित लड़के को घर पहुँचा दिया । उसके माता-पिता लड़के को घर पर सकुशल देखकर खुश हुए और तुरन्त ही उन्होंने धूप, दीप जलाकर त्रिरत्न का गुणगान किया । यक्ष भी अत्यन्त प्रसन्न हुआ और इस बात का प्रण किया कि मैं आज से दयालु यक्ष बनूँगा ।

उस धन से वह बौद्ध परिवार गाँव में बहुत धनवान हो गया और उस परिवार ने हमेशा दरिद्रों और बीमारों की सहायता की । बड़े बूढ़ों को सुख पहुँचाया । 'नमो बुद्धाय' शब्दों में बड़ा बल और शान्ति है । जवान, बूढ़े और बच्चों को इन शब्दों का प्रयोग करना चाहिए ।

धम्मपद

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

जिन ग्रन्थों की तीन वेष्ठनों में भगवान् बुद्ध के उपदेश प्रामाणिक रूप से संग्रहीत हैं उन्हें त्रिपिटक कहते हैं । त्रिपिटक का मतलब ही है कि तीन ग्रन्थसमूह ! उन में पहला है सुत्तपिटक, दूसरा है विनयपिटक और तीसरा है अभिधम्मपिटक ।

सुत्तपिटक में पाँच निकाय हैं । और विनयपिटक के

भी पाँच ही भाग हैं किन्तु अभिधम्मपिटक में हैं सात ग्रन्थ।

सुत्तपिटक के पाँच निकायों में एक है खुद्दकनिकाय अर्थात् क्षुद्रकनिकाय अर्थात् १५ छोटी-छोटी पुस्तकों का ग्रन्थ-समूह। इन पन्द्रह पुस्तकों में एक है धम्मपद।

सचमुच यदि आपकी यह इच्छा हुई हो कि आप एक और केवल एक पुस्तक को अपने जीवन-भर का साथी बनायें, तो आपको विश्व के पुस्तकालय में धम्मपद से बढ़कर दूसरी पुस्तक मिलनी कठिन है।

भगवद्गीता की तरह धम्मपद का भी बड़ा प्रचार है। प्राचीन काल में चीनी, तिब्बती आदि भाषाओं में इसके अनुवाद हुये हैं। वर्तमान काल में संसार की सभी सभ्य भाषाओं में—जर्मन, अंग्रेजी, फ्रेञ्च आदि में कई कई अनुवाद हो चुके हैं। श्री० अल्बर्ट जे. एण्डमन अपने अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका में लिखते हैं—

'यदि एशिया-खण्ड में कभी किसी अविनाशी ग्रन्थ की रचना हुई तो यह है।'

इन पदों ने अनेक विचारकों के हृदय में चिंतन की आग जलाई है। इन्हीं से अनुप्राणित होकर अनेक चीनी यात्री मंगोलिया के भयानक कान्तार और हिमालय की अलंघ्य चोटियाँ लांघकर भगवान् बुद्ध के चरणों से पूत भारतभूमि के दर्शनार्थ आये। इन्हीं को महाराज अशोक ने—जिन्होंने प्राणदण्ड का निषेध किया, गुलामी की प्रथा को कम किया, मनुष्यों और जानवरों तक के लिए अस्पताल खोले—शिलालेखों पर अंकित कराया। आज दो हजार वर्षों से रोम और ईसायियत की संस्कृति के प्रचार होते रहने पर भी, यूरोप और अमेरिका के सभी विद्यामंदिरों में—कौपेनहेगन से कैम्ब्रिज तक और शिकागो, सेंटपीटर्सबर्ग (लेनिनग्राड) तक—यह यूरोपियन और अमरीकन लोगों द्वारा श्रद्धा की दृष्टि से देखे जाते हैं।'

बंगला, मराठी, गुजराती आदि भारत की लगभग सभी भाषाओं में धम्मपद के अनुवाद प्राप्य हैं। भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी में तो अनेक पण्डितों द्वारा किए गए आधी दर्जन से भी ऊपर अनुवाद हैं।

अब अनुवादों की चर्चा न कर आपका मूल धम्मपद से ही परिचय करायें।

किसी भी ग्रन्थ का पहला श्लोक प्रायः बहुत महत्त्व का समझा जाता है। मंगलाचरण अथवा नमस्कार गाथा से ग्रन्थारम्भ करने की रूढ़ि भी है। किन्तु धम्मपद तो बुद्ध-वचन है। उसमें क्या मंगलाचरण और कौन किसे नमस्कार करेगा? उसका पहला श्लोक सारे बुद्धोपदेश का सार है—

मनोपुब्बङ्गमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पदुट्ठेन भासति वा करोति वा।
ततो नं दुक्खमन्वेति चक्कं व वहतो पदं ॥१॥

सभी धर्म अर्थात् सभी अवस्थायें पहले मन में पैदा होती हैं। मन ही मुख्य है, वे मनोमय हैं। जब आदमी मलिन मन से बोलता वा कार्य करता है, तब दुःख उसके पीछे वैसे ही हो लेता है, जैसे (गाड़ी के) पहिये बैल के पैरों के पीछे पीछे।

गाड़ी के पहिये बैल के पैरों के पीछे पीछे। क्या घरेलू उपमा है!

दुःख की उत्पत्ति ही नहीं, सुख की उत्पत्ति का भी मूल कहा गया है—

मनोपुब्बङ्गमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पदुट्ठेन भासति वा करोति वा।
ततो नं दुक्खमन्वेति छाया व अनपायिनी ॥२॥

सभी धर्म पहले मन में उत्पन्न होते हैं, मन ही मुख्य है, वे मनोमय हैं। जब आदमी स्वच्छ मन से बोलता वा कार्य करता है तब सुख उसके पीछे वैसे ही हो लेता है, जैसे कभी साथ न छोड़ने वाली छाया आदमी के पीछे पीछे।

कभी आदमी का साथ न छोड़ने वाली छाया। यह भी पहली उपमा की ही तरह कितनी घरेलू और कितनी फिट है।

आज संसार में चारों ओर वैराग्नि प्रज्वलित है और उससे पैदा होने वाले धुएं ने सभी को अन्धा बना रखा है। हर कोई आत्म-रक्षा के नाम पर हर किसी के विरुद्ध अस्त्र-शस्त्र लिए सज्जित है। जबान पर मैत्री है, मन में वैर है। ऐसे वैर-विदग्ध संसार के लिए बुद्ध की सनातन वाणी ही एक मात्र वह अमृत है जो प्रतिदिन प्रलय की ओर अग्रसर होते हुए संसार की रक्षा कर सकता है। धम्मपद का उपदेश है—

न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तिध कुदाचनं।
अवेरेन सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो ॥

वैर, वैर से कभी शान्त नहीं होता, अवैर से ही वैर शान्त होता है—यही संसार का सनातन नियम है।

क्या आज का ज्ञानाभिमानी मूर्ख संसार बुद्ध की इस वाणी को सुनेगा ?

धम्मपद के कुल २६ (छब्बीस) वर्ग या परिच्छेद हैं। प्रत्येक वर्ग में एक एक विषय की गाथायें संकलित हैं, किन्तु पहला वर्ग इस नियम का अपवाद है। इस में जुडवां गाथायें हैं—जैसे पहली दोनों गाथायें—इसी से उसका नाम यमकवर्ग है।

दूसरे वर्ग में अप्रमाद का उपदेश है। भगवान् बुद्ध की अन्तिम वाणी भी यही थी—अप्पमादेन सम्पादेथ—अप्रमाद पूर्वक अपने उद्देश्य की प्राप्ति में प्रयत्नशील रहो। अप्रमाद वर्ग की पहली गाथा है—

अप्पमादो अमत-पदं पमादो मच्चुनो पदं।
अप्पमत्ता न मीयन्ति ये पमत्ता यथा मता ॥१॥

अप्रमाद अमृत पद है, प्रमाद मृत्यु का पद। अप्रमादी मनुष्य मरते नहीं, और प्रमादी मृत ही के समान होते हैं।

प्रमाद की इससे अधिक निन्दा क्या होगी ?

तीसरा वर्ग है चित्त-वर्ग। बुद्ध-मार्ग साधना का मार्ग है, चित्त की विशुद्धि का मार्ग। कुपथ पर आया हुआ चित्त आदमी का कितना बड़ा शत्रु है। कहा है—

दिसो दिसं यन्तं कयिरा वेरी वा पन वेरिनं।
मिच्छापणिहितं चित्तं पापियो नं ततो करे ॥

एक शत्रु दूसरे शत्रु की, एक वैरी अपने वैरी की जितनी हानि कर सकता है, कुमार्ग पर गया हुआ चित्त आदमी की उससे कहीं अधिक हानि कर सकता है।)

और सुमार्ग पर गया हुआ चित्त ? सुनिये—

न तं माता पिता कयिरा अञ्ञे वापि च ञातका।
सम्मापणिहितं चित्तं सेय्यसो नं ततो करे ॥

न माता पिता, और न कोई दूसरा ही आदमी की उतनी भलाई कर सकता है, जितनी सन्मार्ग पर गया हुआ चित्त।

आदमी अपने दोषों की ओर से उदासीन हो, दूसरों की दिन भर आलोचना किया करता है। मूर्ख समझता है कि इससे उसके अपने दोष ढँके रहेंगे। धम्मपद का उपदेश है—

न परेसं विलोमानि न परेसं कताकतं।
अत्तनो व अवेक्खेय्य कतानि अकतानि च ॥

आदमी को चाहिये कि वह दूसरों के दोषों, दूसरों की कमियों की ओर देखता न रहकर अपनी ही कमी की ओर ध्यान दे।

पाँचवाँ वर्ग बाल-वर्ग है। अर्थात् मूर्खों के बारे में। इस वर्ग की तीन गाथायें इस प्रकार हैं—

यो बालो मञ्ञती बाल्यं पण्डितो वापि तेन सो।
बालो च पण्डितमानी, स वे बालोति वुच्चति ॥

यदि आदमी मूर्ख हो और अपने को मूर्ख समझे तो वह भी एक हिसाब से पंडित है। मूर्ख है और अपने को समझता है पंडित, वही असली मूर्ख है।

यावजीवम्पि चे बालो पण्डितं पयिरुपासति।
न सो धम्मं विजानाति दब्बी सूपरसं यथा ॥

इस प्रकारका मूर्ख आदमी चाहे जन्मभर भी पंडितों की संगति में रहे, वह सद्धर्मको नहीं जान सकता। कैसे! जैसे कलछी दाल के रस को।

मुहुत्तमपि चे विञ्ञू पण्डितं पयिरुपासति।
खिप्पं धम्मं विजानाति जिह्वा सूपरसं यथा ॥

उसके विपरीत बुद्धिमान् आदमी चाहे मुहूर्त भर भी पण्डित की संगति में रहे, वह सद्धर्म को जान लेता है। कैसे ? जैसे जिह्वा दाल के रस को।

यह मूर्ख आदमी की कलछी से और पंडित की जिह्वा से उपमा भी क्या खूब है !

बाल-वर्ग के बाद पंडित-वर्ग और अरहन्त-वर्ग हैं, जिनमें आदर्श मनुष्य का चित्र देखने को मिलता है।

सहस्स-वर्ग में आत्म-विजयी का महात्म्य इस प्रकार बखान किया गया है—

यो सहस्सं सहस्सेन संगामे मानुसे जिने ।
एकं च जे य्यमत्तानं स वे संगामज्जुत्तमो ॥

एक आदमी संग्राम में लाखों आदमियों को जीत ले, एक दूसरा अपने आपको जीत ले । यह दूसरा आदमी ही सच्चा संग्राम-विजयी है ।

नौवां पर्व पाप-वर्ग है । उसकी पहली गाथा में मन के बारे में जो कुछ कहा गया है, वह सभी कल्याण-मार्ग के पंथियों का अनुभव है---

अभित्थरेथ कल्याणे पापा चित्तं निवारये ।
दन्धं हि करोतो पुञ्ञं पापास्मि रमते मनो ॥

शुभ कर्म करने में प्रमाद न करे, अशुभ-कर्म से मन को हटाये । शुभ-कर्म करने में ढील-ढाल करने में मन पाप में रत होने लगता है ।

उक्ति है कि बाग में फल फूल न लगाये जायेंगे तो झाड़ झंखाड़ उगेंगे ही ।

११ वां वर्ग जरा-वर्ग है । उसकी आरंभिक गाथा में अप्रमादी मनुष्य को जो फटकार बताई गई है, वह संसार के वाङ्मय में अन्यत्र शायद ही मिले ।

कोनु हासो किमानन्दो निच्चं पज्जलिते सति ।
अन्धकारेन ओनद्धा पदीपं न गवेस्सथ ॥

चारों ओर आग लगी है, और तुम्हें हंसी और मज़ाक़ सूझता है । अन्धकार से घिरे हो तब भी तुम प्रदीप को नहीं खोजते ।

भगवान् बुद्ध को जब ज्ञान प्राप्त हो गया तो कहा जाता है कि ये सर्व प्रथम दो गाथायें उनके मुँह से निकलीं--

अनेकजातिसंसारं सन्धाविस्सं अनिब्बिस्सं ।
गहकारकं गवेसन्तो दुक्खा जाति पुनप्पुनं !
गहकारक दिट्ठोसि पुन गेहं न काहसि ।
सब्बा ते फासुका भग्गा गहकूटं विसंखितं ॥
विसंखारगतं चित्तं तण्हानं खयमज्झगा ॥

गृहकारक को ढूंढते हुए मैं अनेक जन्मों तक लगातार संसार में दौड़ता रहा । बराबर जन्म लेना दुःख है । गृहकारक, तू दिखायी दे गया । अब फिर घर नहीं बना सकेगा । तेरी सब कड़ियाँ टूट गईं । घर का शिखर बिखर गया । चित्त संस्कार रहित हो गया । तृष्णाओं का क्षय हो गया ।

बारहवें अत्तवग्ग में आत्म-निर्भरता का बड़ा ही सुन्दर उपदेश है—

अत्ता हि अत्तनो नाथो को हि नाथो परो सिया ।
अत्तनाव सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभं ॥

आदमी अपना स्वामी आप है, दूसरा कौन आदमी का स्वामी हो सकता है ? जो अपने को संयत रखता है, वह दुर्लभ पद को प्राप्त करता है ।

लोक-वर्ग और बुद्ध-वर्ग से आगे चलकर सुख-वर्ग आता है । उसमें लिखा है—

सुसुखं वत ! जीवाम वेरिनेसु अवेरिनो ।
वेरिनेसु मनुस्सेसु विहराम अवेरिनो ॥

वैर करने वाले मनुष्यों में अवैरी बने रहकर हम सुख पूर्वक जीते हैं । वैरी मनुष्यों में हम अवैरी बनकर विचरते हैं ।

जयं वेरं पसवति दुक्खं सेति पराजितो ।
उपसन्तो सुखं सेति हित्वा जय पराजयं ॥

जय से वैर पैदा होता है, पराजित दुखी रहता है । जयपराजय दोनों को छोड़कर शान्त मनुष्य सुख पूर्वक सोता है ।

प्रिय-वर्ग में प्रेम के बारे में जो अनुभव है वह कितना सच्चा है—

पेमतो जायते सोको पेमतो जायते भयं ।
पेमतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं ।

प्रेम से शोक उत्पन्न होता है, प्रेम से भय । जो प्रेम से मुक्त है, उसे शोक नहीं, भय कहाँ से होगा ?

क्रोध-वर्ग की ये दो गाथायें अपनी निन्दा सुनकर विचलित मनुष्य को कितना सहारा देती हैं—

पोराणमेतं अतुल ! नेतं अज्जतनामिव ।
निन्दन्ति तुण्हीमासीनं निन्दन्ति बहुभाणिनं
मितभाणिनम्पि निन्दन्ति नत्थि लोके अनिन्दितो ॥

हे अतुल, यह पुरानी बात है, यह आज की नहीं । चुप बैठे रहने वाले की भी निन्दा होती है, बहुत बोलने वाले की भी निन्दा होती है, दुनिया में ऐसा कोई नहीं जिसकी निन्दा न होती हो ।

सम्पादकीय

वैशाखी पूर्णिमा की मधुर स्मृतियाँ

प्रतिवर्ष वैशाखी पूर्णिमा आती है और अपनी मधुर स्मृतियों से हमारे भाव-तन्तुओं में करुणा, दया, अहिंसा, मैत्री आदि सद्‌गुणों की धारा प्रवाहित कर जाती है क्योंकि इसी दिन लुम्बिनी में सुखद-शीतल शाल वृक्ष के नीचे उन महापुरुष का प्रादुर्भाव हुआ, जिनका जन्म ही विश्व में धर्मोदय का प्रकाश था। शान्ति, मैत्री तथा बन्धुत्व की निर्मल-ज्योति का आभास था। "मैं मुक्त हो, मुक्त करूँगा" के शब्दोच्चार के साथ वह मुक्ति पाने तथा प्राप्त कराने की प्रथम प्रबल आकांक्षा थी। दया एवं करुणा से भरा वह पहला सिंहनाद था।

इसी वैशाखी पूर्णिमा को विश्व के महानतम् तपस्वी ने समस्त संसार के कल्याणार्थ बुद्धगया के बोधिवृक्ष के नीचे दृढ़ संकल्प कर आसन जमाया--"चाहे मेरा चमड़ा, नसें, हड्डी ही क्यों न शेष रह जाये, चाहे शरीर, माँस, रक्त क्यों न सूख जायँ, किन्तु तो भी सम्यक् सम्बोधि को बिना प्राप्त किये, इस आसन को नहीं छोड़ूँगा। उसी रात्रि को उस करुणामूर्ति ने परम ज्ञान प्राप्त किया और धर्म विजय का कार्य प्रारम्भ हुआ। वह धर्म विजय क्या थी, दया की एक अनुपमेय कविता थी। वे प्रातः सायं जब अपनी दयापूर्ण दृष्टि डालकर संसार को देखते तो उन्हें अनन्त दया उपजती। वह सोचते--"ओह! संसार रागाग्नि से, द्वेषाग्नि से, मोहाग्नि से धधक रहा है। जन्म, जरा, मरण, दुःख, चिन्ता, पीड़ा, निराशा से जल रहा है। मुझे छोड़ कौन है, जो इस संसार का सहारा बन सके।" वह दुःखी एवं पीड़ित मनुष्यों को सुखी बनाने के लिये रात दिन परिश्रम करते।

उन करुणावतार ने सारे विश्व को अपनी दया, करुणा एवं मैत्री से आप्लावित कर दिया। उन्होंने स्वयं रोगियों की सेवा की और भिक्षुओं को सेवा करने की शिक्षा दी--"भिक्षुओ! न तुम्हारे माता हैं, न पिता, जो तुम्हारी सेवा करेंगे। यदि तुम परस्पर एक दूसरे की सेवा नहीं करोगे, तो कौन करेगा?" उन्होंने यह भी कहा--"जो रोगी की सेवा करता है, वह मेरी सेवा करता है।" वे करुणानिधान भूखों को भी भोजन देते थे। मार्ग-भूलों को मार्ग बताते थे, दुखिया के दुःख दूर करते थे। उनकी करुणा की असीमित धारा में कौन नहीं बहा! क्या गरीब, क्या धनी, क्या विद्वान् और क्या मूर्ख? जो भी उनके पास गये, वे श्रद्धावनत, भक्तिपूर्ण हो कहे--"श्रमण! तुम्हारी छाया सुखकर है!, तथागत! तुम्हारी शरण कल्याणकर है! लोकनाथ! तुम्हारे गुण अनन्त हैं! भगवन्! तुम अनन्त ज्ञानी, सर्वज्ञ हो!"

वे परम कारुणिक तथागत रोहिणी के तीर जा शाक्य-कोलिय युद्ध को शान्त किये। उन्हें शान्ति कितनी प्रिय थी! उन्हें लोगों ने अपशब्द कहे, गालियाँ देते हुए कुछ लोगों ने उनका अनुगमन भी किया, किन्तु उनके अथाह क्षमा-प्रवाह में वे सब बह गये। उन्होंने मुस्कराते हुए कहा—'जैसे युद्ध-भूमि में हाथी बाणों को सहन करता है, उसी तरह मैं अपशब्दों को सहन करूँगा।" उन्होंने शिष्यों से भी कहा-"यदि दूसरे मेरी, धर्म की या संघ की निन्दा करें, तो तुम्हें उससे न दुःखी होना चाहिए न अप्रसन्न।"

वे दूसरे मतवालों को भाई और मित्र समझते थे। वे प्रायः उनके मठों में जाते थे और उनसे बातचीत करते थे। एक बार अकाल पड़ने पर उन कारुणिक ने दूसरे मतवालों के लिए भी भोजन का प्रबन्ध किया। जब नालन्दा का धनी उपासक उपाली बौद्ध हो गया, तो तथागत ने उसे कहा कि वह जैन साधुओं को पूर्ववत् भिक्षा देना जारी रखे।

उनकी शिक्षा सबके लिये तथा समान थी। उसमें ऊँच-नीच, जातिभेद का स्थान नहीं था "जैसे गंगा, यमुना,

अचिरवती, सरयू आदि नदियाँ समुद्र में जाकर अपना नाम-रूप नहीं रखतीं, उसी प्रकार क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, तथा शूद्र भिक्षु-संघ में सम्मिलित होकर अपनी सब जाति-पाँति से छूट जाते हैं।"

उस महाकारुणिक ने संसार से निराश लोगों को आशा देते हुए इसी वैशाखी पूर्णिमा को कहा—"अमृत का द्वार तुम्हारे लिये खुला है, जिन्हें कान हैं, वे श्रद्धापूर्वक सुनें।" और इस प्रकार एक अद्भुत धर्म-विजय की दुन्दुभी बजायी, जिसमें क्रोध को अक्रोध से, बुराई को भलाई से, कंजूस को दान से और झूठे को सत्य-वचन से जीतने का घोष था।

यह सर्वश्रेष्ठ विजय है। इससे अपना तथा सबका कल्याण होता है। हमें ऐसी विजय की इच्छा करनी चाहिए। जो धर्म-विजय की इच्छा करते हैं, वे चाहे मरें, चाहे जीयें, उनकी हार होती ही नहीं।

तथागत की धर्म-विजय अत्यन्त महान् थी। इस विजय में विजयी ने संसार पर दया की। कहीं किसी प्रकार की जोर-जबरदस्ती नहीं हुई। उसकी दृष्टि में संसार दुष्ट नहीं, किन्तु अज्ञानी और मार्ग भूला हुआ था। इसलिए उन्होंने अज्ञान को दूर करने का प्रयत्न किया। वह पतितों का भाई बना, परित्यक्तोंका पिता और निराश्रितों का सहारा। उसने अपने कष्ट झेला, पैदल भ्रमण किया, किन्तु दुखियों को सदा ही सुख देने का प्रयत्न किया।

उस महाकारुणिक ने हमें प्राणियों से प्रेम करना सिखाया। उन पर दया करने को कहा और मुक्ति-पथ को दिखलाते हुए यह भी कहा—"उनके दोषों को क्षमा करना चाहिए। उनकी सेवा करनी चाहिए। हमें समझना चाहिए कि जितने भी अपराध हैं, सब अज्ञान के कारण होते हैं। सब पाप त्रुटियाँ ही हैं। जब दूसरे गाली दें तो हमें उनके प्रति मैत्री करनी चाहिए। हमें सभी प्राणियों की शान्ति के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए। जब हाथ पैर भी काट दिये जायँ तब भी हम न रोयें न दुःखी हों, बल्कि शान्तिपूर्वक उसे सह लें। उन्होंने भिक्षुओं को सम्बोधित करके कहा—"भिक्षुओ! यदि डाकू आकर दोनों ओर मुठिया लगे आरे से तुम्हारे अंग-अंग भी काटें, तब भी जो क्रोधित हो जाय, वह मेरा आज्ञाकारी नहीं।' कैसे हैं तथागत के ये मधुर उपदेश और कैसी हैं शान्ति, सहनशीलता एवं क्षमाशीलता की उनकी ये शिक्षायें!

इसी वैशाखी पूर्णिमा को उस परम कारुणिक ने पैंतालीस वर्ष तक पैदल घूम-घूमकर हमारे हित-सुख के लिए अमृत की वर्षा कर कुशीनगर के जोड़े शाल-वृक्षों के बीच परिनिर्वाण प्राप्त किया। वह परिनिर्वाण था केवल उनके भौतिक-काय का, उनका धर्म-काय तो सदा अमर है। उस समय उन लोकगुरु ने जो अप्रमाद के साथ विहरते हुए जीवन के लक्ष्य को पूर्ण करने का उपदेश दिया, वह दुःखी एवं निरुत्साही लोगों में उत्साह उत्पन्न कर सुख की ओर बढ़ाने वाला है। उनके वे विमल उपदेश आज भी उसी प्रकार जगत् को शान्ति प्रदान करने में समर्थ हैं, जैसे अतीत में थे। भविष्य में भी उनकी प्रभुता वैसी ही बनी रहेगी।

यह त्रिविध पावनी वैशाखी पूर्णिमा फिर उन लोकनाथ की मधुर स्मृति को लेकर आई है, जिसमें दया, करुणा, मैत्री, क्षमा आदि की प्रतिमूर्ति झलकती है और जिसके समक्ष श्रद्धापूर्वक हृदय बोल उठता है—

बुद्धं सरणं गच्छामि।
धम्मं सरणं गच्छामि।
संघं सरणं गच्छामि।

सभी प्राणी सुखी हों। सभी जगह शान्ति हो। नव-वर्ष सबके लिए आनन्द-दायक हो। वैशाखी पूर्णिमा की मधुर स्मृतियाँ सबको ऊपर उठायें।

बौद्ध-जगत्

सिकिम तथा तिब्बत में पवित्र अस्थियों का भव्य स्वागत !

सिकिम के महाराज एवं तिब्बत के शासक तथा धार्मिक नेता दलाई लामा की प्रार्थना पर सारनाथ के मूलगन्ध कुटी विहार में सुरक्षित भगवान् बुद्ध की एवं कलकत्ते के धर्म-राजिक विहार में स्थित तथागत के प्रधान शिष्य सारिपुत्र और मौद्गल्यायन की पवित्र अस्थियाँ गत २५ फरवरी को प्रातः एक विशेष वायुयान द्वारा कलकत्ते से सिकिम ले जायी गईं। अस्थियों को लेकर भारतीय महाबोधि सभा का एक प्रतिनिधि मण्डल गया था। जिसमें महाबोधि सभा के प्रधान मन्त्री ब्रह्मचारी श्री देव प्रिय बलिसिंह, उपमन्त्री भिक्षु एम. संघरत्न, भिक्षु जगदीश काश्यप, लामा सम्पू एवं डा० साफ्ट थे।

अस्थियाँ कलकत्ते के विलिंडन के उड्डयन मैदान से सिलगुरी की उड्डयन भूमि बलडौरा तक वायुयान से गईं। वहाँ सिकिम के महाराज कुमार ने अस्थियों एवं प्रतिनिधि मण्डल का स्वागत किया तथा उन्हें विशेष रूप से सजी-धजी मोटरकारों से सिकिम की राजधानी गंटोक ले गये।

सिकिम में अपूर्व सम्मान

सिकिम के राजकीय मंदिर "दरबार टेम्पल" से एक मील तक लामाओं, राज्याधिकारियों एवं जनता की ओर से अस्थियों के सम्मानार्थ एक भव्य जुलूस निकला। जुलूस के साथ अस्थियाँ ले जाकर राजकीय मंदिर में रखी गईं। अस्थियों को रखने के पश्चात् लामा लोगों ने सर्वप्रथम उनकी पूजा की महाराज ने भी माला (खद्दा), पुष्प आदि से पूजा की। तत्पश्चात् क्रमशः अन्य कर्मचारियों ने। इस प्रकार पवित्र अस्थियों की पूजा एवं सम्मान में ही पहला दिन व्यतीत हो गया।

दूसरे दिन प्रातः काल से अस्थियों का प्रदर्शन प्रारम्भ हुआ। जो क्रमशः एक सप्ताह तक होता रहा। एक दिन अस्थियाँ राजप्रासाद के मंदिर में भी ले जाई गईं और वहाँ भी विशेष रूप से पूजा हुई।

तिब्बतको प्रस्थान

दलाई लामाकी विशेष प्रार्थनापर अस्थियाँ ४ मार्च को गंटोकसे तिब्बतके लिए प्रस्थान कीं। अस्थियों कोले जाने के लिए एक विशेष प्रकार की पालकी तैयार की गई थी। जिसे बारह आदमी उठाकर ले चलते थे। प्रतिनिधियों के लिए खच्चरों का प्रबन्ध था सिकिम से अस्थियों को तिब्बत लिवा जाने के लिए तिब्बत के बड़े-बड़े राज्याधिकारी आये थे।

मार्ग में ५ दिन लगे। पाँचवें दिन नथूला पहुँचे। नथूला १४५०० फुट ऊँचाई पर स्थित है और यही तिब्बत तथा सिकिम की सीमा है। नथूला तक अस्थियाँ सिकिम की पुलिस-सुरक्षा में ले जाई गईं। वहाँ तिब्बतकी सरकार के कमाण्डर इन चीफ ने दो दर्जन सैनिकों के साथ अस्थियों को सैनिक सलामी दी और तिब्बती झंडियों के साथ सम्मान पूर्वक वहाँ से तुम्बीतान के लिये प्रस्थान किया। तुम्बीतान में तिब्बत के 'भिक्षु वैदेशिक मंत्री' ने स्वागत किया। (तिब्बत में वैदेशिक मंत्री दो होते हैं। एक भिक्षु वैदेशिक मंत्री एवं दूसरा राजनीतिक वैदेशिक मंत्री) आगे चुम्बी नामक स्थानमें भारतीय 'तिब्बती-व्यापार के एजेण्ट ने पुलिस बैंड और भारतीय राष्ट्र पताके के साथ जाकर अस्थियों का स्वागत किया। अब वे भी तिब्बती सैनिकों की पंक्ति में सम्मिलित हो गए। उस समय के अन्तर्राष्ट्रीय झंडों का दृश्य दर्शनीय था। आगे-आगे तिब्बती झंडा बढ़ रहा था। उसके पीछे भारतीय-महाबोधि सभा के एवं तत्पश्चात् भारतीय राष्ट्रीय पताका। मानो भारत अपनी संस्कृति का सन्देश ले सदियों पश्चात् पुनः तिब्बत जा रहा था, एवं तिब्बत उसका स्वागत करता मार्ग-प्रदर्शन कर रहा था।

चुम्बी में एक 'दरबार मन्दिर' है। कहते हैं प्राचीन काल में तिब्बत के कोई दलाई लामा कुछ दिनों इस

मन्दिर में प्रतिवर्ष रहा करते थे। अतः उस मंदिर के सम्मानार्थ अस्थियाँ एक रात वहाँ रखी गईं।

दलाई लामा के वर्तमान निवास स्थान में

वहाँ से अस्थियाँ आठवें दिन आगे बढ़ीं। अस्थियों को जुलूस के साथ दलाई लामा के वर्तमान निवास स्थान में ले जाने के लिए ल्हासा के बड़े बड़े विद्यालयों के प्रधान लामा आए थे। अस्थियाँ याटुंग होते हुए डोंकर गुंबा ले जाई गईं। डोंकर का अर्थ है शंख और गुम्बा का अर्थ है मन्दिर। इस प्रकार डोंकर गुंबा का तात्पर्य है शंखाकृत पर्वत पर निर्मित विहार। इस विहार की ऊँचाई १३००० फुट है। इसके नीचे ३०००० फुट की गहराई पर एक झील है उसी से यहाँ पानी लाया जाता है।

डोंकर गुम्बा में ही वर्तमान दलाई लामा रहते हैं। जब अस्थियाँ वहाँ ले जायी गईं, तब वहाँ सभी लोग उपस्थित थे। उस समय दलाई लामा आए। भिक्षु जगदीश काश्यप ने भगवान् बुद्ध की अस्थियाँ उन्हें दीं और भिक्षु एम. संघरत्न ने अग्रश्रावकों की। दलाई लामा ने उन अस्थियों को ग्रहण करके अपने दोनों गुरुओं को प्रदान किया। इसके पश्चात् अस्थियाँ मंदिर के भीतर ले जाई गईं। वहाँ सब लोगों ने अस्थियों की पूजा की। खता (एक विशेष प्रकार का पूजा वस्त्र) से सबने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। तत्पश्चात् राज्य कर्मचारी एवं साधारण जनता ने क्रमशः पूजा की। पूजा की समाप्ति के पश्चात् दलाई लामा ने भगवान् बुद्ध की अस्थियों को सबके सिर पर क्रमशः रखकर आशीर्वाद दिया। इस प्रकार उस दिन का कार्यक्रम समाप्त हुआ।

दलाई लामा का आश्वासन

दूसरे दिन प्रातः महाबोधि सभा के प्रतिनिधि मंडल को दलाई लामाने अपने व्यक्तिगत कमरे में बुलवाया और उनसे प्रेम-पुर्वक वार्तालाप किया। मंडल ने सभा की ओर से धर्मचक्र मुद्रा की हाथी दाँत की निर्मित भगवान् बुद्ध की मूर्ति, भारत में बनी चन्दन की वस्तुएँ, चन्दन की माला, चीवर, महाबोधि सभा द्वारा प्रकाशित सभी ग्रन्थों की एक एक प्रतियाँ भेंट कीं। उन्हें ग्रहण करते हुए दलाई लामा ने बड़े आनन्दके साथ कहा—"आप लोगोंको यहाँ तक आने में बहुत कष्ट हुआ होगा। आज मैं भगवान् एवं अग्रश्रावकों की अस्थियों को अपने सिर पर रखकर अपना जीवन सफल समझता हूँ।" उन्होंने भारत में बौद्ध धर्म सम्बन्धि प्रश्न पूछते हुए कहा—"भारत में बौद्ध धर्म की सहायता के लिए हम सदा तैयार हैं। हम उस समय की राह देख रहे हैं, जब कि भारतीय महाबोधि सभा की अत्यधिक सहायता कर सकूँ।" वार्तालाप दुभाषिये द्वारा हो रहा था, क्योंकि लामा हिन्दी या अंग्रेजी नहीं बोल सकते हैं।

दलाई लामा के दोनों आचार्यों ने भी प्रतिनिधि मंडल को आशीर्वाद दिया और अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा—"भारतीय पण्डितों ने ही हमें महामुनि भगवान् बुद्ध के धर्म को दिया है। हम लोगों की श्रद्धा भारत के प्रति आज भी वैसी ही है, जैसी कि पूर्व काल में थी। हम लोग आज भी अपने ग्यागर लामाओं (भारतीय भिक्षुओं) का हृदय से स्वागत करते हैं।"

डोंकर गुम्बा में अस्थियों का प्रदर्शन

अपराह्न में एक बजे से डोंकर गुम्बा के भीतर दलाई लामा के सिंहासन पर अस्थियाँ रखी गईं। तिब्बत में हर एक विहार में दलाई लामा के लिए सिंहासन बने होते हैं। चाहे वे कभी वहाँ न जायँ। जैसा कि बुद्धकाल में भिक्षु जहाँ भी विहार करते थे, भगवान् बुद्ध के लिए एक आसन बिछाकर ही विहरते थे। यह उसी का अनुकरण मात्र है। अस्थियों को सिंहासन पर रखने के पश्चात् प्रदर्शन प्रारम्भ हुआ। दर्शनार्थ भूटान, ल्हासा आदि स्थानों से सहस्रों लोग आए थे। लोगों की भीड़ दिन प्रति दिन बढ़ने लगी। ऐसा जान पड़ता था मानो तिब्बत की जनता उमड़ चली है।

दलाई लामा के धर्मोपदेश

यद्यपि अस्थियाँ तिब्बत केवल एक सप्ताह के लिए गई थीं। किन्तु दलाई लामा के विशेष आग्रह पर एक सप्ताह और रुकना पड़ा। दलाई लामा का प्रथम उपदेश डोंकर गुम्बा में होने वाला था और वह चाहते थे कि पवित्र अस्थियों के सम्मुख मैं उपदेश कर सकूँ। दलाई लामा के उपदेश को 'कवाँ' कहते हैं। 'कवाँ' का समाचार चारों ओर फैल चुका था। तिब्बत की जनता दलाई लामा का दर्शन करने में

भी अपना अहोभाग्य समझती है। क्योंकि वे वर्ष में केवल एक ही बार दर्शन देते हैं। वह भी ल्हासा में। अतः कवाँ के समाचार से चारों ओर से जन समूह उमड़ पड़ा। सारा डोंकर गुम्बा का पार्वत्य भाग लोगों से भर गया। लोगों का समूह ऐसा जान पड़ता था मानो मधुमक्खियाँ रसास्वादन हेतु एकत्र हुई हैं। दलाई लामा के कवाँ १९, २० और २१ मार्च को क्रमशः ७ बजे से १२ बजे तक, ८ बजे से १ बजे तक ९ बजे से ३ बजे तक हुए। लोगों की संख्या भी अनुमानतः ८०००,१२००० और १५००० थी। आश्चर्य की बात यह थी कि इतने बड़े जन-समूह के उठने बैठने खाँसने आदि तक का शब्द नहीं होता हुआ सुना गया! सब लोग शान्ति पूर्वक श्रद्धानत हो धर्मोपदेश सुन रहे थे। वे अपना जीवन सफल समझते हुए हर्षोत्फुल्ल थे। दलाई लामा का धर्मोपदेश एवं पवित्र अस्थियों के दर्शन उनके जीवनकी एक अद्भुत घटना थी!

धर्म मण्डप की सजावट

धर्मोपदेश के निमित्त डोंकर गुंबामें धर्मासन सजा हुआ था। उसपर दलाईलामा बैठे थे। पार्श्वमें दाहिनी ओर एक बड़े आसन पर पवित्र अस्थियोंके सम्पुट थे। दलाई लामा के दक्षिण पार्श्व में ही दोनों आचार्यों के आसन थे। बायीं ओर आमात्यगण एवं प्रतिनिधि मण्डल बैठा था। सामने सहस्रों लामा बैठे धर्मोपदेश सुन रहे थे। उनके पीछे जनता थी।

धर्म-पूजा

तीसरे दिन कवाँ समाप्त हुआ। कवाँ के समाप्त होने पर सबके ऊपर पवित्र जल छिड़का गया। प्रसाद वितरण हुआ। एवं रक्षाबंधन बँटा गया। इस क्रिया के समाप्त होते ही दलाईलामा धर्मासन से उतर कर नीचे एक कुर्सी पर बैठ गये और कुण्डिका से मोरपंख द्वारा जल लेकर सबके सिर पर लगाना प्रारम्भ किये। लोग एक-एक कर आते थे और वे उन्हें आशीर्वाद देते थे। आशीर्वाद देते समय वे केवल भिक्षुओं को ही हाथ से छूते थे। गृहस्थों का वे स्पर्श नहीं करते थे। उपदेश एवं आशीर्वाद के पश्चात् सबने धर्म पूजा चढ़ाई।

दलाईलामा का सन्देश

प्रतिनिधि मंडल पवित्र अस्थियों को लेकर २२ मार्च को वापस आनेवाला था। उस दिन प्रातःकाल दलाईलामा अपने दोनों आचार्यों के साथ आये। प्रतिनिधि मंडल भी एक ओर बैठ गया। तिब्बत सरकार के सभी कर्मचारी भी उपस्थित थे। दलाईलामा ने प्रतिनिधि मण्डल को एक बहुत सुन्दर सन्देश प्रदान किया। सन्देश एक लम्बे, सुन्दर एवं मनोज्ञ चीनी सिल्क पर तिब्बती भाषा में लिखा था। उस पर लामा का हस्ताक्षर एवं राजकीय मुहर भी लगी थी। अपने सन्देश में लामा ने लिखा था:-

"तथागत एवं उनके अग्रश्रावकों को श्रद्धापूर्वक प्रणाम् करते हुए मैं भारतीय महाबोधि सभा को धन्यवाद देता हूँ कि जिसकी कृपा से मुझे १४ दिनों तक भगवान् की पवित्र अस्थियों को पूजने एवं सिर पर रखने का पुण्य सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैं अपनी कृतज्ञता प्रगट करते हुए सभा के सहायतार्थ तिब्बत सरकार की ओर से १५०००) और अस्थि-प्रदर्शन से प्राप्त ८०००) प्रदान करता हूँ। एक सेट् कंजूर (त्रिपिटक), भगवान् बुद्धकी सोने की मूर्ति, वस्त्रों पर चित्रांकित तिब्बत के पौराणिक शिल्प-भाण्ड और शंख भी प्रदान करता हूँ। नालन्दा के भिक्षु जगदीश काश्यप के लिए भी कंजूर और तंजूर एवं एक सुवर्ण बुद्ध-प्रतिमा देता हूँ। वाराणसी के भिक्षु संघरत्न को—जिन्होंने मेरे लिए बड़ी कृपा की है—अपने भेंट अर्पित करता हूँ।"

अपने सन्देश में दलाई लामा ने आगे कहा था—"हमारा देश भारत का ऋणी है। हमारे नस नस में भारत के प्रति सम्मान भरा है। भारतीय भिक्षुओं ने ही हमारे देश को सुसंस्कृत बनाया था। हम चाहते हैं कि भारत में पुनः बौद्ध धर्म का प्रचार हो और हम पुनः उसी प्रकार उसका दर्शन करें जैसा कि हमारे आचार्यों के काल में था। बौद्ध धर्म संसार मे पुनः जोरों से फैले।"

सारनाथ के स्तूप की डिजाइन

दलाई लामा ने भिक्षु प्रतिनिधियों को चीनी सिल्क के एक एक चीवर प्रदान किये। हमें यह देखकर बड़ा ही आश्चर्य हुआ है कि भिक्षु संघरत्न जी को जो चीवर मिला है, उस पर सारनाथ के वर्तमान 'धम्मेक स्तूप' के पत्थरों पर बनी डिजाइनें बनी हुई हैं! सारनाथ के इस स्तूप की डिजाइन का तिब्बत एवं चीन में कितना प्रचार है, इसी से अनुमान किया जा सकता है। क्या भारतवासी भी इन डिजाइनों से लाभ उठायेंगे?

विदाई

अन्त में डुलाई लामा ने सबको आशीर्वाद दिया और कहा कि आप लोग अपने देश कुशलपूर्वक जाकर धर्म का प्रचार करेंगे। उन्होंने स्वयं अपने हाथ से अस्थियों को पहुँचाया और कुछ दूर तक पीछे पीछे अनुगमन किया।

तत्पश्चात् तिब्बत के बड़े बड़े लामा और जनता ने डुंगर गुम्बा से ३००० फुट नीचे तक जुलूस निकाला और पहले के समान ही अस्थियाँ पालकियों द्वारा वापस लौटीं। क्रमशः चुम्बी दरबार, चुम्बी, चुम्बीतान, खरगुरु गुम्बा चुंगु ही कारपोनां में रात रात भर विश्राम कर प्रतिनिधि मण्डल सिक्किम पहुँचा। उनका सब जगह पूर्ववत् ही स्वागत हुआ। इसके बाद अस्थियाँ कालिम्पोंग, दार्जिलिंग, घूम, सोनादा, कर्सियांग तिनधरिया और सिलगुरी से ले जाई गईं। सर्वत्र [illegible], लेपचा, बरुआ, तिब्बती, श्यर्पा, नेवारी, आदि लोगों तथा हिन्दू भाइयों ने बड़ा शानदार स्वागत किया। २३ अप्रैल को अस्थियाँ वापस कलकत्ता पहुँच गईं। हवाई अड्डे पर स्वागतार्थ कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति आदि बहुत से विशिष्ट लोग उपस्थित थे।

भगवान् बुद्ध की जो पवित्र अस्थि सारनाथ से ले जाई गई थीं उन्हें लेकर भिक्षु संघरत्न जी ३ मई को सारनाथ आ गए। इस यात्रा में भेंट के रूप में भारतीय महाबोधि सभा को कुल ४०,०००) प्राप्त हुए हैं।

बौद्ध धर्म ही संसार का धर्म है—बम्बई के बुद्ध-विहार की ओर से आयोजित बुद्ध-मेला में भाषण देते हुए भारत के विधि मंत्री डा० भीमराव अम्बेडकर ने कहा—"मैं यहाँ केवल बुद्ध मेला देखने आया हूँ, भाषण देने नहीं। यह बड़े आश्चर्य और खेद की बात है कि हमारे भाई लोगों में न जाने कितने पर्व मनाते हैं किन्तु एक दिन भी बुद्ध का स्मरण नहीं करते। जिन भगवान् बुद्ध के स्मरण के लिए हम लोग एकत्रित हुए हैं, वे बुद्ध इसी देश में पैदा हुए थे। यहीं पर उन्होंने अपनी ८० वर्ष की लम्बी आयु बितायी, जिसमें ४५ वर्ष उन्होंने हमारे हित के लिए धर्म-प्रचार में व्यतीत किये। उनके पास न गाड़ी थी, न मोटरकार या न तो शंकराचार्य की तरह पालकी। वे सदा पैदल ही घूमते थे। उन्होंने यह सब देश के हित के लिए किया। बौद्ध धर्म इस देश में लगभग १२०० वर्ष फूला-फला रहा, परन्तु जिस महापुरुष ने भिक्षा-पात्र हाथ में लेकर राष्ट्र की सेवा की, उस महापुरुष का नाम भी लोगों को मालूम नहीं है। लोग कहते हैं सत्य की जय होती है, परन्तु यहाँ तो हम सत्य को भूले हैं और असत्य की ही विजय दिखाई देती है, परन्तु सत्य की विजय होकर ही रहेगी, और वह विजय अब निकट आ गई है। जो भगवान् बुद्ध इस देश में बास करते थे, उनका धर्म आज भी इस देश का धर्म होगा, इसमें मुझे बिलकुल सन्देह नहीं।

आज के हिन्दू धर्म को हम एक नाले की उपमा दे सकते हैं। जब कभी दो नालों का मेल होता है, तब उन दोनों का पानी एकत्र हो जाता है। एक का पानी स्वच्छ और शुद्ध तो दूसरे का गन्दा। इस प्रकार सम्पूर्ण पानी गन्दा हो जाता है। ऐसी ही अवस्था आज हिन्दू धर्मकी है।

बौद्ध धर्म शुद्ध और मीठे पानी का नाला है और उस नाले में ब्राह्मण धर्म का गन्दा पानी मिलने के कारण सम्पूर्ण नाला अशुद्ध तथा गन्दे पानी का बन गया है। यदि हिन्दू धर्म को सुधारना है, तो अशुद्ध पानी का नाला बन्द करना होगा और इसी से बौद्ध धर्म जो भारत का अनादि धर्म है—हिन्दू धर्म बनेगा। आज का हिन्दू धर्म तो एक खिचड़ी है।"

आगे अपने भाषण के सिलसिले में उन्होंने कहा—"बौद्ध धर्म ही भारत का अनादि धर्म है। वह बहुत पवित्र है। आपको आज उस सच्चे धर्म को प्राप्त करना है। धर्म का महत्व कम नहीं। आज संसार को धर्म की आवश्यकता है। धर्म बिना संसार चल नहीं सकता। मानवता, समदृष्टि, बन्धुत्व, प्रेम से ही सच्चा धर्म बनता है। आपने जिस धर्म को अपनाने का संकल्प किया है, वह अति महान् है। मैं बीस वर्ष से आपके बारे में विचार कर रहा था। अन्य धर्मों का अभ्यास जो मनुष्य को करना शक्य है, मैंने किया है और अन्तिम मेरा अनुभव है कि बौद्ध धर्म ही संसार का धर्म हो सकता है। संसार में अगर कोई धर्म रह सकता है, तो वह है बौद्ध धर्म।"

बौद्ध धर्म सामाजिक धर्म है—गत फरवरी मास में काशी विद्यापीठ में समावर्तन व्याख्यानमाला के अन्तर्गत भाषण करते हुए प्रसिद्ध भाषाविद् डा० वी० एच० गुन्थर ने कहा कि गौतम बुद्ध का धर्म सामाजिक धर्म है

तथा जो लोग समझते हैं कि बौद्ध होने से संसार का त्याग करना पड़ता है, वे भूल करते हैं। वस्तुतः बौद्ध धर्म में संघ का नियम सामाजिक नियम ही है। इसके अतिरिक्त गृहस्थ बौद्धों में भी सामाजिक आचार पर बहुत जोर दिया गया है और बताया गया है कि संसार में रहते हुए भी निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है।

आज जब कि भारत स्वतंत्र है, गौतम बुद्ध के इस सन्देश पर ध्यान देने की ओर आवश्यकता है। छोटे-छोटे काम करने वाले—जैसे क्लर्क और मजदूरों—को भी अपना काम करते हुए निर्वाण प्राप्त करने का सन्देश बौद्ध धर्म में मिलता है।''

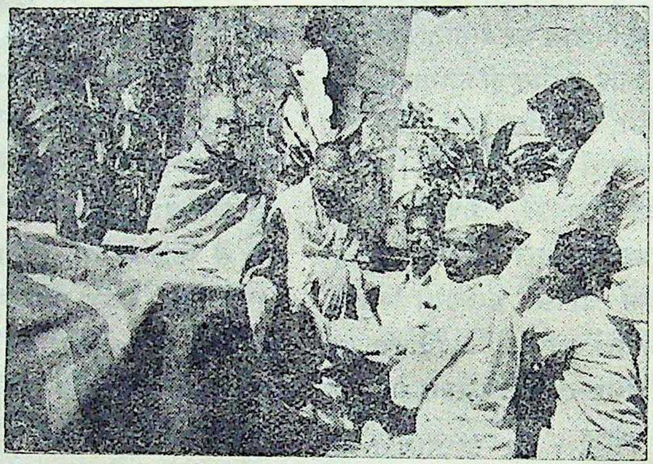

अजमेर के बौद्धों के बीच भिक्षु जगदीश काश्यप और भिक्षु वीर धर्मवर''

बुद्धगया में बौद्ध-बस्ती की योजना—भारतीय महाबोधि सभा के इस प्रस्ताव को बिहार सरकार ने स्वीकार कर लिया है कि बुद्धगया के पास एक नई बौद्ध बस्ती बसायी जाय। पण्डित भिक्षु पी० पञ्ञानन्द जी के प्रयत्न से विहार सरकार उक्त योजना के लिए भूमि प्राप्त करने का विचार कर रही है। गया के ए० डी० एम० श्री राशबिहारी लाल ने बुद्धगया जाकर एक समुचित भूमि का निरीक्षण भी किया है, जिसकी रिपोर्ट सरकार को भेजी जा चुकी है।

नागपुर में बौद्ध पुस्तकालय—गत मास में नागपुर की बुद्ध सोसाइटी के पुस्तकालय एवं वाचनालय के लिए श्री दादा साहब धनवटे ने ''धनवटे चेम्बर'' में उदारता पूर्वक स्थान प्रदान किया। सोसाइटी के प्रधान मंत्री श्री कुलकर्णी जी अब नागपुर की जनता के लाभार्थ वहाँ अपना वाचनालय एवं पुस्तकालय ले गये हैं। इस कार्य में उन्हें डा० श्री भवानीशंकर नियोगी से बड़ी सहायता प्राप्त हुई है। उक्त दोनों व्यक्ति बौद्ध-शासन के मामक हैं और हृदय से इसकी उन्नति चाहते हैं। आश है नागपुर की जनता उक्त बौद्ध पुस्तकालय एवं वाचनालय से काफी लाभ उठायेगी।

अजमेर में बुद्ध विहार-बस्ती—गत मार्च मास अजमेर म्यूनिसिपल कमेटी के सदस्य श्री बी० पी० बेरी वकील के सभापतित्व में किये गये प्रयत्न से सभी सदस् ने सर्वसम्मति से अजमेर के नाशबाई मोहल्ले का ना बदलकर ''बुद्ध-विहार'' कर दिया। इस मोहल्ले में अधिकतर कोलिय राजपूत रहते हैं, बौद्ध हैं, जिन्होंने ह नयी जनगणना में अप को बौद्ध लिखाया है। इस समाचार सभी प्रसन्न हैं आशा करते हैं कोलिय राजपूतों के सा म्यूनिसिपल बोर्ड अच्छा सम्बन्ध ब रहेगा। श्री बेरी साह बौद्ध-जगत् के धन्यवाद के पात्र हैं।

पहाड़पुर और उसके नष्टावशेष—गत मास कलकत्ते के महाबोधि हॉल में प्रेसीडेन्सी कालेज के इ हास विभाग के प्रो० डा० सी० सी० दास गुप्त ने बड़ा ही दिलचस्प भाषण दिया। अपने भाषण में आ सबका ध्यान पूर्वी पाकिस्तान के जिला राजशाही में स्थि पहाड़पुर और उसके नष्टावशेष की ओर आकर्षित किया।

उक्त विहार से लगभग तीन सौ गज पूरब और ए अन्य भी मन्दिर है, जो ग्यारहवीं शताब्दी में बना था इसमें तारा देवी की मूर्ति पाई गई है, जिसकी स्थाप विपुल श्री मित्र ने की थी। इसके अतिरिक्त वहाँ ए जैन मन्दिर भी पाया गया है, जिसका काल ई० सन् ४ उल्लिखित है।

गया ! छप गया !! छप गया !!!

बुद्ध-वचनामृत की अनुपम भेंट

सुत्तनिपात

मूलपालि और हिन्दी अनुवाद सहित।

इसमें पढ़िये —

धर्म तथा दर्शन सम्बन्धी भगवान् बुद्ध की मौलिक शिक्षायें।

यज्ञ, होम, जाति-पाँति पर भगवान् बुद्ध के स्पष्ट विचार।

ष्टिवाद का जबर्दस्त खण्डन।

द्धकालीन सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, तिहासिक एवं भौगोलिक वर्णन।

वयं अपने शब्दों में भगवान् की जीवनी।

कुछ सीमित प्रतियाँ ही प्रकाशित हैं। अपनी के लिए आज ही लिखें, ताकि इस स्वर्ण-वसर को खोकर पीछे पछताना न पड़े।

पता—

बोधि पुस्तक भण्डार, सारनाथ, बनारस

'श्रमण'

अहिंसा संयम और तपका सन्देशवाहक

तथा

त्यागभूमि भारत के गौरवमय अतीत पर
उज्वल भविष्य की रचना का पथ-प्रदर्शक
मासिक पत्र

इसका स्वप्न—उदार एवं स्वस्थ विचारोंकी भित्ति पर सांस्कृतिक उत्थान।

इसका आलाप--सर्वोदय।

इसकी दृष्टि--अनेकता में एकता।

प्रामाणिक विचार, उदार भावना, विशाल हृदय एवं समन्वय पद्धति इसकी कुछ विशेषतायें हैं।

वार्षिक मूल्य ४) **एक अंक का।=)**

व्यवस्थापकः—

'श्रमण'-श्रीपार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस-५।

धर्मचक्र

यह मराठी पाठकों में मनुष्य के नैतिक जीवन सम्बन्धी महात्मा जी की शिक्षाओं को प्रचार करने का एक प्रयत्न है। यह पत्रिका सत्य तथा अहिंसा की संदेशवाहक है और अन्य सांस्कृतिक तथा धार्मिक शिक्षाओं द्वारा इन सिद्धन्तों को पुष्ट करती है। यह अब अपने जीवन के तीसरे वर्ष में पहुँची है। इसे आचार्य विनोबा भावे, काका साहेब कालेलकर तथा बम्बई प्रान्त के प्रधान मंत्री माननीय बी० जी० खेर की प्रशंसा प्राप्त है। वार्षिक चन्दा रु० ४)।

पताः—

धर्मचक्र कार्यालय
सुगत निधान
१५ रोड, खार
बम्बई—२१

हिन्दी में बौद्ध-साहित्य

वार्तिकालंकार—राहुल सांकृत्यायन	३)
दीघ-निकाय— ,, ,,	६)
मज्झिम-निकाय— ,, ,,	८)
विनय-पिटक— ,, ,,	८)
अम्बट्ठ-सुत्त—(वर्ण-व्यवस्था का खंडन) राहुल सांकृत्यायन	।)
पेतवत्थु— ,, ,,	॥)
जातक—आनन्द कौसल्यायन भाग १, २ और ३	७॥), ७॥), १०)
तथागत—आनन्द कौसल्यायन	।॥)
बुद्ध और उनके अनुचर—आनन्द कौसल्यायन	१।॥)
भगवान् बुद्ध— ,, ,,	=)
जो लिखना पड़ा— ,, ,,	३)
बुद्ध-शतकम्— ,, ,,	।)
बुद्ध-वचन— ,, ,,	॥)
जातक कथा— ,, ,,	३)
पालि महाव्याकरण—भिक्षु जगदीश काश्यप	५॥)
पालि जातकावाली—बटुकनाथ शर्मा एम० ए०	२)
धम्मपद—अवधकिशोर नारायण	१॥)
भगवान् बुद्ध की शिक्षा—श्री देवमित्त धर्मपाल	।-)
पंचशील और बुद्ध-वन्दना—बोधानन्द स्थविर	=)
बौद्धचर्य्या-पद्धति—भदन्त बोधानन्द	१॥)
बौद्ध-दर्शन मीमांसा—बलदेव उपाध्याय	६)
भारतीय दर्शन— ,, ,,	८)
हर्षचरित (दो भाग) सूर्यनारायण चौधरी	२॥, ३॥)
सौन्दरनन्द काव्य— ,, ,,	३)
महापरिनिर्वाण सुत्त—भिक्षु ऊ कित्तिमा	१।)
सिङ्गाल-सुत्तं—(बौद्ध-गृहस्थाश्रम धर्म) ,,	॥)
बुद्ध और बौद्ध साधक—भरतसिंह उपाध्याय	१॥)

सुत्तनिपात—भिक्षु धर्मरत्न	१)
खुद्दकपाठ— ,,	।)
बुद्ध कीर्त्तन—प्रेमसिंह चौहान	१॥)
बुद्धार्चन—प्रेमसिंह चौहान	।)
बुद्ध चित्रावली—(अर्थ सहित हिन्दी में)	१)
बौद्ध धर्म तिर्थावली—फोटो का सेट या किताब	३
भगवान् बुद्ध ने कहा था—सुमन वात्स्यायन	॥=)
बोधिद्रुम (कविता)— ,, ,,	।=)
बुद्धदेव—शरत कुमार राय	१॥)
बुद्धचरित—(दो भाग) सूर्यनारायण चौ०	२॥), १
भगवान् बुद्ध का जीवन चरित्र	१)
अभिधम्मत्थ सङ्गहो (बौद्ध-दर्शन) --भिक्षु वरसम्बोधि	३॥
तथागत का प्रथमउपदेश—भिक्षु धर्मरक्षित	।)
बौद्ध-शिशुबोध— ,, ,,	।)
तेल कटाह गाथा— ,, ,,	।)
सारनाथ-दिग्दर्शन— ,, ,,	।)
कुशीनगर का इतिहास— ,, ,,	३॥)
पालि-पाठ-माला— ,, ,,	१)
जाति भेद और बुद्ध— ,, ,,	॥)
ब्राह्मणधम्मिय सुत्त— ,, ,,	=)
सरल पालि शिक्षा—भिक्षु सद्धातिस्स	१॥)
पालि धातुरूपावलि—ना. वर तुँगार	॥=)
भगवान् हमारे गौतम बुद्ध—प्रो० मनोरञ्जन प्र०	-)
सारिपुत्र तथा मौद्गल्यायन - पं० विश्वनाथ शास्त्री	॥)
बौद्ध कहानियाँ—केदारनाथ गुप्त, एम० ए०	१॥)
महावंसो—ऐन० के० भागवत	२॥)
बौद्ध धर्म सवाल-जवाब (उर्दू में)	।=)
थेरी गाथाएँ—भरतसिंह उपाध्याय	१॥)

सूचीपत्र के लिए =) की टिकट के साथ लिखें।

प्राप्ति-स्थान:—

महाबोधि पुस्तक भण्डार, सारनाथ, बनारस।

प्रकाशक—धर्मालोक, महाबोधि सभा, सारनाथ, (बनारस)
मुद्रक—ओम प्रकाश कपूर, ज्ञान मण्डल यन्त्रालय, कबीर चौरा, बनारस।

वैदिक धर्म

अप्रैल १९५१

वर्ष ३२ अंक ४

संपादक
श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
अध्यक्ष, स्वाध्याय-मण्डल

फाल्गुन २००७

वैदिक धर्म

[अप्रैल १९५१]

संपादक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

सहसंपादक

श्री महेशचन्द्र शास्त्री, विद्याभास्कर

विषयानुक्रमणिका

१ मातृभूमिका हित ६९
सम्पादकीय
२ परीक्षाओंकी योजना ७०
परीक्षामन्त्री
३ परीक्षाओंकी नवीन सूचनायें ७१
परीक्षामन्त्री
४ 'हिन्दु' शब्दकी व्याख्या ७३
श्री दीनानाथजी शर्मा शास्त्री
५ वेदसम्मेलनका उद्घाटन-भाषण
श्री पं० श्री० दा० सातवलेकर
१० वसिष्ठ ऋषिका दर्शन १९३-२१६
श्री पं० श्री० दा सातवळेकर

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.
वी. पी. से ५॥) रु. विदेशके लिये ६॥) रु.

वेदमहाविद्यालय

स्वाध्याय मंडल पारडी के लिये

धर्मानुरागी योग्य विद्यार्थियोंकी आवश्यकता है।

वैदिक तत्त्वज्ञान-प्रचारक संस्था स्वाध्याय मंडलने दे विदेशमें वैदिक-धर्मके सिद्धांतोके प्रचारार्थ (वेद महा-विद्यालय) स्थापित करनेकी योजना बनाई है। गुरुकुल स्नातक या संस्कृत और हिंदी, मराठी या गुजराती जान-नेवाले धर्मानुरागी व्यक्ति ही इसमें प्रवेश पा सकें पांच वर्ष तक उन्हें निम्नलिखित विषयोंका अभ्यास कर होगा।

(१) वैदिक ग्रंथोंका पठन-पाठन-अर्थानुसं
(२) आरोग्य साधक योगसाधनका अभ्यास
(३) संपादनकला
(४) प्रवचन कला

विद्यार्थियोंको रहनेकी मुफ्त व्यवस्था की गई है। भोज आदि खर्चके लिये रु० ५० मासिक स्कॉलरशिप मिलेगी। इच्छुक व्यक्ति प्रशंसा पत्रोंके साथ अपनी योग्यता आदिक विवरण लिख पत्र व्यवहार करें।

अध्यक्ष—
स्वाध्याय-मण्डल
किल्ला पारडी (जि० सूरत)

यजुर्वेदका सुबोध भाष्य

अध्याय	१ श्रेष्ठतम कर्मका आदेश	१॥) रु
,,	३२ एक ईश्वरकी उपासना अर्थात् पुरुषमेध	१॥) ,,
,,	३६ सच्ची शांतिका सच्चा उपाय	१॥) ,,
,,	४० आत्मज्ञान - ईशोपनिषद्	२) ,,

डाक व्यय अलग रहेगा।

मन्त्री— स्वाध्याय-मण्डल, 'आनन्दाश्रम
किल्ला-पारडी (जि. सूरत)

वर्ष ३२ वैदिकधर्म अंक ४

क्रमांक २८

▲ फाल्गुन, विक्रम संवत् २००७, एप्रैल १९५१ ▲

मातृभूमिका हित

अर्धं वीरस्य शृतपामनिन्द्रं परा शर्धन्तं नुनुदे अभि क्षाम् ।
इन्द्रो मन्युं मन्युम्यो मिमाय भेजे पथो वर्तनिं पत्यमानः ॥

[ऋ० ७।१८।१६]

(इन्द्रः क्षां अभि) वीर इन्द्र मातृभूमिके हितकी ओर ध्यान देकर (वीरस्य अर्धं) अपने वीरोंका नाश करनेवाले शत्रुओंका तथा (शृतपां शर्धन्तं अनिन्द्रं) अन्नदान न करनेवाले, स्वयं ही भोग भोगनेवाले हिंसक एवं नास्तिक शत्रुओंका (परा नुनुदे) पराभव करके उन्हे तहस नहस कर देता है । (इन्द्रः ममुम्यः मन्युं मिमाय) यह वीर इन्द्र शत्रुकी शत्रुता पूर्णतः विनष्ट कर देता है तथा सारे शत्रुओंको (पत्यमानः पथः वर्तनिं भेजे) भागनेके एक ही मार्गसे भगा देता है ।

मातृभूमिका हित होनेके लिये अपने राष्ट्रके संरक्षक वीरोंका संरक्षण होवे और शत्रुओंके वीरोंका विनाश हो, ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये। जो केवल अपने सुखोपभोगके लिये ही यत्न करेंगे, अपने लिये ही जो अन्न पकावेंगे तथा दीन हीनकी सहायता अपने पासके अन्नसे जो नहीं करेंगे उन्हे समाजसे दूर करना चाहिये । अपनी शक्ति इतनी बढानी चाहिये कि उसे देखते ही शत्रूकी शत्रुता करनेकी बुद्धि ही नष्ट हो जावे । हमें इतनी वीरता दिखानी चाहिये कि जिसे देखकर शत्रुको भागनेके सिवाय दूसरा मार्ग ही न रहे ।

संस्कृत भाषा, गीता, उपनिषद्, स्मृति व श्रुतिकी

परीक्षाओंकी योजना

संस्कृतभाषा-परीक्षाओंकी योजना प्रारम्भ हुए आज एक वर्ष हो रहा है। इन परीक्षाओंके आज लगभग १५० केन्द्र सारे भारतमें हैं और सहस्रों परीक्षार्थी परीक्षामें सम्मिलित हो रहे हैं। घर बैठे, बिना शिक्षकके स्वयं (अपने अन्य कार्य करते हुए भी) प्रतिदिन आधा घण्टे प्रयत्न करनेपर संस्कृत भाषामें सहजता पूर्वक प्रवेश किया जा सकता है। इसी दृष्टिसे पुस्तकें तैयार की गई हैं। गत ३० वर्षोंसे इसका सफल अनुभव प्राप्त हुआ है। अतएव इन पुस्तकोंके आठ-आठ दस-दस संस्करण निकल चुके हैं। हिन्दी, मराठी, गुजराती एवं अंग्रेजीमें ये पुस्तकें तैयार की गई हैं और इन सभी भाषाओंमें ये परीक्षायें ली जारही हैं।

गीताका पाठ्यक्रम तैयार है। उपनिषद् सम्बन्धि ग्रन्थ छापे जारहे हैं। प्रथम चार उपनिषदोंके विषयमें ग्रन्थ छापे जा चुके हैं एवं अगले ग्रन्थ छापनेकी व्यवस्था की जारही है। वेदोंके अभ्यासक्रम की पुस्तकें प्रथम ३ परीक्षाओंके लिये तैयार हैं तथा अगली परीक्षाओंके लिये तैयार हो रही हैं।

उपनिषद् एवं वेदोंके अभ्यासक्रमकी पुस्तकें तैयार हो जानेपर स्मृतियोंका मुद्रण होना है। यह उससे पूर्व नहीं होगा, क्योंकि स्मृतियोंका अभ्यास वेदमन्त्र, महाभारत एवं पुराणोंकी तुलनाके साथ होना है। अतः स्मृतियोंके कार्यारम्भमें कुछ बिलम्ब होगा। लगभग दो वर्षके बिलम्बकी सम्भावना है।

संस्कृतभाषा परीक्षायें प्रारम्भ हो चुकी है। गीता एवं उपनिषदोंकी परीक्षायें अगले ३-४ महिनोंमें प्रारम्भ होंगी। वेद-संहिताओंकी परीक्षायें भी प्रारम्भ हैं। इनमें संहिता कंठस्थ नहीं करनी हैं, अपितु मन्त्रार्थ की परीक्षा लीजाती है।

संस्कृतभाषाके अध्ययनार्थ मराठी, हिन्दी, गुजराती एवं अंग्रेजीमें ग्रन्थ तैयार हैं गीता भी मराठी, हिन्दी एवं गुजरातीमें तैयार है।। अंग्रेजी एवं कानडीमें छापी जाती है। उपनिषद् हिन्दीमें छापे जारहे हैं तथा गुजराती अनुवाद भी होरहा है। इसी प्रकार वेदोंके ग्रन्थ भी इन चारों भाषाओंमें सुविधानुसार तैयार होंगे।

प्रथम राष्ट्रभाषा (हिन्दी) में ग्रन्थ प्रकाशित होते हैं एवं बादमें मराठी तथा गुजरातीमें उनका अनुवाद होता है। यही स्वाध्यायमण्डलकी परिपाटी है।

परीक्षाओंकी इस प्रकार तैयारी होरही है। विभिन्न स्थानोंके वाचकोंको चाहिये कि वे नियमानुकूल अपने अपने गांवोंमें केन्द्र स्थापित करें एवं कार्य प्रारम्भ करें। यहाँसे सब प्रकारकी आवश्यक सहायता दी जावेगी।

* * *

आवश्यक नवीन सूचनायें

सितम्बर सन् १९५१ ई० से होनेवाली संस्कृत भाषा परीक्षाओंका पाठ्यक्रम निम्न प्रकारसे रहेगा। इससे पूर्वके पाठ्यक्रमसे इसमें किंचित् सा परिवर्तन कर दिया गया है। कृपया केन्द्र व्यवस्थापक, प्रचारक एवं परीक्षार्थी नोट कर लें।

१-संस्कृतभाषा प्रारम्भिनी परीक्षा

शुल्क-१-८-० (प्रश्नपत्र १) अंक १०० समय ३ घण्टे

१ संस्कृत पाठमाला प्रथम भाग मूल्य ०-८-०
२ " " द्वितीय भाग " ०-८-०

२-संस्कृतभाषा प्रवेशिका परीक्षा

शुल्क २-८-० (प्रश्नपत्र २) प्रत्येक प्रश्नपत्र ३ घण्टे
पूर्णाङ्क १००

पहला प्रश्नपत्र १-संस्कृत पाठमाला भाग ३ मूल्य ०-८-०
२- ,, ,, ,, ४ मूल्य ०-८-०
द्वितीय प्रश्नपत्र १-संस्कृत पाठमाला भाग ५ " ०-८-०
२- ,, ,, ,, ६ " ०-८-०

३-संस्कृतभाषा परिचय परीक्षा

शुल्क-३-८-० (प्रश्नपत्र ३) प्रत्येक प्रश्नपत्र ३ घण्टे
पूर्णाङ्क १००

पहला प्रश्नपत्र १-संस्कृत पाठमाला भाग ७ मूल्य ०-८-०
२- ,, ,, ,, ,, ८ ,, ०-८-०
द्वितीय प्रश्नपत्र १-संस्कृत पाठमाला भाग ९ मूल्य ०-८-०
२- ,, ,, ,, ,, १० ,, ०-८-०
तृतीय प्रश्नपत्र १-संस्कृत पाठमाला भाग ११ मूल्य ०-८-०
२- ,, ,, ,, १२ ,, ०-८-०

४ संस्कृतभाषा विशारद परीक्षा

शुल्क ५-०-० (प्रश्नपत्र ४) प्रत्येक प्रश्नपत्र ३ घण्टे
पूर्णाङ्क १००

प्रथम प्रश्नपत्र १-संस्कृत पाठमाला भाग १३ मूल्य ०-८-०
द्वितीय प्रश्नपत्र १-संस्कृत पाठमाला भाग १४ ,, ०-८-०
तृतीय प्रश्नपत्र १- ,, ,, ,, १५ ,, ०-८-०
२- ,, ,, ,, १६ ,, ०-८-०
चतुर्थ प्रश्नपत्र १- ,, ,, ,, १७ ,, ०-८-०
२- ,, ,, ,, १८ ,, ०-८-०

सीधे आवेदन पत्रोंके सम्बन्धमें

विशारदमें बैठनेके लिये परिचयमें अथवा उसकी बराबरीकी किसी दूसरी परीक्षामें जो समितिकी ओरसे मान्य की गई हो, उत्तीर्ण होना अनिवार्य होगा।

ये परीक्षार्थी सीधे विशारदमें बैठ सकेंगे किन्तु परीक्षा आवेदन पत्रके साथ अपने प्रमाण पत्रकी प्रतिलिपि केन्द्र व्यवस्थापकके हस्ताक्षरके साथ भेजना अनिवार्य होगा। (क) बनारसकी प्रथमा (ख) संस्कृत लेकर मैट्रिक परीक्षा (ग) कलकत्ता, बिहार व जयपुरकी प्रथमा (च) परीक्षा मन्त्री जिसे योग्य समझें।

सीधे प्रवेशिकापरीक्षामें स्वीकृति—

कोई भी परीक्षार्थी प्रमाणित प्रचारक तथा केन्द्रव्यवस्थापकके अनुरोध पत्रसे प्रारम्भिनी परीक्षामें बैठे बिना, प्रवेशिकामें बैठ सकेगा। ऐसे परीक्षार्थियोंके लिये एक विशेष आवेदन-पत्र तैयार किया गया है। उसे भरकर परीक्षा-आवेदन-पत्रोंके साथ परीक्षा तिथिसे २ माह पूर्व पारडी कार्यालय भेजना होगा। स्वीकृति देनेका अधिकार मन्त्रीको रहेगा।

सीधे परिचय तथा विशारदमें स्वीकृति—

साधारणतया कोई परीक्षार्थी सीधे विशारदमें न बैठ सकेगा। विशेष दशामें परीक्षामन्त्रीको अधिकार होगा कि वह किसी परीक्षार्थीको परिचय और विशारदमें सीधे बैठनेकी अनुमति दे दें।

परीक्षार्थीको सीधे बैठनेका प्रार्थनापत्र एवं प्रमाण पत्र-प्रतिलिपि परीक्षा तिथिसे कमसे कम ३ मास पहिले परीक्षामन्त्रीके पास भेजकर विशेष स्वीकृति लेनी होगी।

परीक्षामन्त्रीसे प्राप्त अपने 'स्वीकृतिपत्र' को परीक्षा-आवेदन-पत्रके साथ पुनः भेजना होगा।

परीक्षार्थीसे, जिस परीक्षामें वह सीधे बैठना चाहता है, उसका शुल्क तथा १) रु. अतिरिक्त शुल्क लिया जायेगा।

समिति द्वारा मान्य की गई, इसी धाराके फुट नोटमें लिखित (क, ख, ग) परीक्षाओंमें उत्तीर्ण परीक्षार्थियोंसे अतिरिक्त शुल्क नहीं लिया जाएगा।

परीक्षा परिणाम

(१) ३—४ फरवरी सन् १९५१ ई० की परीक्षाओंका परिणाम २६ मार्चको प्रकाशित किया जा चुका है।

(२) जो उत्तीर्ण परीक्षार्थी अपने पृथक् पृथक् प्रश्नपत्रोंके प्राप्ताङ्क मंगाना चाहेंगे उन्हे चार आने शुल्क भेजना होगा। अनुत्तीर्ण परीक्षार्थियोंसे शुल्क नहीं लिया जायगा।

(३) जो अनुत्तीर्ण परीक्षार्थी अपनी उत्तर पुस्तकोंका पुनर्निरीक्षण करवाना चाहें उनको १५ एप्रिल तक प्रत्येक पुस्तकके लिये आठ आने निरीक्षण शुल्क भेजते हुए अपना पूरा नाम, क्रमसंख्या और प्रश्नपत्र संख्या देकर प्रार्थना पत्र भेजना चाहिये। (निरीक्षणमें केवल इतनाही देखा जायगा कि प्रत्येक प्रश्नके अंक दिये गये हैं या नहीं)

प्रमाणपत्र

फरवरीकी परीक्षाओंके प्रमाणपत्र ता० १५ एप्रिलतक केन्द्रोंमें भेज दिये जावेंगे।

केन्द्र व्यवस्थापकोंसे निवेदन है कि वे ३० एप्रिल तक एक विशेष समारम्भ कर परीक्षार्थियोंमें प्रमाणपत्र वितरित कर दें। किसी कारण वश यदि समारम्भ न हो सके तो परीक्षार्थी उस अवधिके १० दिन पश्चात् केन्द्रव्यवस्थापकसे अपना प्रमाणपत्र ले सकेंगे। आवश्यकतानुसार चार आना देनेपर केन्द्र व्यवस्थापकसे प्रमाणपत्र पहिले भी मिल सकेगा।

३१ मार्च तथा १ एप्रिलकी परीक्षाओंका फल

इन परीक्षाओंका परिणाम ता० २८ मईको प्रकाशित होगा।

* * *

विदेशियोंकी दृष्टिमें भारत

(१) **अबदुल्ला वासाफ** अपनी ' ई. सन् १४ वीं सदीका इतिहास ' नामक ताजियत-अल-अमसारमें लिखते हैं कि—

आजतकके सभी लेखकोंके एक मतसे-भारत पृथ्वीपर अत्यन्त श्रेष्ठ रहने योग्य स्थान है तथा दुनियाका श्रेष्ठ आह्लाददायक भाग है। उसकी धूलि वायुसे भी अधिक शुद्ध है तथा उसकी वायु पवित्रतासे भी अधिक पवित्र है। उसके आनन्ददायक मैदान स्वर्गके बगीचे जैसे हैं। यदि ऐसा माना जावे कि स्वर्ग लोककी भूमि हिन्दुस्थान ही है तो दूसरा ऐसा कोई स्वर्ग हो ही नहीं सकता, जो इसकी बराबरी कर सके। इसालिये किसी दूसरे स्वर्गका आकर्षण हमारे लिये व्यर्थ है।

(२) महान् जर्मन तत्वशास्त्री **ऑगस्टस विलियम** का मत—

भारतीय वैभव

" भारत वर्ष अनेक महान् विचारोंके जन्म स्थानके रूपमें सबसे अधिक प्रसिद्ध एवं माननीय राष्ट्र है। यह अनेक आश्चर्यजनक वियाओंकी खान है। "—भारतीय साहित्य—पृष्ठ २६

" इस बातसे इन्कार नहीं किया जा सकता कि प्राचीन आर्योंको ईश्वर विषयक ज्ञान था। उनका सम्पूर्ण साहित्य, संसारकी किसी भी भाषामें जो ईश्वर संबंधी वर्णन किया गया है उसकी अपेक्षा अधिक स्पष्ट, सुन्दर, महान्, रोचक एवं महत्व पूर्ण शैलीसे ओतप्रोत है।" —प्राचीन आर्योंकी विद्या—

'हिन्दु' शब्दकी व्याख्या

(लेखक— श्री दीनानाथशर्मा शास्त्री, सारस्वत)

भारतका नाम वेदमें 'सप्तसिन्धु' वा संक्षिप्त नाम 'सिन्धु' आया है, आर्यावर्त वा भारतवर्ष नहीं। इसी 'सिन्धु' का दूसरा रूप 'हिन्दु' है। यहां पर 'स' को 'ह' वैदेशिक न समझना चाहिये। 'स' को 'ह' पढ़ना अस्मद्देशीय भी है, हिन्दीभाषिक तथा संस्कृतभाषिक भी है। प्रत्युत वेदकालीन भी है। 'वैदिक धर्म' के पाठकगण इस पर निम्न पंक्तियां देखें—

मुलतानी भाषामें 'सर्वे' का अपभ्रंश 'सव्वे' भी है 'हव्वे' भी। 'आषाढ' का उच्चारण वहां पहले 'आसाढ' हुआ 'फिर 'हाड' हुआ। 'पौष' का अपभ्रंश वहां पूर्व 'पोस' हुआ, फिर 'पोह'। 'माष' का पहला उच्चारण वहां 'मास' होकर फिर 'माँह' हुआ। मुलतानी भाषा संस्कृतभाषासे हिन्दीभाषाकी अपेक्षा अधिक मिलती है- यह कभी फिर लिखा जायगा। 'दश' का मुलतानी उच्चारण 'दस' होकर फिर 'दह' हुआ। 'विंशति' का उच्चारण वहां 'बीस' होकर फिर 'बीह' हुआ। वहीं 'स्नुषा' को 'नूंह' कहा जाता है, यहां पर 'न' तो पूर्व आगया, और 'स' अक्षर 'ह' होकर पीछे चला गया। इससे सिद्ध होता है कि- 'स' का उच्चारण 'देशी' भी है।

कई विद्वान् वेदोंका आविर्भाव 'सिन्धु' तट पर मानते हैं, उसके देश 'सिन्ध' की भाषाके भी कई शब्द देखिये 'श्वसुर' को सिन्ध देशमें 'सहुरो' कहते हैं; 'विश्वास' को 'वेसाहु' तथा 'प्रविश' को 'पहु' कहते हैं। 'उ' को पीछे जोडना सिन्धी शैली है; इन सिन्धी शब्दोंमें 'स' को 'ह' बोला जाता है। इससे स्पष्ट है कि— यहां पर भी 'स' का 'ह' उच्चारण वेदके प्रभावसे हुआ।

पञ्जाबी भाषा लाहौर आदिमें 'पैसा' को 'पैहा' इस रूपमें कहा जाता है। इस प्रकार 'एषः' का वहां 'एसो' होकर 'एहो' इस रूपमें विपरिणाम होगया। इस प्रकार 'पञ्जाबी' के अन्य शब्द भी सम्भव हैं। करनाल, रोहतक आदिके ग्रामोंमें 'है' को 'सै' कहा जाता है। राजपूतानामें 'सागर' को 'हागर' कहा जाता है। जोधपुर (मारवाड) में 'सुनो' के स्थानमें 'हुणो' कहा जाता है। इसी तरह वहीं 'सारा' साग, सीरा, सालगराम, सर्दी, सीता' आदिको हारा, हाग, हीरा, आदि रूपमें पढा जाता है। इनका उच्चारण वहां आधा हकार तथा अस्पष्ट सकार किया जाता है। 'एन इन्ट्रोडेक्शन टू कम्पेरेटिव फिलोलाजी' इस पी० डी० गुणे से बनाई हुई अंग्रेजी पुस्तक (१९१८) के ३३ पृष्ठमें लिखा है— 'सप्त' यह संस्कृतमें है, 'सात' यह 'मराठी' भाषामें है, 'हात' यह गुजराती भाषामें है। 'सार्ध' यह संस्कृत भाषामें है 'साडे' यह मराठी भाषामें है, 'हाडा' यह गुजराती भाषामें है। इस प्रकार सकारका हकार उच्चारण देशी सिद्ध हुआ।

अब प्राचीन हिन्दीभाषाको देखिये- 'तुलसी रामायण' (राम चरितमानस) में लिखा है- 'केहरि कन्धर बाहु विशाला' (बालकाण्ड, छठा विश्राम, ५ वीं चौपाई) यहां पर 'केसरी' का ही दूसरा रूप 'केहरी' है। सूरदास आदि 'पाषाण' को 'पाहन' लिखते हैं। वहां पर 'ष' का 'स' होकर 'स' को 'ह' हुआ है। इसी प्रकार एक स्थानमें 'अनुसारि' के स्थान 'अनुहारि' लिखा है। इसी प्रकार 'ऊधो मन तो एकै आहि' यहां पर 'आहि' यह 'आसीत्' वा 'अस्ति' का अपभ्रंश है, जिसका अर्थ 'है' अथवा 'था' है। इसी प्रकार पद्माकरने 'सृष्टि' के स्थान 'सिहिटि' का प्रयोग किया है। एतदादिक स्थलोंमें 'स' वा 'ष' का 'स' होकर फिर 'ह' उच्चारण हुआ है।

अब आजकलकी हिन्दी देखिये- (इसमें ‘ स्नान ’ का ‘ नहाना ’ होगया है । यहां पर ‘ स ’ ‘ ह ’ रूपमें परिणत हो कर ‘ न ’ के पीछे होगया । इसी हिन्दी भाषामें ‘ मास ’ को ‘ माह ’ अथवा ‘ महीना ’ कहा जाता है । एकादश, द्वादश, त्रयोदश, चतुर्दश, पञ्चदश, षोडश, सप्तदश, अष्टादश ’ इन शब्दोंमें ‘ श ’ का ‘ स ’ होकर ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह, पन्द्रह, सोलह, सत्रह, अट्ठारह ’ यह विपरिणाम होगया है, इससे ‘ स ’ के ‘ ह ’ उच्चारण में देशिकता स्पष्ट प्रतीत हो रही है । ‘ अस्ति सकारमातिष्ठते ’ इस ‘ महाभाष्य ’ के सिद्धान्तके अनुसार ‘ अस्ति ’ ‘ स ’ रूप है । उसी ‘ स ’ रूप ‘ अस् ’ के स्थानमें ‘ है ’ पढा जाता है । ‘ पुष्प ’ के स्थानमें हिन्दीमें कहीं ‘पुहप’ शब्द दीखता है । यहां ‘ष’ का ‘स’ होकर ‘ स ’ फिर ‘ह’ होगया । ‘अस्मान्’ का विकृत ‘हमें’ है; यह ‘ह’ ‘स’ का है । ‘ सः ’ का ‘ वह ’ ‘ सन्ति ’ का ‘ है ’ ये सब ‘ स ’ के ‘ ह ’ रूपमें विपरिणाम हैं ।

अब प्राकृत भाषाकी ओर आइये । उसमें भी कहीं-कहीं ‘ स ’ को ‘ ह ’ देखा जाता है । ‘ चतुर्दश ’ शब्दमें ‘ श ’ का ‘ स ’ उच्चारण प्रसिद्ध ही है । युक्तप्रान्त तो इस उच्चारणके लिए प्रसिद्ध ही है । उसीका प्राकृतमें ‘ चउदह ’ इस प्रकार ‘ स ’ के स्थानमें ‘ ह ’ उच्चारण मिलता है । इस प्रकार ‘ अस्मि ’ के स्थानपर प्राकृतमें ‘ ह्मि ’ प्रयुक्त होता है । यह ‘ ह ’ स्पष्ट ही ‘ स ’ का विपरिणाम है । ध्वनिकार आनन्द वर्धनाचार्यसे प्रणीत ‘ देवीशतक ’ में संस्कृत-प्राकृत उभय भाषाश्लेषके उदाहरणात्मक पद्यमें ‘ मह देसु रसं धम्मे ’ यहां पर ‘ मम देहि रसं धर्मे ’ यह संस्कृत पाठ है । यहां पर ‘ देसु ’ का ‘ देहि ’ यह दिखलाई देता है । यहां भी ‘ स ’ का ‘ ह ’ उच्चारण स्पष्ट ही है । इसी प्रकार ‘ अस्मादृशानाम् ’ की प्राकृत ‘ अह्मारिसाणं ’ तथा ‘ युष्माकम् ’ की ‘ तुह्माणं ’ एवं ‘ अस्माकम् ’ की प्राकृत ‘ अह्माणम् ’ है । यहां सर्वत्र ‘ स ’ को ‘ ह ’ दीखता है ।

अब ‘ वैदिक धर्म ’ के पाठकगण संस्कृतके व्याकरणकी ओर आएँ ‘ स ’ और ‘ ह ’ ये दो अक्षर बाह्य प्रयत्नोंमें ‘ महा-प्राण ’/समान हैं । आभ्यन्तर प्रयत्न भी दोनोंका ईषद्विवृत ’ समान ही है । वर्णमालामें ‘ श, ष, स, ह, यहां पर ‘ स ’ और ‘ ह ’ का ‘ साहचर्य ’ तो प्रत्यक्ष ही है । व्याकरणमें ‘ सेर्ह्यपिच्च ’ (पा० ३।४।८७) इस सूत्रमें भी ‘ सि ’ को ‘ हि ’ देखा गया है । ‘ ह एति ’ (पा० ७।४।५२) सूत्रमें भी ‘ स ’ को ‘ ह ’ देखा गया है । इसीलिए ‘ अभिज्ञान शाकुन्तल ’ नाटकके ‘ स्वमर्हतां प्राग्रसरः ’ (५।१६) इस पद्यमें ‘ प्राग्रहरः ’ इस प्रकार ‘ स ’ के स्थानमें ‘ ह ’ का पाठभेद मिलता है ।

अब वेदकी ओर आना चाहिये । वेदमें भी कहीं ‘ स ’ को ‘ ह ’ दीखता है । ‘ निघण्टु ’ (१।१३) में ‘ सरितः ’ यह नाम नदीका है; वैसे ही ‘ हरितः ’ भी नदीका नाम माना गया है । वेदमें भी उसका प्रयोग मिलता है- ‘ हरितो न रंह्याः ’ (अथर्व० २०।३०।४) ‘ यं वहन्ति हरितः सप्त ’ (अथर्व० १३।२।२५) । इस प्रकार ‘ हरितः, सरितः में अर्थभेद नहीं । इसी प्रकार ‘ निघण्टु ’ (१।१३) में ‘ सरस्वत्यः ’ भी नदियोंके नामोंमें आया है ‘ हरस्वत्यः ’ भी । अब ‘ हरस्वती ’ शब्दको देखिये— ‘ तं ममर्तु दुच्छुना हरस्वती ’ (ऋ० २।२३।६) । इसी प्रकार वेदमें ‘ सिरा ’ का ‘ धमनी ’ (नस-नाडी) अर्थ है । इसी अर्थमें ‘ हिराः ’ यह पाठ भी दीखता है । जैसे कि- ‘ इमा यास्ते शतं हिराः ’ (अथर्व० ७।३५।२) हिराः- नाडियाँ । ‘ शतस्य धमनीनां, सहस्रस्य ‘ हिराणांम् ’ (अथर्व० १।१७।३) । ‘ अमूर्या यन्ति योषितो हिरा लोहितवाससः ’ (अथर्व० १।१७।१) यहां पर ‘ निरुक्त ’ (पं० शिवदत्तसम्पादित) के १८० पृष्ठकी टिप्पणीमें ‘ हिराः— सिराः, यह पाठ भी लिखा है । इससे स्पष्ट है कि- ‘ सिन्धु ’ में ‘ स ’ के स्थानमें हकारघटित ‘ हिन्दु ’ यह पाठ भी वैदिक कालसे चला हुआ है, मुसलमानी कालसे नहीं ।

‘ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ ’ (३१।२२) यह मन्त्र शुक्लयजुर्वेदमें है । ‘ श ’ का उच्चारण ‘ स ’ और ‘ श्री ’ का उच्चारण ‘ स्री ’ इस रूपमें उत्तर प्रदेश तथा देहली प्रान्त आदिमें सुप्रसिद्ध ही है । उस ‘ स ’ का अन्य वेदमें ‘ ह ’ भी पाठ दिखलाई देता है । उक्त मन्त्र ‘ कृष्णयजुर्वेद ’ के ‘ तैत्तिरीयारण्यक ’ में ‘ ह्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ ’

(३।१३) इस रूपमें आया है। तब 'स' को 'ह' पढनेमें जहां देशिकता, हिन्दीभाषिकता, प्राकृतिकता, सांस्कृतिकता सिद्ध है; वहां पर वैदिकता भी सिद्ध हुई। हां, इतना अवश्य है कि 'स' को 'ह' पढना भी क्वाचित्क है, सार्वत्रिक नहीं। कहीं उसकी व्यवस्था है, कहीं नहीं। इसी कारण, सत्यं' के स्थान 'हत्यं' आदि नहीं पढा जाता। वेदकी सभी ११३१ संहिताओंमें ९-१० संहिताओंके अतिरिक्त अन्य संहिताएं प्राप्त नहीं होतीं; अन्यथा वहां 'सिन्धु' के स्थानोंमें कहीं 'हिन्धु' पाठ भी मिल जाता; क्योंकि– 'नह्यमूला जनश्रुतिः,। फिर 'हिन्धु' के स्थानमें 'हिन्दु' यह पाठ तो लोक—प्रसिद्धि है, 'घुणाक्षरन्याय' से वह भी संस्कृत होगई। जैसे कि– 'प्रहाद' की प्रसिद्धि 'प्रारहाद' इस प्रकार लकार-घटित होगई, जब कि–रेफ घटित ही उसका नाम प्राचीन पुस्तकोंमें आता है। +

इधर वादियोंके अनुसार भी जब सृष्टिके आदिमें हिन्दु जातिके अतिरिक्त कोई जाति नहीं थी, यह फारस, अरब आदिके मुसलमान भी पहले हिन्दु ही थे; फिर मतभेदके कारण, वा धर्मभ्रष्टतासे अथवा अपभाषणरूप म्लेच्छतासे वे मुसलमान होगये; तब उन्होंने भी जो 'सिन्धु' में 'स' को 'ह' कहा, उसमें हिन्दुप्रभाव ही मूल समझना चाहिये। उनका स्वतन्त्र प्रभाव इसमें नहीं माना जा सकता। जब वे अपनी पृथक् सत्ता नहीं रखते थे; तो 'स' 'ह' भी नूतन रूपसे कहांसे ला सकते थे, अतः स्पष्ट है कि– 'हिन्दु' शब्द वैदेशिकोंकी स्वतन्त्र कृति नहीं।

जो कि– यह कहा जाता है कि– भारतीय तो अब भी 'सिन्धु' को 'सिन्ध' और 'सिन्धु' देशके निवासियों-को 'सिन्धी' ही कहते हैं। यदि यह हमारा ही अपभ्रंश होता, तो हम इन्हें 'हिन्दी' तो कहते; अतः यह वैदेशिक है' यह वादियोंकी युक्ति वादियोंके पक्षको स्वयं काट रही है। यदि वे 'सिन्धु' का स्थानी 'हिन्दु' वैदेशिक मानते हैं; तो वैदेशिक लोगोंने भी 'सिन्ध अहाता' तथा 'सिन्धी' को 'हिन्द अहाता' तथा 'हिन्दी' क्यों नहीं कहा ? 'स्थान' को आपके अनुसार 'हतान' न कह कर 'स्तान' क्यों कहा ? इससे स्पष्ट है कि– 'स' को 'ह' इस शब्दमें वैदेशिक नहीं। यदि 'स' को 'ह' कहना वैदेशिकोंकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है; तो उन्होंने 'ईसामसीह' को 'इमामहीम' क्यों नहीं कहा ? 'मूसा पैगम्बर' को 'मूहा' क्यों नहीं कहा ? वे 'संस्काराविधि' को 'हंस्कार विधि' क्यों नहीं कहते ? 'सिन्ध दरया' को 'हिन्द दरया' क्यों नहीं कहते ? अतः स्पष्ट है कि– यह युक्ति इस विषयमें सङ्गत नहीं। इसी प्रकार 'माल्कसन' से बनाई 'अकबर' पुस्तकके ३८ वें पृष्ठमें "ऐ बावर ! तुझे सिन्ध और हिन्द राज्य दिये हैं" और 'तारीख फीरोजशाही' ग्रन्थमें 'हिन्द और सिन्धके सारे मुल्क' यह पाठ कैसे आया ? अतः वादियोंकी उक्त युक्ति व्यर्थ है।

अन्य प्रकार।

अथवा इस विषयमें यह भी कहा जा सकता है कि– 'सिन्धु' 'सिन्' शब्दसे बना है। 'सिन्' का अर्थ 'इन्दु' अर्थात् चन्द्रमा है। इसलिये 'सा दृष्टेन्दुः सिनीवाली' (अमरकोष १।४।९) इस प्रमाणमें दृष्टचन्द्रा अमावास्याका नाम 'सिनीवाली' है; जिसका वेदके 'सिनीवाली ! पृथुष्टके' (ऋ० २।३२।६) 'तस्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन' (२।३२।७) 'या सिनीवाली या राका' (ऋ० २।३२।८) इन मन्त्रोंमें निरूपण है। 'सिनीवाली' की व्युत्पत्ति करते हुए 'अमरकोष' की व्याख्यासुधामें कहा है– 'एन– विष्णुना सह वर्तते सा,

---

+ जैसे कि– 'अथर्ववेद' में 'विरोचनः प्राह्लादिः' (८।१०+४।२)। श्रीमद्भागवतमें 'प्रह्लादो भून्महाँस्तेषाम्' (७।४।३०) परन्तु लोकमें 'प्रल्हाद' इस प्रकार लकार–घटित प्रसिद्धि होगई। वह भी घुणाक्षर न्यायसे संस्कृत होनेसे परिवर्तित नहीं की जाती। इसी प्रकार वेदके मन्त्रभागमें 'वेन' के पुत्रका नाम 'पृथी' (अथर्व० ८।१०+४।११) मिलता है; परन्तु वेदके ब्राह्मण भागमें 'पृथु'– (शतपथ ५।३।५।४) तथा पुराणोंमें भी 'पृथु' (श्रीमद्भागवत ४।१३।२०) मिलता है। इस प्रकार 'हिन्दु' यह नाम भारतवर्षका है। इसे ह्रस्व लिखना चाहिये—'हिन्दु' दीर्घ 'हिन्दू' नहीं। मूलशब्द 'सिन्धु' है।

सा (लक्ष्मीः) तद्योगात् सिनी-चन्द्रकला' । इसी प्रकार मुकुटने भी 'सिनी' का अर्थ 'चन्द्रकला' लिखा है। निरुक्तकार श्री यास्क भी 'सिनीवाली' का 'वालेनेव अस्यामणुत्वात् चन्द्रमाः सेवितव्यो भवतीति वा' (११।३१।२) यह कहकर 'सिन्' का अर्थ 'इन्दु' 'चन्द्रमा' बताते हैं। 'सिन्धु' नाम भी समुद्रका चन्द्रमा धारण करनेसे सम्भव है-- 'सिन्-- धुः'। अमृतमथनके समय उस (चन्द्रमा) की उत्पत्ति समुद्रसे प्रसिद्ध है; समुद्र चन्द्रमाको देखकर उछलता भी है। 'सिन्धु' यह नदी विशेषका नाम भी समुद्र जैसी विशालता वा दुरन्तता देखकर रखा गया हो- यह भी सम्भव है। इस देशके लोग सिन् (इन्दु) के व्रती भी थे, चान्द्रायण व्रत हमारे देशमें बहुत प्रसिद्ध रहा है। इसी सिन् (इन्दु) को चान्द्रायण आदि व्रत द्वारा धारण करनेसे इस देशको 'सिन्धु' (सिन्--धु) अथवा (इन्दु) भी कहा जाता रहा। चीनी ह्वेनसांगने भी 'भारत' का पुराना नाम 'इन्दु' माना है। 'वाल्मीकि-रामायण' में 'सिन्धु' नदीका नाम भी 'इन्दुमती' लिखा है। इसी 'इन्दु' को बिगाड कर यूनानियोंने 'सिन्धु' का नाम 'इण्डस्' और हमारा नाम 'इण्डियन' रखा।

इस प्रकार 'सिन्धु' वा 'इन्दु' से भी इस देशका हिन्दु' बनना स्वाभाविक है। देशके नामसे ही जातिका नाम होनेसे हमारी जातिका नाम भी 'हिन्दु' हुआ। इसी जातिके उपास्य देव महादेव उस इन्दु' को माथे पर रखते हैं। 'सिंधु' शब्द नदीका पर्यायवाचक भी हुआ करता है। वे महादेव 'सिंधु' (गङ्गा) को भी सिरमें रखते हैं। 'देवो भूत्वा देवान् एति' (शतपथ १४।६।१०।४) इस सिद्धांतसे महादवकी उपास० जातिने (मुहञ्जोदाडो और हडप्पाकी खुदाईमें शिवलिङ्ग बहुत मिले; यह सभ्यता वैदिककालसे भी प्राचीन मानी जाती है) अपने उपास्य देवके सिर-माथेमें ठहरे 'सिंधु--इंदु' का चंद्ररात्रि आदिमें नमस्कार आदिसे जहां आदर करना जारी रखा; वहीं उसके नाम 'इंदु' वा 'सिन्-धु' को अपने सिर-माथे रखा। उसी 'इंदु' वा 'सिंधु' का दूसरा रूप 'हिंदु' हुआ।

वैदिक कालमें भी 'सिन्' के 'हिन्' वा 'हिं' उच्चारणका मूल 'शतपथ ब्राह्मण' में भी मिलता है। वहां लिखा है-- 'हिं--कृत्वा अन्वाह, न असामा यज्ञोऽस्ति--इति वै आहुः। न वा अ--हिंकृत्य सामगीयते... ...प्राणो वै हिंकारः' (१।४।३।१--२)। यहां 'हिं' को यज्ञका प्राण-जीवनाधायक माना गया है। इस प्रकार याज्ञिक इस हिंदु जातिने भी इस 'हिं' को जीवनाधायक होनेसे अपनाया। पदार्थके सिद्ध प्राणप्रद धर्मका नाम ही 'काव्य-प्रकाश' आदिमें जाति कहा है। 'हिं' का उच्चारण विना किये वे सामवेदका उच्चारण नहीं करते थे; और विना सामवेदके गाये यज्ञ नहीं होता था। तब याज्ञिक जातिका नाम भी 'सिन्' या 'हिं' धारण करनेसे 'सिंधु' वा 'हिंधु' वा 'हिंदु' हुआ। 'दा' धातुका भी 'धारण' अर्थ होता है; जैसे कि 'निरुक्त' में लिखा है- 'दण्डो ददतेर्धारयतिकर्मणः। 'अक्रूरो ददते मणिम्' इत्यभिभाषन्ते (२।२।११) 'चतुरश्चिद् ददमानात्' (निरुक्त० ३।१६।१) यहां पर भी 'दद' का 'धारण' अर्थ किया गया है। 'हिं' को 'दु' धारण करनेवाली जाति 'हिन्दु' कहलाई।

अन्य प्रकार

इधर उस 'हिं' को गाय भी कहता है। यह हिन्दु जाति वैदिककालसे गायकी भक्त चली आरही है। गाय-का 'हिं' करनेको बतलाने वाला एक मन्त्र वेदमें इस प्रकार आया है—

'हिं कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती
मनसा भ्यागात्।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां
महते सौभगाय।'
(ऋ० १।६४।२७, अथर्व० ९।१०।५)

इस गोवर्णन परक मन्त्रमें पूर्वार्धका आदिम वर्ण 'हिं' है, यही यज्ञका जीवनाधायक है, यह पूर्व कहा जा चुका है। गाय भी यज्ञका अङ्ग है; अतः उसने भी 'हिं' को धारण किया। इस मन्त्रके उत्तरार्धका आदि वर्ण 'दु' है। ये ही दो वर्ण 'हिं-दु' यज्ञभक्त एवं गोभक्त इस जातिने स्वीकृत किये। जैसे यज्ञ सामके विना नहीं किया जाता; और साम 'हिं' के विना नहीं गाया जाता; अतः इस 'याज्ञिक जातिने' 'हिं' को धारण किया; वैसे ही इस जातिका काम भी

गायके विना नहीं चलता । अतः इस जातिने यज्ञ तथा गाय दोनोंका चिह्न होनेसे ' हिं ' शब्दको धारण किया; प्रत्युत यह जाति उस ' हिं ' के संस्कारको अपने छोटे बच्चोंके कानमें भी जन्मसे डालती है। जैसे कि- ' प्रजायतेष्ट्वा हिं कारेण अवजिघ्रामि, गवां त्वा हिं कारेण; सहस्रायुषा जीव, शरदः शतम् (पारस्कर गृह्यसूत्र १।१८।३-४)।

इस जातिका गोप्रेम देखिये- जब यह जाति भोजन करने बैठती है; तो गोग्रास सबसे पूर्व रखती है । मरनेके समय वैतरणीपारार्थ गोदान वा गोपूजन प्रसिद्ध है । पहला ग्रास भी गायको ही खिलाया जाता है। इस जातिमें 'गोस्वामियोंकी ' उच्चता तथा भगवान् कृष्णकी उपासना भी गौओंके कारणसे है । ' गोलोक ' हिन्दुओंके लिये एष्टव्य लोक है। शुद्धि प्रायश्चित आदिमें ' गाय ' के ' पञ्चगव्य ' का ही उपयोग होता है ' दूसरे पशुओंको अहन्तव्य न कह कर गायको ही ' अघ्न्या ' कहा जाता है। इसी लिये ही हिन्दुओंके मुसलमानोंसे झगडे होते हैं। गोशब्द आदि वाली सब्जियाँ भी प्रायः नहीं खाई जातीं। अन्य भी हिन्दु जातिकी गायके विषयमें बहुत ही श्रद्धा है; जैसे कि- दूसरेका खेत खा रही गायका दूसरेको वृत्त न कहना-आदि। इन बातोंको छोडिये, हिन्दुओंकी स्थिरताकी मुख्य वस्तु वर्ण या जाति है, जिसका विचार कर विवाह वा उपनयन आदि हुआ करते हैं; इस जाति वा वर्णका सङ्केत सूचक शब्द भी ' गोत्र ' इस प्रकार गायके नामसे रखा गया है।

तब उसी गायके मन्त्रके पूर्वार्ध-उत्तरार्धके आरम्भिक वर्णोंको स्वीकार कर गोभक्त तथा वेदभक्त ' हिन्दु ' जातिने वेदके एक-एक अक्षरके स्वीकार कर लेनेमें भी अपनी श्रद्धा दिखला दी है । ठीक भी है- ' सर्वेषां स तु नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्। वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ' (मनु० १।२१) इस पद्यसे प्रतीत होता है कि-परमात्माने वेदके शब्दोंसे ही सब जातियोंके नाम, कर्म तथा आकृतियाँ बनाईं; क्योंकि -वेदका एक-एक अक्षर भी अन्वर्थ है । जैसे तीन वेदोंसे एक-एक अक्षर लेकर परमात्माने ' ओम् ' (अ, उ, म्) बनाया; एक-एक शब्द लेकर तीन व्याहृतियां- एक-एक- पाद लेकर गायत्री बनाई (इसके लिये देखिये- ' मनुस्मृति २।७६, ऐतरेय ब्राह्मण ५।३२, गोपथ ब्राह्मण १।१।६) इस प्रकार (त्रय्यां वाव विद्यायां सर्वाणि भूतानि ' (शत-पथ० १०।४।२।२२) के अनुसार ' हिन्दु ' शब्दकी निष्पत्ति भी वैदिक जाननी चाहिये ।

इन दोनों वर्णों (हिं-दु) में उक्त मन्त्रके अवशिष्ट वर्णोंका व्यवधान भी नहीं जानना चाहिये । ' न्याय-दर्शन ' में कहा है— ' यस्य येनार्थसम्बन्धो दूरस्थस्यापि तस्य सः । अर्थतो ह्यसमर्थानामानन्तर्यमकारणम् । (१।२।९) जिससे जिनका अर्थ सम्बन्ध होता है; वह दूरस्थित (व्यवहित) का भी हो जाता है । जिनका आपसमें अर्थ सम्बन्ध नहीं, उनकी निकटता भी सम्बन्ध करनेवाली नहीं होती । जैसे कि ' मीमांसादर्शन ' के शाबर भाष्यमें भी कहा है-' असत्यां हि आकाङ्क्षायां सन्निधान-मकारणं भवति, यथा-भार्या राज्ञः पुरुषो देवदत्तस्य ' (६।४।३३) यहांपर ' राज्ञः पुरुषः ' की निकटता होते हुए भी अर्थ सम्बन्ध न होनेसे समास नहीं होता। इस प्रकार इस अर्थापत्ति से सिद्ध हुआ कि— ' सत्यां हि आकाङ्क्षायाम् असन्निधानमपि सम्बन्ध कारणं भवति ' ।

इस प्रकार ' हिं-दु ' इन दो अक्षरोंके ' अ, उ, म् ' के इकट्ठा करनेसे बने हुए ' ओम् ' की तरह, इकट्ठे बने हुए ' हिंदु ' शब्दका प्रामाण भी सिद्ध हुआ । वैदिक साहित्यमें ऐसे शब्दोंकी कमी नहीं । जहां पर ' इताद्, आक्तात्, नीतात् (एतेरकारः, अनक्तेर्गकारः, नीजो निकारः ' निरुक्त ७।१४।६) इन तीन धातुओंके एक--एक अक्षरसे ' अग्नि, शब्द उत्पादित किया जाता है, जिस वैदिक साहित्य में ' भर्ग ' का ' भ ' इति भासयति इमान् लोकान्, ' र ' रञ्जयति इमानि भूतानि, ' ग ' इति गच्छन्त्यस्मिन्, आग-च्छन्ति अस्माद् इमाः प्रजाः, तस्माद् भ-र-गत्वाद् भर्गः (मैत्रायणी-आरण्यक ६।७) इस प्रकार अक्षरार्थ किया जाता है, जिस वैदिक साहित्यमें ' मख ' शब्दका अक्षरार्थ या व्युत्पत्ति ' मख इत्येतद् यज्ञनामधेयम्, छिद्रप्रतिषेध सामर्थ्यात् छिद्रं खमित्युक्तम्, तस्य मा-इति प्रतिषेधः, मा यज्ञे छिद्रं करिष्यति ' (गोपथ ब्रा० २।२।५) इस प्रकार

दीखती है और समुदित करके सिद्धि होती है; इसी प्रकार वेदके एक मन्त्रके पूर्वार्ध-उत्तरार्धके आदिम एक-एक अक्षर से निष्पन्न ' हिन्दु ' शब्दके विषयमें भी जान लेना चाहिये।

ऐसी बात कालिदासके विषयमें भी प्रसिद्ध है। उसने 'अ, प्र, शि, ख' का ' अनेन तव पुत्रस्य, प्रसुप्तस्य वनान्तरे। शिखामादाय सहसा खड्गेनोपहृतं शिरः ' इस प्रकार अर्थ निकाला था। आजकल भी ऐसी परिपाटी मिलती है। जैसे- एन, डबलू, आर, ई, पी, आर, ई, आई, आर, टी, टी, डी. टी. एस, डी. सी आदि। मुसलमानोंने भी ' पाकिस्तान ' यह शब्द भिन्न-भिन्न अक्षरों (पञ्जाब, कश्मीर आदि) को मिला कर रखा था। यू. पी, सी. पी आदि शब्द भी इसी तरह के हैं। जिस प्रकार ' उपनिषद् ' में भी ' द. द. द ' के ' दाम्यत, दत्त, दयध्वम् ' (बृहदारण्यक ७।२।१-३) एक-एक अक्षरके भिन्न-भिन्न शब्द बनाये गये। ' माण्डूक्योपनिषद् ' के अनुसार ' ओम् ' शब्द ' आप्तेरादिमत्त्वाद् (अ), उत्कर्षत्वाद् उभयत्वाद् वा (उ), मितेः (म्) (९।१०।११) इन समुदायोंके आद्याक्षरोंसे बनाया गया; जिस प्रकार अंग्रेजीका News (न्यूज) शब्द North (उत्तर) East (पूर्व) West (पश्चिम) Soutb (दक्षिण) इन चारों दिशाओंके आद्यक्षरोंसे ' चारों दिशाओंका वृत्तान्त ' इस अर्थमें बना; इसी प्रकार 'हिन्दु' शब्दके विषयमें भी जान लेना चाहिये। प्रत्युत यही गोपरक उक्त मंत्र ' हिंदुजाति ' के अर्थमें समन्वित भी हो सकता है, यह सूक्ष्म विचारसे स्फुट हो सकता है; क्योंकि स्व-स्वामीका भी अभेद-सम्बंध हो जाता हुआ देखा गया है।

जैसे तीन वेदोंके एक-एक अक्षरजपसे निष्पन्न हुए भी ' ओम् ' की ' अवतीति ओम् ' यह व्युत्पत्ति तथा ' अवतेष्टिलोपश्च ' (उणादि १।१३९) इस प्रकार सिद्धि भी वैयाकरणों द्वारा की जाती है; वैसे ही पूर्व कहे प्रकारसे सिद्ध हुए ' हिन्दु ' शब्दकी प्रकारान्तरसे भी सिद्धि होती है जैसे कि- ' हिनस्तीति हिन् (हिंसेः क्विप्, ' संयोगान्तस्य लोपः ') हिंसं द्यति--खण्डयति--इति हिन्दुः। ' उणादयो बहुलम् ' (३।३।१) इस सूत्रसे बाहुलकसे ' डु ' प्रत्यय तथा टिका लोप होजाता है। स्वा० दयानन्दजीने ' आख्यातिक ' में उक्त सूत्रपर ३६२ पृष्ठमें टिप्पणी दी है— ' बहुवचनसे यह समझना चाहिये कि-जो उणादिगणमें प्रत्यय नहीं कहे गये हैं; वे भी होते हैं "।

अथवा ' हिमालय ' पर्वतके ' हि ' को तथा ' इन्दु ' सरोवर (कुमारी अन्तरीप) के ' न्दु ' को लेकर पूर्वप्रकारसे ' हिन्दु ' बना है। इस प्रकारकी शैलियाँ भी प्राचीन हैं। जैसे कि--' गम् ' यह गणपतिका बीज मन्त्र प्रसिद्ध है। यह बीजमन्त्र ' गणानां त्वा... सीद सादनम् ' (ऋ० २।२३।१) अथवा ' गणानां त्वा... गर्भधम् ' (शुक्लयजुः वा० सं० २३।१९) इस मन्त्रके आदिम तथा अंतिम अक्षरको लेकर बना है; इस प्रकार ' हिन्दु ' शब्दको भी बीजमन्त्रकी तरह द्व्यक्षरात्मक जानना चाहिये। बीजमंत्रोंमें बडी शक्ति वा बडा रहस्य सन्निहित होता है। इस प्रकार उक्तगोमन्त्रके संकेतित दो अक्षरोंसे इस जातिका गायके संरक्षण--वर्धनादिसे सौभाग्य बढ सकता है ' अथवा ' हिमालयसे लेकर इन्दु सरोवर तक हमारे ' हिन्दु ' स्थानकी सीमा है ' यह रहस्य निकलता है--यह ' हिन्दु ' को ध्यान रखना चाहिये।

इस प्रकार सिद्ध है कि--ब्राह्मणसे लेकर अन्त्यजान्त जातियोंका नाम ' हिन्दु ' है। यदि अन्य पुस्तकोंमें ' हिंदु ' शब्द नहीं मिलता; तो ' आर्य ' शब्द भी उन सभी (अन्त्यजांत) जातियोंका कहीं नहीं मिलता। वैदेशिक जातियाँ अपने आपको ' आर्य ' कहती हैं— यह बात भी ठीक नहीं। वे अपने आपको ' अर्यन ' कहती हैं, ' अर्यन ' का भाव वे ' ईरान ' से आया हुआ मानती हैं, जो हमें कभी इष्ट नहीं होसकता। हिन्दुस्थान ही हमारा आदि देश है-ईरान आदि नहीं।

'आर्यावर्त' शब्द वेदादिमें कहीं नहीं आता। श्रीसत्यव्रत सामश्रमीने आर्यावर्त ' के विषयमें यह लिखा है-- ' अथ तद् आर्यावर्ताभिधानं न क्वचिदपि संहितायां ब्राह्मणे वा श्रुतमस्ति ' (ऐतरेयालोचन पृ० २०) उक्त पुस्तकके ३० पृष्ठमें श्रीसामश्रमीजीने लिखा है ' तत्वतस्तु एतद् त्रिसप्तनदी परिवृतः ' सिन्धु मध्य एव आसीत् पूर्वकालिक आर्यावर्तः '। अर्थात्-आर्यावर्त नाम किसी भी संहिता वा ब्राह्मणमें नहीं है, २१ नदियोंसे घिरा हुआ ' सिन्धु ' का मध्य ही वेदकालीन आर्यावर्त था।

‘अन्तर्ज्वाला ’ पुस्तकमें ‘ अखण्ड भारत ’ निबन्धमें श्री चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार महाशयने लिखा है- ‘ वैदिक कालसे ‘ सिन्धु ’ शब्द ‘ हिंदुस्तान ’ की स्वाभाविक सीमाओं ‘ सिन्धु ’ नदीसे सिन्धु (समुद्र) पर्यन्तके लिये व्यवहृत होता आया है । ‘ सप्तसिन्धु ’ नाम इस देशकी सात नदियोंके कारण रखा गया था और इसी नामसे वेदकालीन भारतको स्मरण किया जाता है ” । (पृष्ठ० १७)

‘ हिन्दुत्व ’ पुस्तकमें वीर सावरकरने लिखा है— ‘जहां उनकी राष्ट्रियता और संस्कृतिने सर्वप्रथम विकास पाया था; उनके प्रति कृतज्ञताभावसे उन्हें इस देशका नाम ‘सप्तसिन्धु ’ रखनेको प्रेरित किया (पृ० ७) ‘ आर्यगण उसी (वेदके) समयसे ‘ सिन्धु ’ कहलाने लगे ’ (पृ० ८) ‘ हमारे पूर्व पुरुषोंने ही ‘ हिन्दु ’ नाम तो आदि (वैदिक) कालसे ही अपना लिया था, और संसारके अन्य राष्ट्र भी हमारे देशको ‘ सप्तसिन्धु ’ या ‘ हप्त-हिन्दु ’ और हमें ‘ सिन्धु ’ या ‘ हिन्दु ’ नामसे जानते थे ’ (पृ० ९-१०) ‘ यह सच हो तो मानना पडेगा कि-- ‘ हिन्दु ’ नाम आर्योंसे भी पूर्वका है । आदिनिवासी भी अपने को ‘ हिन्दु ’ कहते थे । संस्कृतमें ‘ ह ’ को ‘ स ’ हो जानेके कारण आर्यलोग इसे ‘ सिन्धु ’ कहने लगे । मूलनाम ‘ हिन्दु ’ ही हैं । ‘ हिन्दु ’ शब्दको अर्वाचीन माननेवालोंके पास इस युक्तिका कोई उत्तर नहीं है । ’ (हिन्दुत्व पृ० ११)

‘ प्रोफेसर मेकडोनेल्ड ’ ने भी ‘ हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर ’ नामक अपनी पुस्तकमें लिखा है--‘ उधरसे आनेमें इनके सम्मुख सबसे पहले ‘ सिन्धु ’ ही पडती थी । इसलिये उपलक्षसे यही नाम भारतवर्षका रखा, ग्रीक लोग सिन्धुनदसे उपलक्षित प्रदेशको ‘ इन्डोस ’ कहते थे, आगे चलकर भारत वर्षका नाम ‘ इण्डिया ’ होनेमें यही कारण हुआ ।... ‘ ऋग्वेद ’ में ‘ सप्तसिन्धु ’ का कई स्थानोंपर निर्देश है । उसमेंसे एक मन्त्रमें तो वह आर्यावासका वाचक है ’ (श्री पं. नरदेव शास्त्री आचार्य गुरुकुल ज्वालापुरसे प्रणीत ‘ ऋग्वेदालोचन ’ पुस्तकके १५८--१५९ पृष्ठमें)।

वर्तमान शिक्षामन्त्री श्रीसम्पूर्णानन्दजीसे प्रणीत ‘आर्योंका आदिदेश ’ पुस्तकमें लिखा है--‘ वेदोंमें तो ‘ सप्तसिन्धव ’ देशकी महिमा गायी है । यह देश सिन्धुनदीसे लेकर सरस्वती तक था । इन दोनों नदियोंके बीचमें काश्मीर और पञ्जाब आगये ’ (पृ० ३२) ‘ इससे यह निश्चित है कि-- वेदोंके आधार पर आर्योंका अर्थात् आर्य संस्कृतिका आदिमस्थान ‘ सप्तसिन्धव ’ ही था ’ (नवम अध्याय ८० पृष्ठ) ‘ वेदोंमें ‘ सप्तसिन्धव ’ देशके अतिरिक्त और किसी देशका स्पष्ट उल्लेख नहीं है ’ (पृ० ८०)

श्रीअविनाशचन्द्रदास एम्० ए. बी. एल. लैक्चरार कलकत्ता विश्वविद्यालयने भी ‘ ऋग्वेदिक इण्डिया ’ पुस्तकमें लिखा है-‘ आर्य सप्तसिन्धु प्रदेश ’ के निवासी थे ” । आजकलके वेदमें रिसर्च करनेवाले विद्वानोंकी गवेषणासे भी यही सिद्ध होता है कि--हमारे देशकी ‘ सिन्धु ’ यह संज्ञा वेदकालसे ही है । तब उस देशकी जातिकी भी संज्ञा वैदिककालसे ‘ सिन्धु ’ ही सिद्ध हुई । उसमें ‘ स ’ को ‘ ह ’ की देशिकता वा वैदिकता हम सिद्ध कर ही चुके हैं ।

वे सातों नदियाँ अखण्ड हिन्दुस्थानको परिचापित करती है—‘ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि ! सरस्वति ! नर्मदे ! सिन्धुकावेरि ! जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु’ ये भारतकी सात नदियां (सिन्धवः) हैं । गङ्गा-यमुना, सरस्वती ये तीन पूर्वीय भारतकी नदियाँ हैं । ‘ गोदावरी ’ पश्चिम भारतकी नदी है । ‘ नर्मदा ’ मध्यभारतकी नदी है । ‘ सिन्धु ’ पश्चिमोत्तर भारतकी नदी है । ‘ कावेरी ’ दक्षिण भारतकी नदी है । इन सात नदियोंका वैदिक नाम ‘ सप्तसिन्धु ’ है, संक्षिप्त नाम ‘ सिन्धु ’ है । उसीके आश्रयसे हमारी जातिका नाम भी ‘ सिन्धु ’ है ।

“ यह ‘ हिन्दुनाम मुसलमानोंने रखा, या दासमनोवृत्तिका सूचक है वा मुसलमान आदिने घृणासे रखा, मुसलमानोंके अत्याचारसे हमने ‘ हिन्दु ’ नाम स्वीकृत किया ” यह किन्हींका कथन निस्सार है । ‘ मुहम्मदी धर्म १३०० सालोंसे पहले नहीं था, (स० प्र० १४ समु० ३४९ पृष्ठ) परन्तु ‘ हिन्दु ’ शब्द उससे भी पूर्व मिलता है । ‘ जिन्दा वस्ता ’ पुस्तकमें ज़िसे आज कलके भाषातत्वाभिज्ञ ‘ ऋग्वेद ’ के कुछ समयके बाद बनाया हुआ मानते हैं-- ‘ हिन्दु ’ शब्द मिलता है । उसी- ‘ आवीर ’

पुस्तकमें हमारे देशका नाम ' हिन्द ' कहा है। जैसे कि-- ' अकमनूं बिरहमने व्यासनाम अज हिन्द आमद बस दाना कि अकलचुना नस्त ' यहां पर व्यासजीका हिन्द (भारतवर्ष) से आना कहा है। यदि मुसलमानोंसे हमें यह नाम मिलता, तो उनसे कई हजार वर्ष पूर्वकी पुस्तकमें ' हिन्द ' यह नाम न मिलता। इससे स्पष्ट है कि-- मुसलमानोंकी उत्पत्तिसे कई सहस्र वर्ष पूर्व भी ' हिन्द ' आदि शब्द प्रचलित थे। श्रीसत्यव्रत सामश्रमी महाशयने ' निरुक्तालोचन ' में लिखा है— ' यथा इह भारते महम्मदीय राज्यस्थापनात् प्रागपि अपरदेशे ' हिन्दु ' रिति व्यवहार आसीदेव अधार्मिकेषु। तत उत्तरं सैव (हिन्दुरिति) समाख्या तदाक्रोश कृतायचरितेव अस्मासु च। ततो वयमपि ' हीनं च दूषयत्यस्माद् हिन्दुः ' इति ' मेरुतन्त्र व्युत्पादनमन्त्रिमत्य ' हिन्दु ' नाम कथनेपि गौरवमेव मन्यामहे ' (पृष्ठ ७०)।

" मुसलमानोंके अत्याचारसे हमने ' हिन्दु ' नाम स्वीकृत किया " ऐसा आरोप भी ठीक नहीं। भारतमें मुसलमानी राज्यका मूलारोपक ' शहाबुद्दीन महमूद गोरी था; परन्तु इन लोगोंके अत्याचार तो दूर रहे, जब उनके पैर भी भारतमें नहीं पडे थे और ' गोरी ' पृथिवीराजके व्यवहारोंसे तङ्ग होरहा था; तभी पृथिवीराजके सभाकवि आदिकवि चन्दबरदाईने अपने कविता ग्रन्थमें इस देशको ' हिन्द व ' इस नामसे तथा इस जातिको सर्वत्र ' हिन्दु ' नामसे कहा है। ' हम हिन्दु लजवान ' ' गति हिन्दू पर साहि सज्जि ' इत्यादि उसी ' पृथिवीराजरासो ' नामक उसके ग्रन्थके उद्धरण हैं।

" दासमनोवृत्तिसे हमने मुसलमानोंसे दिये ' हिन्दु ' नामको स्वीकृत किया- " ऐसी सम्भावना भी निर्मूल है। यह बात श्रद्धेय नहीं कि-अपने देश तथा अपनी जातिके नामपर मर मिटनेवाली राजपूत सदृश वीर जातिके आश्रित कविगण तथा इस देशकी विशाल जनता दासमनोवृत्तिवाली थी; तथा उसने मुसलमानों द्वारा जिनके साथ उनकी बडी शत्रुता बढ चुकी थी, जिनका इस देशमें अभी बहुत प्रभाव भी नहीं पडा था- घृणावश दिये हुए ' हिन्दु ' नामको अनायास स्वीकार कर लिया। शिवाजी मुसलमानोंके कट्टर शत्रु रहे; परन्तु उनके आश्रित कवि भूषणने भी अपनी कवितामें ' हिंदु ' शब्दका बडे गौरवसे प्रयोग किया है- इससे स्पष्ट है कि- ' हिन्दु ' शब्द हमें मुसलमानोंसे नहीं मिला, किन्तु यह हमारा ही शब्द है। यह देशके नामके कारण जातिका नाम है। ' ऐतरेयालोचन ' में श्रीसत्यव्रतसामश्रमीने भी लिखा है— ' तद् इत्थमार्यावर्तस्य अयं सिन्धुर्मेरुदण्ड इवासीत् '। ' सिन्धु ' यह हमारे देश वा नदीका नाम फारसवाले या मुसलमानोंने नहीं रखा, किन्तु वह वेदकालमें ही प्रसिद्ध रहा। पीछे चार वर्णोंसे अपना परिचय देनेकी शैली प्रचालित होगई; अतः इस ' सिन्धु ' वा ' हिन्दु ' शब्दका प्रचार ढीला पड गया।

इससे स्पष्ट है कि-हमारे देशका वेदके अनुसार नाम ' सिन्धु ' है। उसीके ब्रह्मावर्त, आर्यावर्त आदि भिन्न-भिन्न भाग हैं। ' ऋग्वेद ' के १० वें मण्डलके ७५ वें सूक्तका ऋषि ' सिन्धुक्षित् प्रैयमेध ' माना गया है; उसका यही अर्थ है कि-- सिन्धु देशका शासक वा ' सिन्धुदेश ' में रहनेवाला। उस सूक्तमें ' इमं मे गङ्गे ! यमुने ! सरस्वति ! शुतुद्रि ! स्तोमं सचता परुष्ण्या। असिक्न्या मरुद्वृधे ! वितस्तयार्जीकीये ! श्रृणुह्या सुषोमया ' (ऋ० १०।७५।५) तृष्टामया प्रथमं यातवे सजूः सुसर्त्वा रसया श्वेत्या त्या। त्वं सिन्धो ! कुभया गोमतीं क्रुमुं मेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे (ऋ० १०।७५।६) इन मन्त्रोंसे सिन्धु देशकी सीमा पर प्रकाश पडता है। यह याद रखना चाहिये कि--ऋग्वेदमें नदियोंके नामोंसे देशोंको सूचित किया गया है, यही प्राचीन प्रथा है। ' पञ्चनद ' का अर्थ ' पञ्जाब--पांच नदियां ' है; जब कि-यह बडे भारी प्रान्तका नाम है। इसी प्रकार वेदमें ' सप्तसिन्धु ' से नदियोंके नामोंसे-- देशोंको सूचित किया है। ऋग्वेदके अनुसार सिन्धु देशमें या सिन्धु स्थानमें निम्नलिखित देश थे—

(१) सिन्धुदेश, तिब्बतसे लेकर कराची तक सिन्धु नदीके किनारेके सम्पूर्ण देश (२) हिन्दुकुश पर्वतमाला, (३) हिन्दुकुशके उत्तरीय पार्श्वसे उत्तरमें रहनेवाली रसा तथा श्वेत्या नामक दोनों नदियाँ तथा उनके चारों ओरके देश, (४) कुभा--काबुलदेशकी नदी, गोमती (गोमल) नदी तथा क्रुमु (कुर्रम) नदीके चारों ओरके सम्पूर्ण देश, (५) गङ्गा, यमुनाका द्वीप तथा साराका सारा पञ्जाब तथा सिन्ध प्रदेश, उक्त देशोंको वेद ' सिन्धु '

शब्दसे लेता है। वेदमें तरीकेसे 'हिन्दुस्थान' का यह भूगोल वर्णित कर दिया है; तब इस देशकी जातिका नाम भी 'सिन्धु' यही स्वाभाविक है।

'सिन्धौ अधिक्षिपतः' (ऋ० १।१२६।१) इस मन्त्रमें भी 'सिन्धौ-सिन्धुदेशे अधिक्षिपतः निवसतः' क्षि-निवासगत्योः) इस प्रकार 'सिन्धु' देश बतलाया गया है। श्रीपाणिनिने भी वेदाङ्ग व्याकरणमें (अष्टाध्यायी ४।३।८३) 'सिन्धु' देश माना है। तब सदासे 'सिन्धु' देशमें रहनेवाली जातिका नाम भी 'सिन्धु' हो सकता है; क्योंकि-उस-उस देशकी जातिका नाम भी उस-उस देशके नामसे ही हुआ करता है, जैसे कि-जर्मन, इङ्गलिश, फ्रेञ्च, अरब पौण्ड्रक, द्रविड, चीन आदि जातियाँ देशके नामसे ही प्रसिद्ध हैं। ठीक भी यही होता है। देशके नामसे जातिका नाम रहनेसे उस जातिके हृदयमें अपने उस देशका प्रेम और उसका अभिमान रहता है। उस देशके नामवाली जाति उस देशकी रक्षाके लिये सदा अपने प्राणोंकी आहुति देनेको सन्नद्ध रहती हैं। देशसे भिन्न जातिका नाम रखनेसे उस जातिका देश पर मोह वा प्रेम नहीं रह सकता।

जब ऐसा है, हमारे देशका नाम 'सिन्धु' है, 'सिन्धु'-का ही दूसरा, देशी रूप 'हिन्दु' है, उसकी जातिका नाम भी 'हिन्दु' है; तब "हिन्दुस्थान हिन्दुओंका, हिन्दु हिन्दुस्थानके" यह नारा सिद्ध हो गया। जबसे अंग्रेजी भाषापत्र लोगोंने इस देशके 'हिन्दुस्थान' नामका विरोध किया; वा विदेशोंको वे हमारा आदि देश मानने लगे; तबसे मुसलमान भी तथा अंग्रेजे भी इसे केवल हिन्दुओंका स्थान न मानकर अपना आधिपत्य भी इस पर मानने लगे। हमें भी अपनी तरह हिन्दुस्थानमें विदेशी सिद्ध करने लगे'

इसी 'हिन्दु' तथा 'हिन्दुस्थान' नामसे घृणा करानेवाले विदेशी भाषापत्र जनोंने ही 'पाकिस्तान' को जंन्म दिया। हिंदु शब्दकी व्याख्यासे इस प्रकार इन सभी बातों-पर प्रकाश पडता है।

भारतवर्षके हिन्दु सम्राट्

(लेखक— पं. वा० पु० हर्डीकर)

हिंदुस्थानके इतिहासका ठीक ठीक परिशीलन करनेपर ज्ञात होगा कि मुस्लिम राज्यकालके पूर्व कई प्रतापी हिन्दु राजाओंने पीढी दरपीढी सार्वभौमत्व और अजोड वैभवका उपभोग किया था। यहाँतक कि इस्लामका सितारा जब बुलन्द था, तब भी कई हिन्दु वीरोंने स्वतंत्र राज्योंकी स्थापना की थी और शासन भी किया था। उनका पौरुष ही भारतवर्षके जागरण तथा पुनरुत्थानकी क्षमताका परिचायक है। ऐसे कुछ प्रसिद्ध हिन्दु सम्राटोंकी उद्बोधक जीवनियाँ संक्षिप्त रूपसे इस पुस्तकमें छपे हैं। मू. ॥=) डा. व्य. =)

मंत्री- स्वाध्याय-मंडल, पारडी, (सूरत)

परीक्षा-विभाग

३-४ फरवरीको होनेवाली परीक्षामें निम्न लिखित महानुभावोंने निरीक्षकका कार्यभार उठाकर हमें सहयोग दिया।

१. श्रीमती सौ. पार्वतीबाई वेनोडेकर	खामगांव
२. ,, सौ. कुंदा विद्वांस	,,
३. श्रीयुत दे. र. आंबेकर	,,
४. ,, गो. म. पाष्टेकर	,,
५. ,, एच. एम. कुरन्ने	,,
६. एन. जी. नैराज	,,
७. ,, गो. ठोसर न्यु इंग्लिश हाईस्कूल	आकोला
८. श्रीमती कु. सिन्धु आगरकर मनुताईकन्याशाळा	,,
९. श्रीयुत पु. ज. देशमुख मॉडर्न हाईस्कूल	,,
१०. ,, ल. दि. देशपाण्डे हिन्दी गुजराती हाईस्कूल	,,
११. ,, जी. जी. पेन्ढारकर बी.एस. सी. बी. टी.	बुलढाणा
१२. ,, बन्सीलाल चतुर्भुज महार्षिजी	मेहेकर
१३. ,, कृ. क. नानसडे तुलसीबाई विद्यालय	पातूर
१४. ,, यदुनन्दनप्रसादजी बी. ए.	बांकीपुर पटना
१५. ,, आर. डी. शर्मा	शिवपुरी
१६. ,, राममूर्ति सहाय	बहेडी
१७. ,, बद्रीप्रसाद पांडेय आयुर्वेदाचार्य	इन्दौर
१८. ,, रामचन्द्रदासशास्त्री	जबलपुर
१९. ,, वल्लभरामजी	महीदपुर
२०. श्रीयुत जी. एम. वेदी अध्यापक	शेगांव
२१. ,, अ. बा. नाफडे सायंस शिक्षक नरसिंह विद्यालय	आकोट
२२. ,, मांगीलालजी शिक्षक केंट हाईस्कूल	नीमच
२३. ,, ल. ना. जगारे म्यु. हाईस्कूल	अचलपुर केम्प
२४. ,, मा. शं. माहूरकर शिक्षक इ. एस. हाईस्कूल	रिसोड
२५. ,, रा. भो. परदेशी न्यू इरा हाईस्कूल	जलगांव
२६. ,, र. भं. बिनीवाले	मलकापुर
२७. ,, पी. पी. जोशी	मुर्तिजापुर
२८. ,, ए. कृ. जोशी	,,
२९. ,, अल्लाह बख्शजी डी. ए. बी. कॉलेज	उरई
३०. ,, गंगाप्रसादजी दीक्षित	फतेहपुर
३१. ,, बी. आर. जोशी इन्टरकालेज	गूना
३२. ,, गांडालालजी आर्य	अमरावती
३३. ,, एस. जी. गेथोड राबर्टसन हाईस्कूल	हिंगणघाट
३४. ,, विष्णुदत्त शर्मा	नगीना
३५. ,, सीशचंद मिश्र ज्ञानोदय विद्यालय	पटना
३६. ,, कदमसिंहजी जे. हाईस्कूल	एलम
३७. ,, कुँवरलालजी शर्मा सारस्वत	पटना

परीक्षा-मंत्री
संस्कृत भाषा प्रचार समिति, **स्वाध्याय-मंडल**

ॐ

देहली-प्रान्तीय श्री सनातन-धर्म महासम्मेलनान्तर्गत

वेद-सम्मेलन

के उद्घाटन-समय का

भाषण

श्री पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

वेदाचार्य, गीतालङ्कार, साहित्य-वाचस्पति,

अध्यक्ष- स्वाध्यायमण्डल, 'आनन्दाश्रम' किल्ला-पारडी (जि० सूरत)

संयमी राज्यशासक हों

आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः ।
प्रजापतिर्वि राजति विराडिन्द्रोऽभवद्वशी ॥ १६ ॥
ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति ।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥ १७ ॥

(अथर्ववेद ११।५)

" राष्ट्रमें अध्यापक तथा आचार्य ब्रह्मचारी हों, तथा शासनसंस्थाके अधिकारी भी ब्रह्मचारी ही हों। अर्थात् जिन्होंने ब्रह्मचर्य पालन किया है ऐसे संयमी हों। ऐसे अधिकारी प्रजापालनके कार्यमें नियुक्त होनेसे ही विशेष तेजस्वी होते हैं। संयमी प्रजापालक ही विशेष रीतिसे शोभता है, ब्रह्मचर्य रूप तप करनेवाला राजाही अपने राष्ट्रका उत्तम संरक्षण कर सकता है। ब्रह्मचर्य पालन करनेवाला आचार्य ही ब्रह्मचारियोंका हित करनेकी इच्छा करता है। "

राष्ट्रमें विद्या पढानेवाले तथा राज्यशासन करनेवाले ये दोनों ब्रह्मचारी, संयमी तथा मनोनिग्रही हों। यह वैदिक प्रथा है। यदि किसी राष्ट्रमें असंयमी, दुराग्रही, दंभी, रिश्वतखोर, कालाबाजार करनेवाले अधिकारी तथा अध्यापक होंगे, तो वहां कैसी अव्यवस्था निर्माण होगी, इसका अनुमान पाठक स्वयं कर सकेंगे। उसका विवरण न करना ही योग्य है।

ॐ

देहली प्रांतीय श्री सनातनधर्म महासम्मेलनान्तर्गत

“ वेदसम्मेलन ”

के उद्घाटनके समयका

भाषण

सनातनधर्म प्रेमी सज्जनो !

इस पवित्र समयमें यहां अभी “ वेद सम्मेलन ” होना है। इस “ वेद सम्मेलन ” के उद्घाटनका मंगल-कार्य करनेका सुअवसर मुझे श्री सनातनधर्म. युवकमण्डलने दिया है, इसलिये मैं इस युवक मण्डलके प्रति सर्व प्रथम अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूं। वेद सम्मेलनके उद्घाटन करनेका अर्थ यही है कि वेद मंदिरका प्रवेश–द्वार खोलकर आप सब लोगोंके सन्मुख इस वेद मंदिरके अन्दर जो जो ऐश्वर्य बढानेवाले अमूल्य विचार रत्न भरें हैं उनका सब जनताके लाभार्थ प्रकाशन करना। यह पवित्र कार्य आज और अभी ही करने योग्य है। इसका मुख्य कारण यह है, कि इस समय भारतको स्वराज्य प्राप्त हुआ है और हमारे ऊपर पहलेकी अपेक्षा आज अधिक राष्ट्रीय उत्तरदायित्व आया है। इसको निभानेके लिये अपनी सिद्धता हमें करनी है। इस लिये हमें वेदकी ओर ही जाना आवश्यक है।

भूमण्डलका हृदय स्थानीय देश भारत है। जबसे इतिहासका पता चलता है, तबसे इस देशने “ मानव-धर्म ” का ही विचार किया और मानवताकी उंचाई बढायी है। आज हम स्वतन्त्र हुए हैं इसलिये, मानव-धर्मकी जाग्रति कराके विश्वमें शान्ति प्रस्थापित करनेका पवित्र कार्य हमें करना चाहिये। इस कार्यको करनेके लिये अपने अन्दरकी योग्यता प्रथम बढानी चाहिये। विना योग्यताके कौन क्या कर सकता है ? भारतवासियोंकी योग्यता बढानेके लिये ‘ वेद ’ ही एकमात्र साधन है। इसलिये यहां “ वेद संमेलन ” की आयोजना की गयी है, यह बहुत ही अच्छा हुआ है।

आप सब लोग वेद संमेलनके लिये यहां उपस्थित हुए हैं, इसलिये मैं आपका हार्दिक स्वागत करता हूं। आपकी इस उपस्थितिसे यह निःसंदेह सिद्ध हो रहा है, कि भारतीय जनता वेदका स्वागत करनेके लिये सिद्ध है, यह भविष्य कालमें होनेवाले भारतीयोंके अभ्युदय निश्रेयसका निःसंदेह सूचक है।

वेदका अर्थ ज्ञान है। पवित्र, शुद्ध, निष्कलंक, अभ्युदय निश्रेयससाधक, ज्ञानमय वेद है। वेदधर्मको अपनाना प्रत्येक उन्नति चाहनेवालेके लिये अत्यंत आवश्यक है। जिस समय तक भारतवासियोंने वेद धर्मको अपनाया था, उस समय तक भारतवर्षका तेज अखिल भूमण्डल पर चमक रहा था, और जिस समयसे भारतीयोंने वेद-सिद्धान्तोंको छोडकर मनमाने मत मतान्तरोंको अपनाया, तबसे भारतीय लोग विदेशियोंसे आक्रान्त होकर अवनतिमें पडे हैं, यह इतिहासकी साक्षी है। इससे यही सिद्ध हो रहा है कि वेदके-धर्मसे भारतीयोंका उद्धार होना है और भारतका उद्धार होनेके बाद भारतीय सभ्यता द्वारा ही विश्वमें शान्तिकी स्थापना होनी है। वेद-धर्मकी जाग्रतिका विश्व शान्तिसे यह ऐसा घनिष्ठ संबंध है।

वेदके संबंधमें प्राचीन तथा अर्वाचीन कालके भारतीय विद्वान् प्रशंसाके वाक्य बोल ही रहे हैं, क्यों कि उनका वेदधर्म है। पर विदेशी विद्वान् भी वेदकी प्रशंसा मुक्त कंठसे कर रहे हैं, यह वेदकी विशेषता है। देखिये विदेशी विद्वानोंकी वेद विषयक संमतियां कैसी उत्तम हैं—

[१] श्री बीओरास्टीएर्ना अपनी पुस्तक थिओगोनी ऑफ हिन्दूज [पृ. ५३] में लिखते हैं—

" ये उच्च विचार हमें तर्कसे पूर्णतः यह समझानेके लिये काफी हैं कि वेद एक ही ईश्वरको मानता है, जो अजर, अमर, अजन्मा, स्वयंभू और विश्वका प्रकाश तथा स्वामी है।

[२] डॉ. गोल्ड स्टूकर का मत है कि—

" वेदान्त वह ऊच्च यंत्र है जो पूर्वीय विचारधाराको वेग और प्राण प्रदान करती है। "

[३] श्री. ग्रिफिथ महोदय अपने वेदोंके अनुवादमें लिखते हैं—

" ऋग्वेदमें हम देखते हैं कि– जनता पूर्णतः स्वतंत्र थी।"

[४] प्रो. हिरेन, हिस्टोरिकल रिसर्चेस भाग २ [पृ. १२७] में लिखते हैं—

" निःसंदेह वेद संस्कृत भाषामें सबसे पुराने ग्रंथ हैं। वर्तमान समयमें जो वेदग्रंथ हैं उनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। संसारमें केवल भारत ही ऐसा राष्ट्र है जिसे सबसे पुरानी भाषा और सबसे पुराने इतने श्रेष्ठ ग्रंथके लिये गौरव प्राप्त है। मानव उन्नति और प्रगतिके लिये वेद अद्वितीय, उच्च कोटीके और एकमात्र ग्रंथ हैं। "

[५] माननीय थोमस मेरवी हिस्ट्री ऑफ एन्शियन्ट संस्कृत लिटरेचर [पृ. ५५७] में लिखते हैं कि—

" ऋग्वेदमें इजिप्तके निनेवेहके मुद्रित लेखोंसे भी प्राचीन समयका सच्चा और सुन्दर वर्णन हम देखते हैं। वेद होमेरिक काव्योंसे भी अधिक पुराने ग्रंथ हैं जिनमें आदिकालके मानवोंके विचारोंका वर्णन है। "

---

1. These sublime ideas cannot fail to convince us that *the Vedas* recognise only one God, who is Almighty, Infinite, Eternal, Self-Existant, the light and the Lord of the universe.

Biorastierna Courl. The Theogoney of Hindus. P. 53.

2. The Vedanta is the sublimest machinery set into motion by Oriental thought.

Dr. Gold Stucker.

3. In the Rik, we find the people in a state of free activity and independance.

Griffith. Translation of Vedas.

4. The Vedas are without doubt the oldest works composed in Sanskrit. Even the most Ancient Sanskrit writings allow the *Vedas* as already existing. No country except India and no language except the sanskrit can boast of a possession so ancient or so venerable in grandeur and infinitely above all in glory. The *Vedas* stand alone in their solitary splendour, serving us a beacon of divine light for the onward march of humanity.

Prof. Heeren. Historical researches Vol. II P. 127.

5. In the Rigveda we shall have before us more real antiquity than in all the inscriptions of Egypt or Nineveh;...the Veda is the oldest book in existance, more ancient than the Homeric Poems, because it presents, an earlier phase of human thought and feeling.

Rev Thomas Mauvrice History of Ancient Sanskrit Literature. P. 559.

[६] श्री. मेक्समूलर-- अपनी पुस्तक-- हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर [पृ. ५६३] में लिखते हैं—

"संसारके इतिहासमें वेद वह पूर्ति करते हैं जो संसारकी दूसरी कोई भी भाषाका साहित्य नहीं कर सकता। आदि आर्योंके जीवन संबंधी जो अनेक ग्रंथ हैं उनमें ऋग्वेदका सर्व प्रथम स्थान हमेशा रहेगा।"

[७] श्री. मेक्समूलर- इन्डिया व्हॉट केन इट टीच अस [पृ. १३९-४०] में लिखते हैं-

"भारतवर्षके आद्य वैदिक साहित्यपर किसी भी बाह्य भाषा, धर्म या रीतिरिवाजोंका कोई प्रभाव नहीं पडा है।"

[८] श्री. अे. रेगाजिने झेनअेइाडि अपने ग्रंथ-- वैदिक इण्डिआ [पृ. ११४] में लिखते हैं-

'ऋग्वेद एक महाग्रंथ है जो निःसंदेह आर्योंका सबसे पुराना ग्रंथ है।"

[९] श्रीमती अेनी बेसन्ट--

"धार्मिक तत्वज्ञानमें वेदान्तसे अधिक गूढ, उदात्त और तत्वमय ज्ञान हिंदुओंको कुछ भी प्रदान नहीं किया जा सकता।"

[१०] श्री. बर्थ अपने ग्रंथ-- रिलिजियन ऑफ इण्डिआ- में लिखते हैं--

"वैदिक काव्य कितने गूढ और पवित्र हैं यह सिद्ध करनेकी आवश्यकता हुई तो यह सिद्ध करनेके लिये वह काव्य ही बहुत है।"

भारतीय विद्वान तो मुक्त कण्ठसे वेदकी प्रशंसा कर ही रहे हैं, श्रीमच्छंकराचार्यादि सब आचार्य, सब शास्त्रकार, सब धर्मप्रवर्तक मुक्त कण्ठसे वेदकी प्रशंसा कर रहे हैं। इस शताब्दीके आचार्य श्री महर्षि दयानन्द सरस्वतीजीने पचहत्तर वर्ष पूर्व वेदकी ओर जनताका मन आकर्षित किया और वेदधर्मकी जाग्रतिके लिये इस युग प्रवर्तक आचार्यने जो प्रयत्न किये वे इतिहासमें सुवर्णाक्षरोंसे लिखे जांयगे। इतना इनका महत्त्व भारतीय उत्थानमें है। दिव्य योगी श्री अरविंदघोषजीके वेदके तत्वज्ञानके आविष्कारके सम्बन्धमें जो प्रयत्न हुए, वे निःसंदेह आधुनिक युगके आधुनिक लोगोंका चित्त वेदकी ओर आकर्षित करनेके लिये विशेष कारणीभूत हुए हैं। इन सब महापुरुषोंके बताये मार्गसे हमें वेदधर्मकी जाग्रतिका कार्य करना है। ये हमें शुद्ध मार्गको दर्शानेवाले दिव्य प्रदीप हैं।

---

6. In the History of the World, the Veda fills the gap which no literary work in any other language could fill...the first place in that long row of books which contains the records of the Aryan branch of mankind, will belong forever to the Rigveda.

Max Muller, History of Sanskrit Literature P. 63.

7. There is no trace whatever of any foreign influence in the language, the religion or the ceremonial of the ancient Vedic literature of India.

Max Muller, India- what can it teach us .P. 139-40.

8. The Rigveda is the book of Books and is beyond a shadow of doubt the oldest book of the aryan family of Nations.

A. Ragozine Zenaide Vedic India P. 114

9. Nothing deeper and loftier can be offered to the Hindu in religious philosophy than his Vedanta.

Mrs. Annie Besant.

10. These alone are sufficient to prove if necessary, how profoundly sacredatal this (*Vedic*) Poetry is.

Barth, Religions of India.

*

इस समयकी हिन्दु जनता यद्यपि वेदके विषयमें परम श्रद्धा रखती है, तथापि यह हिन्दु जनता वेद मार्गसे बहुत ही दूर हो गयी है। हिन्दु जनताके दैनिक व्यवहारमें वेदका धर्म बिलकुल रहा नहीं है और मतमतान्तरके अवैदिक मन्तव्योंमें हिन्दू लोग हताहत होकर ऐसे फंसे हैं कि इनमें फिर वैदिक धर्मकी जाग्रति करनेका कार्य बडा ही महत्प्रयासका कष्ट साध्य कार्य है ऐसा दीख रहा है। इस विषयमें कुछ उदाहरण आपके सामने मैं प्रस्तुत करना चाहता हूं।

वैदिक सिद्धान्त और अवैदिक मतमतान्तर

अवैदिक मतमतान्तरोंमें हिन्दु जनता फंसनेके कारण वेदके अभ्युदयके सिद्धान्तोंसे कोसों दूर गयी है, इसलिये इससे अपने अभ्युदयके कार्य भी नहीं होते, फिर विश्व-शान्तिके कार्य करनेकी बात तो दूर ही है। इसलिये वैदिक सिद्धान्त कैसे थे और उनके स्थानपर अवैदिक मतमतान्तर कैसे आगये हैं, इसका थोडासा नमूना देखिये—

(१) जगत् क्षणभंगुरवाद

इस समय पचीस वर्षका तरुण भी "क्षणभंगुर संसार," "दो दिनकी दुनिया" ऐसे अशुद्ध विचार बोलता है!! इस अशुद्ध विचारका एक भी वचन चारों वेदोंमें नहीं है। वेदमें 'ध्रुववाद' है देखिये-

ध्रुवा द्यौः ध्रुवा पृथिवी ध्रुवासः पर्वता इमे।
ध्रुवं विश्वमिदं जगत् ध्रुवो राजा विशामयम्॥
(ऋ. १०।१७३।४)

'यह द्युलोक स्थायी है, यह पृथिवी ध्रुव है. ये पर्वत स्थिर हैं, यह संपूर्ण जगत् ध्रुव है और प्रजाजनोंका रञ्जन करनेवाला शासक भी ध्रुव है।' इस तरह संपूर्ण विश्वको वेद 'ध्रुव' कहता है। पर इस समयके हिन्दु "जगत्के क्षणभंगुर वाद" में फसे हैं। सज्जनो! आप सोचिये तो सही, कि क्षणभंगुरवादी इस जगत्में अभ्युदय किस तरह प्राप्त कर सकते हैं? जो लोग संसारको दो दिनकी दुनिया मानते हैं, वे किस स्थायी आयोजनाकी नींव डालेंगे? इस क्षणभंगुरवादने भारतकी अभ्युदयकी धारा-काही नाश किया है। विवाह, गृहस्थाश्रम, राज्यशासन, इस भूमिपर स्वर्गधाम आदि लानेका यत्न कौन अच्छी तरह कर सकता है? क्षणभंगुरवादी या ध्रुववादी?

अदीनाः स्याम शरदः शतम्।
भूयश्च शरदः शतात्। (वा० य.)

"हम सौ वर्षतक समर्थ होकर रहेंगे और सौ वर्षसे भी अधिक वर्ष जीयेंगे और उन्नतिका साधन करते रहेंगे।" यह वेदकी घोषणा है। यह जगत्को ध्रुव-प्रवाहसे ध्रुव- माननेवालोंकी घोषणा है। क्षणभंगुरवादी मृत्युकी ही प्रतीक्षा करते रहेंगे। वे सौ वर्ष किसतरह जीवित रहेंगे। इस हमारे "वैदिक ध्रुववाद" का छोडना और "जगत्क्षणभंगुरवाद" का स्वीकार करना हमारे लिये विघातक सिद्ध हो चुका है। यह राष्ट्रीय दृष्टिसे बडा ही विनाशक सिद्ध हुआ है।

(२) जगद्दुःखवाद

हमारा इस समयका हिंदुसमाज "जगद्दुःखवाद" में फंसा है। हिन्दुके लिये यह जगत् दुःखरूप और दुःखमय दीखता है, इस लिये यह जगत्को छोडनेके विचारमें फंसा रहता है। प्रवचनकार तथा कीर्तनकार जगत्को दुःखमय बता रहे हैं!! यही दुष्ट घोषणा सब लोगोंने अनेक वार दुहराई है। वास्तवमें वैदिक परिपाटीके अनुसार यह विश्व पूर्ण अतः आनन्दमय है। देखिये -

पूर्ण अदः पूर्ण इदं, पूर्णात् पूर्ण उदच्यते।
ईशोपनिषच्छान्ति मन्त्र

"वह परमात्मा पूर्ण है, यह विश्व पूर्ण है, क्योंकि पूर्ण परमात्मासे ही यह पूर्ण विश्व उत्पन्न हुआ है।" इसका नाम 'जगत्पूर्णवाद' है। वेदमें कहा है—

पूर्णात्पूर्णमुदचति, पूर्णं पूर्णेन सिच्यते॥
--अथर्व १०।८।२९

'पूर्ण परमात्मासे पूर्ण विश्वका उदय हुआ है। इतना ही नहीं, परंतु पूर्ण परमात्माके अमृत जलसे यह सब विश्व सींचा जा रहा है।' क्या इस घोषणामें दुःखवाद है? वा पूर्णतावाद है? जिस दिनसे हिंदु जातिने यह जगदुःखवाद अपनाया है, उस दिनसे यह जाती इस जगत् में सुधार करनेके अपने कर्तव्यसे विमुख होती गई है और जगत् छोडनेकी इच्छुक बनी है। जगत्का त्याग करनेके

च्छुक लोग जगत्को स्वर्गधाम बनानेका यत्न कभी नहीं होंगे, परंतु जगत्पूर्णवादी ही यहां स्वर्ग धाम बनानेकी पराकाष्ठा करेंगे।

आनंदाद्ध्येव खलु इमानि भूतानि जायन्ते, आनन्देन जातानि जीवन्ति, आनन्दं प्रयन्त्यभि संविशन्ति ॥
तै० उप०

"आनन्दसे सचमुच ये सब भूत उत्पन्न होते हैं, आनन्दसे ये सब भूत जीवित रहते हैं और अन्तमें आनन्द-में ये सब विलीन होते हैं।" इस तरह भूतोंकी उत्पत्तिके पूर्व आनन्द, भूतोंकी पालनामें आनन्द और भूतोंके अन्तमें भी आनन्द माननेवाली यह आर्य जाती जगदुःखवादका स्वीकार करके विश्वविजयसे वंचित रही और जबसे इसने जगद्दुःखवादका स्वीकार किया, तबसे स्वसंरक्षणके अपने कर्तव्यसे भी विमुख होनेके कारण, इस जातीका पराभव होता आया है। दुःख-पूर्ण जगत् पर कोई शासन करे इस विषयमें यह जाती उदासीन रहती आई है, क्यों कि इसके विचारमें यह जगत् दुःखमय और क्षणभंगुर अतः पूर्णतया असार है। इस असार जगत्का ग्रहण कोई करे तो करे, हमें उनसे कोई संबंध ही रखना नहीं है। जग-दुःखवादका हिंदुराष्ट्रपर बडा ही विनाशक परिणाम हुआ है।

जगत् छोडना मनुष्यके लिये असंभव है, जगत् छोडकर यह कहां जाय? जहां यह जाता है वहां इससे पूर्व जगत् विद्यमान ही है। इसलिये जगत्याग असंभव है, परंतु हिंदु-जाती वही करना चाहती है। इसलिये इस जातीको अब वैदिक जगत्पूर्णवाद स्वीकारना चाहिये।

वेदमें, उपनिषदोंमें तथा गीतामें विश्वरूपी परमेश्वर का वर्णन है। 'विश्वरूप' यही परमेश्वरका नाम है। गीताका ११ वां अध्याय इसीका वर्णन कर रहा है; चारों वेदोंमें—

पुरुष एव इदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यं ॥
ऋग्यजुः सामाथर्ववेद

चारों वेदोंमें यह मंत्र है। "परमात्मा विश्वरूप है। जो भूत कालमें था, जो वर्तमान कालमें है और जो भविष्य कालमें होगा वह सब पुरुषका ही रूप है। यहां 'पुरुष' शब्द "शरीर+आत्मा" इन दोनोंका मिलकर वाचक है। 'त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत्।' (श्वे० उ०) 'परमात्मा--जीव--प्रकृति' इन तीनोंका मिलकर जो बनता है वह ब्रह्म है और उससे सब विश्व बना है। इस लिये इस विश्वमें ये तीनों सर्वत्र हैं। यही पुरुष विश्वरूप है। विश्वका त्याग करनेवाले परमेश्वरके इस रूपका ही त्याग करते हैं!! विश्वका त्याग करनेवाले जरा विचार करें। परमेश्वरके विश्वरूपका त्याग करके ये लोग कहां जांयगे और जहां वे जांयगे वहां विश्वरूपी परमेश्वर है ही, फिर त्यागेंगे किसको?

यह विश्व पूर्ण है, क्यों कि पूर्णसे यह बना है, इसलिये अपूर्ण या दुःखदायी नहीं है। क्या पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश, ये जैसे चाहिये वैसे नहीं हैं? क्या ये स्वयं कभी किसीको दुःख देरहे हैं? सच तो यह है कि यह विश्व सुख पूर्ण है। अतः विश्व सेवासे सर्वत्र आनन्द ही आनन्द प्राप्त करनेका अनुष्ठान करना चाहिये। यही वैदिक यज्ञ—अनुष्ठान है। यह न करते हुए ये लोग जग-त्याग करने लगते हैं और कष्ट भोग रहे हैं। वेदको अपनाने पर ये कष्ट नहीं रहेंगे।

(३) स्त्रीका भय

वैदिक धर्ममें स्त्री अर्धांगी है, यह पुरुषकी शक्ति है। पुरुष और शक्ति, नर और नारी मिलकर पूर्णता है। इसी लिये श्रुतिस्मृतियोंमें गृहस्थाश्रमका महात्म्य सब आश्रमोंसे अधिक वर्णन किया है। सब आश्रमोंका पालक गृहस्थाश्रम है। यज्ञके लिये स्त्री—यजमान पत्नी—अवश्य चाहिये और सुसंतान निर्माण करना यह गृह यज्ञका ध्येय है।

वेदमें ३५० ऋषियोंके नाम आये हैं, ये सब मंत्रद्रष्टा ऋषि हैं। इनमें एक भी संन्यासी नहीं, सबके सब गृहस्थी हैं। वेदका धर्म यति होनेकी प्रशंसा नहीं करता, परंतु यज्ञकर्ता गृहस्थीकी प्रशंसा करता है। क्यों कि विश्वकी स्थिति गृहस्थ धर्मपर है न कि यति धर्मपर। यदि सबके सब यति होंगे तो ५० वर्षोंमें सब संसार जंगल बनेगा, परंतु सब उत्तम गृहस्थी बनेंगे, तो यही संसार आनन्दमय बनेगा। इसलिये वेद गृहस्थकी प्रशंसा करता है। देवताएँ भी पत्नीके साथ हैं, अग्निकी अग्नायी, इन्द्रकी इन्द्राणी, वरुणकी वरुणानी आदि। सब देव सशक्तिक, सायुध, सपत्नीक हैं।

इन्हीके उपासक यदि यति बनने लगें तो यह हमारा दुर्भाग्य ही है। वेदमें स्त्रीको वेदाधिकार है, वेदद्रष्ट्री स्त्रीऋषिकाएँ वेदमें हैं। आगे यतिवाद जब बढ गया, तब स्त्री अबला बनी और उसका वेदाधिकार छीन लिया गया। इसका कारण देखिये—

जगदुःखवादी लोग कहने लगे कि यह स्त्री बडी पापिणी है क्यों कि इस पापिणी स्त्रीके कारण संतान उत्पन्न होती है और वह संतान संसारमें दुःख भोगती है। स्त्री न रहे तो संतान न होगी, इसलिये स्त्री अधमाधम है ! यह तर्क है इन जगदुःखवादियोंका !! ये स्वयं स्त्री से उत्पन्न हुए और अपनी माताकाही नाश करने लगे !

इन लोगोंने स्त्री को पापिणी ठहराया और स्त्री संबंधको पाप माना। वेदकी शिक्षाके अनुसार स्त्री शक्ति है और जन्म देकर यज्ञ करनेकी परिस्थिति निर्माण करती है। इसलिये वह पुरुषके साथ रहनी ही चाहिये।

इन जगदुःखवादी लोगोंने जो विचारमें परिवर्तन किया उससे वेद धर्मकी प्रत्येक सुव्यवस्था किस तरह टूट गयी सो देखिये और ये ही विचार हमारे भारतराष्ट्रकी जड किस तरह अब भी काट रहे हैं सो भी देखिये।

हिंदुओंकी देवतायें सारीकी सारी शस्त्रधारी हैं और पुरुष देवताकी अपेक्षा स्त्री देवता तो आठ गुणा अधिक शस्त्रोंका धारण करती हैं। यह हिंदुका आदर्श है। वेदकी सभी देवताए शस्त्रधारी हैं। स्त्री देवता जो २८।२८ शस्त्रोंका प्रयोग करती हैं क्या वे अबला हैं ? पर इन जगदुःखवादियोंने इन समर्थ स्त्रियोंको भी अबला बनाया, ज्ञानहीन बनाया और पापकी खान मान लिया। स्त्रियोंका इतना अपमान राष्ट्रको किस तरह उठा सकता है ?

(४) पुत्रोत्पत्तिका यज्ञ

वैदिक समयमें पुत्रोत्पत्ति यज्ञ था और १० पुत्र उत्पन्न करनेकी महत्त्वाकांक्षा थी। जगदुःखवादके बाद जन्म ही पाप हुआ और गृहस्थीका घर ही उध्वस्त हुआ।

वेदके अनुसार स्त्री गर्भ धारण करती है और मनुष्यको यज्ञीय जीवन बितानेकी सुविधा उत्पन्न करती है। जो स्त्री परमात्माके अमृत पुत्र जीवको तथा उसके साथ आनेवाले ३३ देवताओंको अपने गर्भमें ९ मास रखती और इतने देवताओंको अपने अन्दर आश्रय स्थान देती है, उसकी महत्ता क्या वर्णन की जा सकती है ? पुरुषका यह भाग्य नहीं कि वह ३४ देवताओंका शरीर अपने अन्दर धारण करे। वेदकी यह दृष्टी है। ऐसी पवित्र स्त्री को इन जगदुःखवादियोंने पापकी खान बना दिया !! इससे विचारोंका अधःपतन और अधिक कैसे हो सकता है ? आज हिंदुसमाज और हिंदुस्त्रियाँ लडकी घरमें उत्पन्न हुई तो दुःख मानती हैं और पुत्र उत्पन्न होनेपर आनन्द मानती हैं। वेदके समयमें पुत्रीका मान पुत्रसे कम नहीं था।

(५) वेदमंदिर

वेदमें मनुष्यके शरीरको ३३ देवोंके साथ परमात्माके अमृत पुत्रका अर्थात् ३४ देवोंका मंदिर कहा है। इतना ही नहीं परन्तु ऐतरेय उपनिषदमें इन देवोंके स्थान भी बताये हैं। ये देव शरीरके पृष्ठ वंशकी एक एक ग्रन्थीमें एक एक इस प्रकार सब पृष्ठ वंशमें तथा मस्तिष्कमें रहते हैं, इसी तरह इंद्रियोंमें भी रहते हैं ऐसा कहा है। विश्वमें सूर्य, चन्द्र आदि ३३ देवताएँ हैं, उनके अंश ३३ हैं, इनको 'पुत्र देव' कहा है। विश्वमें 'पिता देव' हैं और शरीरमें उनके 'पुत्रदेव' रहते हैं। सूर्यका नेत्र, चन्द्रका मन, वायुका प्राण इस तरह अन्यान्य देवोंके पुत्र इस शरीरमें हैं, परमेश्वरका विश्वरूपी विशाल देह है और परमेश्वरके अमृत पुत्र जीवका यह छोटा देह है। विश्व देहमें विशाल देवतायें ३३ हैं, उसी तरह अमृत पुत्रके इस छोटे देहमें भी अंशरूपी ३३ ही देवताएँ हैं। इस प्रकार यह शरीर देव मंदिर है।

इसी तरह यह शरीर ऋषिआश्रम भी वेदमें कहा है। देखिये –

सप्त ऋषयः प्रतिहिता शरीरे। (वा. यजु. ३४।५५)

"सात ऋषि प्रत्येक शरीरमें तप कर रहे हैं।" यह शरीर इन सप्त ऋषियोंका पवित्र आश्रम है। दो कान, दो आँख, दो नाक, एक मुख ये सप्तऋषियोंके तपस्याके स्थान हैं। यह वेदकी कल्पना कितनी उच्च और श्रेष्ठ है ?

(६) पीप-विष्ठा-मूत्रका गोला

जगद्दुःखवादियोंने इसी देवमंदिर तथा सप्तऋषियोंके वैदिक आश्रमको 'पीप-विष्ठा मूत्रका गोला' बना

हुवा है। कहां देवमंदिर और ऋषि आश्रम तथा कहां विष्ठामूत्रका गढा! क्या विचारोंके अधःपातकी कोई सीमा भी है!! पाठक अपने शरीरको एक घण्टाभर देवमंदिर तथा ऋषि आश्रम मानते रहें, पश्चात् एक घण्टाभर अपने शरीरको विष्ठामूत्रका गढा मानें। परिणाम क्या होता है देखें।

नरका नारायण बननेके लिये ऋषि आश्रम सहायक होगा अथवा विष्ठाका गढा सहायक होगा, विचार करके निर्णय कीजिये।

देवमंदिरमें अनुष्ठान होगा, आश्रममें तपस्या होगी और पवित्रता बढेगी, परन्तु विष्ठामूत्रके गढेसे जलदी भागना होगा। जगद्दुःखवादियोंको शरीरकी घृणा है, शरीर धारण ही क्लेश है। पर वैदिक धर्मियोंको शरीर धारण यज्ञसाधन तथा पुरुषार्थ साधन है। यहां दैवी शक्तियोंका अनुभव वैदिक धर्मी लेता है और कृतकार्य होता है।

जगद्दुःखवादी शरीरकी घृणा करता है, उपवाससे उसको सुखाता है, शरीरवाससे दुःखी होता है, और मर जाता है; परन्तु शरीर-देवतामंदिरवादी यहां ही अपनी दिव्य शक्तियोंको अनुभव करता है और दिव्य जीवन प्राप्त करता है।

(७) मृत्युको हटाना

वैदिक धर्मी अपने शरीरको दिव्य बनाता है, पवित्र बनाता है, और अपने अन्दर नारायणी शक्तिको प्रभावी करता है। इस अनुष्ठानके लिये वह दीर्घ जीवन चाहता है-

मृत्योः पदं योपयन्तः यदैत द्राघीय आयुः
प्रतरं दधानाः। आप्यायमानाः प्रजया धनेन
शुद्धा पूता भवत यज्ञियासः॥ (ऋ. १०।१८।२)

"अपने ऊपरके मृत्युके पांवको दूर करो, अपनी दीर्घ आयुको अधिक दीर्घ बनाकर धारण करो, प्रजा और धनको प्राप्त करो और शुद्ध पवित्र तथा यज्ञके लिये योग्य बनो।"

यहां मनुष्यको अपनी आयुको बढानेका उपदेश है। क्योंकि इसी शरीरके द्वारा यज्ञ अनुष्ठान करके पवित्र बनना है। शरीरकी घृणा करना अयोग्य है क्योंकि यह देवमंदिर या ऋषि आश्रम है। यह घृणाके योग्य नहीं है।

मनुष्यकी आयु १२० वर्षोंकी है, इसमें ८ वर्ष बालपन, १२ वर्ष ब्रह्मचर्यके गये तो १०० वर्ष यज्ञकी आयु है। इसमें १०० यज्ञ करना और शत क्रतु बनना है। यह उच्च आदर्श है।

जगद्दुःखवादी अपने शरीरको विष्ठामूत्रका गढा मानता, घृणा करता, और स्वयं दुःखी होता रहता है और शरीर पातकी प्रतीक्षा करता है! मन्तव्योंका अधःपात कितना हुआ है यह सब विचारक देखें और जगद्दुःखवादियोंके कुविचारोंसे अपने आपको बचावें।

वेदके उपदेशानुसार मनुष्य योगादि अनुष्ठानसे अपनी आयु बढा सकता है। अवैदिक मतवाले मानते हैं कि मनुष्य अपनी आयु घटबढ कर नहीं सकता। वह सर्वथा पराधीन है।

(८) यहां स्वर्गधाम बनाना

पृथ्वीपर स्वर्गधाम बनानेका कार्यक्रम वेद धर्मने मानवोंके सन्मुख रखा है। (१) ज्ञानी बनना, (२) रोग, अपमृत्यु दूर करके नीरोग स्वस्थ दीर्घायुवान् बनना, (३) जरा क्षीणता आदि दोषोंको दूर करना, (४) निर्भयता प्राप्त करना, (५) खानपानके कष्टोंको दूर करना, (६) शोकमोहके कारणोंको दूर करना, (७) यज्ञीय जीवन व्यतीत करना (८) सदा आनन्द प्रसन्न रहना। ये स्वर्गके लक्षण हैं। ये लक्षण उत्तम राज्य शासनके ही लक्षण हैं।

शिक्षामंत्री, आरोग्यमंत्री, संरक्षक गृहमंत्री, अन्नमंत्री, युद्धमंत्री, अर्थमंत्री आदि मंत्री अपना कार्य जितना अधिक उत्तम रीतिसे करेंगे, उतना स्वर्गधाम यहां भूमिपर बनाया जा सकता है। यह वैदिक व्यवस्था है। पर जो जगत् को असार और त्यागने योग्य मानेंगे वे यहां क्या उन्नति कर सकते हैं? भारत देशमें ये अवैदिक विचार गत अढाई हजार वर्षोंसे फैले हैं तबसे वैदिक धर्म आचरणका धर्म नहीं रहा और सब प्रकारके अरिष्ट इस देश पर आरहे हैं। जब वैदिक धर्म जागेगा तभी भारतवर्ष सुखी होगा।

वैदिक और अवैदिक विचारोंकी तुलना इस समय तक हमने की और बताया कि वैदिक विचारधारासे ही अपना

अभ्युदय होगा। इसलिये वैदिक विचारोंका स्वीकार हमें आज ही करना अत्यंत आवश्यक है।

(९) दुःखमय जगत्

जगत्को दुःखमय माननेवाले " सर्वं क्षणिकं, सर्वं दुःखं " मानते हैं। इसी विचार धाराको थोडासा अधिक बढाया जाय तो **'यथा सर्वं जगत् क्षणिकं तथा सर्वं जगत् दुःखमयं, तथैव जगदन्तर्गतं भारतीय स्वराज्यं अपि क्षणिकं तथा दुःखमयं'** यह कितना भयानक मन्तव्य है! भारतवासी लोगोंको स्वराज्य प्राप्तीके पश्चात् ऐसे सर्वविनाशी हीन विचारोंसे अपने आपको सर्वथा बचाना चाहिये। इन भ्रष्ट अवैदिक विचारोंके कारण ही भारत वर्ष गत दो सहस्र वर्ष कष्टमें रहा। दुःखकी बात यह है कि स्वराज्य प्राप्तिके पश्चात् उत्तम शिक्षा प्रबंधसे अपने विचारोंकी परिशुद्धता करनेके स्थान--पर हिंदुलोग उन्ही सडे अवैदिक घृणित विचारोंको अपने पास रख रहे हैं, यही हमारे स्वराज्यका भय है। यह भय हमारे मनके कुविचारोंका और अवैदिक विचारोंका है। इसलिये वैदिक विचारोंको धारण करना अत्यंत आवश्यक है।

(१०) वैदिक धर्म और स्वराज्य

वैदिक धर्म स्वराज्यका साधक धर्म है। आजके हिंदुओंके अन्दरके प्रचलित मत मतांतर अपनी शक्तिका नाश करनेवाले हैं, इसलिये इनका त्याग करके वेद धर्मका स्वीकार करना चाहिये। इस विषयमें ऋषियोंकी घोषणा देखने योग्य है।

> **स्वस्ति। साम्राज्यं भोज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यं महाराज्यं आधिपत्यमयं समन्तपर्यायी स्यात्। सार्वभौमः सार्वायुष आन्तादापरार्धात्। पृथिव्यै समुद्र पर्यन्ताया एकराट्।**
>
> ऐतरेय ब्राह्मण

इस घोषणामें आठ प्रकारके राज्यशासनोंका उल्लेख है। ऋषिलोग इन राज्य शासनोंको जानते थे, इस तरहके राज्य शासन करते थे, इसलिये उनकी घोषणामें ये इतने राज्य शासन संग्रहित हुए हैं। इनके अतिरिक्त " जान--राज्य " भी एक और अधिक राज्य शासन वेदमें कहा है। सब लोगोंकी संमति जिसमें प्रधान कार्य करती है। इन राज्य शासनोंमें 'स्वाराज्य' नामक राज्य शासनका नाम आया है। यहां **'स्व-राज्य' नहीं परंतु 'स्वा-राज्य' है। यहां 'स्व' की संस्कारितापर बल दिया है।** 'राज्य' पर अर्थात् शासक शक्ति पर बल नहीं दिया। जहां राज्यशासक शक्तिका ही विचार किया जाता है वहां 'शक्तिका शासन (Power Palitics)' शुरू होता है। वैसा होनेसे आसुरी प्रवृत्ति बढ जाती है। इसलिये स्वराज्यका प्रत्येक घटक जो प्रत्येक मनुष्य है, वह संस्कार संपन्न होना चाहिये यह 'स्व' पर बल देनेसे ऋषियोंने अपनी घोषणासें सूचित किया है। **हम अपने हाथमें शक्ति रखनेके लिये राज्य नहीं कर रहे, परंतु जनतामेंसे प्रत्येक व्यक्तिको सुसंस्कारोंसे संपन्न करनेके लिये राज्य कर रहे हैं** यह तात्पर्य यहां है। उक्त घोषणामें—

" पृथिव्याः समुद्रपर्यन्ताया एकराट् "

'समुद्रपर्यंत जितनी भी भूमि है उस सब भूप्रदेशपर एक आर्यराजा हो और वैदिक अनुशासनसे वह राज्य करे' यह इस घोषणाका तात्पर्य है। छोटे छोटे टापुओंपर पृथक् पृथक् शासन होनेसे द्वेष बढ कर विश्व युद्ध होते हैं, वैसे नहीं होने चाहिये, विश्वशान्ति स्थापन होनी चाहिये, इसलिये विश्व पर एक राजा और विधान होना चाहिये, यह ऋषियोंके अन्तःकरणकी दिव्य स्फूर्ति थी। इसको देखकर क्या कभी कोई कह सकता है कि ऋषिलोग राज्य-शासनका विचार ही नहीं कर सकते थे। जो राज्य शासन में नहीं पडते होंगे; वे संपूर्ण पृथ्वीपर एक प्रकारका राज्य-शासन होना चाहिये ऐसी घोषणा क्योंकर कर सकेंगे?

आज 'यू० नो०' के सदस्य इसी तरहकी घोषणा करते हैं। पर ये यूनोवाले स्वार्थी हैं, 'सत्य अहिंसा और न्याय' इनमें नहीं है। पर ऋषियोंका यही जीवन सूत्र था। यह ऋषियोंकी घोषणा अधूरी रही है, इस समय तक सब भूमण्डल पर एक राजा और एक विधान नहीं हुआ। यह कार्य भारतीयों द्वारा ही भविष्यमें होनेवाला है। अत्रि ऋषिकी घोषणा अब यहां देखिये-

> **आ यद्वामीयचक्षसा मित्र वयं च सूरयः।**
> **व्यचिष्ठ बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये॥** ऋ० ५।४१।६

'विशालदृष्टीवाले, मित्रवद्व्यवहार करनेवाले तथा उत्तम ज्ञानी ये तीन प्रकारके लोग ही बहु पाय्य स्वराज्य-के शासन व्यवहारका कार्य कर सकते हैं। 'यह आशय इस मंत्रका है। स्वराज्यका शासन सर्वोत्कृष्ट होना है तो वह ये तीन प्रकारके लोग ही कर सकते हैं। 'संकुचित दृष्टीवाले, झगडालू और अज्ञानी स्वराज्यका शासन अच्छीतरह नहीं चला सकते।' कितनी सावधानता वेद कह रहा है देखिये। हमें स्वराज्य मिला है इसी पर हमें संतुष्ट नहीं रहना चाहिये, परंतु इस स्वराज्यको उत्तम रीतिसे चलानेके लिये 'विशाल दृष्टीवाले, मित्रके समान व्यवहार करनेवाले ज्ञानी लोग निर्माण करने चाहिये।' ऐसे पुरुष न हुए तो 'स्वराज्य' के स्थानपर 'श्व-राज्य' बन जायगा।

प्रजापति ऋषि कहते रहे कि—

मा वः स्तेन ईशत, मा अघशंसः। (यजु० १।१)
दुःशंसः नः मा ईशत। (ऋ. ७।९४।७)

'तुम्हारा शासक चोर और पापी न हो।' अपना शासन करनेवाला चोर है, पापी है, रिश्वतखोर है या कालाबाजार करनेवाला है, या सच्चरित्र है इसका विचार करना प्रत्येक मनुष्यका काम है। ऋषियोंने अपने स्वराज्यमें जनतामें कितना उच्च भाव पैदा किया था। आज भी ये मन्त्र हमारा मार्ग दर्शन कर रहे हैं और भविष्यमें भी ये मन्त्र हमारा मार्ग दर्शन करेंगे।

कवाइती सेना-रचना

वेदके मरुत देवताके सूक्तोंमें 'कवाइती सैन्य' की प्रशंसा है, प्रत्येक पंक्तिमें ७।७ सैनिक हों, दोनों और पार्श्वरक्षक दक्षतासे रहें, ऐसी सात पंक्तिका एक गण हो, व्रात, गण, शर्ध आदि सैनिकोंके संख्यानुसार नाम वेदमें हैं। वेदमें जो सेना-रचनाकी कुशलता हम देखते हैं वही आज यूरोपमें चल रही है। सोलवी शताब्दीमें पोर्तुगीज, फ्रेंच और अंग्रेज इस देशमें आये और भारतीयोंको ही उन्होंने नौकर रखा और कवायत पद्धतिसे अपनी सेना तैयार की। हम भारत वासियोंके पास वेदमें ऐसी सुसंघटित सेनाकी पद्धति थी। पर वेदमंत्रोंका अर्थ तो कोई जानता नहीं था। इसलिये यह सेना संचालनकी हमारी विद्या वेदमें ही रही और हमारी असंघटित सेना होनेके कारण अंग्रेजोंकी सुसंघटित सेनाने हमारा पराभव किया। यह हमारा पराभव इस अज्ञानके कारण हुआ कि "हम अपनी वेदविद्याको अपने व्यवहारमें लाते नहीं थे।" उस समय वेदपाठी तो सहस्रों थे, पर वेदके ज्ञानको राज्यशासनके व्यवहारमें लानेवाला एक भी नहीं था। इस कारण अंग्रेजोंका शासन यहां हुआ। यह हमारा पराभव हमारे वेद विषयक अज्ञानके कारण हुआ। ध्यान रखिये। इसीलिये मैं कहता हूं कि वेदको अपनानेका समय स्वराज्य प्राप्त होनेके कारण आज आया है और इस कार्यके लिये ही यह वेद संमेलन आज ही यहां होनेवाला है। जिसका मैंने यहां इस समय उद्घाटन किया है।

आप इस संमेलनमें वेदका ज्ञान घर घर किस तरह पहुंचाया जा सकता है इसकी स्थायी आयोजना बनाइये और विश्वशान्तिके लिये अत्यावश्यक "अखिल भूमंडल पर एक राजा हो और वह वेदानुकूल राज्य-शासन करे" यह जो ऋषियोंकी घोषणा अधूरी रही है, उसको संपन्न करनेके लिये अपने भारतीयोंको समर्थ बनाइये।

परमेश्वर करे और व्यक्तिमें शांति हो,
राष्ट्रमें शांति हो और विश्वमें शांति हो।

वेदके ज्ञान का महत्व

चातुर्वर्ण्य त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् ।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति ॥९७॥
बिभर्ति सर्व भूतानि वेदशास्त्रं सनातनम् ।
तस्मादेतत्परं मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम् ॥९९॥
सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥१००॥

"चार वर्णों, चार आश्रमों और तीन लोकोंका तथा भूत, वर्तमान और भविष्यमें जो इनके संबंधका कर्तव्य उत्पन्न होगा वह सब वेदसे सिद्ध होगा। सनातन वेदशास्त्र सब प्राणियों का धारण पोषण तथा संवर्धन करनेवाला शास्त्र है। इसलिये यही मानवी उन्नतिका परम श्रेष्ठ साधन है। सेनापतिका, राज्यशासनका, न्यायदान देनेका तथा राष्ट्रके सब शासनाधिकारियोंका जो जो कार्य है वह सब वेदशास्त्र जाननेवाले अधिकारी ही उत्तम रीतिसे कर सकते हैं। अर्थात् राष्ट्रके सब कार्य वेदवेत्ताओंको देने चाहिये।"

मनुस्मृति १२

भारत-मुद्रणालय, स्वाध्याय-मण्डल, आनन्दाश्रम, किल्ला-पारडी जि. सूरत.

७ एषा नेत्री राधसः सूनृतानामुषा उच्छन्ती रिभ्यते वसिष्ठैः ।
दीर्घश्रुतं रयिमस्मे दधाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६३३

(७७) ६ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषसः । त्रिष्टुप् ।

१ उपो रुरुचे युवतिर्न योषा विश्वं जीवं प्रसुवन्ती चरायै ।
अभूदग्निः समिधे मानुषाणामकर्ज्योतिर्बाधमाना तमांसि ६३४

चलाया जाता है और अन्नकी देखभाल की जाती है । उषा स्त्री है। अतः गौओंका संचालन और घरमें आये अन्नका रक्षण करना ये कार्य स्त्रियोंके हैं ऐसा मानना उचित है ।

६ **सुजाते ! प्रथमा जरस्व**—हे कुलीन स्त्री ! तू सबसे प्रथम ईश्वरकी स्तुति कर, प्रथम उठकर, प्रथम आगे हो और ईश्वरकी स्तुति कर । स्त्रियां भी स्तुति प्रार्थना करें ।

[७] (६३३) (एषा उषाः राधसः सूनृतानां नेत्री) यह उषा स्तुति करनेवालेके सद्वचनोंको प्रेरित करनेवाली है। (उच्छन्ती वासिष्ठैः रिभ्यते) यह उषा अन्धकारको दूर करती है और वसिष्ठों द्वारा प्रशंसित होती है। (दीर्घश्रुतं रयिं अस्मै दधाना) बहुत प्रशंसा योग्य धन हमें देती है। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमारा सदा उत्तम संरक्षक साधनोंसे संरक्षण करो ।

उषःकाल इतना रमणीय होता है कि उसको देखकर कवियोंको काव्यगानका स्फुरण होता है। यह उषा अन्धकारको दूर करती है, प्रकाश देती है। इसालिये उषा प्रशंसाके योग्य है। जो एकत्र रहते हैं, एकत्र निवास करते हैं वे मिलकर उषाकी स्तुति करें ।

दीर्घश्रुतं रायिं अस्मे दधाना— अत्यंत प्रशंसित धन हमें देवे। हमें ऐसा धन चाहिये कि जो बहुत प्रशंसाके योग्य है। जिसकी निंदा होती है ऐसा धन हमें नहीं चाहिये ।

[१] (६३४) (युवतिः योषा न) तरुणी स्त्रीके समान यह उषा (उपो रुरुचे) सूर्य पहिले प्रकाशित हो रही है। यह (विश्वं जीवं चरायै प्रसुवती) सब जीवोंको सर्वत्र संचार करनेके लिये प्रेरित करती है। (अग्निः मानुषाणां समिन्धे अभूत्) अब उषःकालमें अग्नि मनुष्योंको प्रदीप्त करना योग्य है। वह प्रदीप्त होकर (तमांसि बाधमाना ज्योतिः अकः) अन्धकारको दूर करनेवाली ज्योतिको प्रकट करता है।

१ **युवतिः योषा न उपो रुरुचे**—तरुणी स्त्री वस्त्रालंकारोंसे सुशोभित होकर अपने तरुण पतिके सामने चमकती है, उस तरह यह उषा अपने सूर्य पतिके पहिले उठकर उसके पहिले ही अपना अन्धकार दूर करनेका कार्य करने लगी है। इसी तरह पतिके पूर्व स्त्री उठे और अपना कार्य करे यह स्त्रीके लिये उत्तम आदेश है। स्त्री कभी पति उठनेके पश्चात् भी सोती न रहे ।

२ **विश्वं जीवं चरायै प्रसुवंती**— उषा सब जीवोंको विचरनेके लिये प्रेरित करती है, इसी तरह घरकी स्त्री पतिके पूर्व उठे और अपने घरके गौ आदि जीवोंकी उत्तम व्यवस्था करे । आलस्यमें न रहे ।

३ **मानुषाणां अग्निः समिन्धे अभूत्**—मानवोंके घरोंमें अग्नि प्रज्वलित करना योग्य है। उषःकालमें अग्नि प्रदीप्त करें ।

४ **तमांसि बाधमाना ज्योतिः अकः**— अन्धकारको दूर करनेवाली ज्योति प्रकाशित करो। दीप जलाकर अथवा अग्नि प्रदीप्त करके उसकी ज्योति जले जिससे घरका अन्धकार दूर हो।

स्त्रीके लिये आदेश

स्त्री पतिके पूर्व उषःकालमें उठे। अपने वस्त्र संभाल कर कार्य करनेके लिये तत्पर हो जाय। गौ आदि पशुओंकी देख भाल करे। अग्नि प्रदीप्त करे और दीप जला कर अथवा अग्निकी ज्वालासे अन्धकारको दूर करे।

२ विश्वं प्रतीची सप्रथा उदस्थाद् रुशद् वासो बिभ्रती शुक्रमश्वैत् ।
हिरण्यवर्णा सुदृशीकसंदृग् गवां माता नेत्र्यह्नामरोचि ६३५

३ देवानां चक्षुः सुभगा वहन्ती श्वेतं नयन्ती सुदृशीकमश्वम् ।
उषा अदर्शि रश्मिभिर्व्यक्ता चित्रामघा विश्वमनु प्रभूता ६३६

---

[२] (६३५) (विश्वं प्रतीची सप्रथाः उदस्थात्) सब जगतके सन्मुख अत्यंत प्रसिद्ध यह उषा उदित हुई है। और वह (रुशत् शुक्रं वासः बिभ्रती अश्वैत्) तेजस्वी शुभ्र वस्त्र पहन कर बढ रही है। वह (हिरण्यवर्णा सुदृशीकसंदृक्) सुवर्णके समान वर्णवाली तथा सुन्दर दर्शनीय तेजवाली (गवां माता) गौओंकी माताके समान हित करनेवाली और (अह्नां नेत्री) दिनोंका संचलन करनेवाली (अरोचि) प्रकाशित हो रही है।

१ विश्वं प्रतीची सप्रथाः उदस्थात्—सबसे प्रथम यह प्रसिद्ध (उषा स्त्री) उठी है। इस तरह स्त्री सबसे प्रथम उठे।

२ रुशत् शुक्रं वासः बिभ्रती अश्वैत्—तेजस्वी चमकीला वस्त्र पहन कर कार्य करनेके लिये आगे बढे। स्त्री उठनेके पश्चात् अच्छे वस्त्र पहने और कार्यमें प्रवृत्त हो।

३ हिरण्यवर्णा सुदृशीक-संदृक्— स्त्री सुवर्णके समान वर्णवाली और सुंदर दर्शनीय बने। स्त्रीको सजकर अपनी सुन्दरता बढानी चाहिये।

४ गवां माता--स्त्री घरकी गौओंका माताके समान पालन करे।

५ अह्नां नेत्री अरोचि—दिनमें जो घरके कार्य करने होंगे उनका नेतृत्व करे। प्रकाशित होकर घरका नेतृत्व करे। जैसी उषा अपने विश्वरूप घरका नेतृत्व करती है।

इस मंत्रमें उषाके वर्णनसे स्त्रियोंके कर्तव्य बताये हैं।

[३] (६३६) (देवानां चक्षुः वहन्ती) देवोंके तेजको धारण करनेवाली (सुभगा) उत्तम भाग्यवाली (सुदृशीकं श्वेतं अश्वं नयन्ती) सुन्दर श्वेत किरणोंको- सूर्यके अश्वोंको चलानेवाली (उषा रश्मिभिः व्यक्ता अदर्शि) उषा किरणोंसे व्यक्त रूपमें दीखने लगी है। यह उषा (चित्रामघा विश्वं अनु प्रभूता) विलक्षण धनवाली संपूर्ण विश्वके सन्मुख बढ रही है।

१ सुभगा देवानां चक्षुः वहन्ती— यह भाग्यवती उषा देवोंके मध्यमें प्रकाशको फैलाती है। इस तरह सौभाग्यवती स्त्री अपने घरमें प्रकाश करे, तेजस्विनी होकर रहे।

२ सुदृशीकं श्वेतं अश्वं नयन्ती—सुंदर श्वेत अश्वको चलाती है। अश्व संचालनकी विद्या जानती है। इस तरह स्त्री अश्व संचालनकी विद्यामें प्रवीण हो। घोडोंको सुन्दर दर्शनीय स्थितिमें रखे। भगवान् श्रीकृष्ण अश्वविद्यामें निपुण थे और अर्जुनके रथके घोडोंका संचालन करते थे। इसमें कोई मान हानि नहीं है। राजा नल, नकुल ये अश्व विद्यामें निपुण थे। स्त्रियां भी अश्व संचालनमें कुशल हों।

३ उषा रश्मिभिः व्यक्ता अदर्शि—उषा किरणोंसे प्रकट होकर सुंदर दिखती है। इस तरह स्त्रियां सुशोभित होकर बाहर आ जांय।

४ चित्रामघा विश्वं अनु प्रभूता--अनेक प्रकारके श्रेष्ठ धनोंसे युक्त होकर विश्वके सन्मुख उषा बढती है। इसी तरह स्त्री भी अनेक वस्त्रों और अलंकारोंसे सजकर, सुशोभित होकर घरके बाहर आकर विराजे। स्त्रीके वस्त्र मलिन न हों, वह स्त्री आभूषण रहित न हो, जो उसके पास हो उससे जितना अधिक सुशोभित होनेकी संभावना हो उतना सौंदर्य बढावे।

४ अन्तिवामा दूरे अमित्रमुच्छोर्वीं गव्यूतिमभयं कृधी नः ।
याबय द्वेष आ भरा वसूनि चोदय राधो गृणते मघोनि ६३७
५ अस्मे श्रेष्ठेभिर्भानुभिर्वि भाह्युषो देवि प्रतिरन्ती न आयुः ।
इषं च नो दधती विश्ववारे गोमदश्वावद् रथवच्च राधः ६३८
६ यां त्वा दिवो दुहितर्वर्धयन्त्युषः सुजाते मतिभिर्वसिष्ठाः ।
सास्मासु धा रयिमृष्वं बृहन्तं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६३९

(७८) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषसः । त्रिष्टुप् ।

१ प्रति केतवः प्रथमा अदृश्रन्नूर्ध्वा अस्या अञ्जयो वि श्रयन्ते ।
उषो अर्वाचा बृहता रथेन ज्योतिष्मता वाममस्मभ्यं वक्षि ६४०

---

[४] (६३७) (अन्तिवामा) हमारे समीप धनको लानेवाली तू (अमित्रं दूरे उच्छ) हमारे शत्रुको दूर करके प्रकाशित हो। तथा (ऊर्वीं गव्यूतिं नः अभयं कृधि) विस्तृत भूमिको हमारे लिये निर्भय बनाओ। (द्वेषः यवय) शत्रुओंको दूर करो, (वसूनि आभर) धनोंको ला दो। हे (मघोनि) धनयुक्त उषा ! (गृणते राधः चोदय) स्तुति करनेवालेके लिये धन भेजो।

धनको पास लाना, शत्रुको दूर करना, प्रदेशको निर्भय करना, द्वेष कर्ताओंको दूर भगाना, धनसे घर भर देना, भक्तोंको धन देना ये मनुष्यके कर्तव्य हैं ।

१ **अन्तिवामा**-- अपने पास धनको लाना,
२ **आमित्रं दूरे उच्छ**--शत्रुको दूर भगा देना,
३ **ऊर्वीं गव्यूतिं नः अभयं कृधि**--विस्तृत भूप्रदेशको निर्भय करना,
४ **द्वेषः यवय**—द्वेष बढानेवालोंको दूर करना,
५ **वसूनि आ भर**—धनसे घरको भर देना,
५ **गृणते राधः चोदय**—भक्तके लिये धनका प्रदान करना।

ये कार्य उषा करती है, ये कार्य स्त्रियां करें तथा ये कार्य पुरुषोंको भी करना उचित है ।

[५] (६३८) हे (उषः देवि) उषा देवी !) (अस्मै श्रेष्ठेभिः भानुभिः वि भाहि) हमारे हितके लिये श्रेष्ठ किरणोंके साथ प्रकाशित हो। (नः आयुः प्रतरन्ती) हमारी आयुको बढाओ। हे (विश्ववारे) सबके द्वारा स्वीकार करने योग्य उषा देवी ! (नः इषं च) हमारे लिये अन्न (गोमत् अश्ववत् रथवत् च राधः दधती) गौओं, घोडों और रथोंके साथ रहनेवाला धन दे दो।

१ **नः आयुः प्रतरन्ती**—हमारी आयु बढाओ,

२ **गोमत् अश्ववत् रथवत् इषं राधः नः दधती**-जिस धनके साथ गौएं, घोडे, रथ, अन्न तथा कार्य सिद्धि रहती है ऐसा धन हमें दे दो।

[६] (६३९) हे (दिवः दुहितः सुजाते उषः) द्युलोककी दुहिता रूप उत्तम कुलीन उषा देवि ! (यां त्वा वसिष्ठाः मतिभिः वर्धयन्ति) वासिष्ठ लोग स्तोत्रोंसे तुम्हारी स्तुति गाते हैं। (सा अस्मासु बृहन्तं ऋष्वं रयिं धाः) वह तू हमारे पास बडा तेजस्वी धन धारण कर। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण साधक साधनोंसे सुरक्षित रखो ।

१ **अस्मासु बृहन्तं ऋष्वं रयिं धाः**--हमें बडा विशाल तेजस्वी धन चाहिये ।

[१] (६४०) (अस्याः प्रथमाः केतवः प्रति अदृश्रन्) इस उषाके पहिले किरण दीख रहे हैं। (अस्याः अंजयः ऊर्ध्वाः वि श्रयन्ते) इसके गतिशील किरण ऊर्ध्व भागमें आश्रय ले रहे हैं।

२ प्रति षीमग्निर्जरते समिद्धः प्रति विप्रासो मतिभिर्गृणन्तः ।
उषा याति ज्योतिषा बाधमाना विश्वा तमांसि दुरिताप देवी ६४१
३ एता उ त्याः प्रत्यदृश्रन् पुरस्ताज्ज्योतिर्यच्छन्तीरुषसो विभातीः ।
अजीजनन् त्सूर्यं यज्ञमग्निमपाचीनं तमो अगादजुष्टम् ६४२
४ अचेति दिवो दुहिता मघोनी विश्वे पश्यन्त्युषसं विभातीम् ।
आस्थाद् रथं स्वधया युज्यमानमा यमश्वासः सुयुजो वहन्ति ६४३
५ प्रति त्वाद्य सुमनसो बुधन्ताऽस्माकासो मघवानो वयं च ।
तिल्विलायध्वमुषसो विभातीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६४४

(७९) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषसः । त्रिष्टुप् ।

१ व्यु१षा आवः पथ्या३ जनानां पञ्च क्षितीर्मानुषीर्बोधयन्ती ।
सुसंदृग्भिरुक्षभिर्भानुमश्रेद् वि सूर्यो रोदसी चक्षसावः ६४५

हे (उषः) उषा देवि ! (अर्वाचा बृहता ज्योतिष्मता रथेन) हमारी ओर आनेवाले बडे तेजस्वी रथसे (अस्मभ्यं वामं वक्षि) हमें उत्तम धन दे।

[२] (६४१) (समिद्धः अग्निः सीं प्रति जरते) प्रदीप्त हुआ अग्नि बढ रहा है। (विप्रासः मतिभिः गृणन्तः प्रति जरन्ते) ज्ञानी लोग स्तोत्रोंसे स्तुति गाते हुए अपने कर्ममें बढ रहे हैं। (उषा देवी) उषा देवी (विश्वा तमांसि दुरिता) सब अन्धकारों और पापोंको (ज्योतिषा अपबाधमाना याति) अपने तेजसे दूर करती हुई जाती है।

[३] (६४२) (एताः त्याः उषसः) ये वे उषायें (विभातीः ज्योतिः यच्छन्तीः) प्रकाशती और तेजको देती हुई (पुरस्तात् प्रति अदृश्रन्) हमारे सामने दीख रही हैं। (सूर्यं अग्निं यज्ञं अजीजनन्) सूर्य, अग्नि और यज्ञको प्रकट किया है। (अजुष्टं तमः अपाचीनं अगात्) अप्रिय अन्धकारको दूर किया है।

इस मंत्रमें तथा कई अन्य मंत्रोंमें भी अनेक वचनमें उषाका प्रयोग हुआ है। सूर्य उदयके पूर्व अनेक उषाओंका होना इससे सिद्ध होता है। अनेक उषायें सूर्यको प्रकट करती हैं इसका स्पष्ट अर्थ यह है। प्रथम अनेक दिन उषःकाल ही होता है और पश्चात् सूर्यका उदय होता है।

[४] (६४३) (दिवः दुहिता मघोनी अचेति) द्युलोककी पुत्री धनवाली होकर आती है। (विश्वे विभातीं उषसं पश्यन्ति) सब प्रकाशित होनेवाली उषाको देखते हैं। यह उषा (स्वधया युज्यमानं रथं आ अस्थात्) अन्नसे भरे रथपर चढती है। (यं सुयुजः अश्वासः आ वहन्ति) जिसको उत्तम शिक्षित घोडे इष्ट स्थानतक पहुंचाते हैं।

[५] (६४४) (त्वा अद्य) तुझे आज (अस्माकासः मघवानः सुमनसः) हमारे धनी और बुद्धिमान पुरुष तथा (वयं च) हम सब (प्रतिबुधंत) जानते हैं, तेरा वर्णन करते हैं। हे (उषसः) उषाओ ! (विभातीः तिल्विलायध्वं) तुम प्रकाशित होकर जगत्को स्नेहयुक्त करो। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पातं) तुम सब सदा हमको कल्याणपूर्ण साधनोंसे सुरक्षित करो।

विभातीः तिल्विलायध्वं--स्वयं तेजस्वी बनो और विश्वको स्नेहसे भरपूर भर दो। जगत्से द्वेषभावको समूल दूर करो।

[१] (६४५) (जनानां पथ्या उषाः वि आवः) लोगोंके लिये हितकारिणी उषा विशेष रीतिसे प्रकट हुई है। वह (मानुषीः पञ्च क्षितीः बोधयन्ती)

२ व्यञ्जते दिवो अन्तेष्वक्तून् विशो न युक्ता उषसो यतन्ते ।
सं ते गावस्तम आ वर्तयन्ति ज्योतिर्यच्छन्ति सवितेव बाहू ६४६
३ अभूदुषा इन्द्रतमा मघोन्यजीजनत् सुविताय श्रवांसि ।
वि दिवो देवी दुहिता दधात्यङ्गिरस्तमा सुकृते वसूनि ६४७

मानवोंके **पांचों लोगोंको जगाती है। वह (सुसंदृग्भिः उक्षभिः भानुं अश्रेत्) सुन्दर गौओंके साथ तेजका आश्रय करती है। (सूर्यः रोदसी चक्षसा वि आवः) सूर्य भी अपने तेजसे द्यावा पृथिवीको भर देता है।**

१ **जनानां पथ्याः** – लोगोंके हितके कर्म करने चाहिये।

२ **मानुषी पञ्च क्षितीः बोधयन्ती**—मनुष्योंके ज्ञानी, शूर, व्यापारी, कर्मचारी और अन्य लोगोंको अर्थात् सब मानवोंको ज्ञान देना चाहिये।

३ **भानुं अश्रेत्**—प्रकाशका आश्रय करना चाहिये।

४ **सूर्यः रोदसी चक्षसा वि आवः**--सूर्य अपने प्रकाशसे द्यावा पृथिवीको भर देता है। मनुष्य तेजस्वी बने और अपना प्रकाश चारों दिशाओंमें फैला देवे।

[२] (६४६) (उषसः अक्तून् दिवः अन्तेषु व्यञ्जते) उषाएं अपने तेजोंको द्युलोकके अन्तिम प्रदेशतक फैलाती हैं। (युक्ताः विशः न यतन्ते) संघटित प्रजाजनोंकी तरह वे उषाएं अन्धकारके नाश करनेके लिये यत्न करती हैं। हे (उषः) उषा देवी! (ते गावः तमः सं आ वर्तयन्ति) तेरी किरणें अन्धकारका नाश करती हैं। (सूर्यः इव बाहू ज्योतिः यच्छन्ति) सूर्य अपनी बाहुओं किरणोंको जिस तरह फैलाता है, उस तरह उषाएं अपने तेजको फैलाती हैं।

१ **उषसः अक्तून् दिवः अन्तेषु व्यञ्जते**--उषाएं अपने प्रकाशको द्युलोकके अन्तिम प्रदेशतक फैलाती हैं। वैसी स्त्रियां अपने राष्ट्रके कोने कोनेतक ज्ञानका प्रकाश फैलाएं।

२ **युक्ताः विशः न उषासः यतन्ते**-संघटित प्रजाजनोंके समान उषायें अन्धकारके नाशके लिये यत्न करती हैं। इसी तरह प्रजाजन संघटित होकर, नाना संस्थाएं स्थापन करके ज्ञानके द्वारा प्रजाओंके अज्ञानको दूर करें।

३ **ते गावः तमः समावर्तयन्ति**- उषाकी किरणें अन्धकारको समेट लेती हैं। और

४ **सूर्यः इव बाहू ज्योतिः यच्छन्ति**— जैसे सूर्य अपने किरणोंको फैलाता है वैसे उषा अपने प्रकाशको फैलाती है।

जिस तरह सूर्य और उषा अपने प्रकाशसे जगत्के अन्धकरका नाश करते हैं, उस तरह पुरुष और स्त्री आलस्य छोडकर अपने ज्ञान द्वारा लोगोंके अज्ञानको दूर करें। ज्ञानका प्रकाश करें।

[३] (६४७) (इन्द्रतमा मघोनी उषा अभूत्) श्रेष्ठ स्वामिनी ऐश्वर्यवाली उषा प्रकट हुई है। (सुविताय श्रवांसि अजीजनत्) सबके कल्याणके लिये उसने अन्नोंका निर्माण किया है। (दिवः दुहिता देवी) द्युलोककी पुत्री उषा देवी (अंगिरस्तमा) अंगारके समान तेजस्विनी होकर (सुकृते वसूनि वि दधाति) सत्कर्म करनेवालेके लिये धनोंका प्रदान करती है।

१ **इन्द्रतमा मघोनी उषा अभूत्**— उत्तम शासकको इन्द्र कहते हैं। यह उषा उत्तम रीतिसे शासन करती है इसलिये उसको ‘ इन्द्र–तमा ’ कहा है। उत्तमसे उत्तम शासनका प्रबंध करनेवाली उषा प्रकट हुई है। इस तरह स्त्रियां घरका शासन प्रबंध उत्तमसे उत्तम रीतिसे करनेवाली हों। नगरका शासन करनेकी योग्यता (पुरं–धी) धारण करें। ऐसी स्त्रियां हों। स्त्रियां ‘ इन्द्र ’ ही नहीं, परंन्तु ‘ इन्द्र–तमा ’ हों। उत्तमसे उत्तम शासन प्रबंध करनेकी शक्ति स्त्रियोंमें हो। **स्त्री-शिक्षा** ऐसी होनी चाहिये जिसे स्त्रियां कर्तव्यदक्ष हों और शासन प्रबंध करनेमें अत्यंत प्रवीण हों।

२ **सुविताय श्रवांसि अजीजनत्**— लोगोंके कल्याणके लिये अन्नोंको सिद्ध करें। अन्न पकानेका कार्य स्त्रियोंके

४ तावदुषो राधो अस्मभ्यं रास्व यावत् स्तोतृभ्यो अरदो गृणाना ।
यां त्वा जज्ञुर्वृषभस्या रवेण वि दृळ्हस्य दुरो अद्रेरौर्णोः
५ देवंदेवं राधसे चोदयन्त्यस्मद्र्यक् सूनृता ईरयन्ती ।
व्युच्छन्ती नः सनये धियो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

(८०) ३ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषसः । त्रिष्टुप् ।

१ प्रति स्तोमेभिरुषसं वसिष्ठा गीर्भिर्विप्रासः प्रथमा अबुध्रन् ।
विवर्तयन्तीं रजसी समन्ते आविष्कृण्वतीं भुवनानि विश्वा

अधीन हो । उनकी निग्रानीमें अन्नोंकी सिद्धता हो ।

३ सुकृते वसूनि वि दधाति— उषा सत्कर्म करनेवालेके लिये धन देती है । कर्म करनेवालेके कामको स्त्री देखे और उसके कर्मके अनुसार उसे धन देवे । कर्मचारीसे काम लेवे और उसको योग्य धन देवे । शासन प्रबंधका यह एक कार्य है ।

[४] (६४८) हे (उषः) उषा देवी! (यावत् राधः स्तोतृभ्यः अरदः) जितना धन तुमने स्तोताओंको पूर्व समयमें दिया था, (तावत् राधः गृणाना अस्मभ्यं रास्व) उतना धन प्रशंसित होकर हमें दे दो। (वृषभस्य रवेण यां त्वा जज्ञुः) बैलके शब्दसे तुम्हें सब जानते हैं, उषाके उदयमें बैल तथा गौवें शब्द करती हैं जिससे पता लगता है कि उषःकाल हुआ है। और (दृळ्हस्य अद्रेः दुरः वि और्णोः) सुदृढ पर्वतके कीलेका द्वार खोल दिया है और गौओंको बाहर निकाला है।

उषःकाल होते ही गायें और बैल शब्द करने लगते हैं । तब गोशालाका सुदृढ द्वार खोला जाता है और गौवें तथा बैल बाहर निकाले जाते हैं । चरनेके लिये उनको खुला छोडा जाता है । ‘ सुदृढ कीलेका द्वार ’ (दृळ्हस्य अद्रेः दुरः) ये शब्द बता रहें हैं कि गोशालाएं कैसी सुदृढ हुआ करती हैं ।

[५] (६४९) (देवंदेवं राधसे चोदयन्ती) प्रत्येक सत्कर्म कर्ताको ऐश्वर्य प्राप्तिके लिये प्रेरित करती है, (अस्मद्र्यक् सूनृताः ईरयन्ती) हमारे सन्मुख सत्य भाषणको प्रेरित करती है। (व्युच्छन्ती नः सनये धियः धाः) अन्धकारको दूर करती हुई हमें धन देनेकी बुद्धिका धारण कर। (
नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्या
भय साधनोंसे सुरक्षित रख ।

१ देवंदेवं राधसे चोदयन्ती— प्रत्येक सत्कर्म क
सिद्धि प्राप्त करनेके मार्गसे जानेके लिये प्रेरित करो ।

२ सूनृता ईरयन्ती— उत्तम सत्य भाषण स्वयं
और दूसरोंको भी उत्तम सत्य भाषण करनेकी प्रेरणा करो ।

३ सनये धियः धाः— दान देनेके लिये अपनी बुद्धि
प्रेरित करो ।

प्रत्येक कर्मकर्ता धन प्राप्त करनेके लिये, सिद्धि
होनेतक प्रयत्न करे । सत्य तथा सरल भाषण करे और
देनेकी बुद्धिको अपने अन्तःकरणमें रखे । यह मानवधर्म

[१] (६५०) (विप्रासः वसिष्ठाः)
वसिष्ठ गोत्रके ऋषि (प्रथमाः स्तोमभिः) स
प्रथम स्तोत्रोंसे और (गीर्भिः) वाणियोंसे (उ
प्रति अबुध्रन्) उषाको जगाते हैं। उषाके स
जागते हैं। यह उषा (समन्ते रजसी विवर्तयन्ती
समान अन्तवाली, द्यावा पृथिवीको घुमानेवाली
(विश्वा भुवना आविः कृण्वन्ती) सब भुवनों
प्रकाशित करती है।

‘ **प्रथमाः विप्रासः वसिष्ठाः** ’– ऐसा वसिष्ठोंका वर्ण
यहां है । वसिष्ठ गोत्री विप्र पहिले थे । अन्य ऋषियोंके
समयके ये ज्ञानी थे । सबसे प्राचीन ऋषि ये थे । ये उषःका
उठते और उषाके स्तोत्र गाते थे ।

‘ **समन्ते रजसी विवर्तयन्ती** ’— द्युलोक और

२ एषा स्या नव्यमायुर्दधाना गूढ्वी तमो ज्योतिषोषा अबोधि ।
अग्र एति युवतिरह्रयाणा प्राचिकितत् सूर्यं यज्ञमग्निम् ६५१

३ अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६५२

लोक, इनका आपसमें (सं-अन्ते) अन्त भाग जोडा दूसरेसे संबंध जुडा है ऐसा दीखता है। ये दोनों लोगोंको न्ती) घुमानेवाली उषा है। ये दोनों लोग समान जैसे भ्रमण हो रहे हैं ऐसा दीखनेवाला इस भूमंड- ही स्थान है और वह है उत्तरीय ध्रुव प्रदेश। इस रहनेवाला मनुष्य देख सकता है कि भूमि और द्युलोक लगे हैं और वे (विवर्तयन्ती) वर्तुल गतिसे घूम रहे क्षिणा कर रहे हैं। अपने चारों ओर इनका भ्रमण हो उषा इन लोगोंको घुमा रही है यह आलंकारिक है।

] (६५१) **(एषा स्या उषा नव्यं आयुः) यह वह उषा नवीन तारुण्यकी आयु करती है, (गूढ्वी तमः ज्योतिषा) और अन्धकारको अपने तेजसे निवारण करती अबोधि) जागती है। (अग्रे) प्रारंभमें (अ- याणा युवतिः एति) लज्जा न करनेवाली तरुण समान यह सूर्यके पूर्व चलने लगती है। तथा अग्निं यज्ञं प्र अचिकितत्) सूर्य, अग्नि और बतलाती है।**

एषा नव्यं आयुः दधाना उषा ज्योतिषा गूढ्वी अबोधि— यह तरुण आयुवाली उषा अपने तेजसे दूर करती हुई पतिके पूर्व जाग उठी है। इसी तरह पूर्व उठे, अपने कर्तव्य कर्मको करे, प्रकाश करके को दूर करे।

अह्रयमाणा युवतिः अग्रे एति अग्निं यज्ञं आचि-— लज्जा न करनेवाली तरुण स्त्री पतिके पहिले उठती अग्नि प्रदीप्त करके यज्ञको करती है।

पतिके पूर्व स्त्री उठे, अपने कर्तव्य कर्म करे, जिससे पतिका प्रेम वैसी तरुणीपर जमता है। परंतु जो सुस्त स्त्री होती है, वह पतिके लिये उतनी प्रिय नहीं होती। स्त्री पहिले उठे ऐसा कहनेका तात्पर्य यह नहीं है कि पति बहुत देरी करके उठे। '**उषर्बुध्**' उषःकालमें उठनेवाले पुरुषोंका वर्णन अन्यान्य मंत्रोंमें किया ही है।

[३] (६५२) **(अश्वावतीः गोमतीः वीरवतीः) घोडे, गौवें और वीर पुरुष-वीरपुत्र जिसके साथ है ऐसी (भद्राः उषासः नः सदं उच्छन्तु) कल्याण करनेवाली उषाएं हमारे घरको प्रकाशित करें। ये उषायें (घृतं दुहानाः) घी अथवा जलको दुहकर देनेवाली और (विश्वतः प्रपीताः) सब ओरसे परिपुष्ट हुई हों। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याणमय साधनोंसे सुरक्षित रखो।**

उषःकालमें घोडे, गौवें और वीर पुत्र घरसे बाहर आते हैं, घर इनसे शोभावाला होता है। गौके दूधका घी पर्याप्त तैयार होता है। कल दोहे दूधका रात्रीमें दही बनाकर सवेरे मक्खन निकाल कर उसका घी बनाना। इस घीका नाम 'हैयं-गवीन' है। यह घी सवेरे ही तैयार होता है इसलिये ऐसे घीको उषा देती है ऐसा कहा है।

इस मंत्रमें '**उषासः**' अनेक उषाएं ऐसा कहा है। सूर्य उदयके पहिले अनेक उषाएं इस तरह वैभव संपन्न आती हैं। पश्चात् सूर्य देव, उषाके पति देव आते हैं। **(उषासः नः सदं उच्छन्तु)** ऐसी भाग्ययुक्त उषाएं हमारे घरको उज्वल बनावें। सूर्योदयके पूर्व अधिक उषाएं आयें और वे हमारे घरको तेजस्वी बनावें।

(८१) ६ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषसः । प्रगाथः=(विषमा बृहती, समा सतोबृहती)।

१ प्रत्यु अदृश्यायत्यु१च्छन्ती दुहिता दिवः ।
अपो महि व्ययति चक्षसे तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ६५३

२ उदुस्रियाः सृजते सूर्यः सचाँ उद्यन्नक्षत्रमार्चिवत् ।
तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि ६५४

३ प्रति त्वा दुहितर्दिव उषो जीरा अभुत्स्महि ।
या वहसि पुरु स्पार्हं वनन्वति रत्नं न दाशुषे मयः ६५५

४ उच्छन्ती या कृणोषि मंहना महि प्रख्यै देवि स्वर्दृशे ।
तस्यास्ते रत्नभाज ईमहे वयं स्याम सूनवः ६५६

---

[१] (६५३) (आयती उच्छन्ती दिवः दुहिता) आनेवाली अन्धकारको दूर करनेवाली द्युलोककी दुहिता उषा (प्रति अदर्शि उ) दिखाई देती है। (महि तमः अप उ व्ययति) बडे अन्धकारको दूर करती है। और (सूनरी चक्षसे ज्योतिः कृणोति) उत्तम नेतृत्व करनेवाली यह उषा देखनेके लिये प्रकाशको करती है। फैलाती है।

द्युलोककी पुत्री उषा आती है, लोगोंको मार्ग दिखानेके लिये अन्धकार दूर करती है और प्रकाशको फैलाती है। इसी तरह घरकी गृहिणी अपने घरमें प्रकाश करे और अन्धेरा दूर करे। और घरका प्रबंध उत्तम करे।

[२] (६५४) (सूर्यः उस्रियाः सचा उत् सृजते) सूर्य किरणोंको साथ साथ ऊपर फेंकता है। तथा (उद्यत् नक्षत्रं आर्चिमत्) सूर्य उदय होनेके पहले नक्षत्रोंको तेजस्वी बनाता है। हे उषा देवी ! (तव इत् सूर्यस्य च व्युषि) तेरे तथा सूर्यके प्रकाशित होनेपर (भक्तेन संगमेमहि) अन्नके साथ मिलेंगे, अन्नको प्राप्त होंगे।

सूर्य जबतक पृथ्वीके नीचे रहता है, तबतक वह अपने किरणोंको ऊपर फेंकता है जिससे चन्द्रादि प्रकाशित होते हैं। यहां ' नक्षत्र ' शब्दका अर्थ चन्द्र, बुध, शुक्र, आदि ग्रह ही हैं। क्योंकि नक्षत्रका स्वयं प्रकाश है और वहांतक हमारे सूर्यका प्रकाश पहुंच नहीं सकता। ' **सूर्यरश्मिः चन्द्रमाः ।**' वा० य० १८। ४० ऐसे मंत्रोंमें सूर्यके रश्मि चन्द्रमाको प्रकाशित करते हैं ऐसा कहा है। इन मंत्रोंके साथ इस मन्त्रका विचार करनेसे यहांका ' नक्षत्र ' पद चन्द्रादि ग्रहोंका वाचक दीखता है। सूर्य तथा उषाका उदय होनेपर चावल पकाते हैं, उसका हवन होता है और फिर वह सब खाते हैं।

[३] (६५५) हे (दिवः दुहितः उषः) द्युलोककी पुत्री उषा देवी ! (जीराः त्वा प्रति अभुत्स्महि) हम शीघ्र कर्म करनेवाले तुझे जगावेंगे। हे (वनन्वति) धनवाली उषा ! (या पुरु स्पार्हं वहसि) जो तू बहुत स्पृहणीय धनको लाती है और (दाशुषे मयः रत्नं न) दाताके लिये सुख और धन देनेके समान तू सबको सुख और धन देती है।

हम सब प्रभात समयमें उठते हैं, (जीराः) अपने कर्तव्य कर्म अतिशीघ्र तथा अत्यंत उत्तम रीतिसे करते हैं इसलिये हम स्पृहणीय धन तथा उत्तम सुख प्राप्त करते हैं। जो इस तरह प्रातः उठकर अपने कर्तव्य करेगा वह भी उत्तम धन प्राप्त करेगा।

[४] (६५६) हे (महि देवि) महति उषा देवते ! तू (व्युच्छन्ती मंहना) अन्धकार दूर करती और अपने महत्त्वको प्रकट करती है, (या स्वः दृशे प्रख्ये कृणोषि) और जो तू विश्वके दर्शन और प्रबोधनके लिये प्रकाश करती है। (तस्याः ते रत्नभाजः ईमहे) इस तरह तुझ रत्नोंका सेवन

५ ताच्चित्रं राध आ भरोषो यद् दीर्घश्रुत्तमम्।
यत् ते दिवो दुहितर्मर्तभोजनं तद् रास्व भुनजामहै ६५७
६ श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनं वाजाँ अस्मभ्यं गोमतः।
चोदयित्री मघोनः सूनृतावत्युषा उच्छदप स्रिधः। ६५८

[८२] इंद्रावरुण प्रकरण

(८२) १० मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। इन्द्रावरुणौ। जगती।

१ इन्द्रावरुणा युवमध्वराय नो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम्।
दीर्घप्रयुज्यमति यो वनुष्यति वयं जयेम पृतनासु दूढ्यः ६५९

रनेवालीसे हम प्रार्थना करते हैं कि (वयं मातुः सूनवः न स्याम) हम माताके जैसे पुत्र होते हैं वैसे हम तेरे पुत्र बनें।

उषा प्रकाशती है, उससे सब लोग जागते हैं और मार्ग देखते हैं। यह उषा रत्नोंवाली माता जैसी है। उसके हम पुत्र जैसे हों और वह हमारी माता जैसी हो। माता जैसी पुत्रोंको प्रेमसे अन्न धन देती है वैसी उषा हमें अन्न धन और सुख देवे।

[५] (६५७) हे उषा देवी! (यत् दीर्घश्रुत्तमं चित्रं राधः) जो अत्यंत यशस्वी विलक्षण धन है (तत् आ भर) वह हमें भर दो। हे (दिवः दुहितः) द्युलोककी पुत्री उषा देवी! (यत् ते मर्तभोजनं) जो तुम्हारे पास मनुष्योंके योग्य भोजन है, (तत् रास्व) वह भोजन हमें दो, हम (भुनजामहै) भोजन करेंगे।

हमें यशस्वी धन और मानवोंके योग्य अन्न मिले।

[६] (६५८) हे उषा देवी! (सूरिभ्यः अस्मभ्यं अमृतं वसुत्वनं श्रवः) हम ज्ञानियोंके लिये अमर धन और यश तथा (गोमतः वाजान्) गौओंसे युक्त अन्न दे दो। (मघोनः चोदयित्री सूनृतावती उषाः) धनवानोंको यज्ञ करनेकी प्रेरणा करनेवाली और सत्य भाषणकी प्रेरणा करनेवाली उषा (स्रिधः अप उच्छत्) शत्रुओंका नाश करती है।

ज्ञानियोंको अमर धन युक्त यश मिले, उनको गौवें मिलें, अन्न पर्याप्त प्रमाणमें प्राप्त हों, उससे वे यज्ञ करें, सत्य व्यवहारको बढा देवें और मानवताके शत्रुओंका नाश करें और सज्जनोंकी उन्नति करें।

॥ यहां उषा प्रकरण समाप्त ॥

[१] (५९) हे इन्द्र और वरुण! (युवं नः विशे जनाय) तुम दोनों हमारे प्रजा जनोंके लिये (अध्वराय) हिंसारहित सत्कर्म करनेके लिये (महि शर्म यच्छतं) बडा सुख, घर आदि दे दो। तथा (दीर्घ-प्रयुज्यं यः अति वनुष्यति) बडे यज्ञ करनेवाले सत्कर्मकर्ताको जो अत्यंत कष्ट देता है, और जो (पृतनासु दुःध्यः) युद्धोंमें पराजित होना कठिन है उस शत्रुपर (वयं जयेम) हम विजय करेंगे।

सज्जनोंकी सुरक्षा

१ विशे जनाय अध्वराय महि शर्म यच्छतं— प्रजा जनोंको हिंसा कुटिलता रहित प्रशंसित कर्म करनेके लिये बडा सुख, बडा संरक्षण, बडा घर या स्थान दे डालो। जहां वह रहे और सुखसे अपने प्रशंसित कर्म करे और जनताको सुखी करे।

दुष्टोंको दण्ड

२ यः पृतनासु दूढ्यः दीर्घ प्रयुज्यं अति वनुष्यति— जो युद्धोंमें पराजित होना कठिन है, ऐसा प्रबल

२ सम्राळन्यः स्वराळन्य उच्यते वां महान्ताविन्द्रावरुणा महावसू ।
विश्वे देवासः परमे व्योमनि सं वामोजो वृषणा सं बलं दधुः ६६०
३ अन्वपां खान्यतृन्तमोजसा सूर्यमैरयतं दिवि प्रभुम् ।
इन्द्रावरुणा मदे अस्य मायिनोऽपिन्वतमपितः पिन्वतं धियः ६६१

शत्रु, सत्कर्म करनेमें सदा दक्ष रहनेवाले सज्जनको अत्यंत कष्ट देता है, उसीको (**वयं जयेम-**) हम पराजित करेंगे। इसको पराजित करनेसे सब प्रजाजन सुखी होंगे और सज्जन अपना प्रशंसित कर्म करते रहेंगे जिससे जनता सुखी होगी।

दुष्टोंका नाश और सज्जनोंकी सुरक्षा करना ही कर्तव्य है। यह इस मंत्रमें बताया है। दुष्ट प्रबल शत्रुका पूर्ण नाश करनेका सामर्थ्य प्राप्त करना चाहिये।

[२] (६६०) हे इन्द्र और वरुण ! (वां) तुममेंसे (अन्यः संराट्) एक वरुण सम्राट है और (अन्यः स्वराट्) दूसरा स्वराट् है (उच्यते) ऐसा कहा जाता है। आप दोनों (महान्तौ महावसू) बडे हैं और बडे धनवाले हैं। हे (वृषणा) सामर्थ्यवानो ! (परमे व्योमनि विश्वे देवासः) परम उच्च आकाशमें सब देवोंने (वां) तुम दोनोंके लिये (ओजः बलं च सं दधुः) ओज और बल धारण किया है।

राजाका बडा धनकोश।

इन्द्र और वरुण ये दो बडे देव हैं। इनमें वरुण सम्राट् है, और इन्द्र स्वराट् है। सम्राट् वह होता है कि जो अनेक राज्यों-पर अपना शासन चलाता है और स्वराट् वह है कि जो केवल अपने ही सामर्थ्यसे अपने सब कर्म निभाता है। दूसरेकी सहायता जिसको नहीं लेनी पडती। इस तरह ये दोनों बडे शासक हैं। ये (महान्तौ महावसू) ये स्वयं बडे हैं और अपने पास बहुत धन रखनेवाले हैं। राष्ट्रके शासकोंको अपने पास बहुत धन रखना चाहिये। राजाका कोश बडा होना चाहिये। कोशहीन राजा निर्बल होता है। राजाको बडे धनकोशकी अत्यंत आवश्यकता है यह यहां बताया है।

राजा अथवा शासक (वृषणा) बलवान् चाहिये। सामर्थ्यवान् चाहिये। निर्बल और निर्धन नहीं होना चाहिये।

विश्वे देवासः परमे व्योमनि ओजः बलं संदधुः- सब देव वीर परम सुरक्षित स्थानमें इस सम्राट्के लिये बल और ओजका धारण करते हैं। '**परमे व्योमनि**' (परतमे वि-ओमनि) ओम्‌का अर्थ संरक्षण है (अवति इति ओम्) जो रक्षक है वही ओम् है। 'वि-ओम्' का अर्थ विशेष संरक्षण। '**परमे व्योमनि**' श्रेष्ठतम विशेष संरक्षणके स्थानमें उसको रखते हैं। सम्राट्, स्वराट् तथा उनकी प्रजा उत्तम सुरक्षित रखनी चाहिये। देव उनको कहते हैं कि जो व्यवहार करनेवाले विबुध होते हैं। ये राष्ट्रका व्यवहार उत्तम करनेवाले विबुध इन शासकोंके लिये ओज और बल धारण करें और बढावें।

राष्ट्रमें ऐसी व्यवस्था हो कि जिससे सब राष्ट्र सुरक्षित हो और सब व्यवहार करनेवाले विबुध उसका बल बढाते हों। देव शरीरमें इन्द्रियगण हैं, राष्ट्रमें अधिकारी तथा ज्ञानी और विश्वमें सूर्यादि देवगण हैं। राष्ट्रका बल वे ही बढा सकते हैं कि जो राष्ट्रके सुप्रबंधसे सुरक्षित होते हैं और अपना कर्तव्य उत्तम रीतिसे कर सकते हैं।

[३] (६६१) हे इन्द्रावरुणो ! (अपां खानि ओजसा अनु अतृन्तं) जलोंके द्वार अपने बलसे तुमने खोल दिये, (सूर्यं दिवि प्रभुं आ ऐरयतं) तुमने सूर्यको द्युलोकका प्रभु बनाकर प्रेरित किया। (अस्य मायिनः मदे अपितः आपिन्वतं) इस शक्तिशाली सोमके पानसे आनंदित होकर जल-रहित नदियोंको तुमने भरपूर भर दिया। और (धियः पिन्वतं) हमारे बुद्धिपूर्वक किये कर्मोंको पूर्ण किया।

इन्द्रने तथा वरुणने जलोंके द्वार खोल दिये जिनसे जलोंके प्रवाह बहने लगे, जल रहित नदियां भी जलसे परिपूर्ण हो गयी। सूर्य आकाशमें प्रकाशने लगा और यज्ञ कर्म शुरू हुए। बडे अन्धकारके दूर होनेपर यह हुआ। अन्धकारके समय जब प्रवाहोंका बंद होना और सूर्य प्रकाश होनेपर जल प्रवाहोंका खुल जाना यह उत्तरीय प्रदेशोंमें, हिम प्रदेशोंमें ही होनेवाली बात है।

४ युवामिद् युत्सु पृतनासु वह्नयो युवां क्षेमस्य प्रसवे मितज्ञवः ।
ईशाना वस्व उभयस्य कारव इन्द्रावरुणा सुहवा हवामहे ६६२

५ इन्द्रावरुणा यदिमानि चक्रथुर्विश्वा जातानि भुवनस्य मज्मना ।
क्षेमेण मित्रो वरुणं दुवस्यति मरुद्भिरुग्रः शुभमन्य ईयते ६६३

---

[४] (६६२) हे इन्द्र और वरुणो ! (वह्नयः युत्सु पृतनासु युवां इत्) अग्निवत् तेजस्वी वीर युद्धोंमें शत्रुसेनाओंमें तुम्हें ही बुलाते हैं। (मितज्ञवः क्षेमस्य प्रसवे युवां) संकुचित जानुवाले रक्षणके समय तुम्हें बुलाते हैं । (कारवः उभयस्य वस्वः ईशाना) हम कारीगर लोग भूलोक और द्युलोकके स्वामी (सुहवा हवामहे) सहजहीसे बुलाने योग्य आप दोनोंको हम सहाय्यार्थ बुलाते हैं।

युद्धमें लडनेवाले वीर, आसन लगाकर बैठनेवाले ध्यानस्थ ज्ञानी और कारीगर लोग काठिन समयमें सहायार्थ इनको बुलाते हैं। ऐसा बल सबको प्राप्त करना चाहिये ।

१ **मितज्ञवः क्षेमस्य प्रसवे युवां हवन्ते**—घुटने मोडकर आसन लगाकर बैठनेवाले आत्मिक क्षेमकी प्राप्तिके लिये तुम्हें बुलाते हैं । यह योग साधन करनेवाले ज्ञानियोंकी पुकार है ।

२ **वह्नयः युत्सु पृतनासु युवां इत् हवन्ते**-अग्निके समान तेजस्वी क्षत्रिय युद्धोंमें लडनेके लिये आयी शत्रुसेनाओंके साथ लडनेके समय सहायांर्थ तुम्हें बुलाते हैं । यह क्षत्रियोंकी पुकार है ।

३ **कारवः उभयस्य वस्वः ईशाना हवन्ते**— कारीगर लोग दोनों प्रकारके धनोंके स्वामी ऐसे जो तुम दोनों, उनको बुलाते हो । यह वैश्यों और शूद्रोंकी पुकार है ।

इस तरह चारों वर्णोंके लोग इन्द्र और वरुणको बुलाते हैं। ऐसे शक्तिशाली ये इन्द्र और वरुण हैं। इस तरह शक्ति प्राप्त करनी चाहिये और चारों वर्णोंके लोगोंको सहायता पहुंचानी चाहिये।

[५] (६६३) हे इन्द्र और वरुण ! (यत् भुवनस्य इमानि विश्वा जातानि मज्मना चक्रथुः) जो तुमने इस भुवनके अन्दरके इन सभी प्राणियोंको अपने बलसे निर्माण किया है, उस कारण (मित्रः क्षेमेण वरुणं दुवस्यति) मित्र सबके कल्याण करनेके हेतुसे वरुणकी सेवा करता है और (अन्यः मरुद्भिः उग्रः शुभं ईयते) दूसरा इन्द्र मरुतोंके साथ रहनेसे उग्र वीर बनकर सबका शुभ करता है ।

१ **भुवनस्य विश्वा जातानि मज्मना चक्रथुः**— इस भुवनमें जो नाना प्रकारके पदार्थ हैं उनको तुम दोनों अपनी निज शक्तिसे निर्माण करते हो ।

२ **क्षेमेण मित्रः वरुणं दुवस्यति**— सबका क्षेम साधन करनेके लिये मित्र वरुणकी सहायता करता है । मित्र और वरुण सबका क्षेम करते हैं । जो पदार्थ हैं उनके उपयोगसे जो सुख मिलता है उसका नाम क्षेम है । यह सुख ' मित्र तथा वरुण ' देते हैं । मित्र भावसे रहना और वरिष्ठ श्रेष्ठ उच्च विचारोंके साथ जीना यह मित्र वरुणोंका स्वभाव है । इससे वे विश्वका कल्याण करते हैं ।

३ **अन्यः इन्द्रः उग्रः मरुद्भिः शुभं ईयते**— दूसरा इन्द्र बडा शूरवीर है । वह मरनेतक लडनेवाले सैनिकोंको साथ लेकर सबकी सुरक्षा करता है । और सुरक्षा करके सबका कल्याण करता है ।

राज्यशासनके दो कर्तव्य

यहां राज्य शासनके दो कर्तव्य बताये हैं । शूर सेनापति (उग्रः) उग्र भावसे अपने सैनिकोंके द्वारा अन्तर्बाह्य शत्रुओंका निर्मूलन करके प्रजाका शुभ करे । और दूसरा मित्र भाव नागरिकोंमें बढाकर सब प्रजाजनोंका क्षेम साधन करे । इन्द्र वरुणोंके वर्णनसे राज्य शासकके ये दो कर्तव्य यहां बताये हैं ।

६ महे शुल्काय वरुणस्य नु त्विष ओजो मिमाते ध्रुवमस्य यत् स्वम् ।
अजामिमन्यः श्नथयन्तमातिरद् दभ्रेभिरन्यः प्र वृणोति भूयसः ६६४

७ न तमंहो न दुरितानि मर्त्यमिन्द्रावरुणा न तपः कुतश्चन ।
यस्य देवा गच्छथो वीथो अध्वरं न तं मर्तस्य नशते परिह्वृतिः ६६५

८ अर्वाङ्नरा दैव्येनावसा गतं शृणुतं हवं यदि मे जुजोषथः ।
युवोर्हि सख्यमुत वा यदाप्यं मार्डीकमिन्द्रावरुणा नि यच्छतम् ६६६

---

[६] (६६४) (वरुणस्य त्विषं ओजः मिमाते) **मित्र और वरुणका तेज बढानेके लिये बलको बढाते हैं। (महे शुल्काय) विशेष धनकी प्राप्ति हो इसलिये तथा (अस्य यत् ध्रुवं स्वं) इसका जो स्थायी निज बल है उसको बढानेके लिये यह किया जाता है। (अन्यः श्नथयन्तं अजामिं आ आतिरत्) इनमेंसे एक वरुण हिंसक शत्रुके पार हो जाता है, और (अन्यः दभ्रेभिः भूयसः प्र वृणोति) दूसरा इन्द्र अल्प साधनोंसे ही महान् शत्रुओंको घेरता है।**

राज्यशासकके पांच कर्तव्य

१ अन्यः श्नथयन्तं अ-जामिं आ आतिरत्— एक अधिकारी बन्धुभाव न रखनेवाले हिंसक दुष्टको दूर करे अर्थात् इस गुण्डेके कष्टोंसे नागरिकोंको बचावे। नागरिकोंमें जो भाईके समान परस्पर व्यवहार करते हैं उनकी सुरक्षा होनी चाहिये, परंतु बन्धुवत् व्यवहार न करके जो गुण्डापन करेंगे उनको दण्ड देना चाहिये। यह दण्ड देनेका कार्य यहां वरुण करता है। यह न्यायाधीशका कार्य है। नागरिकोंके अन्दर शान्ति इससे रखी जाती है।

२ अन्यः दभ्रेभिः भूयसः प्र वृणोति— दूसरा अधिकारी अपने थोडेसे सैनिकों द्वारा बहुतसे शत्रुओंको घेरता है और प्रजाको सुराक्षित रखता है। यह इन्द्रका कार्य है। शत्रुओंको दबाना और राष्ट्रकी सुरक्षा करना यह एक महत्त्वका कार्य है। यह सैनिकीय कार्य है।

३ त्विषे ओजः मिमाते— तेज बढानेके लिये बलको निर्माण करते हैं और बढाते हैं। राष्ट्रमें जितना बल होगा, उतना उसका तेज बढ सकता है।

४ महे शुल्काय— बडा धन प्राप्त करनेके लिये, धनकी वृद्धि करनेके लिये प्रयत्न करते हैं और—

५ यत् ध्रुवं स्वं-- जो स्थायी निजधन है उसकी सुरक्षाके लिये प्रयत्न करते हैं।

राष्ट्रमें बल और तेज बढाना चाहिये, धन बढाना चाहिये, और जो स्थायी निजधन व्यक्तिके पास है वह भी सुरक्षित करना चाहिये। राज्यशासनके ये पांच तत्त्व इन्द्र वरुणके वर्णनके द्वारा बताये हैं

[७] (६६५) **हे इन्द्र और वरुणो! (तं मर्तं अंहः न नशते) उस मानवका नाश पाप नहीं कर सकता। (न दुरितानि) न दुष्ट कर्म उसके पास जाते हैं, (कुतः च न तपः न) न किसी तरह संताप उसके पास जाता है। वह इन कष्टोंसे दूर रहता है। हे (देवा) देवो! तुम (यस्य अध्वरं गच्छथः) जिसके यज्ञके पास जाते हो, (वीथः) जिसका हित तुम चाहते हो, (तं मर्तस्य परिह्वृतिः न नशते) उसके पास मानवोंका विनाश नहीं पहुंच सकता।**

इन्द्र तथा वरुण जिसका रक्षण करते हैं उसके पास पाप, दुःख, दुष्कर्म, पीडा, बाधा अथवा अन्य प्रकारके कष्ट पहुंच ही, नहीं सकते।

[८] (६६६) **हे (नरा) नेता इन्द्रवरुणो! (दैव्येन अवसा) दिव्य रक्षणके साथ (अर्वाक् आगतं) हमारे पास आओ। (हवं शृणुतं) मेरी प्रार्थना श्रवण करो। (यदि मे जुजोषथः) यदि मुझपर तुम्हारी प्रीति है तो ऐसा करो। हे मित्र और वरुणो! (युवयोः सख्यं) तुम्हारी मित्रता,**

९ अस्माकमिन्द्रावरुणा भरेभरे पुरोयोधा भवतं कृष्ट्योजसा।
यद् वां हवन्त उभये अध स्पृधि नरस्तोकस्य तनयस्य सातिषु ६६७

१० अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः।
अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ६६८

(उत वा यत् आप्यं) जो बन्धुता है और जो तुम्हारा (मार्डीकं) सुख देनेका साधन है वह हमें (नि यच्छतं) दे दो।

सुरक्षा, मित्रभाव, बन्धुभाव और सुख

१ **दैव्येन अवसा अर्वाक् आगतं**— सुरक्षाके दिव्य साधनके साथ हमारे पास आओ। अर्थात् हमारे पास आओ और उत्तम साधनोंसे हमारी सुरक्षा करो।

१ **युवयोः सख्यं आप्यं मार्डीकं नियच्छतं**- तुम्हारी मित्रता, बन्धुता और सुखदायिता हमें प्राप्त हो।

सुरक्षाके दिव्य साधनोंसे हम सब प्रजाजनोंकी सुरक्षा करो। और मित्रता, बन्धुता और सुखदायिताकी प्राप्ति सबको हो। जनता सुरक्षित हो और मित्रभाव, बन्धुभाव तथा सुखसे वह युक्त हो।

[९] (६६७) हे (कृष्ट्योजसा) शत्रुको खींचनेवाले बलसे युक्त इन्द्रवरुणो! (भरे भरे पुरोयोधा भवतं) प्रत्येक युद्धमें हमारे पक्षमें रहकर अग्र भागमें रहकर युद्ध करनेवाले बनो। (यत् उभये नरः स्पृधि वां हवन्ते) दोनों प्रकारके मनुष्य स्पर्धा करनेके समय तुम्हें बुलाते हैं (अध तोकस्य तनयस्य सातिषु) और बाल बच्चोंकी सेवाके समय भी तुम्हें बुलाते हैं।

प्रभावी सामर्थ्य

१ **कृष्टि-ओजस्**— (कृष्टि) शत्रुको अपनी ओर आकर्षित करनेवाली (ओजस्) शक्ति जिसमें है। जिसकी शक्ति इतनी है कि शत्रु स्वयं उनके पास खींचे जाते हैं और विनष्ट होते हैं। स्वयं शत्रु पर आक्रमण करके उनका नाश करना यह शक्ति एक प्रकारकी है। पर यहां जिस शक्तिका वर्णन किया है वह शक्ति ऐसी है कि जिससे शत्रु स्वयं इसके पास आकर्षित होता है और बांधा जाकर विनष्ट होता है। शत्रु इसके जालमें स्वयं फंसता है और विनष्ट होता है।

२ **भरे भरे पुरोयोधा भवत**— पूर्वोक्त प्रकारके शक्तिशाली वीर प्रत्येक युद्धमें अग्र भागमें रहकर युद्ध करनेवाले हों। अग्र भागमें रहकर युद्ध करनेवाले वीर बडे प्रबल होने चाहिये।

३ **उभये नरः स्पृधि हवन्ते**-- दोनों प्रकारके लोग, धनी-निर्धन, ज्ञानी-अज्ञानी, शूर-भीरु, स्त्री-पुरुष ये दो प्रकारके लोग सर्वत्र होते हैं। ये दोनों प्रकारके लोग स्पर्धाके समय पूर्वोक्त प्रकारके शक्तिवाले वीरोंको ही अपनी सहायार्थ बुलाते हैं।

४ **तोकस्य तनयस्य सातिषु हवन्ते**— बाल बच्चोंकी उन्नति के कार्य करनेके समय पूर्वोक्त प्रकारके बलवान् वीरोंको ही लोग बुलाते हैं।

इस मंत्रमें कहा बल प्राप्त करना वीरोंके लिये उचित है।

[१०] (६६८) इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा ये देव (अस्मे) हमें (सप्रथः माहि द्युम्नं शर्म यच्छन्तु) विशेष विस्तृत महान तेजस्वी घर, धन या सुख प्रदान करें। (ऋतावृधः अदिते ज्योतिः अवध्रं) सत्य मार्गका संवर्धन करनेवाली अदितिका तेज हमारे लिये विनाशक न बने। हम (सवितुः देवस्य श्लोकं मनामहे) सविता देवकी स्तुति करेंगे।

अस्मे माहि द्युम्नं सप्रथः शर्म यच्छन्तु— हमें बडा तेजस्वी अति विस्तृत घर प्राप्त हो। हमारा घर ऐसा सुन्दर और बडा विस्तृत हो। शर्म-संरक्षण, घर, सुख, धन।

(८३) १० मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रावरुणौ । जगती ।

१ युवां नरा पश्यमानास आप्यं प्राचा गव्यन्तः पृथुपर्शवो ययुः ।
दासा च वृत्रा हतमार्याणि च सुदासमिन्द्रावरुणावसावतम् ६६९
२ यत्रा नरः समयन्ते कृतध्वजो यस्मिन्नाजौ भवति किं चन प्रियम् ।
यत्रा भयन्ते भुवना स्वर्दृशस्तत्रा न इन्द्रावरुणाधि वोचतम् ६७०

---

[१] (६६९) हे (नरा मित्रावरुणा) नेता मित्र तथा वरुण! (युवां आप्यं पश्यमानासः) तुम्हारे बन्धुभावकी ओर देखनेवाले (गव्यन्तः पृथुपर्शवः) गौओंकी प्राप्ति की इच्छा करनेवाले और बडे परशुको धारण करनेवाले (प्राचा ययुः) पूर्वकी ओर चले। तुम (दासा च वृत्रा आर्याणि च हतं) विनाशक, घेरनेवाले शत्रु और जो क्षुद्र आर्य भी शत्रुसे मिले हैं उनको भी मारो। (सुदासं अवसा अवतं) अपने सुदासको अपनी शक्तिसे सुरक्षित रखो।

‘ पृथुपर्शवः = बडे परशु धारण करनेवाले। दर्भ तथा समिधा काटनेके लिये परशु अपने पास रखनेवाले।

‘ दासा, वृत्रा, आर्याणि ’ = (दासानि, वृत्राणि, आर्याणि) ये नपूंसक लिंगी प्रयोग क्षुद्र शत्रुका अर्थ बता रहे हैं। इनमें ‘ आर्य ’ पद भी नपूंसक लिंगमें हैं। वास्तवमें आर्य शब्द पुल्लिंग है, परंतु यहां नपूंसक लिंगमें उसका प्रयोग किया है। यह शत्रुभाव बतानेके लिये है। (दासानि) विनाश घात पात करनेवाले शत्रु, (वृत्राणि) घेरकर नाश करनेवाले शत्रु, (आर्याणि) आर्योंके समान दीखनेवाले परंतु शत्रुके साथ मिले हुए शत्रु ये सब शत्रु ही हैं। अपने आर्य भाई जिस समय शत्रुके साथ मिलते हैं, और शत्रुका बल बढाकर अपना नाश करना चाहते हैं, तब तो वे बडे शत्रु जैसे ही वध्य होते हैं। नपूंसक लिंगमें ‘ आर्य ’ पदका प्रयोग शत्रुभावका दर्शक है। जहां पुल्लिंगमें ‘ आर्य ’ शब्दका प्रयोग होगा वहां उसका अर्थ ‘ श्रेष्ठ, सज्जन, सत्पुरुष ’ ऐसा होगा। यह पुल्लिंग और नपूंसक लिंग प्रयोगका भाव पाठक ध्यानमें धारण करें।

कई अनुवादकोंने यहांके ‘ आर्याणि ’ पदका अर्थ ‘ आर्य, श्रेष्ठ ’ ऐसा अर्थ करके सुदासके साथ उनकी रक्षा करो ऐसा भाव बताया है, परंतु वह भाव अशुद्ध है। वैसा अर्थ यहां आर्य पदका होता तो वह पद पुल्लिंगमें रहता।

‘ दासानि तथा सुदासं ’ ये दो पद यहां है। पहिला नपूंसक लिंग है, अतः शत्रुभाव बताता है और दूसरा पुल्लिंगमें तथा उसके पूर्व ‘ सु ’ लगा है इसलिये उसका अर्थ अच्छा है। दास शब्द पुल्लिंग होनेपर भी उसका अर्थ दुष्ट ऐसा ही है, पर नपुंसक लिंगमें प्रयोग होनेसे वह सर्वथा निंदनीय समझना योग्य है। इसलिये इस मंत्रमें ‘ सुदास ’ की सुरक्षा और ‘ दासानि ’ का विनाश करनेकी सूचना यहां दी है।

[२] (६७०) (यत्र कृतध्वजः नरः समयन्ते) जहां मनुष्य अपने ध्वज उठाकर युद्धके लिये एकत्रित होते हैं, (यस्मिन् आजौ किंचन प्रियं भवति) जिस युद्धमें कुछ भी हित नहीं होता है। (यत्र स्वर्दृशः भुवना भयन्ते) जिस युद्धमें स्वर्गदर्शी लोग भयभीत होते हैं, हे इंद्र और वरुण! (तत्र नः अधि वोचतं) वहां हमारे अनुकूल बात करो।

१ कृतध्वजः नरः समयन्ते— अपने अपने ध्वज ऊपर उठाकर युद्धके लिये मनुष्य इकट्ठे होते हैं। यहां ध्वजको ऊपर उठाना यह एक विशेष उत्साहका चिन्ह बताया है।

युद्धका परिणाम अच्छा नहीं है

२ आजौ किंच प्रियं न भवति— युद्धमें कुच्छ भी प्रिय अथवा हितकारक नहीं होता। युद्धका परिणाम अच्छा नहीं होता। इसलिये युद्ध टालनेका यत्न करना योग्य है। युद्ध अपरिहार्य हुआ तो ही करना, यह आर्योंकी नीति यहां दीखती है। भगवान् श्रीकृष्णने पांच गांव मिलनेपर युद्ध न करनेका पांडवोंका निश्चय घोषित किया था। आधे राज्यके स्वामी पांच गांव लेकर चुप होना चाहते हैं यह आर्यनीति है। युद्ध जहां-तक हो सके वहां तक न करना यह आर्योंकी इच्छा रहती है। क्योंकि युद्धका परिणाम ठीक नहीं होता। इसलिये युद्ध टालना योग्य है। पर युद्धकी तैयारी रखनी चाहिये। पांच गांव भी नहीं मिले, सूईके अग्र भाग पर रहनेवाली मिट्टी भी विना

३ सं भूम्या अन्ता ध्वसिरा अदृक्षतेन्द्रावरुणा दिवि घोष आरुहत् ।
अस्थुर्जनानामुप मामरातयोऽर्वागवसा हवनश्रुता गतम् ६७१
४ इन्द्रावरुणा वधनाभिरप्रति भेदं वन्वन्ता प्र सुदासमावतम् ।
ब्रह्माण्येषां शृणुतं हवीमनि सत्या तृत्सूनामभवत् पुरोहितिः ६७२

युद्धके प्राप्त होनेकी संभावना न रही तो युद्ध अपरिहार्य होगा और वह करना ही पडेगा। ऐसे युद्ध आर्य करते ही थे। इसलिये आर्य युद्ध टालनेकी इच्छा करते हुए भी युद्धके लिये सदा सिद्ध रहते थे। अर्थात् नियम यह हुआ कि युद्ध टालनेका प्रयत्न करना, पर सदा युद्धके लिये पूर्ण रीतिसे सुसज्य रहना चाहिये।

३ यत्र स्वर्दृशः भुवना भयन्ते—युद्धके लिये आत्मज्ञानी मनुष्य भयभीत होते हैं। ज्ञानी मनुष्योंको युद्धका विशेष भय होता है। क्योंकि युद्धमें सभ्यताका नाश होता है। और उस सभ्यताका निर्माण करना बडे समयका कार्य होता है।

४ तत्र नः अधिवोचत— उस युद्धमें हमारे पक्षका समर्थन करो। अपना पक्ष निर्दोष है ऐसा बताओ। इतना तो अवश्य ही करना चाहिये। अपना पक्ष समर्थनीय है ऐसा बतानेकी शक्यता अपने पक्षके पास होनी चाहिये। अपना पक्ष आक्रमक नहीं है, युद्ध टालनेका यत्न पूर्ण रूपसे हमारे पक्षने किया, शत्रुपक्ष आक्रमणकारी है, उसने हमारे ऊपर हमला किया, तत्पश्चात् हमें अपने बचाव करनेके लिये युद्धमें उतरना पडा। ऐसा बताना चाहिये। इससे अपने पक्षकी निर्दोषता सिद्ध होगी।

युद्धकी नीति कैसी होनी चाहिये, इस विषयमें यह मंत्र ये उत्तम निर्देश देता है। युद्ध टालनेका यत्न करना चाहिये, अपने पक्षकी निर्दोषता सिद्ध होनी चाहिये, त्याग करके भी अपने युद्ध टालनेका यत्न किया था, इतना स्पष्ट होना चाहिये।

[३](६७१) हे इंद्र और वरुण! (भूम्याः अन्ताः ध्वसिराः सं अदृक्षत) भूमिके सारे प्रदेश उध्वस्त हुएसे दीख रहे हैं। (दिवि घोषः आरुहत्) आकाशमें सैनिकोंके आक्रमणका कोलाहल फैल गया है। (जनानां अरातयः मां उप अस्थुः) लोगोंके शत्रु मेरे सन्मुख युद्ध करनेके लिये खडे हुए हैं। हे (हवन श्रुता) आह्वानको सुननेवाले वीरो! (अवसा अर्वाक् आगतं) संरक्षणकी शक्तिके साथ हमारे पास आओ।

युद्धका भयानक परिणाम

१ भूम्याः अन्ताः ध्वसिराः सं अदृक्षत— भूमीके ऊपरके प्रदेश उध्वस्त हो जाते हैं। नगर, उपनगर, खेत, उद्यान विनष्ट होते हैं। महल, मंदिर और सभ्यताके केन्द्र विनष्ट हो जाते हैं। यह युद्धका भयानक परिणाम है।

२ दिवि घोषः आरुहत्— दोनों ओरके सैनिकोंका शब्द आकाशमें फैलता है। इसी तरह लोगोंका आर्तनाद भी आकाशमें भर जाता है। असहाय्य जनताका दुःख भरा शब्द आकाशमें भर जाता है। सर्वत्र यही आर्तनाद सुनाई देता है।

३ जनानां अरातयः मां उपतस्थुः-- जनताके ये शत्रु मेरे सामने युद्ध करनेकी ईर्ष्यासे खडे हुए हैं। इनके आक्रमण होनेके कारण अब हम युद्धको टाल नहीं सकते। युद्ध टालनेके लिये हमने बडा यत्न किया। पर ये मानवताके शत्रु युद्ध करनेके लिये ही यहां मेरे सन्मुख तैयार होकर आगये हैं और हमला कर रहे हैं। ऐसी अवस्थामें युद्ध अनिवार्य हुआ है। हमारी इच्छा न होते हुए भी अब हमें युद्ध करना ही पडेगा।

४ अवसा अर्वाक् आगतं— संरक्षक साधनोंके साथ अब शत्रुके सामने आजाओ। अपने पास संरक्षण करनेके उत्तम साधन हैं, हमारे शस्त्रास्त्र उत्तम हैं। इनको लेकर अब हमें युद्ध ही करना है। अतः हे वीरो! अब आगे बढो। शत्रुपर धावा बोलो।

[४](६७२) हे इंद्र और वरुण! (वधनाभिः अप्रति भेदं वन्वन्ता) तुमने अपने वध करनेके साधनोंसे न बढे हुए आपसके भेदका— आपसकी फूटका— नाश किया। भेद रूप शत्रुका नाश किया। और (सुदासं प्र आवतं) सुदासका संरक्षण किया। और (एषां हवीमनि ब्रह्माणि शृणुतं) इनके संग्राममें तुमने स्तोत्र सुने। तथा इस कारण (तृत्सूनां पुरोहितिः सत्या अभवत्) तृत्सु लोगोंका पौरोहित्य सफल हुआ।

५ इन्द्रावरुणावभ्या तपन्ति माघान्यर्यो वनुषामरातयः ।
युवं हि वस्व उभयस्य राजथोऽध स्मा नोऽवतं पार्ये दिवि ६७३
६ युवां हवन्त उभयास आजिष्विन्द्रं च वस्वो वरुणं च सातये ।
यत्र राजभिर्दशभिर्निबाधितं प्र सुदासमावतं तृत्सुभिः सह ६७४

आपसकी फूट बढानेवालोंका वध

१ अप्रति भेदं वधनाभिः वन्वन्ता— अप्राप्त भेदका वध करनेके साधनोंसे नाश किया। 'भेद' यह शत्रु है। आपसकी फूटको भेद कहते हैं। यह बडा भारी राष्ट्रीय शत्रु है। इसको (अ-प्रति) अप्राप्त अवस्थामें ही-न बहुत बढनेकी अवस्थामें ही नाश करना चाहिये। आपसकी फूट बहुत बढ गयी तो वह सबका नाश करेगी। यह आपसकी फूट (वधनाभिः) वध करनेसें नाश होती है। जो फूट बढानेवाले हैं उनका वध करना चाहिये। आपसकी फूट बढाकर अपना लाभ करनेवालोंका वध करना यही एक इसका उपाय है। पर समाजका संरक्षण करनेके लिये आपसकी फूट बढानेवालोंका वध करना चाहिये।

२ सुदासं प्र आवतं— सज्जनोंका संरक्षण करो।

३ हवीमनि ब्रह्माणि श्रृणुतं-- संग्राममें अथवा यज्ञमें अच्छे वचनोंका श्रवण करो। संग्राममें भी बुरे शब्द न सुनो।

४ तृत्सूनां पुरोहितिः सत्या अभवत्-- लोगोंका पौरोहित्य सफल करके दिखाना चाहिये। पुरोहितका कार्य जिसका लिया उसका यश बढाना चाहिये। 'तृत्सु' उनका नाम है कि जो अपने अभ्युदयकी तृषासे तृषित हुए होते हैं। अपने अभ्युदयके लिये प्रयत्नशील लोगोंका नेतृत्व स्वीकार किया तो अनेक उपायोंसे उनकी उन्नति सिद्ध करके दिखानी चाहिये।

[५] (६७३) हे इंद्र और वरुण! (अर्यः अघानि मा अभि आ तपन्ति) शत्रुके पाप- शस्त्र- मुझे बहुत ताप दे रहे हैं। और (वनुषां अरातयः) हिंसकोंके मध्यमें जो शत्रु हैं वे भी मुझे कष्ट दे रहे हैं। (यूयं हि उभयस्य वस्वः राजथः) तुम दोनों प्रकारके- ऐहिक और पारलौकिक धनके स्वामी हो। इसलिये (अध पार्यें दिवि नः अवतं स्म) स्पर्धाके दिनोंमें हमारी सुरक्षा करो।

१ अर्यः अघानि मा अभि आ तपान्ति- शत्रुके पाप बुरे कार्य, घातक योजनाएं मुझे ताप दे रहे हैं। चारों ओरसे शत्रुने बहुत बुरी परिस्थिति निर्माण की है। इससे मुझे बडे कष्ट हो रहे हैं। इनको दूर करना चाहिये।

२ वनुषां अरातयः मा अभि आ तपन्ति— घातपात करनेवालोंके बीचमें जो हमारे शत्रु हैं वे चारों ओरसे हमें कष्ट दे रहे हैं, उनका नाश करना चाहिये।

३ उभयस्य वस्वः यूयं राजथः— ऐहिक तथा पारमार्थिक धनके तुम अधिपति हो। ये दोनों प्रकारके धन मनुष्यको प्राप्त करने चाहिये।

४ पार्यें दिवि नः अवतं— जिससे पार होना चाहिये उस संकटके समय हमें सुरक्षित रखो। संकटका समय हमसे दूर हो।

[६] (६७४) (उभयासः वस्वः सातये) दोनों लोग धनको जीतनेके लिये (युवां इंद्रं वरुणं च) तुम दोनों इंद्र और वरुणको (आजिषु हवन्ते) युद्धोंमें बुलाते हैं। (यत्र तृत्सुभिः सह) जहां तृत्सुओंके साथ रहनेवाले और (दशभिः राजभिः निबाधितं) दस राजाओंके द्वारा कष्ट पहुंचाये (सुदासं प्र आवतं) सुदास राजाकी तुमने सुरक्षा की।

१ उभयस्य वस्वः सातये— ऐहिक और पारलौकिक धनकी प्राप्ति करनेकी इच्छा लोग करते हैं। वे-

२ आजिषु हवन्ते--युद्धोंके समय तुम वीरोंको अपने सहायार्थ बुलाते हैं।

३ दशभिः राजभिः निबाधितं तृत्सुभिः सह सुदासं प्रावतं- दश राजाओंने जिसपर आक्रमण किया ऐसे सुदास राजाकी, जिनके साथ सहायार्थं तृत्सु भी आये थे, तुमने सुरक्षा की।

सुदास राजा था, जिनके पुरोहित वासिष्ठ थे और उनके सहायक तृत्सु थे। सुदास राजा उनके सहायक तृत्सु और इनके

७ दश राजानः समिता अयज्यवः सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधुः ।
सत्या नृणामन्नसदामुपस्तुतिर्देवा एषामभवन् देवहूतिषु ६७५
८ दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वतः सुदास इन्द्रावरुणावशिक्षतम् ।
श्वित्यञ्चो यत्र नमसा कपर्दिनो धिया धीवन्तो असपन्त तृत्सवः ६७६
९ वृत्राण्यन्यः समिथेषु जिघ्नते व्रतान्यन्यो अभि रक्षते सदा ।
हवामहे वां वृषणा सुवृक्तिभिरस्मे इन्द्रावरुणा शर्म यच्छतम् ६७७

रोहित वसिष्ठ थे। इनपर दस राजाओंका आक्रमण हुआ। समयमें इन्द्र और वरुणोंने सुदासकी सहायता की और दसों क्रमणकारियोंका पराभव किया। इसी तरह करना चाहिये इसका तात्पर्य है।

[७] (६७५) हे इंद्र और वरुणो! (अयज्यवः श राजानः समिताः) यज्ञ न करनेवाले दस राजे ठे हुए तथापि तुम्हारी सहायता होनेसे वे (सुदासं न युयुधुः) सुदास राजाके साथ युद्ध न र सके। (अन्नसदां नृणां उपस्तुतिः सत्या) न्नदान करनेके लिये बैठे लोगोंकी प्रार्थना सफल ई और (एषां देवहूतिषु देवाः अभवन्) इनके ज्ञोंमें सब देव उपस्थित थे।

दस राजाओंका संघ

१ **अयज्यवः दश राजानः समिताः**—अयाजक दस राजाओंका एक संघ बना था। अयाजक, यज्ञ न करनेवाले, अनार्य शत्रु राजाओंका संघ बना था। पर ये दस मिलकर भी-

यज्ञ करनेवालोंका बल बढता है

१ **सुदासं न युयुधुः**— सुदासके साथ युद्ध नहीं र सके। क्योंकि सुदास आर्य राजा था और यज्ञ करनेवाला ा। जिसका पुरोहित वसिष्ठ था। यज्ञ करनेसे शक्ति बढती है और यज्ञ न करनेसे शक्ति घटती है यह यहां दर्शाया है। यज्ञ न करनेवाले दस अनार्य राजाओंका संघ परास्त होता है और ज्ञ करनेवाला एक राजा विजयी होता है। यह यज्ञका बल है।

३ **अन्नसदां नृणां उपस्तुतिः सत्या**— अन्नदान अर्थात् यज्ञ करनेवालोंकी आकांक्षाएँ-प्रार्थनाएं-सफल होती हैं। ज्ञ न करनेवाले इस जगत्में परास्त होते हैं। यज्ञसे जो र्थना होती है वह अपूर्व बल देनेवाली होती है।

४ **एषां देवहूतिषु देवाः अभवन्**— इनके यज्ञोंमें स्वयं देव उपस्थित रहते हैं। इसलिये यज्ञ करनेवालोंका बल बढता है।

[८] (६७६) हे इंद्र और वरुण! (दाश-राज्ञे विश्वतः परियत्ताय) दस राजाओंके संघ द्वारा चारों ओरसे घेरे गये (सुदासे शिक्षतं) सुदास राजाको तुमने बल दिया। क्योंकि (यत्र श्वित्यंचः कपर्दिनः) जहां निर्मल जटाधारी (धीवन्त तृत्सवः) बुद्धिमान तृत्सु लोग (नमसा धिया असपन्त) नमस्कार पूर्वक किये शुभ कर्मसे परिचर्या करते थे।

(श्विति-अञ्चः) अन्तर्बाह्य पवित्र रहनेवाले जटाधारी बुद्धिमान तृत्सु लोग नमस्कारपूर्वक किये शुभ कर्मोंको जहां करते रहते हैं, वहांका बल बढता है। सुदासके साथ ऐसे लोग थे इसालिये सुदासका बल बढ गया और वह विजयी हुआ। तथा दस राजा यज्ञ न करनेवाले होनेसे उनका बल घट गया और वे परास्त हुए। वसिष्ठके पौरोहित्यमें जटाधारी पवित्र तृत्सु याजक थे। ये सुदासका बल बढाते थे। दस राजाओंके संघके पास ऐसी यज्ञकी शक्ति नहीं थी। इस कारण वे पराभूत हुए। पवित्र रहकर ज्ञानपूर्वक किये यज्ञसे शक्ति बढती है, यह इसका आशय है।

[९] (६७७) हे मित्र और वरुण! तुममेंसे (अन्यः समिथेषु वृत्राणि जिघ्नते) एक इंद्र युद्धके समय शत्रुओंका नाश करता है। (अन्यः सदा व्रतानि अभि रक्षते) दूसरा वरुण सदा सत्कर्मोंकी सुरक्षा करता है। हे (वृषणा) बलवान् वीरो! (वां सुवृक्तिभिः हवामहे) तुम्हारी स्तुति हम अच्छे स्तोत्रों-

१० अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः ।
अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ६७८

(८४) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः इन्द्रावरुणौ । त्रिष्टुप् ।

१ आ वां राजानावध्वरे ववृत्यां हव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः ।
प्र वां घृताची बाह्वोर्दधाना परि त्मना विषुरूपा जिगाति ६७९
२ युवो राष्ट्रं बृहदिन्वति द्यौर्यौ सेतृभिररज्जुभिः सिनीथः ।
परि नो हेळो वरुणस्य वृज्या उरुं न इन्द्रः कृणवदु लोकम् ६८०

से करते हैं। इसलिये (अस्मे शर्म यच्छतं) हमें सुखका प्रदान करो।

बाह्य शत्रुका नाश करो

१ **अन्यः समिथेषु वृत्राणि जिघ्नते**— एक वीर युद्ध करता है और घेरनेवाले बाह्य शत्रुओंका नाश करता है। राष्ट्रके बाह्य शत्रुका नाश करना यह एक महत्त्वका कार्य है।

अन्दरके व्यवहारोंकी सुरक्षा

२ **अन्यः व्रतानि सदा अभि रक्षते**— दूसरा वीर लोगोंके सत्कर्मोंको सुरक्षित रखता है। यह अन्दरकी सुरक्षितता है। राष्ट्रके अन्दरके सब लोगोंके परिशुद्ध व्यवहारोंकी सुरक्षा करनी चाहिये।

राष्ट्रकी सुस्थितिके लिये बाह्य शत्रुओंका नाश करना चाहिये और अन्दरके सब लोगोंके कार्य व्यवहार सुरक्षित रीतिसे चलते रहने चाहिये। यहांका 'वृत्र' शब्द घेरनेवाले बाह्य शत्रुका दर्शक है।

३ **अस्मे शर्म यच्छतं**— हमें सुख चाहिये। शर्मका अर्थ सुख, घर, संरक्षण, धन है। जब बाह्य शत्रुका निर्दालन होगा और अन्दरके सब व्यवहार सुरक्षित रीतिसे होते रहेंगे, तभी सुख मिल सकता है।

[१०] (६७८) देखो ६६८ वाँ मंत्र। इसकी व्याख्या वहां हो चुकी है।

[१] (६७९) **हे (राजानौ इन्द्रावरुणौ) राजा इंद्र और वरुण! (अध्वरे वां हव्येभिः नमोभिः आ ववृत्यां) हिंसारहित इस यज्ञमें तुम्हें हवनों और नमनोंद्वारा इधर बुलाता हूं। (बाह्वोः दधाना विषुरूपा घृताची) विविध रूपोंवाली घीकी आहुती डालनेवाली जुहू (त्मना वां परि प्र जिगाति) स्वयं ही तुम्हारे पास जाती है। तुम्हारे लिये आहुती देती है।**

इन्द्रा वरुणौ राजानौ— इन्द्र तथा वरुण ये राजा हैं। स्वामी हैं। अधिपति या अधिकारी हैं। इस दृष्टिसे इनके मंत्रोंका अर्थ करना चाहिये।

[२] (६८०) **(युवोः बृहत् राष्ट्रं द्यौः इन्वति) तुम दोनोंका बडा विशाल द्युलोक रूपी राष्ट्र सबको प्रसन्नता देता है। (यौ सेतृभिः अरज्जुभिः सिनीथः) जो तुम दोनों बंधन करनेके रज्जुरहित रोगादि साधनोंसे पापीयोंको बांध देते हैं। (वरुणस्य हेळः नः परि वृज्याः) वरुणका क्रोध हमें छोडकर दूसरे स्थानपर जावे। (इन्द्रः नः उरुं लोकं कृणवत्) इन्द्र हमारे लिये विस्तृत कार्यक्षेत्र निर्माण करके देवे।**

१ **युवोः बृहत् राष्ट्रं द्यौः इन्वति**— तुम दोनोंका बडा विशाल द्युलोक रूपी राष्ट्र है वह सब लोगोंको प्रसन्न करता है। इस तरह पृथ्वीपरका राजा अपनी प्रजाको प्रसन्न करे, प्रजाकी प्रगति करे, प्रजाका अभ्युदय करे।

२ **यौ अरज्जुभिः सेतृभिः सिनीथः**— तुम दोनों रज्जुरहित बंधनोंसे पापीयोंको बांधते हो। रोगादि क्लेश होते हैं वे इनके बंधन हैं। आधि-व्याधि ये इनके बंधन हैं। राजा भी अपने राष्ट्रमें जो पापी, दुष्कर्मी, डाकू, चोर आदि हों, उनको

३ कृतं नो यज्ञं विदथेषु चारुं कृतं ब्रह्माणि सूरिषु प्रशस्ता ।
उपो रयिर्देवजूतो न एतु प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेतम् ६८१
४ अस्मे इन्द्रावरुणा विश्ववारं रयिं धत्तं वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।
प्र य आदित्यो अनृता मिनात्यमिता शूरो दयते वसूनि ६८२
५ इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत् तोके तनये तूतुजाना ।
सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६८३

देवे, बंधनमें डाले । प्रतिबंधनोंमें रखे जिससे वे दुष्टता न सकें ।

२ **वरुणस्य हेळः नः परिवृज्याः**— वरुणका क्रोध न आवे । हमसे ऐसा आचरण न हो कि जिससे वरुणका हमपर आ जाय । वरुण निःपक्ष शासक है । वह किसीका पात नहीं करता । वैसा हमारा राजा निःपक्ष शासन करे दण्डनीयोंको ही दण्ड देवे ।

४ **इन्द्रः नः उरुं लोकं कृणवत्**— इन्द्र हमारे लिये कार्यक्षेत्र निर्माण करके देवे । प्रजाजनोंके लिये विस्तृत क्षेत्र मिले ऐसा राज्यप्रबंध हो । प्रजा अनेक विस्तृत क्षेत्रोंमें कर्तव्य करे और अधिकाधिक सुखको प्राप्त करती । राज्य शासनका यह कर्तव्य है कि जिससे प्रजाको विस्तृत क्षेत्र मिलता रहे ।

[१] (६८१) **(नः विदथेषु यज्ञं चारुं कृतं) रे युद्धोंमें अथवा सभागृहोंमें यज्ञको सुन्दर ओ। तथा (सूरिषु ब्रह्माणि प्रशस्ता कृतं) नोंके स्तोत्रोंको प्रशंसित बनाओ। (देवजूतः नः उपो एतु) देवों द्वारा प्रेरित धन हमें प्राप्त ! (स्पार्हाभिः ऊतिभिः नः प्र तिरेतं) प्रशंसा संरक्षणोंसे हमें संवर्धित करो ।**

१ **विदथेषु नः यज्ञं चारुं कृतं**— युद्धों, सभाओं यज्ञस्थानोंमें हम जिस यज्ञको करना चाहते हैं, वह यज्ञ से उत्तम तथा निर्दोष बने । मनुष्य जीवन एक यज्ञ ही फिर वह मनुष्य किसी स्थान पर रहे । जिस स्थानपर मनुष्य वहां उसने जो भी जीवनका यज्ञ बनाना है वह सर्वांग- हो, उसमें त्रुटि न हो । मनुष्य सत्कर्म करे और वह करे ।

२ **सूरिषु ब्रह्माणि प्रशस्ता कृतं**— विद्वान् जो स्तोत्र करें वे प्रशंसा योग्य स्तोत्र हों । विद्वानोंके ज्ञानवचन सदा प्रशंसाके योग्य हों ।

*

३ **देवजूतः रयिः नः उपो एतु**— जो धन देव हमें देना चाहते हैं वह हमें सत्वर प्राप्त हो । देवोंके सेवन करने योग्य धन हमें प्राप्त हो । असुरोंके सेवन योग्य धन हमें न मिले ।

४ **स्पार्हाभिः ऊतिभिः नः प्र तिरेतं**— प्रशंसित संरक्षणोंसे हमारा अभ्युदय होता और बढता रहे ।

[४] (६८२) **हे इन्द्र और वरुण! (अस्मे) हमारे लिये (विश्ववारं वसुमन्तं पुरुक्षुं रयिं धत्तं) सबके सेवनके योग्य ऐश्वर्य युक्त और बहुत अन्न-वाला धन दो। (यः आदित्यः अनृता प्र मिनाति) जो आदित्य असत्य आचरण करनेवालोंका नाश करता है, (शूरः अमिता वसूनि दयते) दूसरा शूर अपरिमित धनोंको देता है ।**

धन कैसा हो ?

१ (विश्ववारं) सब लोग जिसको स्वीकार करते हैं, सब जिसकी प्राप्तीकी इच्छा करते हैं, (वसुमन्तं) मानवोंका निवास करनेमें सहायक होनेवाला, (पुरु-क्षुं) जिसके साथ अनेक प्रकारका अन्न रहता है, तथा जो अनेकों द्वारा प्रशंसित होता है ऐसा (रयिं धत्तं) धन हमें चाहिये ।

२ **यः अनृता प्र मिनाति**— जो असत्य कार्य करने-वालोंको रोकता है, उनको बुरे कार्य करने नहीं देता,

३ **शूरः अमिता वसूनि दयते**— शूर वीर अपरिमित धन देता है । जो ऐसा उदार होता है वह शूर ही प्रशंसाके योग्य है ।

[५] (६८३) **(मे इयं गीः) मेरी यह स्तुति (इंद्रं वरुणं अष्ट) इंद्र और वरुणको प्राप्त हो । मेरी**

(८५) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः इन्द्रावरुणौ । त्रिष्टुप् ।

१ पुनीषे वामरक्षसं मनीषां सोममिन्द्राय वरुणाय जुह्वत् ।
घृतप्रतीकामुषसं न देवीं ता नो यामन्नुरुष्यतामभीके ६८४
२ स्पर्धन्ते वा उ देवहूये अत्र येषु ध्वजेषु दिद्यवः पतन्ति ।
युवं ताँ इन्द्रावरुणावमित्रान् हतं पराचः शर्वा विषूचः ६८५
३ आपश्चिद्धि स्वयशसः सदःसु देवीरिन्द्रं वरुणं देवता धुः ।
कृष्टीरन्यो धारयति प्रविक्ता वृत्राण्यन्यो अप्रतीनि हन्ति ६८६

स्तुति (तूतुजाना तोके तनये प्र आवत्) देवोंके पास जाकर हमारे बाल-बच्चोंकी सुरक्षा करे। हम (सुरत्नासः देववीतिं गमेम) उत्तम रत्नोंसे सुशोभित होकर देवोंके यज्ञमें जायेंगे (यूयं सदा नः स्वस्तिभि पात) तुम सदा हमारा कल्याणके साधनोंसे संरक्षण करो।

देवताओंकी स्तुति पुत्र-पौत्रोंका संरक्षण करती है। देवता वर्णन सुननेसे वैसा आचरण करनेकी स्फूर्ति मनमें उत्पन्न होती है, पश्चात् वैसा देवतावत् आचरण करनेसे मनुष्योंकी सुरक्षा होती है।

सुरत्नासः देववीतिं गमेम— उत्तम रत्न धारण करके, उत्तम वस्त्रों और अलंकारोंको धारण करके हम जहां यज्ञ होता हो वहां जांयगे। यज्ञस्थानमें जानेकी इच्छा धारण करनी चाहिये।

[१] (६८४) (वां अरक्षसं मनीषां पुनीषे) आप दोनोंकी राक्षस-भाव-रहित प्रशंसाको मैं पवित्र करता हूं। (इन्द्राय वरुणाय सोमं जुह्वत्) इन्द्र और वरुणके उद्देश्यसे सोमका हवन करता हूं। (देवीं उषसं न घृतप्रतीकां) उषा देवी की तरह तेजस्वी अवयवोंवाली हमारी यह स्तुति है। (ता) वे इन्द्र और वरुण (अभीके यामन् नः उरुष्यतां) युद्ध उपस्थित होनेपर शत्रुपर आक्रमण करनेके समय हमारा संरक्षण करें।

१ अरक्षसं मनीषां पुनीषे— इच्छा आसुरभावसे रहित हो और वह शुद्ध हो।

२ उषसं देवीं न घृतप्रतीकां— उषा देवीके समान बुद्धि तेजस्विनी हो।

३ अभीके यामन् नः उरुष्यतां— युद्धमें शत्रुपर आक्रमण करनेके समय हमारे सब वीरोंका उत्तम संरक्षण हो।

[२] (६८५) (अत्र देवहूये स्पर्धन्ते वै) इस संग्राममें शत्रुके और हमारे वीर परस्पर स्पर्धा करते हैं। (येषु ध्वजेषु दिद्यवः पतन्ति) जिन युद्धोंमें ध्वजोंपर शस्त्र गिरते हैं। हे इन्द्र और वरुण! (युवं तान् अमित्रान् हतं) तुम दोनों उन शत्रुओंको मारो और (शर्वा (विषूचः पराचः) हिंसक शस्त्रसे चारों ओर और विरुद्ध दिशासे शत्रुओंको भगा दो।

१ देवहूये स्पर्धन्ते— (देवाः विजिगीषवः वीराः) विजयकी इच्छा करनेवाले वीर जहां स्पर्धा करते हैं वह संग्राम है। मनुष्य इस तरहके संग्राममें खडा है।

२ येषु दिद्यवः ध्वजेषु पतन्ति— इन संग्रामोंमें तीक्ष्ण शस्त्र ध्वजोंपर गिरते हैं। ध्वजोंको देखकर शत्रुके शस्त्र एक दूसरे पर फेंकते हैं।

३ युवं तान् अमित्रान् हतं— तुम वीरोंको उचित है कि तुम उनका वध करो। वीर शत्रुके वीरोंका वध करे।

४ शर्वा विषूचः पराचः— घातक अस्त्रशस्त्रसे सब शत्रु चारों ओर भ्रांत होकर भागें, इतस्ततः दौडें और पराङ्मुख होकर भागें ऐसा करो। शत्रुको ऐसा तितर बितर करना चाहिये।

[३] (६८६) (आपः चित् स्व यशसः देवीः) जल मिश्रित अपने निज यशवाले दिव्य सोमरस (सदः सु इन्द्रं वरुणं देवता धुः) यज्ञके स्थानोंमें इन्द्र वरुण आदि देवताओंको धारण करते हैं। उनमेंसे (अन्यः प्रविक्ताः कृष्टीः धारयति) एक वरुण

४ स सुक्रतुर्ऋतचिदस्तु होता य आदित्य शवसा वां नमस्वान् ।
आववर्तदवसे वां हविष्मानसदित् स सुविताय प्रयस्वान् ६८७
५ इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत् तोके तनये तूतुजाना ।
सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६८८

(८६) ८ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । वरुणः । त्रिष्टुप् ।

१ धीरा त्वस्य महिना जनूंषि वि यस्तस्तम्भ रोदसी चिदुर्वी ।
प्र नाकमृष्वं नुनुदे बृहन्तं द्विता नक्षत्रं पप्रथच्च भूम ६८९
२ उत स्वया तन्वा३ सं वदे तत् कदा न्व१न्तर्वरुणे भुवानि ।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेत कदा मृळीकं सुमना अभि ख्यम् ६९०

पृथक् पृथक् प्रजाओंका धारण करता है, (अन्य अप्रतीनि वृत्राणि हन्ति) दूसरा इन्द्र अप्रतिम शत्रुओंका भी विनाश करता है।

१ अन्यः प्रविक्ताः कृष्टीः धारयति— एक अधिकारी प्रत्येक प्रजाजनका पृथक् पृथक् धारण पोषण करता है। यह देव है। प्रत्येक प्रजाजनका पृथक् पृथक् निरीक्षण करना और उनका पालन करना यह इसका कर्तव्य है। राष्ट्रमें ऐसा एक अधिकारी हो कि जो व्यक्तिशः प्रत्येकका हित देखता रहे।

१ अन्यः अप्रतीनि वृत्राणि हन्ति-- दूसरा इन्द्र प्रबल घेरनेवाले बाह्य शत्रुओंका नाश करता है। ऐसा एक अधिकारी सेनापति जैसा हो कि जो राष्ट्रको बाहरके शत्रुओंसे बचावे, बाहरसे आक्रमण करनेवाले शत्रुओंसे राष्ट्रको बचावे, इतना ही नहीं परंतु अपने राष्ट्रको घेर कर अपने ऊपर आक्रमण करनेवाले शत्रुओंका संपूर्णतया वध करे। शत्रुका निःशेष विनाश करे।

[४] (६८७) (सुक्रतुः होता ऋतचित् अस्तु) उत्तम कर्म करनेवाला होता यज्ञके विधिका ज्ञाता हो। हे आदित्यो! (यः शवसा नमस्वान् वां) जो बलसे युक्त और अन्नसे युक्त ऐसे तुम दोनोंकी पूजा करता है, तथा (यः हविष्मान् अवसे वां आवर्तयत्) जो अन्नका यज्ञ करनेवाला अपनी सुरक्षाके लिये आपको अपने पास लाता है, (सः प्रयस्वान् सुविताय असत् इत्) अन्नवान् होकर उत्तम फल प्राप्त करनेके लिये योग्य होता है।

जो यज्ञ करनेवाला है उसको यज्ञकी विधि अच्छी तरहसे विदित होनी चाहिये। यज्ञ करनेवालेके पास पर्याप्त अन्न हो, अन्नका दान करनेकी इच्छा हो, उस यज्ञ करनेवालेका संरक्षण हो, यज्ञस्थान सुराक्षित हो। इस तरह किया यज्ञ सफल होगा।

[५] (६८८) यह मंत्र ६८३ इस स्थानपर अनुवाद सहित है।

वरुण देवता

[१] (६८९) (अस्य जनूंषि महिना धीरा) इस वरुणके जीवन उनकी निज महिमासे धैर्यवाले कर्मोंसे युक्त हैं। (यः उर्वी रोदसी चित् वि तस्तंभ) जो वरुण विस्तीर्ण द्युलोक और भूलोकको स्थिर करता है। (बृहन्तं नाकं) बडे विशाल सूर्यको और (ऋष्वं नक्षत्रं द्विता प्र नुनुदे) तेजस्वी नक्षत्रोंको दो समयोंमें जो प्रेरित करता है। दिनमें सूर्य और रात्रीके समय नक्षत्रोंको प्रेरित करता है तथा (भूम पप्रथत् च) भूमिको विस्तृत किया है।

वरुणका कर्तृत्व बडा प्रभावशाली है, उसके कर्म बडे प्रभावशाली हैं, वह द्युलोक और भूलोकको यथास्थान सुस्थिर रखता है। सूर्यको प्रकाशित करके दिन बनाता है और अन्धकारके समय नक्षत्रोंको प्रकाशित करता है। उसीने भूमिको ऐसी विशाल बनाया है। यह वरुण ईश्वर ही है जो यह सब करता है।

भक्तके विचार

[२] (६९०) (उत स्वया तन्वा सं वदे) क्या मैं अपने इस शरीरसे वरुणके साथ बोलूं? और

३ पृच्छे तदेनो वरुण दिदृक्षूपो एमि चिकितुषो विपृच्छम् ।
समानमिन्मे कवयश्चिदाहुरयं ह तुभ्यं वरुणो हृणीते ६९१
४ किमाग आस वरुण ज्येष्ठं यत् स्तोता जिघांससि सखायम् ।
प्र तन्मे वोचो दूळभ स्वधावो ऽव त्वानेना नमसा तुर इयाम् ६९२
५ अव द्रुग्धानि पित्र्या सृजा नो ऽव या वयं चकृमा तनूभिः ।
अव राजन् पशुतृपं न तायुं सृजा वत्सं न दाम्नो वसिष्ठम् ६९३

(कदा तत् वरुणे अन्तः भुवानि) कब मैं वरुणके अन्दर हो जाऊं ? (मे हव्यं अहृणानः जुषेत किं) मेरा क्या हवनीय द्रव्य क्रोध रहित होकर वरुण स्वीकार करेगा ? (कदा सुमनाः मृळीकं अभिख्यं) कब मैं उत्तम विचारवाला होकर सुखदायी वरुणको देख सकूं ?

" क्या मैं परमेश्वरके साथ बोल सकूंगा ? मैं कब प्रभुके अन्दर पहुंचूंगा ? मेरा अर्पण किया हुआ क्या प्रभु स्वीकार करेगा ? और मैं प्रभुका साक्षात्कार कब कर सकूंगा ? " ऐसे विचार भक्तके मनके अन्दर उठते हैं ।

वास्तवमें हरएक मनुष्यकी प्रार्थना परमेश्वर सुनता है, प्रत्येक व्यक्ति प्रभुके अन्दर ही है, भक्त जो अर्पण करता है उसका स्वीकार प्रभु करता है । भक्तका अन्तःकरण निर्मल होनेपर प्रभुका साक्षात्कार होता है ।

भक्तकी चिन्ता

[३] (६९१) हे वरुण ! (दिदृक्षु तत् एनः पृच्छे) जाननेकी इच्छा करके मैं उस अपने पापके विषयमें उससे पूछता हूं । (विपृच्छं चिकितुषः उपो एमि) मैं पूछनेकी इच्छासे विद्वानोंके पास भी गया हूं, उन (कवयः चित् मे समानं इत् आहुः) ज्ञानियोंने मुझे एक ही उत्तर दिया है कि (अयं वरुणः तुभ्यं हृणीते ह) निश्चयसे यह वरुण तुम्हारे ऊपर क्रोधित हुआ है ।

मैं अपने पापके विषयमें सच सच बात जानना चाहता हूं कि मैंने कौनसा पाप किया है जिसके कारण मुझे ये कष्ट हो रहे हैं । मैंने विद्वानोंसे भी पूछा, सभी विद्वानोंने एक स्वरसे कहा कि तुम्हारे ऊपर प्रभुका क्रोध हुआ है ।

निष्पाप बननेका निश्चय

[४] (६९२) हे वरुण ! (किं ज्येष्ठं आगः आस) क्या मेरा ऐसा कोई बडा भारी अपराध हुआ है ? (यत् सखायं स्तोतारं जिघांससि) जो तू अपने भक्त स्तोत्र पाठक मुझ जैसेको भी मारता है ? हे (दूळभ स्वधावः) न दबनेवाले तेजस्वी वरुण देव ! यदि (तत् मे प्रवोचः) वह मेरा पाप है तो मुझे कह दो जिससे मैं (अनेनाः तुरः नमसा त्वा अव इयां) निष्पाप बनकर सत्वर नम्रतापूर्वक तुम्हारे पास प्राप्त होऊं ।

भक्त कहता है कि- ' यदि मेरा ऐसा बडा पाप है जिससे कि मुझे इतने कष्ट हो रहे हैं, तो मुझे बताओ । जिससे मैं निष्पाप बननेका यत्न करूं और तुम्हारे पास आजाऊं ।

पापसे छुटकारा

[५] (६९३) हे वरुण ! (पित्र्या नः द्रुग्धानि अवसृज) हमारे पिता आदिसे हुए द्रोहको दूर करो । (वयं तनूभिः या चकृम अवसृज) हमने अपने शरीरोंसे किये जो पाप होंगे उनको भी दूर करो । हे राजन् वरुण ! (पशुतृपं तायुं न अवसृज) पशुकी चोरी करके उस पशुको तृप्त करनेवाले चोरको जैसे दूर करते हैं वैसे मेरे पाप दूर करो । (दाम्नः वत्सं न वसिष्ठं अवसृज) रस्सीसे बच्छेको छोडनेके समान इस वसिष्ठको पापसे छुडाओ ।

१ आनुवंशिक द्रोह-पाप-(नः पित्र्या द्रुग्धानि) पिता पितामहसे जो पाप हुए हों, उनका संस्कार हमारे शरीर पर होता है, बीजरूपसे वे सब दोष हमारे अन्दर आते हैं उनसे छुटकारा प्राप्त करना चाहिये ।

६ न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः ।
आस्ति ज्यायान् कनीयस उपारे स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता ६९४
७ अरं दासो न मीळ्हुषे कराण्यहं देवाय भूर्णयेऽनागाः ।
अचेतयदचितो देवो अर्यो गृत्सं राये कवितरो जुनाति ६९५

---

२ अपने पाप- (वयं तनूभिः चकृम) -जो पाप हम अपने निज शरीरसे करते हैं, उनसे छुटकारा प्राप्त करना चाहिये ।

३ पापीका पुण्य— (पशुतृपं तायुं) — पशुओंकी चोरी करनेवाला चोर चुराकर लाये पशुओंको घास और पानी देता ही है । यहां चोरीका पाप करके उनको घास-पानी देकर तृप्त करनेका पुण्य है। ऐसे लोगोंको तथा ऐसे भावोंको भी दूर करना चाहिये ।

४ दाम्नः वत्सं न वसिष्ठं अवसृज--रस्सीसे बछडेको छोड देते हैं वैसा मुझ वासिष्ठको पापकी पूर्वोक्त रस्सीसे छोड दो । 'वसिष्ठ ' का अर्थ यहां सुखसे वसनेकी इच्छा करनेवाला । पूर्वोक्त पापोंसे छुटकारा प्राप्त करनेसे ही यहां उत्तम निवास हो सकता है ।

पापके सात कारण

[६] (६९४) हे वरुण ! (सः स्वः दक्षः न) वह अपना निज बल पापके लिये कारण नहीं होता । (ध्रुतिः) प्रगतिमें रुकावट होनेसे पापमें प्रवृत्ति होती है, (सुरा) मद्य, शराब, (मन्युः) क्रोध, (विभीदकः) द्यूत, जूआ, (अचित्तिः) अज्ञान, चित्त लगाकर कार्य न करनेकी वृत्ति ये पापमें प्रवृत्त करनेवाली प्रवृत्तियां हैं । (कनीयसः ज्यायान् उपारे अस्ति) हीन पुरुषको श्रेष्ठ पुरुष पास रहकर पापमें प्रवृत्त करता है तथा (स्वप्नः चन अनृतस्य प्रयोता इत्) निद्रा या सुस्ती भी अनृत या पापमें प्रवृत्त करनेवाली है ।

१ ध्रुतिः (ध्रु गातिस्थैर्ययोः) —अपनी प्रगतिमें रुकावट हुई तो मनुष्य पाप करने लगता है । गतिमें स्थिरता होना प्रगतिमें प्रतिबंध होना पाप प्रवृत्ति उत्पन्न करता है ।

२ सुरा— मद्य, मदिरा, आसव, सुरा ये जो मादक पदार्थ हैं, इनके सेवनसे मनुष्य पाप करनेमें प्रवृत्त होता है । मद्यपान छोडना चाहिये ।

३ मन्युः— क्रोध मनुष्यको पाप कर्म कराता है ।

४ विभीदकः—जुआ, द्यूतक्रीडा पापकारी है ।

५ अचित्तिः— अज्ञानसे पाप होता है, चित्त लगाकर काम न करनेसे पाप होता है ।

६ कनीयसः ज्यायान् उपारे अस्ति— छोटेको बडा मनुष्य समीप रहकर पापमें प्रवृत्त करता है । धनी निर्धनको, बलवान् निर्बलको, ज्ञानी अज्ञानीको पापमें प्रवृत्त करता है । निर्बलको बलिष्ठके भयसे वह पाप करना पडता है ।

७ स्वप्नः अनृतस्य प्रयोता —निद्रा, सुस्ती, आलस्य ये पापके प्रवर्तक दुर्गुण हैं ।

इनसे पाप होता है । मनुष्य इन पाप प्रवृत्तियोंसे अपने आपको बचावे ।

[७] (६९५) (मीळ्हुषे भूर्णये) इच्छाओंको पूर्ण करनेवाले और भरण पोषण करनेवाले (देवाय) ईश्वरके लिये- वरुण देवकी (अनागाः) निष्पाप होकर (अहं) मैं (अरं कराणि) सेवा करता हूं । (दासः न) सेवकके समान मैं ईश्वरकी सेवा करूंगा । (अर्यः देवः अचितः अचेतयत्) वह श्रेष्ठ देव हम अज्ञानियोंको प्रेरित करता है । (कवितरः गृत्सं राये जुनाति) वह अधिक ज्ञानी ईश्वर स्तोताको धनकी ओर प्रेरित करता है ।

१ मीळ्हुषे भूर्णये देवाय अनागाः अहं अरं कराणि- भक्तकी सदिच्छाओंको पूर्ण करनेवाले, सबका भरण पोषण करनेवाले ईश्वरकी सेवा निष्पाप बनकर मैं करता हूं । निष्पाप बननेके लिये मैं प्रभुकी सेवा करता हूं । परमेश्वर सबका पालक है और सबको निष्पाप बनानेवाला है, इसलिये उसकी सेवा करनेसे मनुष्य निष्पाप बनता है । यहां (देवाय अलंकराणि) देवको अलंकार डालता हूं, सुशोभित करता हूं, सेवा करता हूं यह भाव है । (अरं कराणि) पर्याप्त सेवा करता हूं ऐसा भी इसका भाव है ।

८ अयं सु तुभ्यं वरुण स्वधावो हृदि स्तोम उपश्रितश्चिदस्तु ।
शं नः क्षेमे शमु योगे नो अस्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६९६

(८७) ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । वरुणः । त्रिष्टुप् ।

१ रदत् पथो वरुणः सूर्याय प्रार्णांसि समुद्रिया नदीनाम् ।
सर्गो न सृष्टो अर्वतीर्ऋतायञ्चकार महीरवनीरहभ्यः ६९७

२ आत्मा ते वातो रज आ नवीनोत् पशुर्न भूर्णिर्यवसे ससवान् ।
अन्तर्मही बृहती रोदसीमे विश्वा ते धाम वरुण प्रियाणि ६९८

---

२ अर्यः देवः अचितः अचेतयत्— श्रेष्ठ देव अज्ञानियोंको ज्ञान देकर सत्कर्ममें प्रेरित करता है ।

३ कवितरः देवः गृत्सं राये जुनाति— अधिक ज्ञानी देव भक्त उपासकको धनकी प्राप्तिकी ओर प्रेरित करता है । प्रभु भक्तका ऐहिक अभ्युदय करनेके लिये उसे पर्याप्त धन देता है ।

[८] (६९६) हे (स्वधावः वरुण) अन्न पास रखनेवाले वरुण! (तुभ्यं अयं स्तोमः) तुम्हारे लिये यह स्तोत्र (हृदिचित् सु उपाश्रितः अस्तु) हृदयमें उत्तम रीतिसे रहनेवाला हो। तुम्हारे लिये यह हृदयंगम हो। (नः क्षेमे शं) हमारे क्षेममें कल्याण हो और (नः योगे शं अस्तु) हमारे लाभमें भी कल्याण हो। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमारा सदा कल्याणके साधनोंसे संरक्षण करो।

१ नः क्षेमे शं अस्तु— हमारे क्षेममें भी हमारा सच्चा कल्याण हो । प्राप्त हुई वस्तुओंका रक्षण होनेका नाम क्षेम है । वह क्षेम हमारे लिये कल्याण करनेवाला हो ।

२ नः योगे शं अस्तु— अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिका नाम योग है । अप्राप्त वस्तुकी प्राप्ति करनेके समय जो प्रयत्न हम करेंगे उनमें हमारा कल्याण हो ।

३ हमारी सेवा प्रभुके लिये प्रसन्नता देनेवाली हो (हृदि उपश्रितः अस्तु) ।

[१] (६९७) यह (वरुणः देवः सूर्याय पथः प्र रदत्) वरुण देवने सूर्यके लिये मार्ग नियत कर दिया ह। (नदीनां अर्णांसि समुद्रिया प्र) नादियोंके जल प्रवाह समुद्रके बन चुके हैं। (सर्गः अर्वतीः सृष्टः न) घोडा जैसा घोडियोंके पास दौडता है, उस तरहः (ऋतायन् महीः अवनीः अहभ्यः चकार) शीघ्र जानेवाले सूर्यने बडी रात्रियोंको दिनोंसे पृथक् निर्माण किया है। पर वे परस्पर जुडे हैं। एकके पीछे दूसरा लगा है।

सूर्यका मार्ग नियत हुआ है। वृष्टिका जल नदियोंद्वारा समुद्रमें जाता है और समुद्र रूप हो जाता है। घोडा घोडीके पास दौडता है उस तरह सूर्य दौडता है और उस कारण दिन और रात्री पृथक् होती है ।

सूर्य जैसा अपना मार्ग नहीं छोडता वैसा सज्जनोंको अपना मार्ग छोडना नहीं चाहिये । वृष्टिका जल जैसा समुद्रमें जाकर एक जीवन होता है वैसा सबका जीवन आत्माके समुद्रमें जाकर एक रूप होना चाहिये । घोडा निसर्ग नियमसे घोडीके पास आकर्षित होता है, उस तरह स्त्रीपुरुषोंको इस गृहस्थ धर्ममें परस्पर प्रेमपूर्वक रहना चाहिये । जिस तरह दिन और रात्री परस्पर संगत हुई हैं । दिनके पीछे रात्री और रात्रीके पीछे दिन लगे हैं । इस तरह स्त्री-पुरुषको परस्पर प्रेमपूर्वक रहना चाहिये ।

अपना सन्मार्ग नहीं छोडना, सबका समान जीवन बनाना, राष्ट्रके जीवनमें विषमता नहीं रखना, स्त्रीपुरुषोंका परस्पर प्रेमपूर्वक बर्ताव होना ये तीन उपदेश यहां हैं ।

[२] (६९८) (ते वातः आत्मा) तेरा आत्मा वायु है। वह वायु (रजः आ नवीनोत्) धूलिको चारों ओर उडाता है। (पशुः न यवसे ससवान्) पशु जैसा घाससे अन्नवान् होता है, उस तरह

श्रीमद्भगवद्गीता ।

इस '**पुरुषार्थ-बोधिनी**' भाषा-टीकामें यह बात दर्शायी गई है कि वेद, उपनिषद् आदि प्राचीन ग्रन्थोंकेही सिद्धान्त गीतामें नये ढंगसे किस प्रकार कहे हैं। अतः इस प्राचीन परंपराको बताना इस '**पुरुषार्थ-बोधिनी**' टीकाका मुख्य उद्देश्य है, अथवा यही इसकी विशेषता है।

गीता के १८ अध्याय तीन विभागोंमें विभाजित किये हैं और उनकी एकही जिल्द बनाई है। मू० १०) रु० डाक व्यय १॥)

भगवद्गीता-समन्वय ।

यह पुस्तक श्रीमद्भगवद्गीताका अध्ययन करनेवालोंके लिये अत्यन्त आवश्यक है। '**वैदिक धर्म**' के आकारके १३५ पृष्ठ, चिकना कागज। सजिल्दका मू० २) रु०, डा० व्य० ।=)

भगवद्गीता--श्लोकार्धसूची ।

इसमें श्रीमद् गीताके श्लोकार्धोंकी अकरादिक्रमसे **आद्याक्षरसूची** है और उसी क्रमसे **अन्त्याक्षरसूची** भी है। मूल्य केवल ॥।), डा० व्य० =)

सामवेद कौथुमशाखीयः
ग्रामगेय (वेय प्रकृति) गानात्मकः
प्रथमः तथा द्वितीयो भागः ।

(१) इसके प्रारंभमें संस्कृत-भूमिका है और पश्चात् '**प्रकृतिगान**' तथा '**आरण्यकगान**' है। **प्रकृतिगानमें अग्निपर्व** (१८१ गान) **ऐन्द्रपर्व** (६३३ गान) तथा '**पवमानपर्व**' (३८४ गान) ये तीन पर्व और कुल ११९८ गान हैं। **आरण्यकगानमें अर्कपर्व** (८९ गान), **द्वन्द्वपर्व** (७७ गान) **शुक्रियपर्व** (८४ गान) और **वाचोव्रतपर्व** (४० गान) ये चार पर्व और कुल २९० गान हैं।

इसमें पृष्ठके प्रारंभमें ऋग्वेद-मन्त्र है और सामवेदका मन्त्र है और पश्चात् गान हैं। इसके पृष्ठ ४३४ और मूल्य ६) रु० तथा डा० व्य० ॥।) रु० है।

(२) उपर्युक्त पुस्तक केवल '**गानमात्र**' छपा है। उसके पृष्ठ २८४ और मू० ४)रु. तथा डा०व्य०॥)रु. है।

आसन ।

" योगकी आरोग्यवर्धक व्यायाम-पद्धति "

अनेक वर्षोंके अनुभवसे यह बात निश्चित हो चुकी है कि शरीरस्वास्थ्यके लिये आसनोंका आरोग्यवर्धक व्यायामही अत्यन्त सुगम और निश्चित उपाय है। अशक्त मनुष्य भी इससे अपना स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं। इस पद्धतिका सम्पूर्ण स्पष्टीकरण इस पुस्तकमें है। मूल्य केवल २॥) दो रु० आठ आने और डा० व्य० ॥) आठ आना है। म० आ० से २॥।≡) रु० भेज दें।

आसनोंका चित्रपट— २०"×२७" इंच मू० ।) रु., डा० व्य० -)

मन्त्री— स्वाध्याय-मण्डल 'आनन्दाश्रम' किल्ला-पारडी (जि० सूरत)

Regd. No. B 1463

वैदिक संपत्ति

की सहूलियत थोडे दिनतक ही मिलेगी

२५	पुस्तकोंका अग्रिम मूल्य आनेपर प्रति पुस्तक	५।)	में मिलेगी
५०	,, ,, ,, ,, ,,	५)	,,
७५	,, ,, ,, ,, ,,	४।।।)	,,
१००	,, ,, ,, ,, ,,	४।।)	,,

पैकिंग तथा मालगाडीका किराया भी हम देंगे।

वैदिक संपत्तिके पहिले विज्ञापन रद्द हुए हैं। इस विज्ञापनका संपूर्ण मूल्य आर्डरके साथ आना चाहिये।

पत्रव्यवहारका पता—
मन्त्री, स्वाध्याय-मण्डल, 'आनन्दाश्रम'
किल्ला-पारडी [जि. सूरत]

सचित्र श्रीवाल्मीकीय रामायणका मुद्रण

" बालकांड, अयोध्याकांड (पूर्वार्ध--उत्तरार्ध), सुंदरकांड तथा अरण्यकांड " तैयार है।

रामायणके इस संस्करणमें पृष्ठके ऊपर श्लोक दिये हैं, पृष्ठके नीचे आधे भागमें उनका अर्थ दिया है, आवश्यक स्थानों विस्तृत टिप्पणियां दी हैं। जहां पाठके विषयमें सन्देह है, वहां हेतु दर्शाया है।

इसका मूल्य

सात काण्डोंका प्रकाशन १० भागोंमें होगा। प्रत्येक भाग करीब ५०० पृष्ठोंका होगा। प्रत्येक भागका मूल्य ४) रु तथा डा०व्य० रजिस्ट्रीसमेत ।।=) होगा। यह सब व्यय ग्राहकोंके जिम्मे रहेगा। प्रत्येक ग्रंथ यावच्छक्य शीघ्रतासे प्रकाशित होगा। प्रत्येक भागका मूल्य ४) रु० है. अर्थात् सब दसों भागोंका मूल्य ४०) और सबका डा०व्य० ६) रु० है। कुल मू० ४ रु० म० आ० से भेज दें।

मंत्री, स्वाध्याय-मंडल, किल्ला पारडी, (जि० सूरत)

मुद्रक और प्रकाशक- व० श्री० सातवलेकर, बी. ए., भारत-मुद्रणालय, किल्ला-पारडी (जि. सूरत)

धर्मदूत

गुरुकुल-पत्रिका,
गुरुकुल काँगड़ी.

मार्च १९५१

वार्षिक चन्दा—३)
एक अङ्क— ।=)

विषय-सूची

विषय — पृष्ठ

१. बुद्ध-वचनामृत — २९७
२. बौद्धधर्म की सार्वभौमिकता—श्रीशरत्कुमार राय — २९८
३. बौद्धधर्म में स्त्रियों का स्थान—श्रीचतुरसेन शास्त्री — ३००
४. पुरानी पोथियों की विदेश-यात्रा—श्रीप्रह्लाद प्रधान — ३०३
५. मूलगन्ध कुटी विहार—श्रीअनन्त रामचन्द्र कुलकर्णी — ३०६
६. स्वागत! —श्रीभरत सिंह उपाध्याय — ३०९
७. बौद्ध देशों में लोकाचार—श्रीगुलाबराय एम० ए० — ३१३
८. भारत में तिब्बती बौद्ध विहार—श्रामणेर संवरक्षित — ३१५
९. पक्षी—श्रीसूर्यनारायण चौधरी — ३१८
१०. बौद्ध-जगत् — ३१९
११. उरुवेला के प्रति - कुमारी विद्या — ३२०

सूचना—

धर्मदूत का १५ वाँ वर्ष इस अङ्क के साथ समाप्त होता है। आगामी अङ्क बुद्ध जयन्ति विशेषाङ्क होगा जो अप्रेल-मई दोनों महीनों के लिए एक संयुक्ताङ्क के रूप में निकलेगा। पाठक इस पर ध्यान दें।

कहानी, कला व व्यवहारिक ज्ञान का भारत का सबसे अधिक पठनीय मासिक—

मानसरोवर

❀ सामाजिक व पारिवारिक समस्याओं पर कहानियाँ जो न केवल मनोरंजन ही करती वरन मार्ग प्रदर्शन भी करती हैं।

❀ सहज, सुलभ भाषा में सभी प्रकार के विषयों पर लेख।

❀ आकर्षक छपाई व गेट अप।

❀ बहुत साधारण मूल्य - ६ आने प्रति, ४) वार्षिक, नमूना मुफ़्त।

दिल्ली प्रेस, पोस्ट बाक्स १७, नई दिल्ली।

धर्म-दूत

गुरुकुल-पत्रिका,

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवल-परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग, (विनय-पिटक)

सम्पादकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

वर्ष १५ } सारनाथ, मार्च बु० सं० २४९४ / ई० सं० १९५१ { अङ्क १२

बुद्ध-वचनामृत

सच्चा मुनि कौन ?

"जो संयमी है, पाप नहीं करता; जो आरम्भ और मध्य वय में संयत रहता है, जो न स्वयं चिढ़ता है और न दूसरों को चिढ़ाता है, उसे ज्ञानी लोग मुनि कहते हैं। जो अग्रभाग, मध्यम भाग या अन्तिम भाग से शिक्षा लेता है, जिसकी जीविका दूसरों के दिये पर निर्भर है और जो दायक की निन्दा या प्रशंसा नहीं करता, उसे ज्ञानी लोग मुनि कहते हैं। जो मैथुन से विरक्त हो अकेला विचरण करता है, जो यौवन में भी कहीं आसक्त नहीं होता, और मद-प्रमाद से विरक्त और विप्रमुक्त है, उसे ज्ञानी लोग मुनि कहते हैं।

"जिसने संसार को जान लिया है, जो परमार्थदर्शी है, जो संसाररूपी बाढ़ और समुद्र को पार कर स्थिर हो गया है, उस छिन्न ग्रन्थिवाले को ज्ञानी लोग मुनि कहते हैं। निरहङ्कार, सुव्रतधारी, एकान्तवासी, वर्जित और दारपोषी गृही में समानता नहीं। असंयमी गृहस्थ दूसरे जीवों का वध करता है। मुनि नित्य दूसरे प्राणियों की रक्षा करता है।

"जिस प्रकार आकाशगामी नीलग्रीवावाला मयूर कभी भी वेग में हंस को नहीं पाता, इसी प्रकार गृहस्थ अकेले वन में ध्यान करनेवाले भिक्षु का अनुकरण नहीं कर सकता।"

बौद्धधर्म की सार्वभौमिकता

श्री शरत्कुमार राय

सारा संसार महापुरुष मानकर जिनकी वन्दना किया करता है, उनके जीवन और उपदेश का अवलम्बन करके छोटे-बड़े सम्प्रदाय बन जाने पर भी वे साम्प्रदायिक संकीर्णता के बहुत ऊपर रहते हैं। ज्ञान में, विज्ञान में, भाषा में, आचार-विचार में, रङ्ग में, गुण में, मनुष्य-मनुष्य में भेद पाया जाता है और यह भेद चिरकाल तक रहेगा। ये सब भेद-विभेद रहते हुए भी मनुष्य का हृदय देश-देशान्तर के मनुष्यों के साथ अपनी एकता के अनुभव के लिए तड़फड़ाता रहता है। साधारणतः जिस समाज में मनुष्य जन्म लेता है, उस समाज का उस व्यक्ति के मन पर विशेष प्रभाव पड़ता है। देशाचार, लोकाचार और वंश-गौरव इत्यादि नाना प्रकार के कृत्रिम व्यवधान धर्म का नाम धारण करके उसकी शुभ बुद्धि पर पर्दा डाले रहते हैं। इस प्रकार एक-एक समाज या सम्प्रदाय सैकड़ों नरनारियों को अपने अपने कल्पित कोट के भीतर बन्द कर रखते हैं। अपनी चिर अभ्यस्त सुपरिचित सीमा के भीतर रहते-रहते लोगों की बुद्धि ऐसी जड़ हो जाती है कि वे सीमा के भीतर रहना ही अच्छा समझते हैं, उससे निकलकर बाहरी दृश्य के साथ योग-साधन के लिए कुछ उत्साह नहीं दिखलाते। देखा जाता है कि प्रत्येक समाज या सम्प्रदाय में एक-आध ऐसा प्रतिभाशील महात्मा उत्पन्न हो जाता है, जिसकी शुभ बुद्धि सम्प्रदाय के संकीर्ण व्यवहार को स्वीकार नहीं करती। वह साम्प्रदायिक सीमा पार करके एक ऐसे उदार राजमार्ग पर जाकर मनुष्य को बुलाता है कि वहाँ आकर उसके साथ सम्मिलित होने में, किसी देश का, किसी समय का मनुष्य संकोच नहीं करता।

कोई ढाई हजार वर्ष पहले भगवान् बुद्ध ने मुक्ति के एक ऐसे ही उदार राजमार्ग पर संसार के सब मनुष्यों को बुलाया था; वहाँ एकत्र होने में किसी के मन में कुछ रुकावट नहीं हो सकती। उन्होंने अपने अनुगामी शिष्यों से कहा है—गङ्गा-यमुना प्रभृति बड़ी-बड़ी नदियाँ अनेक दिग्देशों से उत्पन्न होकर भी जैसे समुद्र में मिलकर अपनी स्वतन्त्र-सत्ता और नाम खो देती हैं, वैसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि सब जातियों के मनुष्य सत्य धर्म ग्रहण करते ही अपनी जाति और गोत्र खोकर एक हो जाते हैं। नाई उपालि हीन जाति होने पर भी भगवान् बुद्ध का दाहिना हाथ हो गया। इस धर्म के प्रभाव से वह शूद्र न रहा; वह परम साधु, अर्हत् और सत्य धर्म का व्याख्याता होकर अत्यन्त सम्मानित हुआ।

बुद्ध की वाणी एक समय भारत के पतित समाज के काम में अभय मन्त्र फूँक चुकी है और उनके प्रचारित नये धर्म ने उन सबों को आश्रय दिया था। थेर-गाथा में एक थेर ने अपने मुँह से अपना जीवन-वृत्तान्त इस प्रकार कहा है—"मेरा जन्म नीचकुल में हुआ था, मैं अत्यन्त दरिद्र था। मेरा पेशा भी बुरा था। लोग मेरा अपमान करते थे। मैं सिर झुका कर सबका सम्मान करता था। इसके बाद मैंने महानगरी मगध में भिक्षुओं के साथ महापुरुष का दर्शन किया। उनका दर्शन पाते ही मेरा चित्त भक्ति से झुक गया। मैंने सिर का बोझ फेंककर उनके श्रीचरण-कमलों में आत्म-समर्पण किया। जब उन लोकमान्य ने मुझपर दया की तब मैंने उनका अनुचर शिष्य होना चाहा। करुणामय प्रभु ने तुरन्त मुझे शरण देकर कहा—आओ साधु, मेरे साथ आओ।"

बुद्ध का जीवन-वृत्तान्त पढ़ने से ज्ञात होता है कि उन्होंने बेधड़क होकर भ्रष्टाचारिणी आम्रपाली वेश्या के घर भोजन किया था। उनके इस व्यवहार का तात्पर्य न समझकर लिच्छवि-राजाओं ने असन्तोष प्रकट किया था, परन्तु बुद्धदेव ने कुछ परवा नहीं की। महापुरुष की करुणा के विशद किरण-जाल में पतिता स्त्री का चित्त पल

भर में शतदल कमल की भाँति खिल गया था और उसके मनोहर सुगंध ने बौद्ध-समाज को विस्मित कर दिया था।

सभी मनुष्यों के माननीय महागुरु बुद्धदेव अनर्थकारी जाति-भेद, धन-गौरव, उच्चपद के महत्त्व आदि को तुच्छ समझते थे। इसी से छोटे-बड़े, धनी-दरिद्र, आर्य-अनार्य सभी के मन में उनका उपदेश बेरोक प्रवेश करता था। उनका उपदेश सर्वप्रिय तथा सर्वमान्य था।

बुद्धदेव ब्राह्मण और श्रमण को बराबर सम्मान का पात्र समझते थे। किन्तु वे ब्राह्मण किसे मानते थे? धम्मपद में लिखा है—

"जो स्थिर-बुद्धि, मेधावी हैं, सत्य-असत्य का निर्णय करने में पण्डित हैं, उन उत्तमपद निर्वाण-प्राप्त पुरुष को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

"जो अपने दुःख का नाश हुआ जानकर इसी संसार में निष्काम और बन्धन-मुक्त होकर रहते हैं उन्हीं को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

"जो शत्रुओं के साथ मित्र-भाव रखते हैं, दण्ड देने-वालों के प्रति संतोष प्रकट करते हैं और संसारी विषयों के बीच अनासक्त रहते हैं उनको मैं ब्राह्मण कहता हूँ।"

भगवान् बुद्ध के मत से, किसी बाह्य कारण से किंवा आकस्मिक जन्म होने से कोई ब्राह्मण नहीं हो सकता।

धम्मपद में लिखा है—"जटा धारण करने से, या जाति-गोत्र से कोई ब्राह्मण नहीं होता। किन्तु जो धर्म और सत्य में प्रतिष्ठित हैं, वही पवित्र और ब्राह्मण हैं।'

अतएव यह बात माननी ही होगी कि भगवान् बुद्ध वंशानुगत जाति-भेद को नहीं मानते थे।

"वृषलसूत्र" में बुद्ध ने अपना यह आशय अत्यन्त स्पष्ट भाषा में अग्नि-भारद्वाज के आगे प्रकट किया है। उन्होंने कहा है—"जन्म के कारण कोई ब्राह्मण या चाण्डाल नहीं होता, कर्म्म से ही ब्राह्मण या चाण्डाल होता है।" उक्त सूत्र में उन्होंने चाण्डाल के निम्नलिखित लक्षण बतलाये हैं:—

"जो पापाचारी, कपटी, क्रोधी और हिंसक है, जिसने असत्य दर्शन को आश्रय दे रक्खा है, जो मायावी है और जो सर्वदा लोगों को ठगता है, वही चाण्डाल है।

"जो अपने हाथ से पशु-पक्षी आदि जीवों की हत्या करता है और जो निर्दय है, वही चाण्डाल है।

"जो बिना कारण दूसरे को सताता है, जो दूसरे का धन हरण करता है, जो ऋण लेकर पीछे अस्वीकार करता है, जो द्रव्य के लोभ से दूसरे का प्राण नाश करता है, और जो व्यभिचार करता है, वही चाण्डाल है।

"जो अपने बूढ़े माँ-बाप की सेवा नहीं करता और कटु-वचन कहकर अपने बन्धुवर्ग का जी दुखाता है, वही चाण्डाल है।

"लोग तो आवें भली सलाह लेने और जो उन्हें दे बुरी सलाह, तथा सत्य छिपाकर जो झूठ बोले, वही बढ़कर चाण्डाल है।

"जो अहंकार में चूर होकर अपनी प्रशंसा आप करता है, जो दूसरे को देखकर घिनाता और दूसरे की निन्दा करता है, वही चाण्डाल है।"

भगवान् बुद्धने दृष्टान्त-द्वारा व्याख्या की है कि साधु-शील श्वपच (चाण्डाल) भी इस लोक और परलोक में कैसे सुख-शान्ति प्राप्त कर सकता है। उन्होंने कहा है—"एक चाण्डाल का लड़का, जिसका नाम मातङ्ग था, काम-क्रोध आदि त्यागकर परमसाधु हो गया था। उसका अनन्य-सुलभ यश सर्वत्र फैलने से झुण्ड के झुण्ड ब्राह्मण-क्षत्रिय आकर उसे शीश नवाते थे। मृत्यु के अनन्तर वह ब्रह्मानन्द को प्राप्त हुआ। ब्राह्मण के कुल में जन्म लेने ही से कुछ नहीं होता। एक ब्राह्मण अध्यापक का बेटा वेद-मन्त्र की शिक्षा पाकर भी पाप किया करता था। उसे इस लोक में शान्ति नहीं मिली, परलोक में उसने नरक का भोग किया। इस अधःपतन से उसे न तो 'कुल' बचा सका और न वेदज्ञान ही किसी काम आया। भगवान् बुद्ध के ज्ञान-पूर्ण सरल उपदेश अग्नि-भारद्वाज के हृदय में भिद गये। जाति-गोत्र का अभिमान छोड़कर वह उनका शिष्य हो गया।

जिनको पतित समझ कर समाज उपेक्षा करता था, उनकी पतित समझ कर भगवान् बुद्ध ने कभी उपेक्षा नहीं की। सभी के समझने योग्य बोल-चाल की भाषा में सरल व्याख्यान द्वारा वे निर्वाण का मार्ग दिखा गये हैं। उन्होंने पतित का उद्धार किया, भूले-भटके को मार्ग दिख-

लाया और अँधेरे में भटक रहे आँख वालों के सामने करुणा की रसधारा से भरा प्रज्वलित ज्ञान का दीप रख दिया।

बौद्ध-धर्म के इतिहास से मालूम होता है कि आविष्कृत होते ही इस धर्म का प्रचार अनार्य-प्रधान मगध देश में अपेक्षाकृत बहुसंख्यक लोगों में हुआ था। ईसा-मसीह के पहले तीसरी शताब्दी में जब इन अनार्य-प्रधान मगध की राजश्री के सम्मुख समस्त भारत सिर नवाये था, तभी राजशक्ति की पृष्ठ-पोषकता से बौद्ध-धर्म सारे भारत का धर्म हो गया था।

भगवान् बुद्ध का चित्त यदि किसी कृत्रिम बाधा को कबूल कर लेता तो यह धर्म पतितों को कदापि नवीन जीवन-दान करने में समर्थ न होता और नदी, पहाड़, समुद्र स्वाभाविक बाधाओं को लाँघ कर नाना भाषा-भाषी मनुष्यों के विचित्र समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त न कर सकता। बौद्ध धर्म ने भूमण्डल के एक प्रधान धर्म में परिणत होकर अपनी सर्वोत्कृष्ट उदारता का ही परिचय दिया है। बुद्ध के उपदेश ने एक समय भारत में अमृत का छिड़काव करके अत्यन्त अद्भुत साहित्य, विज्ञान, शिल्प आदि की सृष्टि की थी। भारत के उस अतीत युग के सभ्यता-भण्डार से इस समय भी सब देशों के विद्वान् लोग नये-नये रत्न प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे हैं। भगवान् बुद्ध ने जो दान किया है, उसे सार्वभौम जानकर ही संसार ने ग्रहण किया है और आगे भी करता रहेगा।

बौद्ध-धर्म में स्त्रियों का स्थान

श्री चतुरसेन शास्त्री

भगवान् बुद्ध ने यद्यपि स्त्रियों को अपने संघ में स्थान दिया था और पुरुषों की भाँति स्त्रियाँ भी भिक्षुणियाँ बन सकती थीं। परन्तु वास्तव में बौद्ध-धर्म का मूल तत्व स्त्रियों को पुरुषों से दूर रहने में ही था; क्योंकि बौद्ध-धर्म में त्याग और वैराग्य का स्थान मुख्य है, भोग का नहीं। बुद्ध ने स्त्रियों की निन्दा तो नहीं की, परन्तु बराबर यह सलाह दी है कि लोग स्त्रियों के खतरे से बचे रहें और जहाँ तक सम्भव हो, स्त्रियों से दूर रहें। उनके ख़याल में आदर्श-जीवन वह है कि स्त्रियों से अलग रहकर और सम्भव हो तो किसी भी दशा में उनसे न मिलकर अपना जीवन व्यतीत किया जाय। स्त्रियों के सम्बन्ध में एक बार भगवान् बुद्ध ने अपने शिष्य अनन्द से कहा था।

अनन्द ने प्रश्न किया—"भगवान्! स्त्रियों के विषय में कैसा व्यवहार करें।"

भगवान् बुद्ध ने कहा—"उन्हें देखो मत आनन्द!"

आनन्द ने कहा—"परन्तु यदि उन्हें देखना पड़े तब?"

भगवान् बुद्ध—"बहुत सावधान रहो, आनन्द!"

फिर भी भगवान् बुद्ध ने अपने साधारण अनुयायिओं और गृहस्थियों के प्रति यह उपदेश किया था कि जहाँ तक हो अपनी स्त्रियों को अपना मित्र समझो और उनपर विश्वास रखो। साधारण भक्तों को यह उपदेश दिया कि माता-पिता की सेवा, पत्नी और बच्चों का सहवास तथा शांतिपूर्ण उद्योग ही सबसे बड़ा मंगल है।

बौद्ध-धर्म में जहाँ पति-पत्नी के सम्बन्ध और उनके व्यवहार के लिए अनेक नियमोपनिमों की चर्चा की गई है, वहाँ पत्नी के लिए पति के आज्ञा-पालन का कोई जिक्र ही नहीं है। पतियों के लिए जरूर आदेश है कि वे अपनी पत्नियों के विश्वास-पात्र रहें, उनका आदर करें और उन्हें यथोचित वस्त्राभूषण प्रदान करें। पत्नियों को पातिव्रत धर्म के पालन की ओर मितव्ययी बनाने की शिक्षा दी है। स्त्रियों को यह भी कहा गया है कि वे अपने घरेलू कार्यों में बुद्धिमत्ता और उद्योगशीलता दिखावें। परन्तु उनका सबसे बड़ा भारी सिद्धान्त तो यह है कि अविवाहित जीवन ही मनुष्य जीवन का सबसे बड़ा श्रेय है। एक बार उन्होंने कहा था कि बुद्धिमान्

नुष्य को विवाहित जीवन से यह ख्याल करके डरना हिए, मानो वह एक आग से जलती हुई कोयले की ान है। और उन्होंने यह भी कहा था कि जो आदमी र में रहता है वह कैसे विशुद्ध जीवन व्यतीत कर कता है?

इन सब बातों से पता चलता है कि भगवान् बुद्ध विवाहित जीवन को तो सबसे श्रेष्ठ समझते ही थे लेकिन हस्थियों के लिए भी उन्होंने ऐसे नियम बनाये थे कि एक-दूसरे को परस्पर अपना मित्र समझें, परस्पर एक-रे का आदर करें और परस्पर एक-दूसरे का वास करें।

माता के प्रति बुद्ध भगवान् का आदर बहुत उच्च था। बुद्ध स्त्रियों को भी पुरुष की भाँति भिक्षुणियाँ बनाते थे। बौद्ध धर्म के अनुसार स्त्रियों को निर्वाण प्राप्त ने का उतना ही अधिकार है, जितना कि पुरुषों को। तिहास बतलाता है कि बुद्ध के जीवन काल में सैकड़ों यों और सैकड़ों पुरुषों ने निर्वाण प्राप्त करके मानव-वन के विकास की चरम सीमा तक पहुँचने का प्रयत्न या था। जब बुद्ध-धर्म का प्रसार हो रहा था, तब यों ही ने सबसे अधिक आर्थिक सहायता की थी। बुद्ध विसाखा आदि स्त्रियों की बहुत प्रशंसा की है। एक की प्रशंसा करते हुए भगवान् बुद्ध ने कहा है--"यह हिला सांसारिक वातावरण में रहती है--और राज रियों की कृपा-पात्री है, तो भी इसका हृदय स्थिर और न्त है। अवस्था युवा और धनी तथा ऐश्वर्य से घिरी ई है, फिर भी यह कर्त्तव्य-पथ में अविचल और विचार-ल है। यह इस संसार की दुर्लभ चीज़ है।"

एक और महिला के सम्बन्ध में जिसने कि उन्हें ने हाथों से भोजन कराया था, कहा है—"एक उत्तम र्मिक महिला जो भूखों को भोजन देती है वह उसे जन के साथ चार चीजें देती है—(१) वह जीवन-शक्ति ती है (२) वह सौन्दर्य प्रदान करती है (३) वह सुख ती है (४) वह बल देती है।

जीवन-शक्ति देने से वह मानवीय और दैवी जीवन क्ति की, सौन्दर्य देने से सौन्दर्य की, सुख देने से सुख की, और बल देने से मानवीय और दैवी बल की साझीदार बन जाती है।

जिस काल में भगवान् बुद्ध ने अपने धर्म का प्रचार किया था। उस काल में स्त्री-जाति की सामाजिक स्थिति बहुत हीन हो गई थी। यह उन्हीं का साहस था कि उन्होंने कहा—"निर्वाण की प्राप्ति न केवल ब्राह्मण को ही होती है, परन्तु मनुष्य-मात्र को हो सकती है और स्त्रियों को भी हो सकती है। यह वही समय था, जिसमें कि "स्त्री शूद्रो नाधीयेताम्" की आवाज ऊँची थी। और स्त्रियों का कोई सामाजिक स्थान ही नहीं था।

भगवान् बुद्ध की माता ने उनसे इसपर आग्रह किया था कि भिक्षुओं की तरह भिक्षुणियों का भी एक संघ बनाया जाय। भगवान् बुद्ध यद्यपि स्त्रियों को अपने धर्म से अलग ही रखना चाहते थे। किन्तु वे इस बात का विरोध नहीं कर सके। लेकिन जब उन्होंने संघ में स्त्रियों को ग्रहण करना शुरू कर दिया तो उनपर भिक्षुओं का कड़ा नियन्त्रण था। उन्हें उपदेश सुनने के लिए भिक्षुओं के पास जाना पड़ता था।

भगवान् बुद्ध ने यह भी एक भविष्यवाणी की थी—

"स्त्रियों को संघ में सम्मिलित करने का परिणाम यह होगा कि ५०० वर्षों के भीतर लोग धार्मिक नियमों को भूल जायेंगे। उन्होंने स्पष्ट कहा था—"किसी भी मत सिद्धान्त या अनुशासन के अनुसार जहाँ स्त्रियों को गार्हस्थ्य-जीवन से निकालकर गृह-विहीन दशा में रहने की इजाजत दे दी गई, वह धर्म या मत अधिक समय तक नहीं ठहर सकता। निस्सन्देह यह बुद्ध का एक विवेचनापूर्ण सिद्धान्त था। लेकिन बुद्धधर्म के प्रचार में स्त्रियों ने जो त्याग और अध्यवसाय किया, उसको देखकर आश्चर्य-चकित रह जाना पड़ता है। भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के दो-तीन सौ वर्ष बाद सम्राट् अशोक ने बौद्ध-धर्म के प्रचार के लिए बहुत बड़े भारी काम किये। उन्होंने अपने पुत्र और पुत्री को लङ्का में भेजकर वहाँ धर्म की स्थापना की और वहाँ पुरुषों के साथ स्त्री भिक्षुणियों का भी एक छोटा-सा संघ बनाया था।

जब अशोक काल में पाटलिपुत्र में तृतीय संगीति हुई तब उस समय संघ के नियम और उपनियमों का संशो-

धन किया गया। जिसमें भिक्षु-भिक्षुणियाँ और गृहस्थ—ये दोनों ही धर्म के अंग माने गये।

सम्प्रति बौद्ध स्त्रियों के अन्दर दया, क्षमा, त्याग और आदर के भाव बहुत उच्च कोटि तक पाये जाते हैं। आज बर्मा के अन्दर स्त्रियों में त्याग और दया की भावनायें बहुत बढ़ी-चढ़ी देखी जाती हैं। कुछ बौद्ध भिक्षुणियाँ बहुत प्रसिद्ध हुई हैं—जिनमें खेमा, उप्पलवण्णा और महाप्रजापती गौतमी के नाम बहुत ही प्रसिद्ध हैं। अम्बपाली भी एक बड़ी भारी बौद्ध भिक्षुणी हुई है। इन स्त्रियों के नाम त्याग, दया, क्षमा, ज्ञान और तप के कारण अमर हो गये हैं। विदेशी इतिहासज्ञों तक ने इनकी बारम्बार प्रशंसा की है। और बौद्ध-धर्म के प्रचार में इन स्त्रियों का भी बड़ा भारी हाथ बताया है। आप भवभूति के प्रसिद्ध नाटक मालती-माधव को पढ़िये। उसकी प्रधान पात्री मालती का विवाह उसके प्रेमी माधव के साथ एक बौद्ध भिक्षुणी कराती है। और वह भिक्षुणी योगसिद्धान्तों का और अपनी जादू की विद्याओं का भी चमत्कार बताती है।

तिब्बत में बौद्ध-धर्म का प्रचार दो राजकुमारियों ने किया था। उन्होंने तिब्बत की राजधानी ल्हासा में बहुत से मन्दिर बनवाये और अनेक मठों की स्थापना की। चीन और जापान से अनेकों विचित्र-विचित्र प्रकार की अद्भुत मूर्तियाँ लाकर स्थापित कीं, जो आज भी उन अद्भुत मूर्तियों में बौद्ध-धर्म की प्राचीन चतुराई, बुद्धिमत्ता और शिल्प-विद्या की उत्कृष्टता अङ्कित हैं।

वर्तमान् मनुस्मृति जो कि बुद्धकाल में बनाई गई, एक काल्पनिक और जाली पुस्तक है। उसमें वर्णित स्त्री-धर्म को देखा जाय तो हमें मालूम होगा कि उसमें स्त्रियों की प्रतिष्ठा का केवल ढोंग किया गया है। यह पुस्तक स्त्रियों को पूजा करने की चीज जरूर बताती है, परन्तु मनु के मत में स्त्रियों की पूजा वैसी ही है, जैसी कि वर्तमान् समय के हिन्दुओं की गौ-पूजा। वे उन्हें कसकर रस्सी से बाँधते हैं, सड़ा और गंदा भूसा खाने को डालते हैं और जब दूध दोहने का समय आता है, तो उसके बछड़े को बलपूर्वक उसके स्तनों से छुड़ा देते हैं। और तमाम दूध निकाल लेते हैं। कहने को तो वे गौ-माता की पूजा करते हैं, परन्तु यह पूजा परलेदर्जे का अत्याचार है। ठीक इसी तरह मनु ने स्त्रियों की पूजा बताई है। वह साफ़-साफ़ कहते हैं कि स्त्रियों को अपने पति की पूरी तरह से आज्ञा माननी चाहिये।

परन्तु बौद्ध-धर्म उदारता पूर्वक स्त्रियों को पुरुषों के बराबर का दर्जा देता है और वह बतलाता है कि स्त्री और पुरुष को एक मित्र की भाँति रहना चाहिये। और यह आज्ञा देता है कि एक दूसरे को ऊँच-नीच नहीं समझे।

ईसाइयों का रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय भी स्त्रियों की स्वतन्त्रता का पक्ष लेता है, परन्तु महान धर्माध्यक्ष पाल के धर्म-पत्रों में यह बात साफ तौर से लिखी हुई है कि स्त्रियों को पुरुषों के अधीन ही रहना चाहिए। यदि आप रोमन कैथोलिक के आदेशों को पढ़ेंगे, तो आपको इस बात पर पूर्ण विश्वास हो जायगा।

इसलिये हम खुली तौर से कह सकते हैं कि जिस काल में सब जातियाँ स्त्रियों को अपना गुलाम बनाने में लगी हुई थीं। उस काल में भगवान् बुद्ध ने उनको पतित दशा से उद्धार और पूर्णरूप से सुधार किया। न केवल सामाजिक जीवन में बल्कि धार्मिक जीवन में भी स्त्रियों को पुरुषों के बराबर दर्जा दिया। बौद्ध-धर्म के विश्व-व्यापक होने का एक मूल कारण यह भी हो सकता है।

आज यद्यपि बौद्ध-धर्म भारत में नाम मात्र को है, परन्तु जिन देशों में बौद्ध-संस्कृति है, जैसे—तिब्बत, चीन, जापान, लंका, जावा, सुमात्रा और बर्मा। उन देशों में स्त्रियों की स्वतन्त्रता उन देशों की स्त्रियों की स्वतन्त्रता से कहीं अधिक है, जिनपर कि प्राचीन हिन्दूपन का प्रभाव है। इन देशों के माता-पिता, भाई-भौजाई, प्रेमी और प्रेमिका आपस में अच्छी तरह आज़ादी से बेरोक-टोक मिलते हैं। वहाँ माता-पिता कन्याओं का विवाह नहीं करते। कन्याएँ दान में नहीं दी जाती। न वहाँ पर्दे की चहारदीवारी है। बौद्ध-धर्म ने स्त्रियों को जो स्वतन्त्रता दी है, उसका चमकता हुआ उदाहरण बर्मा में मिलेगा। वहाँ जितनी आज़ादी स्त्रियों को है, शायद दुनिया के पर्दे में उतनी किसी देश में भी नहीं है। वहाँ की स्त्रियों की कार्यक्षमता, उद्योगशीलता और बुद्धिमत्ता पुरुषों से कहीं अधिक बढ़ी-चढ़ी है।

बर्मी लोग विवाह को कोई धार्मिक कृत्य नहीं मानते, किन्तु वहाँ विवाह प्रेम, साहचर्य सद्भाव और सद्धर्म की दृष्टि से होता है। वहाँ सच्चे अर्थ में पति और पत्नी एक-दूसरे के सहचर हैं। अगर उनके परस्पर का प्रेम और सद्भाव नष्ट हो जाता है, तो उनके दूसरे सम्बन्ध भी भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। कोई धार्मिक बन्धन उनको बलपूर्वक बाँधकर नहीं रख सकते। यद्यपि वहाँ की स्त्रियों को तलाक का पूर्ण अधिकार है, परन्तु इस किस्म के उदाहरण बहुत कम मिलते हैं। वहाँ स्त्री-पुरुषों के कानून सम्बन्ध में भी कोई भेद-भाव नहीं है। बर्मा का लगभग आधा व्यापार स्त्रियों से चल रहा है। स्त्रियों की व्यापारिक बुद्धि पुरुषों से कहीं अधिक चमकती हुई है।

पुरानी पोथियों की विदेश-यात्रा

श्री प्रह्लाद प्रधान

[३]

चीन में बौद्ध धर्म का जब ज्यादा प्रचार होने लगा, तब वहाँ के भिक्षु परिव्राजक भी यहाँ आने लगे। उन लोगों का मुख्य उद्देश्य यहाँ से पथियाँ ले जाना था। चीन में बौद्ध ग्रन्थों के अध्ययन से सन्तुष्ट न होकर -हिङ्ग चीन से पश्चिमी देशों में पोथियों की खोज में गए और उनको खोटान में पञ्चविंशति साहस्रिका प्रज्ञापारमिता की एक प्रति मिली। वे जब उस पोथी को फु-जन् (पुण्यधन) के द्वारा भेजने लगे, तब खोटान के भिक्षु प्रतिज्ञा करवाई कि उसके अनुवाद में अन्यान्य ब्राह्मण धर्मों का मत घुल-मिल न जाय और इसके लिये काफी सावधानी रखी जाय। यह पोथी लाकर होनान् के शुइ-से मन्दिर में रखी गई थी।

भारतीय इतिहास में फा-हियान्, हुएन्-त्साङ्ग और ई-त्सिङ्ग प्रसिद्ध हैं। वे लोग बौद्ध भिक्षु थे और परिव्राजक और चीन से भारत में आए थे। उन लोगों का मुख्य उद्देश्य भी पोथियों का संग्रह था। फा-हियान् के पहिले कोई चीनी भारत में नहीं पहुँच सका था। पश्चिम में ज्यादा से ज्यादा खोटान तक वे पहुँच पाए थे। चीन से प्रथम फा-हियान् ही हिन्दुस्तान में आ सके थे। वे उत्तरी रास्ता अर्थात् काशगर-खोटान होकर कश्मीर में आए, उत्तरी भारत, मगध आदि में घूम-घाम कर ताम्रलिप्ति से समुद्र-पथ द्वारा सिंहल होकर दक्षिणी रास्ते से साल बाद चीन लौटे थे। उन्होंने हिन्दुस्तान और दोनों देशों में बौद्ध ग्रन्थ, विशेष कर विनयग्रन्थ संग्रह किए थे। वे जब लङ्का से पूर्व जाने वाले किसी हिन्दू सौदागरी जहाज में जा रहे थे, तो रास्ते में खूब आँधी तूफान उठा और वे हिन्दू सौदागर बौद्ध ग्रन्थों को ही तूफान का कारण स्थिर कर सब ग्रन्थों को समुद्र में फेंकने के लिए तैयार हो गए। लेकिन भाग्यवश आँधी बन्द हो गई और पोथियाँ बच गईं। इस प्रकार वे बहुत से ग्रन्थ यहाँ से ले जा सके।

हुएन् त्साङ्ग ने भी हिन्दुस्तान में बहुत पोथियाँ संग्रह की थीं। लौटते समय वे जब सिन्धु नदी पार कर रहे थे, आकस्मिक आँधी के कारण सूत्रग्रंथों की ५० पोथियाँ पानी में गिर गईं। तब भी १७ वर्षों के बाद सिगान्-फु में पहुँचते समय उनके पास पोथियों का बीस घोड़ों का बोझ था। वे ५२० जिल्दों में ६५७ ग्रन्थ ले गए थे। इसके साथ और भी बहुमूल्य चीजें थीं। वे सब पोथियँ सिगान्-फु में हुङ्ग-फु नामक विहार में रक्खी गईं थीं। पीछे जब नालन्दा के प्रज्ञादेव स्थविर से उनके पास एक चिट्ठी पहुँची, तो इसके जवाब में उन्होंने अपनी अभिलाषा प्रकट की थी कि सिन्धु में गिर गई पोथियों को हिन्दुस्तान से फिर भेज दिया जाय। इससे पता लगता है कि हिन्दुस्तान में पोथियों का कितना प्राचुर्य्य था और विदेशों में भारत से कितना-कुछ पाने की आशा की जाती थी।

हुएन्-त्साङ्ग के बाद एक और चीनी परिव्राजक आए — ई-त्सिङ्ग दक्षिणी रास्ते से आए थे। अर्थात् जावा, सुमात्रा, मलय, नग्नद्वीप (नीकोवर) होकर ताम्रलिप्ति में उतरे। आते समय उन्होंने श्रीविजय (सुमात्रा) में

संस्कृत पढ़ी। उन दिनों श्रीविजय, जावा का कलिङ्ग, युनान् (प्राचीन एनम्) संस्कृत-संस्कृति के केन्द्र थे। उन्होंने नालन्दा, राजगिरि, बुद्धगया, वैशाली, कुशीनगर कपिलवस्तु, श्रावस्ती, वाराणसी इत्यादि अन्चल में भ्रमण किया था और लौटते समय वे ४०० बौद्ध ग्रन्थ ले गए। श्रीविजय में संस्कृत का प्रचार होने के कारण उन्होंने वहीं रहना पसन्द किया और वहीं से उन ग्रन्थों में से अनुवाद कर चीन भेजा। पीछे वे ६८९ ई० में देश भी लौट गए।

सिर्फ इतनी ही नहीं, पोथियों के लिये और भी अनेक यात्राएँ हो चुकी हैं। उन यात्रियों ने कोई जीवनी या वर्णन नहीं लिखी, इसलिए वे लोग प्रसिद्ध नहीं हो पाए। किसी किसी का दूसरों ने उल्लेख किया है, उनमें से एक-दो की यहाँ चर्चा की जाय। शिह-चे-मङ्ग को कुसुमपुर (पटना) के एक विद्वान् ब्राह्मण रेवत से अनेक संस्कृत पोथियाँ मिली थीं। इस रेवत ने कुछ दिन पहले फा-हियान् को अनेक पोथियाँ दी थीं। फा-यङ्ग २५ भिक्षुओं का एक दल लेकर भारतवर्ष में आए थे और यहाँ से अवलोकितेश्वर-महास्थान प्राप्त-व्याकरणसूत्र की एक पोथी ले गये थे। फा-हियान् के साथ चे-येन् और पाओ-पुन् नामक दो भिक्षु भी आये थे, जो कश्मीर में ठहर गए और वहीं से कुछ पोथियाँ चीन में ले गए तथा वहाँ जाकर अनुवाद करने लगे।

केवल चीन ही नहीं, कोरिया से भी अनेक भिक्षु यहाँ आए थे। कोरिया और जापान में बौद्ध धर्म चीन से गया था। जापान में अभी भी षष्ठ शताब्दी की एक प्राचीन पोथी रक्षित है। ई-त्सिङ्ग ने कोरिया के अनेक भिक्षुओं का उल्लेख किया है। आर्य वर्मा कोरिया से आए थे। वे ६३८ ई० में चङ्ग-अन् से आकर नालन्दा में ठहरे थे और वहाँ उन्होंने बहुत से सूत्रों की नकल की थी। दुख की बात है कि वे लौट नहीं सके; उनकी वहीं मृत्यु हो गई। हेइ-येह भी उसी साल कोरिया से नालन्दा आए थे। ई-त्सिङ्ग ने नालन्दा के पुस्तकालय में उनकी चीनी किताबें और संस्कृत ग्रन्थों की नकलें देखी थीं, जिनसे खोज करने से पता लगा कि उसी साल उनकी मृत्यु हुई थी। इसी प्रकार हुएन्-ताइ (सर्वज्ञ देव), हुए-लुन् इत्यादि कोरिया के अनेक भिक्षुओं का उल्लेख भी पाया जाता है। ई-त्सिङ्ग ने तुखार भिक्षु बुद्धधर्म (फो-तो-तमो) और सोगडिआन भिक्षु सङ्घवर्मा (सेङ्ग-किआ-पो-मो) का भी उल्लेख किया है।

इस प्रकार भिक्षुओं की यात्राएँ इतनी अधिक होती थीं कि सबका विवरण देना केवल प्रबन्ध की कलेवर-वृद्धि करना होगा और अप्रासङ्गिक भी। चीन से जितने भिक्षु भारतवर्ष आए थे, उससे कम तो नहीं, बल्कि ज्यादा ही भिक्षु भारतवर्ष से चीन गए थे और उन लोगों की केवल-मात्र संपत्ति थी बौद्ध धर्म और बौद्ध ग्रन्थ।

चीन में जितनी पोथियाँ गई हैं, उनमें अधिक भाग संस्कृत की पोथियों का है। इसका एक प्रधान कारण यह है कि ज्यादातर उत्तरी-पथ द्वारा उत्तर भारत से पोथियाँ गई हैं। उन दिनों उत्तर भारत में महायान का अधिक प्रचार और प्रभाव था, जिसके ग्रन्थ संस्कृत में लिखे जाने लगे थे। इसलिये तिब्बत में जितने ग्रन्थ गए हैं, सब ज्यादातर संस्कृत में। धर्मपद भी संस्कृत में लिखा गया। इसका नाम उदानवर्ग था और इसका तिब्बती में अनुवाद भी मिलता है। एक धर्मपद प्राकृत में भी तूर्फान् से मिला है जिसका उल्लेख अन्य प्रसङ्ग में किया जायगा। बौद्ध भिक्षु पहले संस्कृत में—विशेष कर शुद्ध संस्कृत में—लिखने के पक्षपाती नहीं थे, सम्भवतः पालि पढ़ने-लिखने की ओर ही उनका विशेष आग्रह था। इसलिये महावस्तु, सद्धर्मपुण्डरीक इत्यादि अनेक ग्रन्थ बौद्ध संस्कृत या मिश्र-संस्कृत में लिखे गए थे।

दक्षिण भारत और सिंहल की बात और थी। वहाँ हीनयान और थेरवाद का अधिक प्रचार था। वे लोग अत्यधिक नैष्ठिक थे और पालि के पक्षपाती थे, संस्कृत के नहीं। स्वयं बुद्ध भगवान् ने भी अपनी उक्ति को संस्कृत में प्रकाश करने के लिये मना किया था। थेरवाद के सब ग्रन्थ पालि में लिखे जाते थे। इसलिये बुद्धघोष ने भी मगध से जाकर सिंहल में जितनी पुस्तकें लिखीं वे सब पालि में हैं, जैसे विसुद्धिमग्गो, अट्ठकथा, समन्तपासादिका इत्यादि। सिंहल में महेन्द्र जिस दिन बौद्ध धर्म ले गए, उस दिन से वहाँ विनय-थेरों की परम्परा चलने लगी जिसका उल्लेख परिवार में मिलता है। सिंहल का दक्षिण

भारत से ज्यादा सम्बन्ध था, जहाँ महायान का प्रभाव बिलकुल नहीं के बराबर था। वहाँ दक्षिणी बौद्ध धर्म या थेरवाद का अधिक प्रभाव था। आक्रमणकारी तामिल राजा और सिंहल के राजाओं ने कई बार बौद्ध ग्रन्थों का नाश करने की कोशिश की, फिर भी वहाँ पोथियाँ अभी एक परम्परा से चली आती हैं। सिंहली लोगों की निष्ठा का इससे कुछ पता चलता है। इसलिये इस अञ्चल से इस दक्षिणी रास्ते से होकर जितनी पोथियाँ गई हैं, सब प्रायः पालि की ही थीं। भिक्षु विघ्न ने सिंहल से पालि धम्मपद लिया था। फा-हियान् सिंहल से पालि विनय-पिटक ले गए थे।

किन्तु सुवर्णभूमि की परिस्थिति भिन्न थी। वहाँ उत्तर भारत से महायान और दक्षिण भारत से थेरवाद, दोनों का प्रभाव पड़ा था। कलिङ्ग से जाकर शैलोद्भव-वंश-वालों ने वहाँ शैलेन्द्र साम्राज्य स्थापित किया था। ये लोग बौद्ध थे और इनका सम्बन्ध उत्तर भारत से (बंगाल के पाल वंश से और नालन्दा से) था। इस वंश के एक राजा श्रीबालपुत्र ने नालन्दा में एक विहार बनवाया था। इस प्रकार सुवर्णभूमि का महायान के साथ सम्बन्ध था। पीछे चोल वंश के राजओं ने (राजराज ने) उस साम्राज्य पर धावा किया। ये राजा दक्षिण के थे और वहाँ थेरवाद का प्रभाव था। सिंहल से भी आकर बहुत से भिक्षु वहाँ प्रचार करते थे। यह पहले ही बताया गया है कि बौद्धों के पूर्व वहाँ ब्राह्मणों का प्रभाव था। इस प्रकार इस देश में ब्राह्मण, थेरवाद और महायान--सब का प्रभाव था और साथ साथ सबकी पोथियाँ वहाँ गई थीं। ई-त्सिङ्ग ने यहीं श्रीविजय में अनुवाद करते हुए अपना जीवन बिताया था।

बौद्ध धर्म का कोई नूतन मतवाद लेकर कोई पुस्तक लिखी जाती तो वह तुरन्त उन भिक्षुओं के सहारे यहाँ से चीन पहुँच जाती थी। इसलिये वहाँ थेरवाद, महायान, सर्वास्तिवाद इत्यादि सभी यानों और वादों की पोथियाँ पहुँची थी। धर्म के हिसाब से भी अनेक सम्प्रदाय वहाँ प्रचलित थे। शान्तिनिकेतन के प्रो० तान्-युन्-शान् ने १० धार्मिक संप्रदायों का उल्लेख किया है। यहाँ तक कि बौद्ध धर्म का तन्त्रवाद भी वहाँ पहुँचा था और तान्त्रिक साधना का भी प्रचार था। किसी विशेष स्तोत्र या मन्त्र की आवृत्ति पर विश्वास होने के कारण धारणी और स्तोत्र भी चीनी अक्षरों में लिखे जाने लगे। चीनी भाषा में वर्णमाला नहीं है, तो भी ध्वनि-सादृश्य लेकर चीनी शब्दों में ये सब चीजें लिखी गईं और एक नई शैली से चीनी अक्षरों में लिखित ९ स्तोत्र पाए जाते हैं। इन्हें पुनः संस्कृत करने में बैरन् होलस्टाइन ने सब से पहिले हाथ दिया और तिब्बती अनुवाद के सहारे किएन्-चुइ-फा-त्सन् अर्थात् गण्डिस्तोत्र का मूल संस्कृत में उद्धार किया। पीछे उन्होंने और एक स्तोत्र का उद्धार किया और डा० सिल्वाँ लेवी ने तीन का। अभी तक ऐसे और चार स्तोत्र—आर्यतारास्तोत्र, अवलोकितेश्वर स्तोत्र, मञ्जुश्री स्तोत्र और वज्रपाणि स्तोत्र बाकी हैं, जिनके उद्धार का काम चल रहा है।

ऊपर बौद्ध ग्रन्थों की जितनी चर्चा हुई उससे यह धारणा हो सकती है कि सिर्फ बौद्ध धर्म की ही पोथियाँ बाहर पहुँची हैं। ऐसी बात नहीं है। राजकुमार चिन्-किउ-चिङ्ग-शेङ्ग ने खोटान जाकर आयुर्वेद पढ़ा था और गुरु से कुछ पोथियाँ भी ली थीं। उस अञ्चल से नवनीत नामक आयुर्वेद की एक पोथी भी मिली है, जिसकी चर्चा पीछे को जायगी। चीन में विद्याधर पिटक ग्रन्थ था, जो कहा जाता है कि नागार्जुन का था और इस नाम से अनुमान किया जाता है कि वह शास्त्र मन्त्रविद्या और रसायन का रहा होगा। भारतीय ज्योतिष और गणित का भी चीन पर काफी प्रभाव पड़ा था। ईत्सिङ्ग ने शुभकर से ज्योतिष पढ़ा था और चीन सम्राट् के कथनानुसार चीनी पञ्चाङ्ग का पुनः संशोधन किया था। लेकिन दुःख की बात है कि ये सब ग्रन्थ दुर्लभ हो गए हैं। दर्शन-शास्त्र में भी सिर्फ बौद्ध दर्शन ही नहीं, परमार्थ भाष्य-सहित ईश्वरकृष्ण की सांख्य-कारिका भी ले गए थे और उसका अनुवाद भी किया था। कुछ विद्वानों का मत है कि सांख्य-कारिका बौद्धमत का ग्रन्थ है। अश्वघोष, कुमारलात इत्यादि के काव्य ग्रन्थ भी चीन गए थे, जिनका अनुवाद चीनी भाषा में मिलता है।

सारनाथ का विश्व विख्यात मन्दिर

मूलगन्ध कुटी विहार

श्री अनन्त रामचन्द्र कुलकर्णी

यदि सच्चा सुख क्या है ? मनुष्य जानना चाहे तो उसे एक बार सारनाथ अवश्य आना होगा । इतना स्वच्छ, सुन्दर, शांत और दर्शनीय स्थान शायद ही कहीं मिलेगा । यह जगद्विख्यात स्थान बनारस शहर के उत्तर पाँच मिल दूर स्थित है । यह एक सजीव तथा पवित्र क्षेत्र है । यहाँ न केवल भगवान् बुद्ध या सम्राट् अशोक दर्शकों से काना-फूँसी करते हैं, प्रत्युत यहाँ की एक-एक ईंट या पत्थर का प्रत्येक खण्ड तक काना-फूँसी करता है और कहता है—"ऐ भारत ! तू अभी तक कैसे सो रहा है ? क्या तू इस स्थान का महत्त्व तथा महात्म्य नहीं जानता ? उठ और अपने गत वैभव का स्मरण कर । जिस महान् विभूति ने इस स्थान को इतना पवित्र कर दिया है, उस भगवान् गौतम बुद्ध को भारत में लाने के लिये कटिबद्ध हो जा !"

यह वही स्थान है, जहाँ आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान् बुद्ध ने धर्म का बिगुल बजाया था, जिसकी आवाज आज भी संसार में व्याप्त है । अतः यह कहने में कोई अतिशयोक्ति न होगी कि सारनाथ का वैभव भारत के गौरव की चरम सीमा है ।

सारनाथ का महत्त्व

जब प्रथम भगवान् बुद्ध ने यहाँ पर धर्मचक्र प्रवर्तित किया, तब उन्होंने कहा—'हे भिक्षुओ ! बहुजन हितार्थ, बहुजन सुखार्थ, लोक पर दया करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के कल्याण के लिये, हित के लिये, सुख के लिये इस धर्म का प्रचार करो । आरम्भ में कल्याणकारक, मध्य में कल्याणकारक और अन्त में कल्याणकारक धर्म का अर्थ-युक्त भाव से प्रचार करो, प्रचार करो !' इस धर्मचक्र को सम्राट् अशोक ने एक प्रबल गति दी । महाराज अशोक ने इस चक्र को अपना राज्य-चिह्न बनाया था और इसीलिये इसको हम "अशोक-चक्र" भी कहते हैं । इस धर्म के प्रसारार्थ सम्राट् अशोक ने अपने सुपुत्र को तथा सुपुत्रियों को बाहर के देशों में भेजा था और इसी कारण इस धर्मचक्र का प्रभाव समस्त विश्व पर पड़ा है । इस चक्र ने करीब-करीब पूरे एशिया-खंड को पूर्णतया जीत लिया है और समस्त सभ्य संसार पर अपनी अमिट छाप लगा दी है । सम्राट् अशोक के विषय में सुप्रसिद्ध अँग्रेज इतिहासकार श्री एच. जी. वेल्स कहता है कि "सम्राट् अशोक संसार में एक तारे की तरह चमक रहा है, जिसके गुणगान गंगा से लेकर वोल्गा नदी तक आज भी असंख्य नर-नारी मुक्त कंठ से करते हैं ?" संसार के सभी इतिहासकार एक स्वर से कहते हैं कि सम्राट् अशोक के बराबर संसार में दूसरा कोई सम्राट् नहीं हुआ । अशोक के समय को आज बाईस सौ वर्ष बीत चुके हैं । इस अवकाश में इस संसार में तलवार से हजारों राज्य बने और नष्ट हो गये परन्तु सम्राट् अशोक ने जो भगवान् बुद्ध का साम्राज्य निर्माण किया, वह अभी तक अमिट चला आ रहा है । यह भारत के लिये कितने अभिमान की बात है । भारत ने भी आज भगवान् बुद्ध के "धर्मचक्र" को अपना राज्य-चिन्ह बनाया है । आज हम आशा करते हैं कि केवल भारत ही नहीं, अपितु समस्त विश्व बुद्ध को अपनायेगा । सम्राट् अशोक का व्यक्तित्व समझे बिना सारनाथ का महत्त्व हम अच्छी तरह नहीं समझ सकते । इसलिये सम्राट् अशोक का थोड़ा-सा परिचय अवश्यक समझ, यहाँ हमने दिया है ।

आदर्श-प्रतीक

इन सब बातों से पता लगेगा कि सारनाथ केवल भारत या बौद्ध-जगत् का ही नहीं, अपितु समस्त विश्व का

एक सांस्कृतिक केन्द्र है, क्योंकि यहाँ पर केवल भारत या वल सीलोन, बर्मा, चीन, स्याम, तिब्बत, जापान, मंगोलिया इत्यादि बौद्ध-जगत् से ही नहीं, किन्तु अमेरिका, इंगलैण्ड, फ्रांस आदि पाश्चात्य-जगत् से भी कई यात्री इस वित्र स्थान को देखने आते हैं। इस दृष्टि से सारनाथ का द्ध मन्दिर सचमुच एक मानव-मन्दिर है—यह बिलकुल र्विवाद सत्य है। यहाँ पर बौद्ध हिन्दू, ईसाई, मुसलमान, रसी आदि सभी धर्मों के लोग आते हैं और भगवान् द्ध के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पण कर प्रसन्न-चित्त जाते । इन सब का आना बिलकुल स्वाभाविक भी है, ोंकि भगवान् बुद्ध ने तो मानव धर्म या मानवता का ही ार किया। अतः यहाँ पर धर्म-भेद नहीं, जाति-भेद हीं, और छूआ-छूत नहीं। और सबसे बड़ी बात यहाँ पर ह है कि मनुष्य किसी के जाल में या चंगुल में नहीं पड़ते क पैसा यहाँ रखो," "एक पैसा यहाँ चढ़ाओ"। इस ं में इन सब बातों का बिलकुल अभाव होने से यहाँ वातावरण अति शुद्ध और पवित्र है और यह बिलकुल ाभाविक भी है। आप जब भगवान् बुद्ध के सानिध्य में ते हैं, तो आपको गंदा वातावरण कहाँ दीखेगा?

आप जब प्रथम बनारस से यहाँ पर आते हैं—और ः बहुत से लोग बनारस से होकर ही यहाँ आते हैं— आपको दोनों स्थानों के वातावरण में महान् अन्तर खाई देता है। बनारस का वातावरण बाजार का वाता- मालूम होता है, तो यहाँ का वातावरण शान्त-विचार वातावरण है।

स्थापना

सारनाथ में प्रवेश करते ही यहाँ का सार मूलगंध विहार मिलता है। यह भगवान् बुद्ध का भव्य मंदिर १९३३ में बनकर तैयार हुआ था। महाबोधि सभा की पना सिंहल के पुण्य स्मरण अनागारिक धर्मपाल जी ने त में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के उद्देश्य से ई० १८९३ कत्ते में की। आज भारत में इस संस्था की कई यें हैं। कलकत्ता तो इस सभा का प्रधान केन्द्र ही नई दिल्ली, बम्बई, मद्रास, सारनाथ, गया, बुद्धगया, र आदि शहरों में इसकी शाखायें हैं। यह संस्था सद्धर्म-प्रचार का स्तुत्य काम बहुत अच्छी तरह से कर रही है और इसी कारण पुण्य स्मरण धर्मपाल जी तथा महाबोधि सभा भारत की जनता के धन्यबाद के पात्र हैं। मूलगंध कुटी विहार के सामने भारत के सुप्रसिद्ध सेठ दानशूर राजा बलदेव दास बिरला ने समस्त आर्यधर्मियों के लिए एक भव्य धर्मशाला बनवाकर उसे महाबोधि सभा को सौंप दिया है। धन का उपयोग इससे अच्छा क्या हो सकता है?

मूलगन्ध कुटी विहार में प्रवेश करने के पहले हम मूलगन्ध कुटी का अर्थ समझ लें। मूल अर्थात् प्रथम, गंध अर्थात् सुगन्ध और कुटी-विहार अर्थात् भगवान् बुद्ध का आश्रम। इसका अर्थ यह है कि बुद्धत्व प्राप्त होने पर भगवान् बुद्ध ने इस विहार में वास किया और यहीं से अपना अमर सन्देश—धर्मचक्र प्रवर्तित कर—संसार को दिया और उससे संसार में सुगन्ध फैलाया। भगवान् बुद्ध अपनी अमर वाणी में कहते हैं :—

"न पुप्फ गन्धो पटिवातमेति,
न चन्दनं तगर मल्लिका वा।
सतञ्च गन्धो पटिवातमेति,
सब्बा दिसा सप्पुरिसो पवाति"॥

अर्थ—पुष्पों की सुगन्ध हवा की विरुद्ध-दिशा में नहीं जा सकती, परन्तु सत्पुरुषों की सुगंध हवा के विरुद्ध भी जाती है।" इसका तात्पर्य यह है कि पुष्पों की सुगंध जिधर हवा बहती है, उधर ही जाती है परन्तु सन्तों की सुगन्ध हवा के विरुद्ध भी जाती है। अर्थात् समस्त विश्व उनके प्रतिकूल रहने पर भी सन्तों की कीर्ति विश्व भर में फैलती है। कितनी यथार्थ और अर्थपूर्ण वाणी और कितनी सुन्दर उपमा! भगवान् बुद्ध की सुगन्ध से आकर्षित होकर यहाँ पर समस्त विश्व के लोग आते हैं, यही इस वाणी की सत्यता है, सफलता है। इन सब गाथाओं और उपमाओं को यहीं छोड़कर अब हम मूलगंध कुटी विहार में प्रवेश करेंगे, क्योंकि भगवान् बुद्ध के दर्शन के लिये हम उत्सुक हो गये हैं।

यथार्थ दर्शन

जब हम मूलगंध कुटी विहार में प्रवेश करते हैं, तो सर्व प्रथम हमें भगवान् बुद्ध की प्रशान्त तथा करुणामय

मुद्रा आकर्षित करती है। उस प्रशान्त मुद्रा की तरफ देख मनुष्य के विचार धार्मिक हो जाते हैं और वह मुग्ध बन जाता है। एक क्षण के लिये तो यहाँ पर मनुष्य पागल सा हो जाता है और वह सोचता है—'बुद्ध ने तो अपूर्व त्याग कर संसार को सुखी किया, परन्तु इस कार्य में मैं कहाँ तक उनके आदेश का पालन करता हूँ ? इस विचार में ही मग्न होकर मनुष्य बेचैन हो जाता है और 'बुद्धं सरणं गच्छामि' मंत्र को रटता है। किसी व्यक्ति का दर्शन करना अर्थात् उनका महत्त्व पहचानना है। इस दृष्टि से यहाँ तथागत का यथार्थ दर्शन होता है, क्योंकि यहाँ पर मंदिर की दीवार पर भगवान् बुद्ध का सारा चरित्र और उनके उपदेश का सारा चित्र रूप से अंकित किया गया है। इस चरित्र का दर्शकों के ऊपर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है और उन्हें भगवान् बुद्ध का सच्चा दर्शन होता है। इस दृष्टि से यह मन्दिर अपूर्व है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। इस मंदिर में जो हर रात को बुद्ध-वन्दना होती है, वह तो विशेष उल्लेखनीय है। सारनाथ में जो भिक्षु-संघ है, वह रात को इस मन्दिर में बुद्ध-वन्दना करता है और इससे मन्दिर का वातावरण और भी पवित्र और मंगलमय हो जाता है। इस पवित्र वातावरण से मन हटता नहीं, परन्तु विवश होकर हमें उसको दूसरी तरफ ले जाना पड़ता है, क्योंकि हमें अभी और भी बहुत कुछ देखना है।

मूलगंध-कुटी विहार के सिवाय यहाँ पर दूसरा दर्शनीय स्थान है "धम्मेक स्तूप" यह स्थान मूलगंध कुटी विहार के बिल्कुल समीप ही है। यह स्तूप बहुत पुराना है। इसे बनवाकर सम्राट् अशोक ने इस स्थान को अमर कर दिया है। धम्मेक स्तूप का अर्थ होता है धर्म का स्तूप। यह स्तूप करीब दो सौ फुट ऊँचा है और दूसरा मण्डल भी बहुत विस्तृत है। इसी के समीप 'अशोक स्तम्भ' है, जो भग्नावस्था में है। इसके ऊपर का भाग स्थानीय संग्रहालय में है। बहुत प्रसन्नता की बात है कि इसी स्तम्भ से भारत सरकार ने धर्मचक्र का चिन्ह, जिसे हम अशोक-चक्र कहते हैं, राज-मुद्रा के लिए लेकर इस स्थान का गौरव बढ़ाया है।

मूलगंध कुटी विहार के समीप ही एक चीनी मंदिर है। वह भी बहुत सुन्दर और दर्शनीय है। इस मंदिर में चीनी भिक्षु रहते हैं। इसके सिवाय यहाँ पर एक बर्मी विहार भी है।

यहाँ पर महाबोधि सभा द्वारा संचालित एक निःशुल्क प्राइमरी स्कूल, एक कालेज तथा एक दातव्य औषधालय भी हैं।

एक सच्ची घटना

मैं जब प्रथम १९४७ के मार्च मास में यहाँ आया था और उस समय जो दृश्य देखा था, उसको मैं कभी नहीं भूल सकता। उसका यहाँ उल्लेख किये बिना सारनाथ का वर्णन पूरा नहीं हो सकता। मैं उस समय बिरला-धर्मशाला में ही ठहरा था। गर्मी के दिन थे और धूप का समय था। एक कबूतरों का बड़ा समूह धूप से त्रस्त होकर मूलगंध कुटी विहार की छाया में आश्रय लेकर बैठ गया। धूप से संरक्षण के लिये कबूतरों का इस मंदिर का आश्रय लेना, तो बिलकुल स्वाभाविक ही था, परन्तु थोड़े ही समय के पश्चात् वह समूह उड़ गया और फिर धूप में घूमने लगा। मैंने सोचा क्या ये कबूतर पागल तो नहीं हैं ? छाया छोड़कर ये धूप में क्यों भटकते हैं ? ऐसा मैं सोच ही रहा था कि पुनः वह समूह मंदिर की छाया में बैठकर स्थिर हो गया। इस दृश्य से मेरा मन बहुत प्रसन्न हुआ और मैंने सोचा कि क्या भारत के सुपुत्र इस घटना से कुछ भी लाभ नहीं उठायेंगे ? इसका जवाब भारत के सुपुत्र ही दे सकते हैं।

स्वागत !

श्री भरतसिंह उपाध्याय

[इस लेख में विद्वान् लेखक ने उन सभी बन्धुओं का स्वागत किया है जो बौद्धधर्म को ग्रहण किए हैं या करने का विचार कर रहे हैं। लेखक ने बौद्धधर्म की महत्ता का वर्णन करते हुए दिखाया है कि सम्प्रति भारतवर्ष ही नहीं, किंतु समस्त विश्व के कल्याण के लिए बौद्धधर्म से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। आज का युग वेद, उपनिषद् का गुण-गान करने का नहीं, आज के युग में ''हरिजन'' आदि नवनिर्मित शब्दों को अपनाने से भी कल्याण नहीं हो सकता, कल्याण तो इसी में है कि जातीयता आदि वर्ण-व्यवस्था की श्रृंखला को भंग कर बौद्ध धर्म में सम्मिलित हो एक उत्कृष्ट न-परम्परा में सभी मिल जायँ। इस भाव से प्रेरित हो आज समस्त विश्व के बौद्ध एवं तथागत की अमृत-वाणी उन सभी बन्धुओं का हृदय से स्वागत करते हैं :—सम्पादक]

हमारे अनेक भारतीय बन्धुओं ने गत दिनों में बुद्ध-धर्म की दीक्षा ली है। अनेक वैसा करने के लिए कृत-संकल्प हैं। यह बड़े सुख की बात है। पर यह सुख त देखि निज गोत' वाली भूमिका का नहीं है। इसके कारण गम्भीर हैं।

बुद्ध-धर्म महान् है। अतः वह हृदय भी महान् है जिसमें उसके लिए श्रद्धा पैदा होती है। वह मुख वन्दनीय है जिससे निकलता है "मैं बुद्ध की शरण जाता हूँ" क्योंकि उससे कठोर वाणी नहीं बोलेगा, भौंहें टेढ़ी नहीं होगा। बुद्ध-धर्म एक अभ्यास है। सत्य (धम्म) और संयम (विनय) का वह एक संयुक्त शासन है। कोई इस धम्म-विनय में संस्कारों की अनित्यता से संविग्न होकर आते हैं, कोई शास्ता के अनन्त बल, अनन्त शील और अनन्त सौन्दर्य से श्रद्धावश खिंचे हुए और कोई समाज और जीवन की विपरीतता से खिन्न होकर भी। प्रकृति-भेद से अन्य अनेक कारण भी हो सकते हैं। पर यह निश्चय है कि कृतपुण्य प्राणी कभी कोई बुद्धाभिमुख नहीं होता।

बुद्ध-धर्म के प्रति एक नई श्रद्धा आज विश्व में प्रायः सर्वत्र दृष्टिगोचर है। जैसे-जैसे बुद्ध-वचनों का प्रकाशन हो रहा है मनुष्यों को लग रहा है जैसे जीवन की गम्भीरतम समस्याओं का समाधान वहाँ विद्यमान है। जहाँ जीवन के गम्भीर रूप की कुछ भी अवधारणा है, वहाँ बुद्ध-धर्म का आकर्षण अवश्य है। परम्परावादी धर्मों और रुढ़िग्रस्त प्रमाणप्रमेय-विषयक दर्शन-पद्धतियों से आज मनुष्य को शान्ति नहीं मिलती। वह उस अनुभव का गवेषी है जिसके छोर को भी ये स्पर्श नहीं करते। यहीं पर भगवान् शाक्यमुनि हमारे सामने आते हैं। उनका सन्देश विज्ञान-सम्मत है, बुद्धिवाद पर अवलम्बित है, फिर भी वह प्रकृति के अन्तस्तल को चीर कर उसे अप्रतर्क्य, असंप्रज्ञात ज्ञान को खोज लाया है जिसके विषय में कहा जाता है—'तमो विहतो आलोको उप्पन्नो,' अर्थात् तम नष्ट हुआ, प्रकाश उत्पन्न हुआ। विज्ञान की पहुँच के यह ज्ञान बाहर है। यही कारण है कि उरुविल्व में ध्यानस्थ उस महायोगी की अन्तर्वेधिनी प्रज्ञा का लोहा आज उन मनीषियों को भी मानना पड़ रहा है जो प्रकृति के रहस्यों को खोजने में संलग्न हैं। बर्नार्ड शॉ और योगिराज अरविन्द का तो बुद्ध-धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं। दोनों ही मौलिक विचारक और अपने-अपने क्षेत्रों में स्वतंत्र मार्ग के उद्भावक हैं। पर शरीर छोड़ते समय दोनों की आँखों के सामने बुद्ध-चित्र का होना क्या प्रमाणित करता है? क्या वह केवल एक आकस्मिक घटना है? क्या कक्ष को सजाने के लिए प्राकृत जनोचित केवल एक शोभा का उपकरण है? शॉ और श्री अरविन्द की श्रद्धा तथागत को महत्त्व प्रदान नहीं करती। बिना किसी की गवाही के बुद्ध-शासन महान् है जैसे कि सूर्य प्रकाश का पुंज है। किन्तु इन दोनों महापुरुषों

के मृत्यु-समय की यह तुच्छ घटना, जिसकी तुच्छता ही उसे इतना महत्त्व प्रदान करती है, उँगली उठाकर यह बता रही है कि भावी मानवता का आश्वासन कहाँ होगा?

हिन्दू-धर्म का चरम विकास वेदान्त माना जाता है। पर वेदान्त के अनुसार इस देश की समाज-व्यवस्था कभी नहीं की गई। यदि वैसा किया जाता तो नानात्व का संकेत होता, एकत्व की प्रतिष्ठा होती। किन्तु अपने सामाजिक विधान में हम सर्वत्र नानात्व का विस्तार देखते हैं, एकत्व की हानि देखते हैं। धर्मसूत्रकारों की परस्पर विरुद्ध व्यवस्थाओं से आज कोई सहायता नहीं मिल सकती जब कि हिन्दू-धर्म की कठोर वास्तविकताएँ ही हमारे लिए अधिक सत्य हैं। एक विशाल जन-समुदाय को, जिसे उसने 'शूद्र' कहकर द्विजातियों से अलग कर दिया है, उसके लिए उसमें क्या आश्वासन है? स्मृतियाँ उनके लिए दो जन्म का अधिकार नहीं मानतीं। इसका अर्थ यह है कि आध्यात्मिक संस्कार उनके नहीं हो सकते। इसकी कोई आवश्यकता भी नहीं मानी गई। जो फल ब्राह्मण को वेद-पाठ से मिलता है, क्षत्रिय को शस्त्र-ग्रहण से या वैश्य को व्यापार द्वारा धन-संचय करके वही फल शूद्र इन तीनों वर्णों की सेवा-उपचर्या से पा जायगा। निहित स्वार्थ प्राचीन भारत में नहीं थे, ऐसा कौन इस व्यवस्था को देखकर कहेगा? माना कि चातुर्वर्ण्य विश्वस्रष्टा की ही सृष्टि है और वह गुण और कर्म के विभाग के आधार पर ही है, पर जब तक भ्रूण माता के गर्भ में आया ही नहीं, उससे पूर्व ही उसके सामाजिक जीवन की रूपरेखा तैयार कर देना कहाँ का न्याय है? ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न ज्ञानी बनेगा, ब्रह्मवर्चस सम्पन्न होगा, क्षत्राणी से उत्पन्न शूर होगा, देश की रक्षा करेगा, वैश्य व्यापार से लाखों कमाएगा, और शूद्र? हाँ, बोलो? वह उपर्युक्त तीनों वर्णों की सेवा करेगा। क्यों? क्योंकि यही उसका 'स्वभावज' कर्म है। 'परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजं'। यह उस दर्शन की परिस्थिति है जिसे हम अपना सबसे अधिक समन्वयात्मक दर्शन मानते हैं! यदि यही समन्वय है तो देवता हमारी बुद्धि पर दया करें!

वास्तव में समन्वय वहाँ है ही नहीं जहाँ वर्णवाद को धर्म माना गया है। समन्वय तो भारत के केवल एक ज्ञानी ने किया है और वह हैं भगवान् बुद्ध, देव और मनुष्यों के शास्ता, सत्य के पारदर्शी महात्मा। उन्होंने साफ-साफ कहा है कि मनुष्य-जाति का चतुर्विध विभाजन अवैज्ञानिक है। 'वैज्ञानिक' और 'अवैज्ञानिक' इन शब्दों के आज हम बहुत अभ्यस्त हो गये हैं। पर जब हम कहते हैं कि वर्णवाद या जातिवाद को बुद्ध ने अवैज्ञानिक बताया है तो हम आधुनिकता का उन पर आरोप नहीं करते। सचमुच ही भगवान् अनेक बातों में आश्चर्यजनक रूप से आधुनिक हैं। वर्णवाद के विरुद्ध उन्होंने जो तर्क किया है वह जीव-विज्ञान से लिया गया है। जिस प्रकार वनस्पतियों में या पशुओं में नाना जातियाँ हैं, वैसे मनुष्यों में नहीं पाई जातीं। जैसे गाय भैंस से भिन्न है, या आम बबूल से विभिन्न है, वैसी विभिन्नता मनुष्य-मनुष्य की नहीं है। मनुष्य की विभिन्नता उसकी अपनी बनाई हुई है, अपने स्वार्थ के कारण। बुद्ध को प्राणियों पर कृपा है, इसलिए सबकी समता का उपदेश वे देते हैं। यहाँ ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं रहता, क्षत्रिय क्षत्रिय नहीं रहता, वैश्य वैश्य नहीं रहता, शूद्र शूद्र नहीं रहता। सब मिलकर केवल मनुष्य रहते हैं। बुद्ध न जाति मानते हैं, न वर्ण। सभी मनुष्य-मात्र एक हैं। जैसे समुद्र में नदियाँ मिल कर एक होती हैं वैसे ही बुद्ध-धर्म में मिलकर सब मनुष्य एक होते हैं। 'अत्र होते सर्वे एकं भवन्ति' यह तो श्रुति ने भी कहा था, किन्तु व्यावहारिक रूप तो इसे केवल भगवान् बुद्ध ने ही दिया। आज भी लङ्का, बर्मा स्याम आदि देशों में जहाँ बुद्ध-धर्म एक जीवित धर्म के रूप में विद्यमान है, जाति या वर्ण का अभिशाप वहाँ नहीं है। और हम जीवमात्र के अद्वैत-तत्त्व का ढिंढोरा पीटते हुए इसे अपने यहाँ लिए हुए बैठे हैं। एक समय था जब ब्राह्मण बुद्ध को शूद्रों का उपदेशा कह कर उनका उपहास करते थे किन्तु उन्हें यह पता नहीं था कि जिसे हम सुगत का एक दोष कहते हैं वही आगे चलकर उनका सबसे बड़ा अलङ्कार होगा। कुमारिल ने कुछ निन्दा और कुछ स्तुति के साथ कहा था कि बुद्ध-शासन कुत्ते की खाल में रक्खे हुए गंगा-जल के समान है। पर भट्टपाद को यह पता नहीं था कि ज्ञानैक-

पाती साधक जन गंगा-जल को पीकर खाल को फेंक । और आश्चर्य तो यह कि यह शास्ता के आदेश के अनुकूल ही होगा, जिन्होंने 'बेड़े के समान' (कुल्लू-) धम्म का उपदेश दिया है, पार होने के लिए न पकड़ कर रखने के लिए। तृषित ज्ञानी जन सदा इस को पीकर शान्ति प्राप्त करेंगे।

आज स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद भारत का नव-विधान है। उसके अन्तर्गत प्रत्येक भारतीय नागरिक को सामाजिक अधिकार प्राप्त हैं। अतः पूछा जा सकता कि जब भारतीय विधान सबको समान अधिकार -विकास के लिए प्रदान करता है और स्थान शिक्षा की समान सुविधाएँ देता है तो फिर इन पुरानी स्मृतियों की कसी दिखाने और बौद्ध धर्म के आन्दोलन बात करने का क्या प्रयोजन है? ठीक है, यदि विधान सब समाजिक दोषों का प्रतीकार कर देता तो इसकी श्यकता नहीं होती। परन्तु अभाग्यवश वैसा नहीं है। का यदि ठीक व्यावहारिक अनुसरण हो (उसके वह बहुत मूल्य से लिखित राज-पात्र मात्र है) तो से अधिक वह यह कर सकता है कि अनेक नीची जाने वाली जातियों के व्यक्तियों को वह उच्च शिक्षा दे या उन्हें उच्च सरकारी पद प्राप्त करने में यता कर दे। किन्तु 'यह चमार है' 'यह भंगी है' प्रकार की कुत्सित भावना जो मेरे अन्दर घुसी हुई से युग-युगान्त से मैंने उत्तराधिकार रूप में पाया उसका प्रतिकार तो विधान के पास नहीं है। जी ने 'हरिजन' एक सुन्दर नाम दिया, किन्तु हरिजन हूँ' ऐसा कहने में भी आज एक तथाकथित को उतनी ही झिझक और हीनता अनुभव होती है यह कहने में कि 'मैं चमार हूँ' या 'मैं भंगी हूँ'। के जन तो सभी हैं, फिर विशेषतः शूद्र के लिए यह सुनने में उसके प्रति कुछ तो दीनता और अनवलम्बता भाव है ही। हरि तो हारे के हैं। पर शूद्र को हारा माना किसने? वर्ण-व्यवस्था ने। अतः 'हरिजन' शब्द -व्यवस्था का स्वीकार अपने आप किया हुआ पड़ा अतः न विधान और न हरिजन-आन्दोलन ही उस के भाव का कुछ प्रतिकार कर सकते हैं जिसे सहस्राब्दियों से शूद्रों के हृदयों में भर दिया गया है और जिसके कारण वे समाज में मानवोचित सम्मान प्राप्त नहीं कर सकते। वेदान्त का व्यापक प्रचार इस कार्य को कर सकता था। पर आश्चर्य कि जब वेदान्त के प्रचार की बात कहते हैं तो उसी का नाम तो बौद्धधर्म है। वेदान्त का प्रचार न तो कभी हुआ और न हो सकता है। कारण, वह रहस्यात्मक ज्ञान है, बहुतों के लिए नहीं है। उपनिषद् का ज्ञान उच्चतर है, उत्तर-मीमांसा है। कम विकसित लोगों के लिए तो वैदिक कर्मकांड है, पूर्व मीमांसा है। वेदान्त इस पृष्ठभूमि से कैसे इन्कार कर सकता है? अतः उसकी अनुपयुक्तता स्पष्ट है। यह ठीक है कि विवेकानन्द और रामतीर्थ जैसे नये वेदान्तियों ने विदेशों में वेदान्त के प्रचार की बात कही। किन्तु वह सब हीनताभिभूत देशके लिए कम से कम तत्वज्ञान के क्षेत्र में आत्म-सम्मान ढूँढ़ने के प्रयत्न के अलावा और कुछ न था। इस देश में वेदान्त का प्रचार दलितों को मानवोचित सम्मान दिलाने के लिए एक आन्दोलन के रूप में कभी किया गया हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। हम जानते हैं कि बौद्धों पर शूद्रों को उपदेश देने का आरोप लगानेवाले कुछ प्राचीन वेदान्ती ही थे और यह तो कल की बात है कि जब हरिजनों के मन्दिर-प्रवेश का आन्दोलन चलाया गया तो उसका विरोध करनेवाले और हरिजन मन्दिर में न घुसें इसके लिए अनशन करनेवाले और 'सत्याग्रह' करनेवाले कुछ तथाकथित वेदान्ती ही थे। अतः वेदान्त, अपनी सम्पूर्ण केसरी-गर्जनाओं सहित हमारा सहायक नहीं हो सकता। इसमें सन्देह नहीं कि ईसाई-धर्म ने हरिजन-बधुओं की बड़ी सेवा की, उन्हें शिक्षा दिलाई, किन्तु देश की परम्परा से उन्हें विच्छिन्न कर दिया और सम्मान भी उन्हें नहीं मिला। उनके कार्य के लिए हमें कृतज्ञ होना चाहिए पर यह कहे विना कैसे रहा जा सकता है कि जो तत्त्व-दर्शन मानव-शान्ति के लिए वे उपस्थित करते हैं वह बिलकुल अपूर्ण है। विज्ञान उसे बहुत पीछे छोड़ चुका है। ईश्वर या ईश्वर-पुत्र को गड़रिया मानकर वे मनुष्य को अधिक से अधिक भेड़ का प्रतीक प्रदान करते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि भेड़ के समान ही जो गूँगे ('एडमूक') हैं उनके अलावा यह तत्व-दर्शन किसी को आश्वासन नहीं दे सकता। उच्च भारतीय

धर्म-साधनाएँ ही समस्या का हल नहीं करतीं तो सेमिटिक धर्म क्या करेंगे ?

उपर्युक्त विचार-धारा से सोचते-सोचते यह स्पष्ट हो जाता है कि महामनीषी डा० अम्बेडकर महोदय ने बौद्ध के रूप में जो शरण-स्थान अपने और शेष भारत के लिए, विशेषतः हरिजन बन्धुओं के लिए, प्रस्तावित किया है वही एक मात्र मार्ग सच्ची सामाजिक जागृति के लिए और मानवता के आधार पर समाज-निर्माण के लिए हमारे पास बच रहता है। बौद्ध धर्म के स्वीकार से अनेक बातें होंगी। सबसे बड़ी बात तो यह है कि जिन्हें कोई आश्वासन नहीं है, उन्हें आश्वासन मिलेगा। जिन्हें ब्राह्मण सदा 'दूर, दूर' कहते रहे उन्हें कोई 'स्वागत' कहने वाला भी मिलेगा। ब्रह्मा के पैर से उत्पन्नों को कोई 'स्वागत' शब्द भी बोलेगा। कौन बोलेगा ? त्रिलोकी के शास्ता भगवान् बुद्ध ! बुद्ध स्वागत-वादी हैं। अहो, स्फूर्तिमय विचार ! बुद्ध के मुँह से सदा निकलता है 'आओ, स्वागत !' (एहि सागत)। आश्चर्य तो यह है कि बुद्ध के स्वभाव की इस विशेषता का बताना भी एक ब्राह्मण के भाग्य में बदा था। सोणदंड जानता था कि उसके वर्ण के लोग कैसे प्रचंड होते हैं। जो बुद्ध के लिए भी 'दूर खड़ा रह, शूद्र !' कह सकें उनके लिए क्या अशक्य है ? सोणदंड कुछ उदार ब्राह्मण था, इसलिए श्रमण गौतम के इस गुण का वह बहुत प्रशंसक है कि वे भगवान्, जब कोई उनके पास जाता है, तो सर्व प्रथम बोलते हैं "आओ स्वागत !" यह शब्द भगवान् छठीं शताब्दी ईसवी पूर्व ही और केवल मध्य मंडल में ही नहीं बोलते थे बल्कि यह आज भी सुना जा सकता है। इस विशाल भूखंड के प्रत्येक स्थल में और जो तुच्छ से तुच्छ और हीन से हीन प्राणी भी है उसके लिए भी भगवान् आगे बढ़ते हैं और उनके पीछे उनके शत-सहस्रशः शिष्य-शिष्याएँ, भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक-उपासिकाएँ, भगवान् के शब्द का ही अनुसरण करते हुए आज बुद्ध-शरण में आने के इच्छुकों से कह रहे हैं 'आओ स्वागत !' 'आओ स्वागत !'

'बौद्ध' का गौरवमय अभिधान धारण कर इस देश के बहुसंख्यक लोगों की हीनता-बुद्धि दूर होगी। वे हरिजन न होकर बौद्ध होंगे। बौद्ध, जिन्होंने संसार का सर्वोत्तम ज्ञानाधिकार पाया है, जिन्होंने संसार को सर्वोत्तम कला-कृतियाँ दी हैं, उच्चतम तत्त्व-दर्शन दिया है, संसार के अधिकांश भूमि-भाग को सभ्य बनाया है। वे ब्राह्मणों से किस बात में कम हैं ? ब्राह्मण निश्चय ही अपने देनों पर गर्व कर सकते हैं। उन्होंने भारत को बहुत कुछ दिया है। उनके त्याग और तपस्या के स्वयं भगवान् बुद्ध प्रशंसक हैं और ब्राह्मण पद का सबसे बड़ा आदर तो उन्होंने स्वयं अपने को 'ब्राह्मण' पुकार का किया है। यदि ब्राह्मण का आदर उनके हृदय में न होता तो वे अपने आपको 'ब्राह्मण' क्यों कहते ! 'अहमस्मि भिक्खवे ब्राह्मणो' (भिक्षुओ ! मैं ब्राह्मण हूँ) की घोषणा कर क्यों उसे एक नया गौरव और अर्थ प्रदान करते ? यह सब ठीक है और इससे अधिक भी बौद्ध ग्रन्थों के आधार पर ब्राह्मण प्रशंसा में कहा जा सकता है परन्तु उनका अभिमान, उनका वर्ण-धर्म ! इसके अनर्थ और दुष्परिणामों की परम्परा कब तक चलेगी, यह कौन कह सकता है ? पर ब्राह्मण अभिमान किस बात का करते हैं ? इस देश में प्रसूत अग्रजन्माओं से सब पृथ्वी के मनुष्य अपने-अपने सदाचार को सीखें, यह अभिमान पूर्वक उन्होंने कह तो दिया था, परन्तु इसकी सिद्धि भी कहीं हुई ? किस याज्ञवल्क्य, पराशर या वसिष्ठ से आज विश्व का कोई देश सदाचार-पाठ पढ़ रहा है ? किस देश में ब्राह्मणों के हवन-यज्ञ चलते हैं ? कहाँ-कहाँ उनके इन्द्र, अग्नि, वरुण की स्तुतियाँ गाई जाती हैं ? कहाँ उन्हें हवियाँ समर्पित की जाती हैं ? परन्तु भगवान् बुद्ध ने संयम-सम्बन्धी जिन नियमों का निर्धारण किया उनका तो सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन गोबी के रेगिस्तान में भी किया जाता है, दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों में भी किया जाता है और यहाँ तक कि अन्ध महासागर और प्रशान्त महासागर के पार देशों में भी। तुलसीदास ने बड़े गौरव से राम के इस गुण को गाया है कि उनके शील ने कोल, किरात और भील जैसी वन्य जातियों को भी सदाचारी और सभ्य बना दिया। परन्तु यदि वैष्णव कवि को उस युग में यह कुछ भी पता चल जाता कि राम के ही बुद्ध-रूप अवतार ने इस कार्य को मंगोल, तुर्क, मोई, रय,

ग, फ्लोग्, शान्, थाई आदि सहस्रों समुद्रपार और मालय पार जातियों तक बढ़ाकर विस्तृत कर दिया है, कौन कह सकता है कि भक्त-कवि की वाणी कितनी विमल धाराओं में होकर न बह उठती। वास्तविक में सभ्यता का प्रसार करने वाला बौद्धधर्म के ान अन्य कोई धर्म इस पृथ्वी पर उदय ही नहीं । ईसाई-धर्म पर उनका प्रभाव इतिहास-सिद्ध है। ण क्या कह कर उसका महत्त्व कम कर सकेंगे? जो द्ध' होंगे वे निश्चयतः ज्ञान की एक उच्च परम्परा प्रतिनिधित्व करेंगे अपेक्षाकृत उसके जो ब्राह्मण-यों में विदित है। हमारे शिव और गणेश हमें प्रिय विष्णु और ब्रह्मा के नाम हमारे लिए पवित्र हैं। कौन इन्हें लेकर साइबेरिया में शान्ति प्राप्त करेगा, कौन के नाम का जप जापान या चीन या स्याम या हिन्द-न में करेगा? पर 'नमु अमिता बुत्सु' (नमः अमित-ाय) 'नम्यो हो रेंगे क्यो' (नमः सद्धर्मपुंडरीकाय) दि की ध्वनि तो समुद्रपार भी सुनी जाती है। कौन मारे अंगिरा और वसिष्ठ को जानता है? पर बुद्ध द्वारा ापित सदाचार-नियमों को हमें देने के लिए आज सार के आधे से अधिक मनुष्य तो आर्य उपालि के त हैं और उनके नाम को अतिशय श्रद्धा और भक्ति स्मरण करते हैं। स्मरण ही नहीं करते, उन नियमों को जिनका विधान भारत के जलवायु को ध्यान में रख कर िया गया, उनके पालन का सच्चा और यथाशक्य पूर्ण विपरीत जलवायुओं और विपरीत सामाजिक परि-ियों में भी करते हैं। किस स्मृति के नियमों का लन इतनी कड़ाई के साथ अपने देश में भी होता है? जो वस्तुतः सारवान् है, उसे ब्राह्मण फूँक से नहीं उड़ा सकते। बुद्ध ने कुम्हार की तरह कच्चे घड़े नहीं बनाये हैं। उन्होंने सार का भाषण किया है और वह ठहरेगा। भारत के सारे अग्रजन्माओं ने संसार को उतना सदाचार नहीं सिखाया है जितना एक आर्य उपालि ने और आदि ब्राह्मणों की भाषा का प्रयोग किया जाय तो उपालि नाई थे। इस नाई के लिए आज विश्व का आधे से अधिक जन-समाज नतमस्तक है और बुद्ध-काल में भी बुद्धशिष्य होते थे। क्या किसी 'अग्रजन्मा' को यह गौरव प्राप्त है?

हाँ, तो जो बौद्ध धर्म स्वीकार करेंगे वे एक गौरवमयी और ब्राह्मणों से महीयसी परम्परा का उत्तराधिकार पायेंगे पर हमसे विभिन्नता पैदा नहीं होगी। विभिन्नता के लिए बौद्ध धर्म पैदा नहीं हुआ। विभिन्नता के लिए वर्ण-धर्म पैदा हुआ, जो कहता है 'तू मेरे योग्य नहीं' 'तू मेरे समान नहीं'। बौद्ध-धर्म एकीकरण के लिए था और रहेगा। माननीय डा० अम्बेडकर जैसे अपूर्व व्यक्तित्व के महापुरुष ने जिस कार्य को प्रारम्भ किया है, वह सब दृष्टियों से अभिनन्दनीय है। हम जैसे लोगों को भी माननीय डाक्टर साहब अपना विनम्र अनुगामी धारण करें। बुद्ध-धर्म के प्रसार से इस देश के निवासियों में एक नई स्फूर्ति आयेगी और तब कदाचित् इस देश की वह अवस्था भी आ सके जिसके विषय में कहा जा सके—यह जम्बूद्वीप (भारतवर्ष) काषाय चीवरों के प्रकाश से प्रकाशित है, ऋषियों (भिक्षुओं) के वस्त्रों से संचरित वायु ही इस देश की वायु है—एतरहि जम्बुदीपो कासावपज्जोतो इसिवातप्पटिवातो। तथास्तु।

बौद्ध देशों में लोकाचार

श्री गुलाबराय एम० ए०

लङ्का तथा बर्मा में शिशु जन्म के उपरान्त कुछ लोकाचार अनिवार्य हैं। सबसे बड़ा तो यह है कि बारहवें दिन शिशु का सिर धोया जाता है और मित्र मण्डल तथा सम्बन्धियों को निमन्त्रण दिया जाता है। भोजनोपरान्त सब लोग एकत्रित होते हैं। तब नामकरण की चर्चा होती है। सर्व-सम्मति के अनुसार शिशु का नाम

रक्खा जाता है । जिस दिन बालक का जन्म होता है, उस दिन का एक न एक अक्षर नाम में जरूर रहता है। तात्पर्य यह है कि उस दिन के अक्षरों में से एक न एक अक्षर से ही नाम प्रारम्भ होता है। शिशु के जन्म-दिवस पर ही उसके भविष्य का अनुमान कर लिया जाता है। यदि कोई शिशु सोमवार को जन्म ले तो ऐसा अनुमान कर लिया जाता है कि इसके स्वभाव में स्पर्धा की मात्रा अधिक रहेगी। दूसरों के सुख एवं ऐश्वर्य को सहन न कर सकेगा। दूसरों का वैभव देखकर सदा जलता रहेगा। डाह का अग्नि सदा इसके हृदय में प्रज्वलित रहेगा। यदि कोई शिशु मंगलवार को जन्म लेगा तो ऐसा अनुमान कर लिया जाता है कि इसका जन्म शुभदिवस में हुआ तथा बालक सदाचारी एवं सत्यवादी और ईमानदार होगा। यदि किसी का जन्म बुधवार को हो तो उसका स्वभाव क्रोधयुक्त समझा जाता है । ऐसा शिशु कभी हँसमुख नहीं हो सकता। इसी प्रकार सातों वारों का फलाफल समझा जाता है।

किसी का जन्म सोमवार को होता है तो उसके विषय में यह अनुमान तो पहिले से ही कर लिया जाता है कि इसके स्वभाव में डाह की मात्रा सबसे अधिक रहेगी। दूसरा अनुमान यह किया जाता है कि १५ वर्षों तक इसपर सूर्य (ग्रह) का प्रभाव रहेगा; मंगल (ग्रह) का आठ वर्ष तक। तेईसवें वर्ष से बुध का प्रभाव, इसी प्रकार सब ग्रहों का प्रभाव कुल मिलाकर १०८ वर्षों तक रहेगा। राहु तथा शनि पाप-ग्रह माने गये हैं।

बच्चों का मस्तक धोना, मंगलवार, शुक्रवार तथा शनिवार को अशुभ समझा जाता है । जब कोई बालक विहार को भेजा जाता है तो उसके केश उसके जन्मदिवस के वार को तथा मंगल और शुक्रवार को नहीं काटे जाते।

बच्चों के गले में कवच बाँधने की प्रथा बहुत ही व्यापक है। यह कवच शिशु के गले में बाँधा जाता है। कवच किसी भी धातु का बना हुआ हो सकता है। उसमें किसी प्रकार के मन्त्र-तन्त्र भरे रहते हैं। इसके विषय में यह भावना है कि जिस बालक के गले में यह कवच रहेगा उसे किसी प्रकार की पैशाचिक बाधा न होगी और वह सदा हृष्ट-पुष्ट रहेगा।

परित्र-पाठ

जब कोई व्यक्ति अस्वस्थ होता है तो उसके औषधोपचार का ढङ्ग कुछ निराला ही है। किसी पास के विहार से भिक्षु को बुलाये जाते हैं । जब भिक्षुओं का शुभागमन होता है, तो पुष्प, सुगन्धित द्रव्य तथा भोजन-सामग्री से उनका स्वागत किया जाता है । परित्र-पाठ के लिए भूमि स्वच्छ व पवित्र की जाती है । सम्बन्धी गण, मित्र वर्ग, और रोगी वहाँ एकत्रित हो जाते हैं। भिक्षु घंटों तक परित्र-पाठ करते हैं और सब लोग भक्ति-भाव से सुनते हैं। धागे का एक छोर भिक्षु पकड़ते हैं और दूसरा रोगी तथा अन्य लोग भी। परित्र-पाठ का तात्पर्य यह है "रोगी परित्र के प्रताप से जल्दी ही स्वस्थ हो जाय ।"

जब कि रोगी के बचने की आशा नहीं रहती तब निम्नांकित मंत्र का उच्चारण कराया जाता है—

बुद्धं सरणं गच्छामि।
धम्मं सरणं गच्छामि।
संघं सरणं गच्छामि।

इसके उपरान्त पञ्चशील और फिर सतिपट्ठान सुत्त का पाठ किया जाता है।

विवाह

विवाह-विधि बहुत ही साधारण होती है। इसमें धार्मिक विधि कुछ भी नहीं होती। यह केवक एक लौकिक व्यवहार समझा जाता है। वर अथवा वर के माता पिता भोजन समारम्भ की आयोजना करते हैं। सब लोग आनन्द से भोजन करते हैं। विवाह सम्बन्ध ज्योतिषी महोदय के वाक्य पर निर्भर रहता है। वर-वधू के शुभाशुभ के विषय में ज्योतिषी महोदय के वाक्य ही ब्रह्मवाक्य समझे जाते हैं। शनिवार और गुरुवार वैवाहिक कृत्य के लिये अशुभ वार समझे जाते हैं। ऐसी स्त्री जिसका जन्म शुक्रवार को हुआ हो सोमवार के दिन पैदा होने वाले पुरुष से कभी शादी नहीं होगी। इन लोगों में पर्दे की कोई कैद नहीं है। इनके यहाँ पर्दा होता ही नहीं।

मृत्यु

जब कोई परलोक सिधारता है तो उसकी आत्मा की शांति के लिये तथा उसके सुखमय पुनर्जन्म के हितार्थ भिक्षुओं को दान दिया जाता है।

तिब्बत में जब कोई रोगी मरणासन्न होता है तो रोगी की खोपड़ी इतनी जोर से दबाई जाती है कि वह फट जाती है अथवा उसके बाल उखाड़ लिये जाते हैं या उसके सिर में छोटा-सा घाव कर दिया जाता है। यह हिन्दुओं की कपाल-क्रिया का ही प्रकारान्तर समझा जाना चाहिये। लोगों का विश्वास है कि जिसकी आत्मा ब्रह्माण्ड फोड़कर निकलती है वह सीधा स्वर्गलोक जाता है।

लंका में जब कोई भिक्षु मरता है तो उसका मृत शरीर जलाया जाता है। अस्थि इत्यादि को लोग बड़ी धूमधाम के साथ चमर-छत्र हिलाते-डुलाते ले जाते हैं और अस्थि सहित सब वस्तुओं को किसी स्थान पर रख देते हैं। ये सब वस्तुएँ तथा अस्थि फिर उस स्थान से नहीं उठायी जातीं।

बर्मा में जब भिक्षु की मृत्यु होती है तो उसके शरीर को सजाते हैं और फिर श्वेत वस्त्र में लपेटते हैं। यह हो जाने पर शव पर कफन डालते हैं। एक मनुष्याकार सुवर्ण पत्र ऊपर रख दिया जाता है। शव के रखने के लिये एक पत्थर का पात्र-सा बानाया जाता है उसपर बुद्ध भगवान् के चित्र खींचे जाते हैं। यह एक इमारत में रखा जाता है जो इसी कार्य के हेतु बनी रहती है। इस भवन में मृत शरीर एक जगह कई मास तक बाँध कर रक्खा जाता है। यात्रीगण कई दिनों तक तांता-सा लगाये रहते हैं। मृत शरीर का दर्शन करके कुछ भेंट चढ़ाई जाती है। जब काफी रुपया जमा हो जाता है, तब पचास-साठ फीट ऊँचा एक शामियाना तैयार किया जाता है और शरीर को जलाकर जो अवशिष्ट रह जाता है वह सब गाड़ दिया जाता है और वहाँ पर बुद्ध भगवान् की मूर्ति स्थापित की जाती है।

इस प्रकार बौद्ध धर्म में मृतक पुरुष की स्मृति की रक्षा की जाती है।

भारत में तिब्बती बौद्ध विहार

श्रामणेर संघरक्षित

भारत बौद्ध धर्म का जन्म-स्थान है। बौद्ध-जनता के सभी महाधाम भारत में ही हैं, अतः प्रायः सभी देशवासी यहाँ रहना और इसका दर्शन करना अपना परम धर्म समझते हैं। जिस प्रकार बर्मी, सिंहली आदि बौद्धों ने भारत में अपने विहार-निर्माण किए, उसी प्रकार तिब्बती बौद्धों ने भी अपने मठ भारत में बनाये, किन्तु उनका ध्येय केवल भारत की पवित्र भूमि में वास करना मात्र था। आज भी कलकत्ता, बुद्धगया आदि स्थानों में तिब्बती विहार हैं, किन्तु यहां मैं उस बौद्ध-विहार का वर्णन करने जा रहा हूँ, जिसका निर्माण सन् १७७२ में तिब्बत के मलामा पाल-प्दान गेशेस (Pal-Pdan Geshes) के अनुरोध से भारत के प्रथम गवर्नर-जेनरल वारेन हेस्टिंग्स ने कलकत्ता के निकट गङ्गा-तीर पर कराया था।

सन् १७७४ ई० में वारेन हेस्टिंगस ने मिस्टर जॉर्ज बोगल, बी० सी० एस० की अध्यक्षता में अँग्रेजों का पहला मिशन तिब्बत भेजा। ८ नवम्बर को यह मिशन शिगाटजे से प्रायः तीस मील उत्तर देशरिपगाय पहुँचा। उसी दिन मध्याह्न में बोगल महाशय लामा द्वारा आमन्त्रित किये गये। आङ्गल देशीय राजदूत ने अपनी पत्रिका में, जो १८७६ ई० तक प्रकाशित हुई थी टेशू लम्पू के गद्दी के विषय में अपना प्रथम विचार अत्यन्त ही विशिष्ट रूप में प्रकट किया है:—

"तेशू लामा लग-भग ४० वर्ष के हैं। उनका कद नाटा, तथा शरीर पूर्ण हृष्ट-पुष्ट है। उनकी शारीरिक बनावट अन्य तिब्बतियों की अपेक्षा अत्यधिक सुन्दर है और उनकी बाहें योरोपियनों की तरह सफेद हैं। उनके बाल

गहरे काले रङ्ग के छोटे छोटे, तथा उनकी दाढ़ी और गल-मूँछें कभी बड़ी नहीं होने पातीं। उनकी आँखें छोटी और काली हैं। उनकी मुखाकृति अत्यन्त ही हँसमुख और सुशील जान पड़ती है।........मैंने उनके चरित्र में उन अवगुणों को ढूँढ़ने की कोशिश की, जो मानवता से अविभेद्य हैं, परन्तु वे इतने बड़े विश्व-प्रेम-भाजन हैं कि मुझे अपने प्रयास में सफलता नहीं मिली; और मैं ही क्या, कोई भी आदमी—उनकी निन्दा करने का ध्यान तक नहीं कर सकता।" (पृ० ८४)।

इसी तरह लेखक ने तिब्बत के बड़े लामा के विषय में अत्यन्त ही मनोरञ्जक बातें लिखी हैं—

"टेशू लामा प्रायः ४० वर्ष के हैं। बड़े ही प्रसन्नचित्त एवं मिलनसार स्वभाव के साथ-साथ वे अत्यन्त ही—तीक्ष्ण बुद्धि के हैं। वे अपने कार्यों के स्वयं मालिक हैं। उनके विचार अति उदार एवं प्रशस्त हैं और वे अपनी महिमा के प्रवरण में उस रूप में सोचते हैं जैसे कि बहुधा बड़े आदमी। उनका प्रशान्त चरित्र तथा विचार-विनिमय, जो स्वभावतः नम्र एवं मानवीय रहता है, लड़ाई तथा खूनखराबियों से बराबर पराङ्मुख रहता है। वे प्रायः प्रत्येक झगड़े के समाधान में अपनी समाधि का प्रश्रय लेते हैं। बातचीत में वे अत्यन्त ही साफ एवं निष्कपट हैं। वे न तो खुद ही खुशामदी हैं और न दूसरों द्वारा स्वयं किये जाने पर उसे पसन्द ही करते हैं। वे उदार एवं दानी हैं। वे इतने विश्वासी हैं कि तिब्बती कलमुक और कतिपय चीनी उनकी पूजा करते हैं। उनके चरित्र-चित्रण का जो रूप मैंने सामने रक्खा है, वह वास्तव में अत्यन्त ही संक्षिप्त है, परन्तु मैंने उनके प्रत्यक्ष आधार पर, कश्मीरियों तथा फकीरों द्वारा जो चरित्र निरूपण किया है, वह वस्तुतः अत्यन्त प्रगाढ़ रङ्ग का है। मैं तो स्वयं यह स्वीकार करता हूँ कि मुझे आज तक कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिला है जो इतने थोड़े समय में मुझे इतना प्रभावित किया हो और जिसके सामने अपने हृदय का अनुराग-पट इसकी बराबरी में आधा भी खोल रक्खा है।" (पृ०-१३२-१३३)।

जिस दिन बृटिश मिशन देशरिपगाय पहुँचा, उस दिन बोगल महाशय की लामा के साथ राजनैतिक विषयों पर बातें हुईं। युवक बालचर प्रतिनिध और तिब्बती प्रधान के नव-मैत्री-सम्बन्ध में कार्यक्षमता की साक्षी पत्रिका के वे पन्ने हैं, जिनमें उनकी प्रशंसा में लेखनी फि चुकी है। पंचम लामा के लिये तो यह कोई नवीन बा नहीं थी कि अपने नव-मित्र के समक्ष अपने हृदय का उद्गा खोल कर रख दें। ११ नवम्बर को अपनी दूसरे बार के बातचीत के सिलसिले में आपने कहा—"मैं चाहता हूँ कि गंगा-तीर पर एक स्थान हो, जहाँ मैं अपने आदमियों को प्रार्थनार्थ भेज सकूँ। मैं गवर्नर साहब को भी इस विष में लिखने को सोच रहा हूँ। आप से अनुरोध है कि आप इस बात की सहमति दें।" बोगल महाशय ने उत्तर में कहा कि जैसा मैं जानता हूँ गवर्नर साहब मैत्री-वृद्धि में सक्रिय योग दे रहे हैं और उन्हें इस बात का विश्वास दिलाया गया है कि वे इस पर या अन्य किसी भी अवस पर अपने अधिकारानुसार उन्हें कृतार्थ करने में सम पायेंगे। (पृ० १३८)।

बृटिश मिशन के पहुँचने के एक महीना बाद टेशू लामा अपने परिजनों सहित जार्ज बोगल के साथ देशरिप गाय से तेशूलुम्बू को चले, जिसको वे गत तीन वर्षों से चेचक के प्रकोप से बचने के हेतु छोड़ दिये थे। भ्रमण की बाहुल्यता इतनी थी तथा पंचम लामा अपनी दीर्घ अनु स्थिति के पश्चात्, निज राजधानी के नागरिकों द्वारा विवश हो भेंट लेने में इतने व्यस्त थे कि एक महीना से ज्यादे दि तक बोगल महाशय से भेंट न कर सके। अन्त में जब दर्शकों की भीड़ कम हुई तो १८ जनवरी १७७५ ई० में दो मित्र उनसे बातचीत करने को तत्पर हुये। बोगल महाशय लिखते हैं—'टेशू लामा ने टेसूलुम्पू जाने पर मुझसे उन बातों की पुनरावृति की जिसे वे गंगा नदी के किनारे एक धार्मिक गृह बनाना चाहते थे। मैंने उन्हें विश्वास दिलाया कि उनकी मनोकामना की पूर्ति में मेरा सहयोग अवश्यंभावी है।"—(पृ० १४६) अन्य कई अवसरों पर उन्होंने इस विषय में पुनः प्रकाश न डाला। ४ अप्रैल को बोगल महाशय के तेसुलुम्पू से प्रस्थान करने से कुछ दिनपूर्व तिब्बत के प्रधान लामा ने उन्हें वह मूर्ति तथा वस्त्र दिखलाया, जो यथाशीघ्र तैयार होने पर कलकत्ता विहार में भेजे जाने वाले थे।

जार्ज बोगल पंचन लामा के कुटुम्ब-परिवार तथा अन्य स्वजन-मित्रों से प्रेम एवं आदर करना सीख कर ७ अप्रैल को तेसुलुम्पू से विदाई लिये। वे लिखते हैं—

"तेसु लामा योरोप के शीत-काल का वर्णन सुनकर परम प्रसन्न हुए तथा मेरे प्रति शुभ-कामना करते हुये कहे कि वे स्वर्गदूत के पास उनके लिये प्रार्थना करनी नहीं भूल सकते। मैं वास्तव में किसी से इतना प्रभावित न हुआ था। जो कुछ लामा की प्रसन्नता एवं साधुता का पाठ, मैंने उनसे सीखा है, और जो कुछ सहानुभूति तथा आदर मैंने उनसे पाया है, वह मुझे सदा स्मरण रहेगा। काश! मैं भी मनुष्य की सेवा में उतने हद तक पहुँच सकता! अन्तिम क्षण मेरी उदासी का कारण समझकर उन्होंने मुझे प्रसन्न करने के लिये मुझसे पुनः मिलने की अभिलाषा प्रकट की। उन्होंने मेरी गर्दन पर एक रूमाल फेंकी तथा अपना हाथ मेरे माथे पर रक्खा और मैं वहाँ से विदा लेकर चल दिया।" (पृ० १७१)

पंचम लामा की यह मनोकामना पूरी हुयी। ५ दिसम्बर १७७४ ई० को जॉर्ज बोगल ने गर्वनर से इस विषय बातें की। और इधर पंचम लामा स्वयं बोगल महाशय तेहवीं लुम्पू छोड़ने के बाद इस विषय में पत्र लिख रहे थे। "लामा की इच्छा को जान कर वारेन हेस्टिङ्गस शीघ्र ही यथायोग्य अनुमति देकर हुगली नदी के किनारे एक बौद्ध विहार के निर्माण की योजना प्रारम्भ कर दी। ही विहार बन कर तैयार होगया उन्होंने लामा को इसके विषय में पत्र लिखा। परन्तु उससे पहले ही लामा बुद्ध मूर्तियाँ प्रतिष्ठापनार्थ भेज दी थीं। टेशू लामा को विहार योजना की सफलता के विषय में वर्णन करते हुये वारेन हेस्तिङ्गस ने लिखा है—"यह विहार इस देश में आपकी ख्याति का प्रतीक बनेगा और साथ ही साथ यह हम लोगों के बीच की मित्रता की सुदृढ़ शृंखला को और भी सबल बनायेगा। आशा है आप इसको विश्वास का प्रतिरूप तथा जिस उपकार का मैं आभारी हूँ, उसका ध्यान रखेंगे।' (पृ० १४६) बोगल महाशय के हस्तलेख के सम्पादन में जो अलकज़ेण्डर डालरम्पले का समझा जाता है, हमें सूचित करता है—

"गङ्गा के किनारे कलकत्ता के बाहर एक भू-भाग खरीद कर उन्हें दे दिया गया। बोगल महाशय के निरीक्षण में लामा ने उस स्थान पर एक विहार तथा एक घर बनवाया। जहाँ तक मेरा ख्याल है तिब्बत और भूटान के आदमियों का यह निरन्तर अड्डा बन गया और मैंने भी इस समय ऐसा ही निर्णय किया है (पृ० १३८)।

१२ नवम्बर १७८० ई० को पंचमलामा जब चीन के बादशाह से मिलने के लिये जा रहे थे, तो रास्ते में पेकिन में एक गोपनीय घटना के फलस्वरूप उनकी मृत्यु हो गई। उनका मित्र जॉर्ज बोगल उसी साल ३ अप्रैल को बीमार हो मर गया। परन्तु वारेन हेस्टिङ्गस उन लोगों को विदा कर निज देश-वासियों द्वारा अभियोग एवं कलङ्क की कठिन यंत्रणा सहन करने के लिये चिरकाल तक जीते रहे। कलकत्ता का निकटवर्ती वह बौद्ध विहार उन तीनों के परिश्रम का फल था। यद्यपि अब उसका वह प्रथम रूप न रह पाया है और वह वर्तमान की एक अज्ञात-वस्तु हो गया है, फिर भी उन तीनों की अमर कीर्ति निःसन्देह ही प्रशंसनीय है।

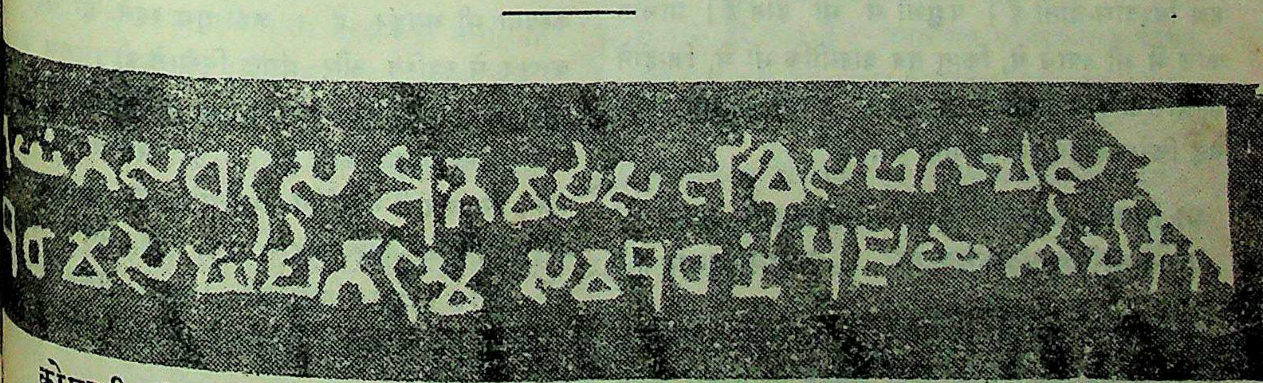

कोसम्बी की खोदाई से प्राप्त एक शिलालेख जिससे घोशिताराम का पता चला है।

पक्षी

श्री सूर्यनारायण चौधरी

रोते हुए शिशु तुम्हें देखकर खिलखिला उठते हैं। शोकाकुल मनुष्य भी तुम्हारे बीच जाकर अपना शोक भूल जाते हैं। कवि अपनी रचनाओं में स्थान स्थान पर तुम्हारा वर्णन कर अपने पाठकों का श्रम दूर करते हैं, तुम्हारी उपमाओं से अपनी कविताओं को सजीव और सुन्दर बनाते हैं। तुम्हारा चित्र-विचित्र रंग-विरंगा रूप कितना आकर्षक और मनोहर है! प्रातःकाल में नींद से उठाने वाला तुम्हारा मधुर संगीत कितना सुख-दायक होता है! तुम्हारा उड़ना और थिरकना हमें जो आनन्द देता है वह नर्तकियों के नृत्य में नहीं है। नाट्य-गृहों और सिनेमा-घरों को छोड़ कर यदि हमारे युवक उषा या संध्या की आभा से रञ्जित आकाश के नीचे हरित वनस्पतियों से विभूषित एवं कलकल-वाहिनी विमल जलवाली-नदी से आलिङ्गित भूमि पर तुम्हारे रूप संगीत और नृत्य में आनन्द पाने लगें तो इससे दिवंगत बापू की भी आत्मा को शान्ति मिले।

मैदान और उद्यान में हमारी आहट पाते ही तुम उड़ जाते हो। हम तुम्हारे समीप जाना चाहते हैं, तुम हमसे दूर भागते हो। क्या परतन्त्रता के पिंजड़े से हाल में ही निकलने के कारण हमारी दुर्गन्धि तुम्हारे लिए असह्य होती है? नहीं, यह तो हमारा ही अपराध है कि तुम हमसे डरते हो। दूर रहना चाहते हो। अनादि काल से हमने छल-कपट के द्वारा तुम्हारा बध बन्धन किया है। हम विश्वास-घाती हैं। पशुओं से भी हीन हैं। प्राचीन काल में भी व्याध थे, किन्तु तब बाल्मीकि भी थे, जिन्होंने कामासक्त क्रौंच-युगल में से एकके बध से व्यथित होकर यह चिरस्मरणीय श्लोक गाया था:—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

व्यास ने देखा था कि तुमने निश्चल तपस्वी के जटा-कलाप में तब-तक निवास किया जबतक कि तुम्हारे अण्डों से बच्चे जन्म लेकर उड़ने लायक न हो गये। कितना सुख-दायक था वह राज्य जब परम दयालु सम्राट् अशोक ने राज-घोषणा द्वारा तुम्हारे वधका निषेध किया था। अश्वघोष को विदित था कि बुद्ध-काल में पशु-पक्षी भी काषाय-वस्त्र पर विश्वास करते थे। बाणभट्ट का भी साक्ष्य विचारणीय है। वे विन्ध्य-वन में स्थित आचार्य दिवाकर-मित्र के आश्रम का वर्णन करते हुए लिखते हैं:-

"पशु-पक्षी तक भदन्तकी उपासना कर रहे थे, बौद्ध धर्म के उपदेश में निपुण एवं परम उपासक सुग्गे भी (वसुबन्धु-कृत अभिधर्म-) कोशका उपदेश दे रहे थे। शिक्षा-पदों के उपदेश से शान्ति पाकर शारिकाएँ धर्म-चर्चाएँ कर रही थीं। अनवरत उपदेश सुनने से उल्लू भी आलोक पाकर बोधिसत्त्व के जातकों का जप कर रहे थे।"

करुणा, मैत्री और प्रेम की वह धारा अब कहाँ चली गई! मैदानों और जंगलों में घूम घूमकर शिकारी तुम्हारा वध-बन्धन कर रहे हैं। तुम सुन्दर कोमल मनोहर और स्वतन्त्र हो, हम तुम्हें पकड़कर पिंजड़े में बन्द करते हैं। बन्दी बनाकर तुम्हें हम पाते नहीं, खोते हैं। अहो! हम शिशु से भी अबोध हैं। मांस के लोभ से तुम्हारा वध करते हैं! तुम तृणों और फलों को खाकर इतने फुर्तीले और स्वस्थ हो और हम तुम्हारा मांस खाकर भी रोगी, अस्वस्थ और आलसी ही हैं। अहो! हमारा यह अज्ञान!

जिस स्थल में तुम नहीं रहते हो उसकी नीरवता की कल्पना भी भयङ्कर है। जहाँ तुम रहते हो वहाँ अपने कलरव से स्वस्ति और मंगल बिखेरते हो। तुम हमारी भूमि और वनस्पति के विभूषण हो। तुम निर्मुक्त गगन में स्वच्छन्द विहार करते हो। हे स्वतन्त्रता के प्रतीक पक्षी, हम अपनी नवार्जित स्वतन्त्रता के अनुरूप तुम्हारे प्रति मानवोचित सद्व्यवहार करें, दया और प्रेम प्रकट करें, तुम्हारा विश्वास प्राप्त करें। तुम्हें पहचानें, तुम्हारे सम्पर्क में रहकर अद्भुत आनन्द प्राप्त करें, यही हमारी मनोकामना है।

बौद्ध-जगत्

अग्रश्रावकों की अस्थियाँ सिकिम-भूटान को

भगवान् बुद्ध के अग्रश्रावक सारिपुत्र और मौद्गल्यायन की पवित्र अस्थियाँ गत २२ फरवरी को कालिंग- गईं और वहाँ से सिकिम तथा भूटान जायेंगी। किम तथा भूटान की जनता के विशेष आग्रह पर थियाँ बड़े समारोह के साथ ले जाई गईं। अस्थियों लेकर भारतीय महाबोधि सभा के सदस्यों एवं कार्य- र्ताओं का एक मण्डल गया है। अस्थियों के लिए ल, तिब्बत, पाकिस्तान और उड़ीसा के बौद्धों से भी नायें प्राप्त हैं, वहाँ के बौद्ध भी इन पवित्र अस्थियों दर्शन के लिए बड़े ही उत्सुक हैं। पूर्वी पाकिस्तान- कार तो अस्थियों के स्वागत के लिए पूरी राजकीय री कर रही है।

अस्थियों का एक भाग बर्मा को—गत २० जन- को अग्रश्रावकों की अस्थियों के एक भाग को भार- महाबोधि सभा की ओर से बर्मा को प्रदान किया, जिसे लेने के लिए बर्मा के श्री ऊ विन आये थे। कत्ते में बहुत बड़ा उत्सव हुआ और गवर्नर-हाउस से रोहपूर्वक वह भाग बर्मा-सरकार को प्रदान किया, जो एक विशेष वायुयान द्वारा रंगून ले जाया गया। ं २१ जनवरी को बहुत बड़ा उत्सव हुआ। उत्सव बोलते हुए बर्मा के प्रधानमंत्री श्री थाकिन नू ने कहा— वर्ष जब अस्थियाँ बर्मा आई थीं, तब उनके प्रभाव र्मी जनता तथा सरकार को बहुत शान्ति का अनुभव था, इसी हेतु बर्मा सरकार ने उनके एक अंश को तीय महाबोधि सभा एवं भारत सरकार से माँगी थी, हमारे भाग्योदय रूप में यहाँ सामने स्वर्ण-मंजूषा में है।" इस अस्थि-अवशेष को बर्मा के एक सुप्रसिद्ध स्तूप स्थापित किया जायेगा, जिसके निर्माण में लगभग बीस रुपये व्यय होंगे।

हस्तिनापुर बौद्ध-नगरी—भारत सरकार के पुरा- विभाग की ओर से इस वर्ष हस्तिनापुर की खोदाई रही है। अब तक की खोदाई में वहाँ नव कालों में ी होने के अवशेष मिले हैं, पुरातत्व-विशेषज्ञ महाभा- युगीन स्तर का पता लगा रहे हैं, किन्तु वे उसे न पाकर बौद्ध कालीन ही स्तरों एवं अवशेषों को पा रहे हैं। इस खोदाई में ढाई हजार वर्ष पुरानी मुद्रायें, सिक्के, भगवान् बुद्ध की मूर्ति, टूटी तलवारें और मिट्टी के खिलौने मिले हैं। लोगों का अनुमान है कि हस्तिनापुर एक विशाल एवं प्रसिद्ध बौद्ध-नगरी थी।

आसाम को बर्मी सद्भावना मण्डल—श्री ऊ पञ्ञावंस के नेतृत्व में चार सदस्यों का एक बर्मी सद्भावना मण्डल गत फरवरी मास के मध्य भाग में आसाम आया। वह उत्तरी आसाम के उन बौद्ध विहारों तथा सांस्कृतिक केन्द्रों का भ्रमण किया जो भू-कम्प से क्षतिग्रस्त हो गये हैं। सद्भावना मण्डल आसाम के बौद्ध संघ को बुद्ध-प्रतिमाएँ, चीवर तथा छाता भेंट किया।

अजमेर में तरुण बौद्ध समिति की स्थापना—गत नवम्बर मास में जब भिक्षु जगदीश काश्यप एवं भिक्षु वीरधर्मवर अजमेर गये थे, उसी अवसर पर अजमेर में "तरुण बौद्ध समिति" की स्थापना हुई थी। सम्प्रति उक्त समिति बड़े उत्साह एवं उल्लास के साथ अपना कार्य आगे बढ़ा रही है। समिति के मंत्री उपासक श्री रामसिंह छावरा अपने साथियों के साथ बालकों को दैनिक शिक्षा भी दे रहे हैं। आपके पिता श्री चौ० यादराम ने छात्रों के लिए अपने मकान का एक कमरा भी दे रखा है। प्रत्येक पूर्णिमा को बुद्ध-पूजा का विशेष आयोजन रहता है, योग्य विद्वानों के भाषण एवं कविता-पाठ आदि का कार्यक्रम भी रहता है। अब अजमेर में इस समिति से नव-जीवन का संचार हो चला है। उदारचेता कार्यकर्त्तागण पूर्णिमा को बुद्ध-पूजा एवं बुद्ध-कीर्तन के पश्चात् निजी व्यय से 'खीर' का प्रसाद वितरण करते हैं। समितिने अजमेर में एक वृहद् बौद्ध पुस्तकालय के खोलने का भी आयोजन किया है।

लंका के महियंगण चैत्य से अद्भुत वस्तुयें प्राप्त—लंका के महियंगण चैत्य से—जहाँ पर कि भगवान् बुद्ध सर्वप्रथम अपने लंका-गमन में पधारे थे—अद्भुत वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। वहाँ की खोदाई में लगभग दो हजार वर्ष प्राचीन चार फुट वर्गाकार एक अद्भुत धातु-गृह प्राप्त हुआ है। धातु-गृह के चारों कोनों में संरक्षक

देवताओं के चित्र बने हुए हैं, जो बड़े ही आकर्षक हैं। ये देवता अपनी पत्नियों के साथ तलवार भाँजते हुए तथा उछलते हुए घोड़ों पर सवार हैं। लंका की खोदाई में प्राप्त यह प्रथम वस्तु है। इस अद्वितीय धातु-गृह की चारों दीवारों के चार ताखों में खुदा हुआ भगवान् बुद्ध का चित्र भली प्रकार सुरक्षित दशा में है, जिसमें बोधि-वृक्ष के नीचे मार-कन्यायें भगवान् को अपनी ओर आकर्षित करने की कोशिश कर रही हैं।

यह चित्रकारी बहुत ही श्रेष्ठ-कलात्मक विशेषताओं की द्योतक है, जिसमें विशेष कर एक स्त्री के नृत्य-आसन का चित्र उल्लेखनीय है। कहते हैं कि यह चित्रकारी पन्द्रहवीं शताब्दी के पूर्व की है।

खोदाई में उत्तर भारतीय पाल शैली की बनी एक बड़ी ही भव्य भगवान् बुद्ध की मूर्ति प्राप्त हुई है, जिसकी पीठ पर बारहवीं सदी की देवनागरी लिपि में बौद्ध-धर्म के सिद्धान्त खुदे हैं।

उक्त गृह के उन विनष्ट भागों में पक्की मिट्टी की बनी हुई देव-मूर्तियों के कुछ टुकड़े पाये गये हैं, जिनमें एक का सिर सुरक्षित दशा में है। भीतरी भाग की चित्रकारी अधिकांश नष्ट हो गई है। पलस्तर के टुकड़े भी प्राप्त हुए हैं। गृह के प्रत्येक कोने में ताँबे के दीपक बने हैं और प्रत्येक दीपक की बगल में ताँबे का एक-एक पात्र है। प्रत्येक ताख में ताँबे की तिपाई पर शंख रखे गये हैं।

पत्थर की मञ्जूषा के भीतर—पत्थर की तीन डिबियाँ पाई गयीं, जो सब स्तूप के ही आकार की हैं। अनुमान किया जाता है कि ये दसवीं सदी की हैं। सबसे महत्वपूर्ण वस्तु घोड़े की पीठ और भगवान् के चित्र पर अंकित अंक है, इन अंकों के चित्रण के चित्र अभी भी शेष हैं। घोड़े की पीठ के चित्र सिंहली शिल्प-कला के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं। गृह के प्रत्येक कोने में एक-एक ताँबे के त्रिशूल भी पाये गये हैं। ये बुद्ध, धर्म, संघ—अर्थात् त्रिरत्न के द्योतक हैं। दूसरी रोचक वस्तु धातु-गृह के पत्थर की मञ्जूषा के निकट एक ताँबे का गेहुवन साँप बना है।

उरुबेला के प्रति

कुमारी विद्या

नभ में फैला स्वर्णिम पराग,
उरुबेला ! अब फिर जाग, जाग !
हो चुका अरुण ऊषा अञ्चल,
विहगों ने भी गाया मङ्गल;
प्रतिध्वनित हो उठा कोलाहल,
बन सरिता का छल-छल कल-कल।
जनहित के मृदु मृदु भाव त्याग,
सोये हिय ले जड़ता विराग।
उरुबेला ! अब फिर जाग, जाग।
कोमल कलियायें नृत्य-निरत,
परिमल-पराग कण ले शत् शत्;
वन लक्ष्मी सज़ती आज सतत,
गौतम करुणा का मधुर राग,
तुम हमें सुना दो सानुराग।
उरुबेला ! अब फिर जाग, जाग !

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल विश्वविद्यालय काँगड़ी का मासिक-पत्र]

व्यवस्थापक—
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता कुरुकुल काँगड़ी ।

सम्पादक—
श्री सुखदेव श्री रामेश बेदी
विद्यावाचस्पति, आयुर्वेदालङ्कार ।

ख्याति प्राप्त लेखकों और उच्चकोटि के विद्वानों की सुरुचिपूर्ण, रोचक तथा ज्ञानवर्धक रचनायें और गम्भीर तथा खोजपूर्ण लेखों को पढ़ने के लिए हिन्दी की इस साहित्यिक व सांस्कृतिक मासिक पत्रिका को पढ़िए । प्रत्येक अंक की पाठ्य-सामग्री हिन्दी का स्थिर साहित्य है । यह साहित्य आपको मानसिक तथा आध्यात्मिक भोजन प्रदान करेगा । स्वास्थ्य-सम्बन्धी उपयोगी लेख आपको स्वस्थ और आनन्दित रहने में सहायक होंगे । वार्षिक मूल्य देश में ४), विदेश में ६), नमूने की प्रति ।≈)। आज ही इस पते पर मनीआर्डर भेजिये—

व्यवस्थापक—
गुरुकुल-पत्रिका,
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार ।

संस्कृत-भाषा प्रचार परीक्षायें

(भारती-भक्तोंकी सेवा में सादर सूचना)

संस्कृतभाषा के प्रति जनता की बढ़ती हुई रुचिको ध्यानमें रखकर इन परीक्षाओं का प्रारम्भ किया जा रहा है । हमारा विश्वास है कि जिस भारतीय (आबालवृद्ध) ने विदेशी भाषा सीखने में अपने जीवन के एक बड़े भाग के रूप में अनेक वर्ष व्यय किये होंगे वे ही इस अपनी मूल मातृभाषाको केवल दो वर्षों में सीख सकेंगे । प्रत्येक भारतीय माताके स्तनपानके साथ साथही अपनी इस मातृभाषाको बहुत कुछ सीख लेता है । किन्तु विद्यार्थी अवस्था में उसे अपनी शक्ति एवं बुद्धि विदेशी भाषा के अर्पण कर देनी पड़ती थी । क्योंकि हम पराधीन थे; अतः हम वैसा करने के लिये विवश थे । आज हम पूर्ण स्वतन्त्र हैं तथा उस स्वतन्त्रताके योग्य स्वयंको बनानेके लिये प्रयत्नशील भी हैं । ऐसे शुभ अवसरपर यह शुभकार्य प्रारम्भ करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष है और साथ ही आशा और विश्वास भी ।

इन्हीं अपने शुभ संकल्पोंसे प्रेरित होकर इन परीक्षाओंके प्रचार की योजना हमने बनाई है । वर्षमें दो बार (प्रति ६ मास) ये परीक्षायें हुआ करेंगी । विवरण-पत्रिका तथा पाठ्यक्रम स्वतन्त्ररूपसे छापे गये हैं । उन्हें मंगाने पर पूरा विवरण ज्ञात हो सकेगा ।

मंत्री—स्वाध्याय-मण्डल, किल्ला-पारडी (जिला सूरत)

हिन्दी में बौद्ध-धर्म की पुस्तकें

भगवान् बुद्ध का जीवन चरित्र	२)
बुद्ध और बौद्ध धर्म - आचार्य श्रीचतुरसेन शास्त्री	३)
दीघनिकाय—महापण्डित राहुल सांकृत्यायन	६)
मज्झिम निकाय— ,, ,,	८)
विनयपिटक— ,, ,,	८)
पालि महाव्याकरण - भिक्षु जगदीश काश्यप	५।।)
धम्मपद - अवधकिशोर नारायण	१।।)
भगवान् बुद्ध की शिक्षा - श्री देवमित्त धर्मपाल	।-)
बोधिद्रुम (कविता) - सुमन वात्स्यायन	।=)
तथागत - आनन्द कौसल्यायन	१।।)
बुद्ध और उनके अनुचर - आनन्द कौसल्यायन	१।।।)
पञ्चशील और बुद्ध-वन्दना— बोधानन्दस्थविर	=)
भगवान् हमारे गौतम बुद्ध—प्रो० मनोरञ्जन प्र०	-)
भगवान् बुद्ध - आनन्द कौसल्यायन	=)
जातक भाग १, २ और ३ ,,	७।), ७।), १०)
बुद्ध चित्रावली	७।)
सरल पालि शिक्षा - भिक्षु सद्धातिस्स	१।।)
पालि धातुरूपावलि	।।=)
बौद्ध धर्म सवाल-जवाब उर्दू में)	।=)
सुत्तनिपात - भिक्षु धर्मरत्न	१)
खुद्दकपाठ - ,,	।)
बौद्ध कहानियाँ—व्यथित हृदय	१।।)
बुद्धकीर्त्तन— प्रेमसिंह चौहान	१।।)
बुद्धार्चन - प्रेमसिंह चौहान	।)
बुद्ध भगवान् और छत्ता - जगतनारायण	।=)
भगवान् बुद्ध ने कहा था - सुमन वात्स्यायन	।=)
बौद्धचर्य्या-पद्धति—भदन्त बोधानन्द	१।।)
श्री गौतमबुद्ध जी—जगतनारायण	।=)
भगवान् गौतम बुद्ध - स्व० पं० ईश्वरी प्र० शर्मा	।।=)
बुद्धदेव - शरत कुमार राय	१।।।)
सारिपुत्र तथा मौद्गल्यायन पं० विश्वनाथ शास्त्री	।।।)
अम्बपाली - बेनीपुरी	२)
जो लिखना पड़ा - आनन्द कौसल्यायन	३)
गौतमहंस किसका ?	।=)
वार्तिकालंकार - राहुल सांकृत्यायन	३)
तथागत का प्रथम उपदेश - भिक्षु धर्मरक्षित	।)
बौद्ध-शिशुबोध— ,, ,,	।)
तेल कटाह गाथा— ,, ,,	।)
सारनाथ-दिग्दर्शन — ,, ,,	।)
कुशीनगर का इतिहास — ,, ,,	२।।)
पालि-पाठ-माला— ,, ,,	१)
जाति भेद और बुद्ध— ,, ,,	।।)
ब्राह्मणधम्मिय सुत्त— ,, ,,	=)
पालि जातकावली - बटुकनाथ शर्मा एम० ए०	२)
बुद्ध-शतकम्—आनन्द कौसल्यायन	।)
बुद्धवचन — ,, ,,	।।)
महापरिनिर्वाण सुत्त— भिक्षु ऊ कित्तिमा	१।)
बुद्ध चरित प्रथम और दूसरा भाग,	२।।), १।।), ४)
हर्षचरित (दो भाग) सूर्यनारायण चौधरी	३)
बौद्ध-दर्शन मीमांसा— बलदेव उपाध्याय	६)
भारतीय दर्शन— ,, ,,	५)
अभिधम्मत्थ सङ्गहो बौद्ध-दर्शन	२।।)
सौन्दरनन्द काव्य - सूर्यनारायण चौधरी	३)
ब्रह्मजाल सुत्त -(मतों का जंजाल)	।)

सूचीपत्र के लिए =) की टिकट के साथ लिखें।

प्राप्ति-स्थान:—

महाबोधि पुस्तक भण्डार, सारनाथ, बनारस।

प्रकाशक—धर्मालोक, महाबोधि सभा, सारनाथ, (बनारस)
मुद्रक—ओम् प्रकाश कपूर, ज्ञान मण्डल यन्त्रालय, कबीर चौरा, बनारस।

धर्मदूत

गुरुकुल-पत्रिका,
गुरुकुल काँगड़ी.

2-५२

फरवरी १९५२

वार्षिक चन्दा—३)
एक अङ्क— ।=)

विषय-सूची

विषय — पृष्ठ

१. बुद्ध-वचनामृत — २७३
२. भगवान् बुद्ध के उपदेश—अनागारिक पी० सुगतानन्द — २७४
३ विश्वशान्ति के उपाय—डा० पं० मुरलीधर नेपाली — २७७
४. जावा में बौद्ध-संस्कृति का प्रसार—श्रीराहुल सांकृत्यायन — २७८
५. करुणा—डा० शशिभूषण — २८१
६. सच्ची महानता—प्रो० लालजीराम शुक्ल — २८३
७. क्या पालि-परम्परा चतुर्थ सङ्गीति के प्रति मौन है ?—भदन्त सद्धातिस्स स्थविर — २८५
८. गणेश बुद्ध ही हैं—श्रीअनन्त रामचन्द्र कुलकर्णी — २८६
९. पुरानी पोथियों की विदेश-यात्रा—श्रीप्रह्लाद प्रधान — २८७
१०. लंका यात्रा—भिक्षु धर्मरक्षित — २९१
११. बौद्ध जगत् — २९४

"धर्म-दूत" के नियम

१—धर्मदूत भारतीय महाबोधि सभाका हिन्दी मासिक मुखपत्र है। "धर्मदूत" प्रति पूर्णिमा को प्रकाशित होता है।

२—"धर्मदूत" के ग्राहक किसी भी मास से बनाये जा सकेंगे।

३—पत्रव्यवहार करते समय ग्राहक-संख्या एवं पूरा पता लिखना चाहिये, ताकि पत्रिका के पहुँचने में गड़बड़ी न हो।

४—लेख, कविता, समालोचनार्थ पुस्तकें (दो प्रतियाँ) और बदले के पत्र सम्पादक के नाम तथा प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र और चन्दा व्यवस्थापक के नाम पर भेजना चाहिए।

५—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने या न करने, घटाने-बढ़ाने या संशोधन करने का अधिकार सम्पादक को है। बिना डाकखर्च भेजे अप्रकाशित कविता या लेख लौटाये न जा सकेंगें। जिस अङ्क में जिनका लेख व कविता छपेगी, वह अङ्क उनके पास भेज दिया जायगा।

६—"धर्मदूत" में केवल बौद्धधर्म, कला, संस्कृति, साहित्य, पुरातत्व आदि सम्बन्धी लेख ही प्रकाशित किये जा सकेंगे।

७—किसी लेखक द्वारा प्रकटित मत के लिये सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।

८—"धर्म-दूत" का वार्षिक मूल्य ३) और आजीवन ५०) है।

व्यवस्थापक—
"धर्मदूत" सारनाथ (बनारस)

गुरुकुल-पत्रिका,
गुरुकुल काँगड़ी.

धर्म-दूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवल-परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ । महावग्ग, (विनय-पिटक)

सम्पादकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

वर्ष १५ } सारनाथ, फरवरी बु० सं० २४९४ / ई० सं० १९५१ { अङ्क ११

बुद्ध-वचनामृत

मैत्री-ब्रह्मविहार की भावना

"शान्ति-पद को चाहने वाले कल्याण-साधन में निपुण मनुष्य को चाहिए कि वह योग्य, ऋजु और अत्यन्त ऋजु बने। उसकी बात सुन्दर, मृदु और विनीत हो। वह सन्तोषी हो, सहज ही पोष्य हो, अल्पकृत्य हो और सादा जीवन बिताने वाला हो। उसकी इन्द्रियाँ शान्त हों। वह चतुर हो, अप्रगल्भ हो और कुलों में अनासक्त हो। ऐसा कोई छोटा से भी छोटा कार्य न करे जिसके लिए दूसरे विज्ञ लोग उसे दोष दें। सब प्राणी सुखी हों। सबका कल्याण हो। सभी अच्छी तरह रहें। जंगम या स्थावर, दीर्घ या महान, मध्यम या ह्रस्व, अणु या स्थूल, दृश्य या अदृश्य, दूरस्थ या समीपस्थ, उत्पन्न या उत्पत्त्यमान जितने भी प्राणी हैं, वे सभी सुख पूर्वक रहें। एक दूसरे की वंचना न करें। कभी किसी का अपमान न करें। वैमनस्य या विरोध से एक दूसरे के दुःख की इच्छा न करें। माता जिस प्रकार जान की परवाह न कर अपने एकलौते पुत्र की रक्षा करती है, उसी प्रकार प्राणिमात्र के प्रति असीम प्रेम-भाव बढ़ावें। विना बाधा, वैर और शत्रुता के ऊपर, नीचे और तिरछे सारे संसार के प्रति असीम प्रेम बढ़ावें। खड़े रहते, चलते, बैठते या सोते जब तक जागते रहें, तब तक ऐसी स्मृति बनाये रहें। यही ब्रह्मविहार कहा गया है।

ऐसा नर किसी मिथ्या-दृष्टि में न पड़, शीलवान हो, विशुद्ध दर्शन से युक्त हो काम-तृष्णा का नाश कर पुनर्जन्म से मुक्त हो जाता है।"

भगवान् बुद्ध के उपदेश

अनागारिक पी. सुगतानन्द

भगवान् बुद्ध ने पैंतालीस वर्ष के लोकोपकारी जीवन में जो उपदेश दिये थे, उनमें न केवल संसार की सर्वोत्तम नैतिक तथा दार्शनिक शिक्षाएँ हैं अपितु वे श्रेष्ठ और प्रेरणात्मक साहित्य भी हैं, चाहे वे पालि में हों या अन्य किसी भाषा में। लेकिन यह दुःख की बात है कि बहुत से अनुवादों में मूल पालि की सुन्दरता और सरलता नहीं मिलती।

विद्वानों ने अपने अँग्रेजी अनुवादों में शब्दार्थ को ध्यान में रख कर प्रायः एक ऐसी भाषा, का प्रयोग किया है जो कि मूल की सहज और स्वाभाविक शैली से बहुत भिन्न है। जो पालि से परिचित है सो इस बात को अच्छी तरह समझ सकता है। यह स्पष्ट बात है कि भगवान् ने रहस्यवाद से भरे रूपकों का प्रयोग न कर सरल और सजीव भाषा में अपने उपदेश दिये थे जो कि संदिग्ध अर्थों से मुक्त था। जहाँ कहीं उन्होंने रूपकों का प्रयोग किया है उनसे लोग परिचित थे। लेकिन हाँ, उन्होंने स्वयं रचित रहस्यपूर्ण शब्द-माला का प्रयोग नहीं किया था।

भगवान् ने लोकानुकम्पी अपने लम्बे जीवन में राजाओं सेठ-साहूकारों, वेश्याओं और भिखारियों को उपदेश दिये थे। इनमें से प्रत्येक को अपनी तात्कालिक आवश्यकता के अनुसार शिक्षाएँ दीं। यही कारण है कि इन धार्मिक शिक्षाओं का महत्त्व इनकी सरलता, स्वाभाविकता और यथार्थता में है। इन में हम धुँधले मतवाद को नहीं पाते और न किसी प्रकार के वाक्य-छल को। इनका सीधा सम्बन्ध जीवन की समस्याओं से है।

जिस अभिमानी अग्निक भारद्वाज ब्राह्मण ने भगवान् को अपनी ब्राह्मणी परम्परा के अनुकूल न देखकर जब कृषक शब्द से उन्हें पुकारा था तो उसके जवाब में उन्होंने जो कुछ शब्द सुनाये थे, उन पर जरा विचार करें—

'जिस मनुष्य में क्रोध, वैमनस्य, पाप और ईर्ष्या है जिसकी धारणाएँ मिथ्या हैं और जो कपटी है वह यथार्थ में वृषल है। जो अण्डज या गर्भ से उत्पन्न प्राणियों का वध करता है और जिसमें प्राणि-मात्र के प्रति दया नहीं है वह वह यथार्थ में वृषल है।"

जब आलवक यक्ष ने भगवान् को अपना शारीरिक बल दिखाने की धमकी दी थी तो उस समय उन्होंने उसे यह चुनौती दी—

"चलो, और श्रमण-ब्राह्मणों से यह पता लगाओ कि सत्य, संयम, दान और क्षान्ति से बढ़ कर और कुछ है कि नहीं?"

यह एक निर्देश है जिसके अनुसार हमें इस बात का निश्चय करना है कि हमें इन दोनों मार्गों में से किस को ग्रहण करना चाहिए।

"भौतिकवाद पर आश्रित हिंसा का, जो कि संसार में अपनी प्रभुता जमाना चाहती है, अथवा भगवान् बुद्ध के देशित मार्ग का जो कि संसार में सत्य और धर्म की स्थापना कर सकता है। हमारे वर्तमान मार्क्स् वादियों की तरह आलवक यक्ष तथा आततायी अंगुलिमाल पाशविक शक्ति और दुर्बलों पर सबलों की विजय में ही विश्वास करते थे। हिंसा के प्रयोग के बिना अपने उत्तम धर्म तथा विशुद्ध ज्ञान के बल पर ही भगवान् उन दोनों पर विजयी हुए। सचमुच जो आत्म-विजयी हैं वे विश्व-विजयी भी हैं और कोई मार या ब्रह्म उनको परास्त नहीं कर सकता।

सिरिमा नामक वेश्या के शव के विषय में जो उद्वेगपूर्ण शब्द भगवान् ने कहे थे उन पर भी ध्यान दें। "जब कि शव फूल कर, विरूप हो श्मशान में पड़ा रहता है तब सम्बन्धी तक उसकी इच्छी नहीं करते। उस शव को कुत्ते, सियार, भेड़िये, कृमि, कौवे, गृद्ध जैसे मांस-

क्षक जन्तु खा जाते हैं। जो विज्ञ ध्यान पूर्वक बुद्ध-वचन सुनता है वह शरीर की यथार्थता को समझ लेता है।"

और फिर मङ्गल सूत्र के अन्तर्गत अमृत--उपदेशों के न्तिम शब्दों पर विचार करें—

"तप, ब्रह्मचर्य का पालन, आर्य सत्यों का दर्शन, र्वाण का साक्षात्कार—यही उत्तम मङ्गल है। सांसारिक रिस्थितियों से चित्त का विचलित नहीं होना, शोक तथा ज रहित हो क्षेमी होना—यही उत्तम मङ्गल है।"

इन शब्दों की सत्यता, सजीवता और सुन्दरता न तो मय की गति से मिट सकती है और न रस्म रिवाज से लिन हो सकती है। हम उनको लाखों बार क्यों न नें, प्रत्येक बार वे नई शक्ति और आश्वासन के साथ में सुनाई पड़ते हैं। मतमतान्तर उत्पन्न होते और नष्ट ते हैं, लेकिन ये शब्द हमें सनातन तत्वों की ओर ले ते हैं, मानों यह स्वयं सत्य की ही वाणी है।

अब मित्रता पर भगवान् के विचारों को सुनें, "जो पने को मित्र बताते हुए निर्लज्ज और घृणित व्यवहार रता है और शक्ति भर भी उपकार नहीं करता उसे मझो कि 'यह मेरा मित्र नहीं है'। जो अपने मित्रों से ठी-मीठी बातें करता है और उसके अनुरूप काम नहीं रता बातों में धनी उसे विज्ञ-लोग अच्छी तरह समझ ते हैं। जो सदा दोष देखने में तत्पर है और जिसे सदा ट का डर रहता है वह मित्र नहीं। जिसकी छाती पर स प्रकार निश्चिन्त होकर सो सकता है जिस प्रकार त्र अपने पिता की छाती पर; यथार्थ में वह मित्र है र उसकी मित्रता में कभी भेद नहीं पड़ सकता।"

मित्रता के इस उत्तम आदर्श का वर्णन इतनी सरल र सजीव भाषा में सारे विश्व साहित्य में और कहीं यद ही आया हो। पिता की त्राण-शक्ति और अचल म में पुत्र का जो पूर्ण विश्वास है, वह विश्वव्यापी अनुभव की बात है। यह बात बुद्ध को हमारे सम्मुख विश्व के अनुपम मित्र, भ्राता, उपदेशक और शरण के रूप में कट करती है। जो मित्रता को उसके सच्चे रूप में नते थे केवल उन्हीं से उसकी इतनी सुन्दर परिभाषा ल सकती है।

वह सच्चा मित्र नहीं जो आलस्य और उदासीनता को प्रोत्साहित करता है। उद्योगिता पर भगवान् बुद्ध के शब्द इस प्रकार हैं "उठो और बैठो, सोने से तुम्हें क्या लाभ? तीर लगे रोगी को नींद कैसी? उठो और बैठो, दृढ़ता के साथ शान्ति के लिये शिक्षा ग्रहण करो, ताकि प्रमत्त जान कर मृत्युराज तुम्हें अपने वश में न कर ले। प्रमाद रज है, प्रमाद मल है; अप्रमत्त हो ज्ञान से अपने दुःख रूपी तीर को निकाल बाहर करो।"

सम्मापरिब्बाजनिय सुत्त में मिथ्या विश्वास पर भगवान् की यह शिक्षा है—

"स्वप्न, उल्कापात आदि लक्षणों पर आश्रित शकुन अपशकुन, मङ्गल-अवमङ्गल में जो विश्वास छोड़ता है वह भिक्षु सम्यक् रूप से संसार में विचरण करता है।"

यहाँ मूढ़ विश्वास के लिये कहीं स्थान नहीं है जो कि धर्म को कलङ्कित करता है और जिसके कारण भौतिकवादी उस की हँसी उड़ाता है। भगवान् ने अपने भिक्षुओं को भाग्य बताने के बहाने भोलेभाले लोगों के सहज विश्वास से अनुचित लाभ उठाने का सख्त मना किया है। यह प्रकट बात है कि ये क्रियाएँ सदा से पुरोहिताई के आभूषण रही हैं। और सच्चे धर्म के मार्ग में बाधक हैं। भगवान् ने इन बातों के लिए कहीं स्थान नहीं दिया है। उनका धर्म बुद्धिगम्य है और इसी कारण वह सफल हुआ है। उनके शिष्य शील की पारिशुद्धि और संयम के बल पर ही सफल हुए न कि लोगों की नैतिक दुर्बलता और बुद्धिहीनता से लाभ उठा कर।

जब कि भगवान् निरञ्जरा के समीप सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति के लिए बैठे थे तो मार वहां प्रकट हो कर उन्हें प्रलोभित करने लगा। उस समय भगवान् ने पाप की उस मूर्ति की जो हल्की डाँट दी थी सो इस प्रकार है, "तेरी पहली सेना काम है, दूसरी अरति है, तीसरी भूख-प्यास है, चौथी तृष्णा है, पांचवी निद्रा और तन्द्रा है, छठवीं भीरुता है, सातवीं शंका है, आठवीं आत्म-प्रशंसा, पर-निन्दा, लाभ-कीर्ति, सम्मान तथा असत्य प्रचार से प्राप्त यश है। मार! कृष्णकर्म वाले तुम्हारी प्रहार करने वाली सेना यही हैं। इस पर केवल वीर की ही विजय हो सकती है; जो विजयी है सो सुख को प्राप्त होता है।

पराजित होकर जीने की अपेक्षा मुझे संग्राम भूमि में प्राप्त मृत्यु ही अभीष्ट है ।"

बीसवीं शताब्दी के हम लोग, जो कि धीरज के इतने प्रशंसक हैं और दुर्भाग्यवश हिंसा तथा क्रूरता को वीरता मान लेते हैं—क्या अपने प्यारे वीरों की गलरी में कहीं इस से बढ़ कर धैर्य और दृढ़ संकल्प पा सकते हैं ?

सिकन्दर इसलिए रोया कि उसके जीतने के लिए और दुनिया बाकी नहीं रही, लेकिन वह शरीर से सीमित पांच फीट के प्रदेश पर—अपनी इन्द्रियों और वासनाओं के राज्य पर विजय प्राप्त नहीं कर सका । वह उनका दास था; वह विश्व-विजयी अपने अन्तर्जगत को जीत नहीं सका । हमारे वर्तमान अधिनायकों की भी यही दशा है; उनके दिन इनेगिने रहते हैं और फिर वे हमारे स्मृति पटल से विलीन हो जाते हैं । अभी दश वर्ष पहले सभी के दिल में और मुँह पर हिटलर का ही नाम था; आज शायद ही, कोई उसका नाम लेता हो । आज उसकी जगह पर कुछ और नये दानव हैं । वे भी कुछ दिन में निकल जायेंगे, लेकिन तथागत की विजय सनातन है ।

अब हम मानवी अनुभव के साधारण स्तर पर उतर कर विचार करें । जब कि मघ माणवक ने दान के विषय में भगवान् से प्रश्न किया था तो भगवान् उत्तर में उसे बोले, "हाँ, माणवक तुम इस प्रकार दान देकर पुण्य का संचय करते हो । जो दानी है, दानपति है, याचने योग्य है, धार्मिक रीति से धन का संचय करता है और एक, दो, तीन, चार सौ और उससे भी अधिक लोगों में धार्मिक रीति से संचित धन का वितरण करता है वह महान् पुण्य का संचय करता है ।"

यहां धार्मिक शब्द पर बारम्बार जोर दिया गया है, इस उत्तर का सारा महत्व उसी शब्द में है । इसमें कहीं ऐसा संकेत नहीं है कि धन का उपार्जन पाप है, पाप का कारण उसके उपार्जन तथा उपयोग के ढंग में है । धन को धार्मिक रीति से कमाना है और उसे दूसरों के कल्याणर्थ लगाना है । यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पुण्य के आकांक्षी गृहस्थ के मार्ग में और सांसारिक कामनाओं से विरत हो निर्वाण की प्राप्ति में तत्पर भिक्षु के मार्ग में साफ साफ अन्तर है । पहला मार्ग दूसरे मार्ग की ओर जाता है, क्योंकि दान-पुण्य से सम्पत्ति के प्रति जो आशक्ति है सो क्रमशः कम हो जाती है और अन्त में वह उस अवस्था तक पहुँच जाता है जब कि वह सब कुछ त्याग कर उच्च मार्ग पर चल सकता है । इस प्रकार बुद्ध-धर्म मनुष्य को अपनी आन्तरिक सहज इच्छाओं को दबा रखने का उपदेश नहीं देता, वह उसे नैतिक अनुशासन में उन्हें अच्छी शिक्षा में मोड़ने की और अच्छे मार्ग पर लाने की शिक्षा देता है । यह बौद्ध-धर्म की वैज्ञानिक मानसिक चिकित्सा है, इस मानसिक शिक्षा की प्रणाली में कहीं खतरा नहीं है । अधिकांश लोगों में पारिशुद्धि की प्रक्रिया धीमी हो सकती है लेकिन वह निश्चित है । सम्पत्ति को दूसरों के कल्याणार्थ लगाने से जो आनन्द प्राप्त होता है उससे अधिक आनन्द और किसी प्रकार उससे नहीं मिल सकता ।

ये भगवान् बुद्ध के उपदेशों में से संकलित कुछ अंश है, लेकिन हम जहाँ देखते हैं उनके उपदेशों में सत्य के रत्न पाते हैं जो कि जीवन और उसकी समस्याओं के लिए लागू हैं । पच्चीस शताब्दियों के पूर्व उस अतीत युग में इन आदेशों की जो व्यवहारिकता और सजीवता थी सो आज भी है । तब से आज मनुष्य के स्वभाव में मूलतः कोई परिवर्तन नहीं हुआ है; आज भी मनुष्य की वे ही आवश्यकताएँ हैं, भय हैं और इच्छाएँ हैं । आशा की जाती है कि सम्यक् सम्बुद्ध के ये अमृत-उपदेश एक न एक दिन सुन्दर अनुवादों के रूप में पाश्चात्य जगत् को प्राप्त होंगे और वहाँ का जनप्रिय साहित्य बन जायगा । यह पश्चिम को पूरब की अत्युत्तम देन होगी ।

सुभासित सुत्त के अन्तिम शब्दों के साथ हम इस छोटे संग्रह को समाप्त करते हैं ।

तब वङ्गीस भगवान् के सम्मुख खड़े होकर उनकी प्रशंसा में ये शब्द बोले—'आनन्ददायी प्रिय वचन ही बोले। सत्य ही अमृत वाणी है यह सनातन धर्म है । जो सत्य धर्म है, सन्त जन उस पर प्रतिष्ठित हैं । दुःख का अन्त कर निर्वाण की प्राप्ति के लिए जो शब्द बुद्ध बोलते हैं वे सर्वोत्तम हैं ।"

विश्वशान्ति के उपाय

डा० पं० मुरलीधर, नेपाली

आज विश्व का कोई भी भू-भाग क्रान्ति की बाढ़ बचा नहीं है। सर्वत्र आन्दोलन ही आन्दोलन दृष्टिगोचर रहे हैं, जगत में जितने व्यक्ति हैं, उतनी ही संस्थाएं ते जा रही हैं। सभी परस्पर भिन्न मत रखते हैं। इसी में सबका मतैक्य है कि सभी सुख और शान्ति हते हैं। इस विशाल विश्व में कभी और कहीं न तो व्यक्ति जन्मा न जन्मेगा ही जो दुःख और अशान्ति चाहे। दुःख से दूर रहने की अभिलाषा से ही लोग क बखेड़ों में फँसते हैं! इसी के लिए एक युद्ध की और दूसरे महायुद्ध का अथ बन रहा है—'क्या दि काल से आज तक किसी भी व्यक्ति को इसके उत्पीड़न और अशान्ति के सिवाय कुछ भी हाथ है?' नहीं, लगे कैसे? बैर-भाव शान्ति नगर का न होकर दुःख का राजपथ है। दुःख नाश का कण्टक मार्ग तृष्णा के नाश के अतिरिक्त और कुछ ी नहीं। एक वैर स्वभावतः अन्य वैर का जनक है इस भाव की जननी भी वही तृष्णा है। इस को समूल करने का एक मात्र अमोघ अस्त्र भगवान् बुद्ध का देशानुसरण है। जब से भारत ने इस अपने महान् रक्षक को अपने से दूर हटाया, तब से भारत माता दुःख और कलह की रंग-भूमि होने से न बच सकी। आज विश्व को हाहाकार से बचाना और इस जगत सभी प्राणियों को आनन्द की निद्रा लेना अभीष्ट है तो करुणामय की अमर वाणी को न भूलना होगा। महायुद्ध से लेकर संसार के घरेलू झगड़े तक को म कर देना है, तो मानव मात्र को चाहिए की इस वाक्य का सदैव मनन करें—

न हि वेरेन वेरानि, सम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति, एस धम्मो सनन्तनो॥

ैर-भाव से वैर कभी नष्ट नहीं होता; अवैर-भाव से भाव का अन्त होता है, यही अटल नियम है।

भगवान् बुद्ध ने इस तथ्य को कार्य-रूप में दुःखी जीवों के समक्ष रख दिया। एक समय की बात है कि देवदत्त नियोजित कुछ गुण्डे अपनी नासमझी के कारण दयामय भगवान् के ऊपर प्रहार करने की बुरी इच्छा से आये और सर्वभूतहितेरत भगवान् के पावन शरीर पर लाठी चलाना चाहे। इस कार्य से शान्ति सागर में कोई भी ऐसी लहर नहीं उठा जो कि क्रोधरूपी बड़वानल के कारण बड़े-बड़े लोगों के अन्तःकरण में भी उठा करती है। हमारे शास्ता उनकी इस दशा पर केवल मुस्कराये। इस अपूर्व घटना ने शीघ्र ही विरोधियों के मस्तिष्क को शान्त कर दिया। वे करुणामय से पूछने लगे—"भन्ते, आप क्यों हँसे, मारने पर हँसने वाले मनुष्य को हम लोगों ने न तो देखा था और न कभी सुना ही था। इस पर भगवान् ने कहा—जो मैं कर रहा हूँ, यह कोई नयी बात नहीं है। ऐसा तो सभी लोग करते हैं, अपने शत्रु के ऊपर विजय पाने पर कौन नहीं हँसता? इस पर उन लोगों ने पूछा—"भगवन्! आपने किस शत्रु के ऊपर विजय पाई, आप को मारने वाले शत्रु जब कि आपके सामने ही खड़े हैं?" इस पर भगवान् ने समझाया—"आप लोग मेरे शत्रु नहीं हैं। संसार में कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे का शत्रु नहीं होता। शत्रु वह है जो हमें कष्ट पहुँचाये, हमारा अपकार करे। संसार में सबसे बड़ा शत्रु क्रोध है। क्रोध की ही प्रेरणा से तुम लोग यहाँ पधारे। उस क्रोध को मैंने उठने न देकर पछाड़ ही रखा, यही मेरी विजय है,

अपकारिणि कोपश्चेद् कोपे कोप कथं न हि।
धर्मार्थ काम मोक्षानां प्रशह्य परिपन्थिनि॥

इस अमृत वाणी ने उन क्रूरों के हृदय को भी परिवर्तित कर दिया। वे तत्काल भगवान् के अनुयायी हो गये।

जावा में बौद्ध संस्कृति का प्रसार

महापण्डित श्री राहुल सांकृत्यायन

यद्यपि इन्दोनेसिया के द्वीप समूहों में बोर्नियो और सुमात्रा जावा से कई गुने बड़े हैं, किन्तु इतिहास में जावा का सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है । सुमात्रा की भाँति जावा भी लम्बा और पतला द्वीप है । इसकी लम्बाई ६२२ मील और चौड़ाई ५५ से १२१ मील तक है । मदुरा तथा नजदीक के दूसरे छोटे द्वीपों को मिला कर इसका क्षेत्रफल ५१००० वर्गमील है । उत्तर में जावा समुद्र की उथली जलराशि इसे बोर्नियो से अलग करती है । इसके दक्षिण में अतिगम्भीर भारत महासागर दक्षिणी ध्रुव तक चला गया है । जिस में ध्रुव प्रदेशों को छोड़कर कोई स्थल-खण्ड नहीं मिलता । जावा के पूरब में बाली का छोटा द्वीप है, फिर लगातार लम्बक, संबावा, फ्लोर और तिमोर के द्वीप चले गये हैं । जावा और सुमात्रा के बीच में सुन्दा की खाड़ी कहीं कहीं केवल चौदह मील चौड़ी है । जावा के उत्तर-पूरब में मदुरा का छोटा द्वीप है, जिसके बीच की खाड़ी कहीं-कहीं एक मील से भी कम चौड़ी है । सुमात्रा की तरह जावा भी पहाड़ी तथा अधिकतर ज्वालामुखी पहाड़ी का देश है । इसके पर्वतों की ऊँचाई चार हजार से बारह हजार फीट तक है । यहाँ की नदियाँ छोटी-छोटी हैं । इनमें सोलो तथा ब्रंतस दोनों ही कुछ दूर तक नौ-संचालन किया जा सकता है । नौकोपयोगी न होने पर भी जावा की पहाड़ी नदियाँ सिंचाई के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं । जावा की भूमि कृषि के लिए समस्त विश्व में विख्यात है । उसके बन्दोंग, सुराकर्ता, मदियून, केदरी, मलंगू, बन्दवस और पगार जैसे मैदानी भाग अन्न की खान हैं । जावा की वानस्पतिक सम्पत्ति की विश्व में तुलना नहीं की जा सकती । यहाँ बहुत जाति का सागौन होता है । द्वीप की ४० प्रतिशत भूमि में खेती होती है, जिसमें मुख्य उपज है—धान, गन्ना, सिन्कोना (कुनैन), चाय, काफी, तम्बाकू आदि । खनिज सम्पत्ति में जावा पिछड़ा हुआ है, लेकिन उसकी कमी पेट्रोल पूरा करता है ।

भारतीय उपनिवेश

जावा भारत के प्राचीन उपनिवेशों में है । इसके निवासियों की जाति के बारे में हम पहले बता चुके हैं और यह भी कि मलय जाति प्रागैतिहासिक काल में भारत से आयी मालूम होती है, किन्तु यह बात उलटी भी हो सकती है । सबसे प्राचीन मानव जावा-मानव की खोपड़ी यहीं मिली थी । वह उपापाषाण काल में (आज से पाँच लाख वर्ष पहले) पृथ्वी पर रहता और काष्ठ, पत्थर को हथियारों के तौर पर इस्तेमाल करता था । ऐतिहासिक काल के आरम्भ से ही जावा पर भारतीयता की घनिष्ठ छाप पड़ी दीख पड़ती है, जो कि नाम से ही मालूम होता है—यव (जौ) हिन्दी-ईरानी काल का शब्द है । जावा के कथानकों में भारतीयों के यहाँ आने के बारे में कई बातें लिखी हुई हैं । चीनी इतिहास के लेखक फेइ-सिन् (१४३२ ई०) के समय तक राज्य की स्थापना हुए १३७६ वर्ष हो चुके थे—'(जावा के दूत) जब १४३२ में भेंट लेकर आये तो उन्होंने एक पत्र भी अर्पित किया, जिसमें लिखा था कि उनका राज्य १३७६ वर्ष पहिले स्थापित हुआ था, अर्थात् हान-वंश के सम्राट् स्वेन के यिवेन-खांग-युग के प्रथम वर्ष (६५ ई० पू०) में ।" यहाँ संवत्सर की गणना में कुल गड़बड़ी मालूम होती है, किन्तु यह काल ५६ ई० का हो सकता है । यही समय है जब कि जावा का प्रथम राजा अजि-शका भारत से यहाँ पहुँचा । संभव है अजि-शका से पहले भी भारतीय जावा आते रहे हों और अजि-शका ने उन्हें संगठित कर एक बड़ी राज शक्ति का रूप दिया हो ।

चीनी इतिहास द्वारा जावा की दूसरी शताब्दी पर अधिक प्रकाश पड़ता है । १३२ ई० में जावा का राजा तियावयियेन या देववर्मा चीनी दर्बार में अपना दूत भेजा था । यद्यपि तीसरी शताब्दी में फिर चीनियों ने जावा का

न किया है, किन्तु पाँचवीं शताब्दी से ही हम ठोस तिहासिक भूमि पर पहुँचते हैं। ४१४-१५ भारत से ल होकर लौटते समय फाशियान पाँच महीने यवद्वीप ठहरा था। उसके लेखानुसार उस समय जावा में नहीं बौद्ध धर्म की प्रधानता थी। सबसे पहिले यान के समय के आसपास ही गुणवर्मा को हम में बौद्ध धर्म का प्रचार करते पाते हैं। गुणवर्मा मीर या (कपिशा) के राजा संघानन्द का पुत्र और द्र का पौत्र था। उसने राज्य छोड़ भिक्षु-व्रत धारण था। गुणवर्मा तीस वर्ष का था, जब राजा निः-तान मर गया। गुणवर्मा को राज्य सम्भालने के लिए गया, परन्तु उसने लेने से इनकार कर दिया। सिंहल ख्याति उसे वहाँ ले गयी, जहाँ से वह जावा पहुँचा। माता के बौद्ध बनने पर जावा का राजा भी बौद्धधर्मी। इसी समय राज्य पर आक्रमण हुआ। राय के पूछने गुणवर्मा ने कहा — चोर को दण्ड देना हर एक का है। चीनी लेखक द्वारा लिखी गुणवर्मा की जीवनी ती है, कि राजा ने संसार त्यागना चाहा, मन्त्रियों के अनुनय-विनय करने पर उसने इस शर्त पर राजा स्वीकार किया, कि राज्य में कहीं प्राणी न मारे जायँ। से गुणवर्मा की कीर्ति चीन पहुँची। ४२४ में चीनी ओं ने सम्राट् को उसे निमन्त्रित करने के लिये कहा। र्मा एक भारतीय व्यापारी नदी के जहाज में चढ़ कर ई० में नानकिंग पहुँचा। पर कुछ ही महीनों बाद वर्ष की अवस्था में उसका देहान्त हो गया। गुण-की कथा से पता चलता है, कि फा-शि-यान के जाने द से ही वहाँ बौद्ध धर्म का प्रचार होने लगा।

पल्लव और जावा

यद्यपि जातकों के देखने से पता लगता है कि सुवर्ण-से भारतीय व्यापारी सुवर्णभूमि और यवद्वीप को करते थे, किन्तु जान पड़ता है वह वहाँ उपनिवेशिक तौरपर नहीं बल्कि व्यापारी के तौरपर थोड़ी संख्या में करते थे। जावापर हम दक्षिण भारत की भारी छाप है। जावा के आरम्भिक अभिलेख उसी लिपि में हैं, जिसका प्रयोग पल्लव राजा अपने पाँचवीं-छठीं सदी के ताम्रपत्रों में करते थे—यह बात जावा ही नहीं फूनान और चम्पापर भी लागू है। पल्लवों के पूर्व और शातवाहनों के बाद धान्य कटक में इक्ष्वाकुवंशियों की प्रधानता थी। धान्य कटक (धरणीकोट) और श्रीपर्वत (नागार्जुनीकोंडा) में प्राप्त शिलालेखों से पता लगता है कि—ईसा की तृतीय शताब्दी में सिंहल, चीन और किरात (चिलात) तक बौद्ध धर्म का प्रचार था। कृष्ण नदीपर अवस्थित धान्य कटक एक अच्छा पुटभेदन नगर था, इसका प्रमाण वहाँ का विशाल महाचैत्य है, जो अपने वास्तुशिल्प और मूर्तिशिल्प में अद्वीतीय समझा जाता है। तृतीय शताब्दी में निर्मित श्रीपर्वत का महाचैत्य भी उससे कम महत्त्व नहीं रखता। मालूम होता है, धान्यकटक का चैत्य एक बहुत बड़ा धार्मिक केन्द्र था, जिसके नाम पर ही बौद्धों के पुराने अठारह (निकायों) सम्प्रदायों में से एक का नाम चैत्यवादी पड़ा था। इसका निर्माण शातवाहन काल में हुआ। इसकी कला शातवाहन कला है, जिसका आगे का विकास इक्ष्वाकुवंश-निर्मित श्रीपर्वत के महाचैत्य की मूर्तिकला में हुआ। इक्ष्वाकुओं के उत्तराधिकारी काँची के पल्लवों ने इस कला को और भी आगे विकसित किया। पल्लव लिपि के साथ जावा और हिन्दचीन-लिपि की एकरूपता है। पल्लवों की और बातों से तुलना करनेपर पता लगता है, कि जावा आदि के साथ बहुत अधिक सांस्कृतिक तथा धार्मिक सम्बन्ध स्थापित करने का श्रेय इसी पल्लववंश और पल्लवभूमि को है। यह भी उल्लेखनीय बात है, कि पल्लव राजा ने भी हिन्दचीन के फूनानियों की भाँति नागराजकुमारी से ब्याह करके राजलक्ष्मी प्राप्त की थी। पल्लवों के पहले काँचीवाला प्रदेश नागों के हाथ में था, यह ऐतिहासिक तथ्य है।

नागी से ब्याह करके राज्य प्राप्त करने की बात हमें हिन्दचीन की परम्परा में भी मिलती है। पल्लवों के पूर्ववर्ती राजा इक्ष्वाकु या शातवाहन वर्म्मा की उपाधि धारण नहीं करते थे, किन्तु पल्लवों में इसका प्रचार पहले शिवस्कन्ध वर्मा (तृतीय शताब्दी) से ही शुरू हो जाता है और तब से अन्तिम पल्लव राजा अपराजित वर्मा (८७५–८३ ई०) तक चला जाता है। वर्मा उपाधि की प्रधानता सब से पहले हमें पल्लववंश में ही देखने को मिलती है। उत्तरी

भारत में गुप्तों के उत्तराधिकारी मौखरियों ने इस उपाधि का प्रचार करना चाहा, किन्तु वह अधिक चिरस्थायी नहीं हुई। जावा और हिन्दचीन में राजाओं के लिए वर्मा की उपाधि सर्वत्र देखने में आती है।

जावा और हिन्द-चीन में शैव सम्प्रदाय की प्रधानता देखने में आती है, वहाँ वैष्णव धर्म की प्रधानता कभी नहीं होने पायी। दक्षिण में शातवाहन काल से ही शैव मत का अधिक प्रचार देखा जाता है। पल्लव-वंश का प्रथम प्रतापी राजा शिवस्कन्ध अपने नाम ही से शैव प्रकट होता है। यद्यपि इसका यह अर्थ नहीं कि पल्लव दूसरे धर्मों की उपेक्षा करते थे। पल्लव राजाओं में एक नहीं तीन बुद्धवर्मा मिलते हैं। हर्षवर्द्धन समकालीन प्रथम महेन्द्रवर्मा (६००–३० ई०) को शैव सन्त अप्पर ने जैन से शैव बनाया था। अधिकतर शैव सन्त पल्लव काल में हुए थे। पीछे पल्लव वैष्णव-सन्तों के प्रभाव में भी आये, किन्तु जिस समय इन्दोनेसिया और हिन्दचीन से सांस्कृतिक दानादान आरम्भ हुआ था, उस समय काँची में शैव सम्प्रदाय का जोर था।

जावाकी परम्परा (अजि-शका-ग्रन्थ) में कलिंग और गुजरातसे भी भारतीयों के जावा पहुँचने की बात लिखी है, जिसका अर्थ यह हो सकता है कि—भारतीय उपनिवेशिकों में कलिंग और गुजरात (लाट) के लोग भी जा बसे थे, किन्तु उनमें सबसे प्रभावशाली अंश था पल्लवों का।

पल्लवों की राजधानी काँची का नाम सबसे पहले पतंजलि (१५० ई० पू०) ने अपने **महाभाष्य** (४ : २) में लिया है। जान पड़ता है, उस समय भी काँची में पठन-पाठन का सम्मान था, किन्तु काँची को विद्या का केन्द्र बनाने का श्रेय पल्लवों को है। पल्लव राजाओं के चौथी शताब्दी के आरम्भ तक के लेख प्राकृत में मिलते हैं, फिर उनके ताम्रपत्र और पीछे शिलालेख भी बड़ी सुन्दर संस्कृत में पाये जाते हैं, पीछे तामिल की शैव-वैष्णव-कविताके विकासका अवसर भी इसी समय मिलता है। ईसा की चौथी शताब्दी के मध्य में जब उत्तर से गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त ने काँची के पल्लवराजा विष्णुगोप को नतशिर किया उस समय तक उत्तर में संस्कृति की दुन्दुभी बज चुकी थी। अब दक्षिण में भी संस्कृत का बल बढ़ा, शिलालेखों और ताम्रलेखों से प्राकृत का स्थान संस्कृत ने लिया, और प्राकृत सदा के लिए स्थानच्युत कर दी गई, हाँ, पीछे वह भी समय आया जब कि तामिल ने भी अपने लिये बड़ा भाग छीन लिया, लेकिन वह काफी पीछे की बात है।

संस्कृत की प्रधानता स्थापित होने के समय से पल्लवों की राजधानी कांची उसका केंद्र बनी। कांची ने आसानी से भारत की सात पावन पुरियों में अपना नाम नहीं लिखाया। कवियों में दण्डी और भारवि कांची के रत्न थे। कादंब राजवंश के स्थापक मयूर शर्मा यहीं वेद पढ़ने के लिये आये थे, जब कि किसी पल्लव राजपुरुष से अपमानित हो कर चाणक्य की तरह वंश-विच्छेद करने की नहीं बल्कि अपना एक नया राजवंश स्थापित करने की सफल प्रतिज्ञा की थी, कालिदास के समकालीन महानैयायिक दिङ्नाग का जन्म कांची में ही हुआ था। और अद्भु बौद्ध दार्शनिक धर्मकीर्ति का जन्म और आरम्भिक शिक्ष का स्थान कांची प्रदेश ही में था। हम कह सकते हैं कि ईसा की चौथी से आठवीं शताब्दी तक संस्कृत-शिक्षा का इतन बड़ा केंद्र शायद ही कोई दूसरा नगर था। जब हम जाव चंपा, और कंबोज की सुन्दर प्रशस्तियों को पढ़ते हैं, ज हम वहाँ के शिव-मन्दिरों, उनके गुरुओं तथा अपार धन राशि का वर्णन देखते हैं, तो उनमें हमें कांची और पल्ल राजाओं की धार्मिक श्रद्धा का प्रतिविम्ब देखने में आता है विद्वानों का यह भी मत है, कि पल्लवों के पहिले दक्षि भारत में मंदिरों के निर्माण का प्रचार नहीं था-कम कम ईंट और पाषाण के देवालयों का तो नहीं, यदि होंगे तो लकड़ी के, जिनका अवशेष मिलना कठिन है जावा (और हिन्दीचीन) के देवालयों और शिखरों प पल्लव वास्तुकला की पूरी छाप है, यही पल्लव वास्तुक चोलों के समय से होते पीछे द्राविड़-वास्तुकला के रूप परिणत हुई।

जावा, चंपा आदि में ही संस्कृत के अभिलेखों मिलना यह भी बतलाता है, कि हमारे सांस्कृतिक इन देशों में उस समय पहुँचे, जब कि पल्लव-देश प्राकृ छोड़ संस्कृत का गढ़ बन चुका था। इन देशों के प्राची

अभिलेखों की लिपि चौथी-पाँचवीं शताब्दी के पल्लव-लिपि से मिलती है। यह भी उसी ओर संकेत है।

पल्लवराज शिवस्कंध (३००ई०) का मयिडवोलु-ताम्रपत्र–

"दिटं" कांची पुरतो युवमाहाराजो भारदाय सगोत्तो ल्लवानं शिवखंदवम्मो दंजकदेवपतं आनपयति (।) म्हेहि दानि अम्हेवेजयिके धमायुवलवधनिके बम्हनानं गिवेससगोत्तस युवकोंटुजस अगिवेस-सगोत्तस गोंदिजस पतियगामो (विरीप) रम्हेहि उदकादिं संपदतो दत्तो। स गामस विरीपरस सबबम्हदेय–प (रिह) रो वितराम ।अलोन (सो) दकं अरठसं (वि) नायिकं अपरंपराव- (दं) अमड पपेसस‍ं अकूर चोलकविनासी–खट सस्वासं)एतेहि अनेहि च सबवम्हदेय सवपरिहारेहि परिहरितो)परिहरथ परिहरापेथ च (।) जो अम्ह सासन्न अतिच्छितून पीला वधकररेजा (वा) कारापेज्जा वा तस अम्हो सारीरं सासनं करेजामों [।] संवछरं दसमं १० गिम्हा पखो छठे ६ दिवसं पंचमि ५ [।] आनति सयत्ति दत्ता पट्टिका [।]" (Ep. 120, vi. pp 86-8)

चारुदेवी (३२०ई०) का ताम्रपत्र (ब्रिटिश म्यूजियम)

सिद्ध सिरिविजयखन्दवमामहाराजस्स सम्वच्छर... [.] युवमहाराजस्स भारदायस्स पल्लवानं सिविविजयबुद्धवम्मरस देवी [बु] द्धिकुर–जानवी [जननी] चारुदेवी क [डके] वीय...[वीयापंत] राजतलाकहेठ [ठे] पाणिय [पनियकूपाद] पादपासे आतुकस्स [कव्वं] छेत्तं दालूरेकूविह महतरक देवकुल [स्स]भगवनरायणस्स अम्हं आयुबलद्धानियंकातूण भूमिनिवत्तणा चत्तारि ४ अम्हेहि सम्पदत्ता [।] तं नातूण गामेयिका आयुत्ता सव्वपरिहारेहि परिहारथ परिहारापे [थ]...आनत्ति रहे [ि] नगु [त्त] त्ति. (E. P. Ind. vol. VIII P. 145)।

करुणा

डा० शशिभूषण

भगवान् बुद्ध थे गहन करुणा की मूर्ति। विश्व की स्त करुणा एकत्रित होकर जैसे उनकी ज्योतिर्मय दिव्य बन गई थी। उनकी यह करुणा केवल विश्व मानव भीतर ही सीमाबद्ध नहीं थी, समस्त जीवों के प्रति यह सीम भाव से परिव्याप्त थी। इस करुणा की भित्तिभूमि एक अद्वय बोध——निखिल विश्व के साथ शरीर, मन अपने को सम्पूर्णतः एक करके देखना। यह अद्वय बोध ष्य के चित्त को सभी क्षुद्रताओं की गाँठों से मुक्त ता है और चित्त के भीतर लाता है असीम व्यापकता। चित्त प्रसार ही हम लोगों को विस्तारित करता है। विहार का यही एक प्रधान उपादान और करुणा है। विहार की कथा का कोई पारिभाषिक अर्थ यदि सीमा- नहीं रखूँ तो ब्रह्म शब्द का यहाँ पर एक बृहत अर्थ किया जा सकता है; अपने क्षुद्र अस्तित्व का अतिक्रम कर या उसको प्रसारित कर एक असीम अस्तित्व के बीच विहार करने को ही हम ब्रह्म विहार कह ग्रहण कर सकते हैं।

महायान बौद्ध धर्म में यही करुणा एकमात्र धर्म का मूल मंत्र हो उठी। इस करुणा की विशुद्धि के लिए शून्यता आवश्यक है, नहीं तो हो सकता है करुणा ही मनुष्य को शुभाशुभ कर्मों के द्वारा क्लिष्ट कर देगी। किन्तु करुणा को छोड़कर कोई शून्यता के पथ का अनुसरण करे तो वह विश्व-विमुख होकर एक बार ही आत्म-केन्द्रित हो उठेगा, यह एकान्त आत्म-केन्द्रता ही होती है। परवर्ती काल के तांत्रिक बौद्ध दार्शनिक गीतकार जो थे, उनके दार्शनिक दोहों में भी भगवान् बुद्ध की करुणा वाणी की एक अपूर्व प्रतिध्वनि पाई जाती है। धर्म के क्षेत्र में उन्होंने अनेक तंत्र मंत्र ग्रहण किया था, किन्तु कोई तंत्र मंत्र इस करुणा

के मूल मंत्र को नहीं पाया। इसी करुणा को "नौका" कहा जाता है। नौका स्वभावतः अकेली नदी के इस पार से उस पार नहीं जाती, वरन् दूसरों को भी पार करती है। यह सब के लिए एक और एक के लिए सभी, जैसी है, यही है श्रेष्ठ-पथ। सरहपाद ने अपने दोहों में कहा है–

"करुणा छड्डि जो शुन्नहि लगन्ड ।
नउसो पावई उत्तिम मगन्ड ॥"

जो कोई करुणा को छोड़कर शून्यता में लग्न या लीन है, वह कभी भी उत्तम पथ नहीं पाता। यह तो पहले ही कहा जा चुका है। शून्यता को छोड़कर केवल करुणा करने से कुशल—अकुशल कर्म द्वारा साधना के क्लिष्ट होने की सम्भावना है। तभी तो:—

"अहवा करुणा केवल भावई ।
जन्म सह सूहि मोक्ष न पावई ॥"

सरहपाद ने कहा है:—

"एहु सो अप्पा एहु परन जो परिभावई कोवि ।
ते विनु वन्धे वेट्ठि किउ अप्प विमुक्कउ तोवि॥"

यह अपना, यह पराया, इस रूप से जो भावना करेगा, वह बन्धन—विमुक्त आत्मा को फिर से बन्धन—वेष्टित करता है।

"पर अमानम भन्ति करन सअल निरन्तर बुद्ध ।
एहु से निर्मल परम पऊ चित्त सहावें सुद्ध ॥"

अपना और पराया यह भ्रान्ति कभी न करो। स्वरूप से सभी शुद्ध हैं, सभी एक समान हैं, अतएव अपना और पराया यह केवल भ्रान्ति है।

"अद्वय चित्त तरु अरह गऊ तिहुपने विखार ।
करुणा फुल्ली फल धरई नाऊ परअ अपार ॥"

हम लोगों का जो अद्वय चित्त (अर्थात् अद्वय प्रतिष्ठित हृदय) है, वह एक विराट् तरुवर जैसा है, जो त्रिभुवन में विस्तार पा चुका है। इसी अद्वय चित्त तरुवर में फूटता है, करुणा का फल फूल उसके बाद और कहीं कुछ नहीं है। यही हुआ परमतत्व।

"सुन्न तरुवर फुल्लि अऊ करुणा विविह विचित्र ।
अन्न भोअ पर ओ फल्र एहू सोक्ख परुचित्त ॥"

शून्य तरुवर में फूल खिल उठे हैं—विविध विचित्र करुणा ही यह फूल है। अन्य भोग का अन्य स्थान फल है, चित्त का परम सुख ही फल है।

एक्क स्त्रो एक्कोवि तरु तें कारणे फल एक्क ।
ए अभिन्ना जो मुनई सो भव निव्वान विमुक्क ॥

सभी एक हैं, इससे सभी तरु और सभी फल फूल एक हैं। इस शून्यता के तरु के करुणा-फल को जो अभिन्न कहकर जानते हैं, वही भव-निर्वाण विमुक्त हैं।

जो अखिअन ही अऊ सो जई जाई निरास ।
खंड सरावें भिक्ख वरु च्छड्हु ए गिह वास ॥

अर्थात् अर्थी या याचक होकर यदि कोई किसी गृहस्थ के यहाँ आवे, और निराश फिर जाय, तो उसके (गृहस्थ के) गृही होने का लाभ क्या? क्या प्रयोजन? इसकी अपेक्षा तो टूटी सराय की भिक्षा ही भली! इससे तो अच्छा गृही गृहवास को छोड़ दे।

परऊ आरन कि अऊ अखिन दीअऊ दान ।
एहु संसारे कवन फल्रू वरु छड्डहु अजान ॥

जो दूसरों का उपकार नहीं करता, धन रहने पर भी जो दान नहीं करता, इस संसार में उसका क्या प्रयोजन है? अच्छा है कि वह अपने को ही छोड़ दे।

ग्राहकों से विनम्र निवेदन

चन्दा-समाप्ति की सूचना पाने पर कृपया ग्राहक रहने या न रहने की सूचना अवश्य भेजने का कष्ट करें। वी. पी. नहीं छुड़ाने से हमें व्यर्थ आर्थिक हानि होती है। ग्राहक कृपया इस पर अवश्य ध्यान दें।

—व्यवस्थापक "धर्मदूत"

गुरुकुल-पत्रिका,
गुरुकुल काँगड़ी.

सच्ची महानता

प्रो० लालजीराम शुक्ल

सभी पुरुष अपने आपको महान् जानना चाहते हैं। नता कई प्रकार की होती है। धन की महानता, ा की महानता, चरित्र की महानता। महान् पुरुष से लोग दबते हैं और डरते हैं। वे कुछ उससे लेने की ा रखते हैं। धन, ज्ञान अथवा चरित्र की महानता ख्याति मनुष्य को दूसरे लोगों के मन के ऊपर अधि- दे देती है। ख्याति स्वयं महानता का प्रतीक बन ती है। कितने लोग तो कीर्त्ति को ही महानता समझ ते हैं। फिर महानता के प्रतीक मात्र स्वयं महानता जाते हैं।

एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की बात मानता है। वह का आदर करता है। उसके विरुद्ध आचरण नहीं ा। यह सब क्यों होता है? यह इसलिए ही होता कि पहला व्यक्ति दूसरे को किसी अर्थ में अपने से बड़ा ता है। जिस प्रकार कि हम बड़ाई के स्वयं इच्छुक हैं, प्रकार की बड़ाई से सम्पन्न व्यक्ति के पास हम ते हैं। उसकी बात मानते हैं। और उससे डरते हैं। के इच्छुक लोग धनी लोगों के पास जाते हैं। उनकी मानते हैं। उनका सम्मान करते हैं और उनसे डरते वे ज्ञानी अथवा चरित्रवान् व्यक्ति की परवाह नहीं । धन के इच्छुक व्यक्ति की दृष्टि में ज्ञान अथवा स्वतः मूल्य नहीं रखते। वे उतनी दूर तक मूल्य हैं जहाँ तक कि वे धनोपार्जन में सहायता देते हैं। कोई व्यक्ति बड़ा विद्वान् अथवा चरित्रवान् है तो ऐसे का सामाज के अधिक लोग आदर नहीं करते हैं। चरित्रवान् व्यक्ति यदि निर्धन है तो वह साधारणतः समझा जाता है। समाज में अधिक धन का होने के कारण जिन लोगों में ज्ञानोपार्जन की शक्ति अपनी इस शक्ति को धनोपार्जन में ही खर्च करते हैं। और सांस्कृतिक विद्या को न पढ़कर अर्थकरी विद्योपार्जन में अपना समय व्यतीत करते हैं।

ज्ञान के इच्छुक व्यक्ति धन को प्रश्रय न देकर ज्ञान को प्रश्रय देते हैं। जिसके पास ज्ञान है, उसका वे आदर करते हैं। ज्ञान-हीन धनी मनुष्य को वे मूर्ख समझते हैं। ऐसे मनुष्य का वे आदर भी नहीं करते। जिसकी जिससे चाह नहीं, उसके हृदय में आदर नहीं। मनुष्य की इच्छा ही एक दूसरे से सम्बन्ध स्थापित करती है। ज्ञानी मनुष्य यह जानता है कि ज्ञान धन से सब प्रकार से बड़ा है। ज्ञान के द्वारा धन कमाया जा सकता है। उसे धन में परिवर्तित किया जा सकता है। और सब धन न भी रहे, तब भी मनुष्य ज्ञान के सहारे सुखी रह सकता है। जब धन के लोभी व्यक्ति का धन खो जाता है तो वह व्यक्ति समझता है कि उसका सब कुछ खो गया। अतएव धन न रहने पर वह मृत्यु का आवाहन करने लगता है। परन्तु जिस व्यक्ति ने सच्ची विद्या का उपार्जन किया है। केवल अर्थकरी विद्या के उपार्जन में समय नहीं बिताया वह धन के चले जाने पर उद्विग्न मन नहीं होता। धन रहे तो अच्छा है, न रहे तो भी अच्छा है।

चरित्र की महानता सबसे ऊँची बताई गई है। यह महानता ज्ञान की महानता से भी बड़ी है। चरित्र प्राप्ति के लिए न केवल ज्ञान सञ्चय की आवश्यकता है वरन् भले कामों के अभ्यास की आवश्यकता है। जो लोग चरित्र की महानता के इच्छुक हैं, वे न तो कोरे धनी व्यक्ति को और न कोरे पण्डित को आदर की दृष्टि से देखते हैं, वे उन्हीं को आदर की दृष्टि से देखते हैं, जिनमें चरित्र के गुण हैं। धन और विद्या स्वयं साध्य नहीं है। ये केवल साधन मात्र हैं। स्वयं साध्य वस्तु चरित्र की भलाई है। जिस मनुष्य में चरित्र की भलाई नहीं है वह धनी होकर भी निर्धन है और पण्डित होकर भी मूर्ख है।

इमैनुअल कान्ट महाशय का कथन है कि मनुष्य की शुभकामना ही एक ऐसी वस्तु है जो अनपेक्षित रूप से भली है। संसार की और सब भली वस्तुएँ विशेष परिस्थितियों में ही भली होती हैं। परन्तु शुभकामना सभी स्थिति में भली है। यही शुभकामना अथवा शुभेच्छा भले आचरण का आधार होती है।

समाज का प्रत्येक व्यक्ति उत्तरोत्तर ऊँचे से ऊँची भलाई को प्राप्त करने की चेष्टा करता है। अतएव जिन तत्वों में वास्तविक मूल्य अधिक है उनकी कम मूल्य के तत्वों की अपेक्षा कम कीमत होती है। विकासोन्मुख समाज में धन की अपेक्षा ज्ञान की, और ज्ञान की अपेक्षा चरित्र की अधिक कीमत होती है। ऐसे तो समाज में प्रति सौ व्यक्तियों में दस ही ऐसे होते हैं जो ज्ञान की कीमत करते हैं। इन दस में से केवल एक ही व्यक्ति चरित्र के लिए सब कुछ त्याग करने के लिए तैयार हो जाय तो हमें समाज का बड़ा भाग्य मानना चाहिए। जिस समाज में सौ व्यक्तियों में दस विद्या के भक्त और उन दस में से एक चरित्र का अनन्य भक्त होता है, वह समाज प्रगतिशील होता है। ऐसे व्यक्तियों की उपस्थिति मात्र से दूसरे लोगों में आत्मोत्सर्ग करने की इच्छा जीवित रहती है। उनके उदाहरण का अनुकरण दूसरे लोग करते हैं। जहाँ धनी लोगों की अपेक्षा विद्याप्रेमी का और विद्याप्रेमी की अपेक्षा सदाचारी का अधिक आदर होता है। वह समाज नित्य प्रति प्रगति करता, जब इसके प्रतिकूल आचरण होने लगता है तब समाज अवनति की ओर जाने लगता है। फिर समाज में अनेक प्रकार के उपद्रव और विद्रोह होने लगते हैं।

चरित्र की महानता निर्दोष, और सभी प्रकार की महानतायें, उनके स्वामियों में अहंकार का भाव उत्पन्न करती है और दूसरों में ईर्ष्या का। इसके कारण न तो धनी लोग अधिक दिन तक धनी रह सकते हैं और न पण्डित अपनी पण्डिताई को रख पाते हैं। जिस मनुष्य में चरित्र की महानता होती है वह गिरे हुए चरित्र के लोगों की सहायता के लिए सदा तत्पर होता है। वह उनसे सहानुभूति रखता है और अपने आपको महान् इसी बात में मानता है कि वह सबकी सेवा करने की क्षमता रखता है। फिर बाप के धन का बेटा प्रयोग कर सकता है, बाप की विद्या भी बेटा के कुछ काम आ जाती है, पर चरित्र प्रत्येक व्यक्ति को अपने आप ही बनाना पड़ता है। चरित्र पैतृक सम्पत्ति नहीं बनती। इसका बनना और बिगड़ना प्रत्येक व्यक्ति पुरुषार्थ पर निर्भर करता है।

धन, विद्या, और चरित्र में इस बात में समानता है कि जब तक मनुष्य उन्हें कमाता रहेगा तब तक उनमें उन्नति होती है। जिस समय कमाना बन्द हुआ, उसी समय से उनका विनाश होना प्रारम्भ हो जाता है। व्यापार में लगा धन सच्चा धन है, अध्ययन-अध्यापन में लगी विद्या सच्ची विद्या है। इसी प्रकार सदा भले आचरण में प्रकाशित होने वाला चरित्र ही सच्चा चरित्र है। ऐसे चरित्र का ही मनुष्य भरोसा कर सकता है। यदि कोई भला मनुष्य भला कार्य करना छोड़ देता है तो उसके भलेपन का अन्त हो जाता है। यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू महाशय का यह कथन मननीय है कि सद्गुण के लिए कोई त्यौहार का दिन नहीं होता। सद्गुण क्रिया में है न कि योग्यता में। अर्थात् जब तक मनुष्य भले काम करते रहता है तभी तक वह सद्गुणी है जब भले काम करना छोड़ देता है तब से उसके सद्गुण का ह्रास होना प्रारम्भ हो जाता है।

महानता का एक लक्षण उसके अभिमान का अभाव है। सच्चे धनी और विद्वान् को धन और विद्या की कमी का ही अधिक अनुभव होता है। जब इनका उसे अभिमान होने लगता है तब इनका खोना भी निश्चित हो जाता है। चरित्र महानता में मनुष्य को सदा अपने कर्तव्य ही पर ध्यान रहता है अतएव न तो अपनी कमी पर वह चिन्तन करता है और न अपनी वृद्धि पर। चरित्रवान् व्यक्ति सदा एक रस साम्य मानसिक स्थिति में रहता है। उसके अहंकार को उसके वास्तविक दृश्य का ज्ञान ही नहीं रहता उसके अचेतन मन की वस्तु बन जाती है।

क्या पालि-परम्परा चतुर्थ सङ्गीति के प्रति मौन है ?

भदन्त सद्धातिस्स स्थविर

भारतीय इतिहासज्ञ केवल कनिष्क-कालीन चतुर्थ ंगीति की ही चर्चा करते हैं, जो ५०० भिक्षुओं द्वारा श्मीर की राजधानी श्रीनगर के पास 'कुण्डलवन-विहार' अथवा जालन्धर के पास 'कुवन' में हुई थी, जिसके ान भिक्षु अश्वघोष के गुरु पार्श्व तथा वसुमित्र थे। स संगीति की समूची कृति ताँबे के पत्रों पर संस्कृत में कित की गई थी और उन ताम्रपत्रों की पुस्तक को एक ूप के अन्दर जो उसी के लिए बनवाया गया था, स्थापित किया गया था। वही महाविभाषा नाम का त्रिपिटक भाष्य था। उस पुस्तक का चीनी अनुवाद मिलता है, न्तु उस स्तूप के अवशेषों का अभी तक पता नहीं ा। उसी संगीति के समय कनिष्क ने विहारों और ों की स्थापना करने में भी अशोक जैसा कार्य किया। स समय का बनवाया हुआ उसका एक सौ फुट ऊँचा ह मंजिला स्तूप नौवीं शताब्दी तक था; वह यदि आज ता तो संसार की अद्भुत वस्तुओं में गिना जाता। निष्क की इस चतुर्थ संगीति का बड़ा ही महत्व है क्योंकि स संगीत ने जिस धर्म का संगायन किया, उसे कनिष्क स्वयं स्वीकार किया और उसका प्रचार उत्तरी देशों में हुत अधिक हुआ। उसमें बौद्ध धर्म के उस वाद की ानता थी, जो कुछ समय बाद 'महायान' या बड़े पन्थ नाम से प्रसिद्ध हुआ, पुराना थेरवाद जो दक्खिन में बना ा, और जिसका मुख्य केन्द्र सिंहल था, उनके द्वारा 'हीन-' कहा जाने लगा, जो वास्तव में प्रतिस्पर्द्धाजनक था।

उपर्युक्त चतुर्थ संगीति के सम्बन्ध में ही प्रायः इति-स लेखक चर्चा कर मौन साध लेते हैं, किन्तु यदि भली र विचार किया जाय तो कनिष्क कालीन संगीति ी संगीति न थी, वह पाँचवीं कही जा सकती है। ी संगीति तो लंका में अशोक-काल में ही हुई थी। का वर्णन पालि-ग्रन्थों में इस प्रकार है—

देवानां प्रियतिष्य महामहेन्द्र स्थविर को प्रणाम् कर पूछा—"भन्ते! क्या सिंहल में अब बुद्ध-धर्म चिरस्थायी हो गया है?"

"महाराज! बुद्धधर्म केवल स्थापित ही हुआ है. किन्तु अभी इसकी जड़ नहीं जमी है।" स्थविर ने उत्तर दिया।

"भन्ते! धर्म की जड़ कब और कैसे दृढ़ होगी?"

"जिस दिन इस द्वीप के ही कुलपुत्र प्रव्रजित होकर यहीं धर्म-संगीति करेंगे, उस दिन धर्म की जड़ दृढ़ होगी और वही समय होगा, जब कि बुद्ध शासन लंका में चिर-स्थायी बनेगा।"

यह सुनकर राजा बड़ा ही प्रसन्न हुआ और उसने गद्गद् हृदय होकर पूछा—"भन्ते! क्या इस अर्थ के लिए इस समय इस द्वीप में भिक्षु लोग सुलभ हैं। इस समय हम उन्हें पा सकते हैं?"

"राजन्! तेरा आग्नेय महाअरिष्ट भिक्षु इस धर्म-कार्य के लिए समर्थ है, वह यथायोग सब कर करा सकता है। लंका में उसके सहधर्मी इस समय बहुत भिक्षु हैं, जो वीतराग और त्रिपिटकधारी हैं, यह काम उनके लिए सहज और सुकर है।"

तब राजा ने प्रसन्न और सन्तुष्ट होकर कहा—"भन्ते! मुझे क्या करना चाहिए। मेरे योग्य कौन-कौन से कार्य है?"

"तुझे एक विशाल मण्डप बनवाना योग्य है, जहाँ सभी भिक्षु बैठकर संगायन कर सकें।"

भदन्त की आज्ञा सिर पर चढ़ा राजा ने सुवर्णमाली महास्तूप के पास वाले मेघवर्ण नामक परिवेण में मण्डप बनवाया और उसे उसी प्रकार सुसज्जित किया, जिस प्रकार कि प्रथम संगीति के समय राजगृह में सप्तपर्णी गुफा सजाई गई थी। वह मण्डप का सारा कार्य समाप्त

कर मन्त्रियों के साथ स्तूपाराम नामक विहार में गया, जहाँ उस समय ६८ हजार भिक्षु एकत्रित हुए थे । उसकी प्रार्थना करने पर धर्म-सङ्गायन का कार्य प्रारम्भ किया गया । उस धर्म-सङ्गायन में भिक्षुओं के बैठने का क्रम इस प्रकार था—

मण्डप के मध्य में महामहेन्द्र स्थविर को बैठने के लिए दक्षिण ओर और अरिष्ट स्थविर को बैठने के लिए उत्तर ओर आसन बने थे । उनके अपने आसनों पर बैठ जाने पर प्रतिसम्भिदा प्राप्त ६८ भिक्षु उन्हें घेर कर बैठ गये । ५०० अर्हत् भिक्षुओं के साथ राजा देवानां प्रियतिष्य का छोटा भाई मत्ताभय जो प्रव्रजित होकर अर्हत् हो गया था, वह अरिष्ट स्थविर के आसन को घेर कर बैठ गया । शेष भिक्षु भी क्रमशः बैठ गये ।

क्रमशः सबके बैठ जाने पर महा अरिष्ट स्थविर ने महाभिक्षु-संघ के इच्छानुसार सर्वप्रथम विनयपिटक का संगायन प्रारम्भ किया—"तेन खो पन समयेन बुद्धो भगवा वेरञ्जायं विहरति नलेरु पुचिमण्डरुक्खमूले ।" आदि विनयपिटक के निदान को प्रारम्भ करते ही अनेक आश्चर्य घटनायें घटित हुईं । आकाश में महामेघ का घोष हुआ । बिजली चमकी और देवता साधुकार दिये । महापृथ्वी काँप उठी । महाअरिष्ट स्थविर ने महामहेन्द्र स्थविर प्रमुख के साथ ६८ हजार भिक्षुओं से घिरे कार्तिक पूर्णिमा के दिन से प्रारम्भ कर तीनों पिटकों का धर्म-संगायन समाप्त किया । यह प्रसिद्ध चतुर्थ संगीति बुद्धाब्द २३८ में सब प्रकार से सम्पूर्ण हुई ।❀

❀सिंहल के सुप्रसिद्ध विद्वान् द्वारा लिखित इस लेख में यह विचारणीय विषय है कि लंका की चतुर्थ संगीति भारतीय इतिहासज्ञों के लिए चतुर्थ नहीं है, उनके लिए तो कनिष्क-कालीन ही संगीति चतुर्थ संगीति है क्योंकि भारत में चतुर्थ संगीति वही थी और पाँचवीं का यद्यपि कोई महत्व नहीं है फिर भी हर्ष काल में मानी जाती है । यदि लंका की संगीति को चतुर्थ मान लें, तो जिन-जिन देशों में बौद्ध धर्म के प्रचारक भिक्षु गये, उन-उन देशों की भी संगीतियों को स्थान देना होगा । दूसरी बात यह है कि लंका की यह संगीति उतने महत्व की न थी, महत्वपूर्ण संगीति तो वह थी जो वट्टगामिणी अभय के समय में आलोक विहार में हुई थी, जिसमें सारा त्रिपिटक लिपि-बद्ध हुआ और जिस संगीति ने पालि साहित्य की रक्षा का महत्वपूर्ण कार्य किया—सम्पादक ।

'गणेश' बुद्ध ही हैं !

श्री अनन्त रामचन्द्र कुलकर्णी

'गणेश' बुद्ध ही हैं' यह पढ़कर बहुत से लोगों को आश्चर्य होगा, परन्तु मेरा दृढ़ विश्वास है कि हिन्दुओं के गणपति या गणेश बुद्ध ही हैं । इस विचार-धारा के समर्थनार्थ मैं नीचे दिये हुए कारण पाठकों के सामने विचारार्थ पेश करता हूँ । आशा है कि पाठकगण इस प्रश्न का निष्पक्ष बुद्धि से विचार करेंगे—

१. सबसे पहला कारण यह है कि गणपति वैदिक या वेदकालीन देवता नहीं हैं । गणपति की पूजा हमारे समाज में भगवान् बुद्ध के जन्म के पश्चात् अस्तित्व में आयी । बुद्ध के पूर्व गणपति की पूजा हमारे समाज में प्रचलित नहीं थी ।

२. बुद्ध के गर्भ धारण के समय बुद्ध की माता मायादेवी जो स्वप्न दीखा था, वह ऐसा था कि मायादेवी के पलंग को चार देवता उठाकर हिमालय पर्वत पर ले गये और वहाँ पर मायादेवी को नहला कर सुवर्ण पलंग पर सुलाये । जब मायादेवी सो रही थीं, तब उनके पेट में एक शुभ्र हाथी ने प्रवेश किया । इस स्वप्न के ९ या १० महीने पश्चात् भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ । अर्थात् हाथी ही बुद्ध रूप से प्रकट हुआ । इधर गणेश को गजानन भी कहते हैं । गज अर्थात् हाथी और आनन अर्थात् मुँह । हाथी का जिसका मुँह है, वह गजानन है । गणपति का मुँह हाथी के मुँह के समान

ही यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं है। हाथी के न बहुत लम्बे होते हैं यह भी सर्वमान्य सत्य है और वान् बुद्ध के कान भी बहुत बड़े थे, इसका अर्थ अब कों को स्पष्ट होगा। इस माया देवी के स्वप्न के साथ ब हम स्मरण करेंगे कि गणेश जी की पूजा बुद्ध के जन्म श्चात् प्रचलित हुई तब तो गणेश बुद्ध ही हैं—यह न स्वयं सिद्ध हो जाती है।

३. बौद्ध धर्म-ग्रन्थों में बुद्ध का एक नाम 'विनायक' कहा गया है।

४. केवल बौद्धों के ही नहीं, अपितु हिंदुओं के अमर-श में भी बुद्ध का एक नाम 'विनायक' भी आया है र कोश में बुद्ध के ये नाम हैं: —

"सर्वज्ञः सुगतो बुद्धो धर्मराजस्तथागतः।
समन्तभद्रो, भगवान्, मारजित् लोकजित् जिनः।
षड्भिज्ञो, दशबलोऽद्वयवादी विनायकः।"

"विनायक" अर्थात् गणपति—इसको तो कोई भी मानेगा। अतः निर्विवाद गणपति बुद्ध ही हैं।

५. गणपति या गणेश—ये दोनों एक ही अर्थ-क शब्द हैं। गणपति अर्थात् गण लोगों के पति या । 'गण' उन लोगों को कहते हैं जिनमें प्रजातंत्र न-पद्धति प्रचलित होती है। जिन शाक्य लोगों में वान् बुद्ध का जन्म हुआ, वे शाक्य लोग गण लोग —यह भी एक निर्विवाद सत्य है। ऐसे शाक्यों के पति नायक भगवान् गौतम बुद्ध ही थे। इसी कारण बुद्ध शाक्यसिंह भी कहते हैं।

६. हमारे समाज में ऐसी परम्परा प्रचलित है कि णेश' बुद्ध ही का नाम है। एक पद में कहा है कि—

"गौरी के बुद्ध गणेश हुए"।

इसका सारांश यह है कि 'गणेश' बुद्ध ही हैं।

७. प्रत्येक मंगल कार्य के आरम्भ में गणपति की पूजा करने की परम्परा है। इसका अर्थ क्या है? आज हम भगवान् बुद्ध के युग में रहते हैं। भगवान् बुद्ध को हिन्दू लोग विष्णु का ९वाँ अवतार मानते हैं। श्री रामचंद्र का ७वाँ, श्री कृष्ण का ८वाँ और बुद्ध का ९वाँ अवतार है। श्री रामचन्द्र तथा श्री कृष्ण के अवतार समाप्त हो चुके हैं और इसी कारण प्रत्येक ब्राह्मण पूजा के समय अपने संकल्प में "बौद्धावतारे" मंत्र कहकर प्रकट करता है कि वह भगवान् बुद्ध के युग में रह रहा है। अतः जिन भगवान् बुद्ध के युग में हम रहते हैं, उनकी पूजा करना हमारा परम कर्त्तव्य है और इसी कारण सर्व-प्रथम उनकी पूजा होती है और तत्पश्चात् अन्य देवताओं की।

इन सब बातों से स्पष्ट है कि 'गणेश' बुद्ध ही हैं। यह हुई बुद्ध की अप्रत्यक्ष रूप से पूजा। भगवान् बुद्ध की पूजा आज भारत में प्रत्यक्ष रूप से प्रचलित होनी चाहिये, क्योंकि आज भारत में गणराज्य का निर्माण हुआ है और इस गणराज्य के अधिष्ठित देवता भगवान् बुद्ध ही हैं। भगवान् बुद्ध का धर्मचक्र जिसे हम अशोक चक्र कहते हैं, हमारे राष्ट्रध्वज के मध्य में विराजमान है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि भगवान् बुद्ध हमारे राष्ट्र के प्राण हैं, हमारे गणराज्य की नींव हैं। अतः बुद्ध हमारे गणपति हैं इस बात को कौन नहीं मानेगा? अतः प्रत्येक राष्ट्रप्रेमी मनुष्य का परम कर्त्तव्य है कि वह भारत में भगवान् बुद्ध की पूजा को प्रचलित करने के लिए कटिबद्ध हो जाय। इसी से हम अपना राष्ट्र अमर कर सकते हैं, अन्यथा नहीं।

पुरानी पोथियों की विदेश-यात्रा

श्री प्रह्लाद प्रधान

[२]

चीन में बौद्ध धर्म पहुँचने का एक मजेदार विवरण जाता है। चीन के हान् वंश के सम्राट् मिङ्ग ने से बौद्ध धर्म का नाम सुन रखा था। उसने एक दिन स्वप्न में गौतम बुद्ध को देखकर चाइ-यिन्; चिन किं, वाँ-चुआन् और अनेकों को भारतवर्ष से बौद्ध ग्रन्थ और बौद्ध भिक्षु साथ ले आने के लिये भेजा। वे लोग

जब आ रहे थे, तब दैवयोग से काश्यप मातङ्ग (किआ-येह मोताङ्ग) और धर्मरत्न (धु-फा-लन्)--किसी-किसी के मत से गोवर्धन--यहाँ से चीन की ओर जा रहे थे और उन लोगों से खोटान में मुलाकात हुई थी। वहीं से फिर सब एक साथ चीन चले गए। सम्राट् ने खुद आकर उन लोगों की अभ्यर्थना की और उन लोगों के रहने के लिये लोयाङ्ग में एक विहार बनवा दिया, इसी को पाइ-मा-स्स या श्वेताश्व विहार कहते हैं; कारण, बौद्ध भिक्षु ग्रन्थों के साथ चीन में सफेद घोड़ों पर पहुँचे थे। बाद में चलकर लोयाङ्ग बौद्ध ग्रन्थों के अध्ययन का एक केन्द्र हो उठा। बौद्ध भिक्षुओं के हिसाब से वे भारत से जानेवाले सर्वप्रथम भिक्षु थे। चीनियों की मतिगति और परिस्थिति के अनुकूल काश्यप मातङ्ग ने चीनी भाषा में संग्रह के तौर पर एक छोटी-सी किताब लिखी थी। शान्तिनिकेतन से अब इसका संस्कृत और पालि में अनुवाद हो रहा है। छु-फा-लन् ने कुछ ग्रन्थों का अनुवाद किया। इस प्रकार बौद्ध भिक्षुओं का इतना सम्मान बढ़ने लगा कि भगवान् बुद्ध का अहिंसा-धर्म प्रचार करने के लिये कभी कभी हिंसा-वृत्ति का आश्रय आवश्यक हो गया। कुमारजीव को ले जाने के लिये चीन के चिन् वंश का राजा फु-किएन् और कुच का राजा पो-चुएन् में लड़ाई छिड़ गई। इस तरह भिक्षु उन उन देशों में जाने लगे और प्रचार करने के लिये वहाँ की भाषाओं में बौद्धग्रन्थों का अनुवाद करने लगे। इससे साफ मालूम होता है कि भारत से बौद्ध ग्रन्थों की पोथियाँ उन भिक्षुओं के साथ उन देशों में जाने लगी थीं।

अशोक का धर्मप्रचारक भेजना और काश्यप मातङ्ग की बुलाहट से मालूम होता है कि पोथियों के बाहर जाने में राजा और भिक्षुओं का प्रधान काम था। ऊपर कहा गया है कि हान् वंश के राजा मिङ्ग ने सन् ६४ ई० में पोथियाँ ले आने के लिये भारतवर्ष में आदमी भेजा था। गुप्तकाल में भी सन् ५३९ ई० में चीन से सम्राट् बु ने ग्रन्थों की खोज में मगध में पण्डितों का एक जत्था भेजा था। मगध के राजा जीवितगुप्त ने उनकी सादर अभ्यर्थना भी की थी तथा अनेक बौद्ध ग्रन्थों और अन्यान्य पोथियों के साथ भिक्षु परमार्थ को उनके साथ भेजा था। उत्तरी तातार के वई-वंश की रानी बु ने भी ५१८ ई० में सुङ्ग-युन को उद्यान (उज्जयिनी) और हुई-सेङ्ग को गान्धार में बौद्ध ग्रन्थ संग्रह करने के लिये भेजा था और वे दोनों १७० ग्रन्थ ले भी गए थे। ५७५ ई० में इ-एह के राजा चि ने ११ चीनी भिक्षुओं का एक दल भारतवर्ष में पोथी संग्रह करने के लिये भेजा था। वे लोग जब २६० पोथियाँ लेकर लौट रहे थे, तब रास्ते में तुर्किस्तान में उन्होंने सुना कि इसी बीच चेउ वंश के राजा बौद्ध धर्म के प्रति शत्रुता और बौद्ध भिक्षुओं की हत्या कर रहे हैं। इसलिये उन्होंने वहीं तुर्किस्तान में ठहर जाने का निश्चय किया। इस समय बु वंश के राजाओं के अत्याचार से भी चीन से भाग आकर कुछ बौद्ध भिक्षु तुर्किस्तान में बस गए थे। उन्हीं में जिनगुप्त थे और भाग्यवश भेंट हो जाने से उन्होंने उन पोथियों के सब नाम चीनी भाषा में अनुवाद कर दिए थे। राजा तेङ्ग ने फिर पीछे जिनगुप्त को तुर्किस्तान से बुला लिया था और वहाँ अपना राजगुरु भी बना लिया था। वे ता-हिङ्ग-चान् के मन्दिर में अनुवाद-समिति के प्रधान भी थे। चीन में अनुवाद बड़े अच्छे ढंग से होता था। अनुवाद-समिति के ९ विभाग होते थे। कोई वाक्य का भाषान्तर करता था तो कोई उच्चारण ठीक करता था, कोई अर्थ लगाता था तो कोई शैली ठीक करता थ, कोई भूल संशोधन करता था तो कोई साधारण काम देखता था। सम्राट् ताइ-चि ने भी मदद के लिये चिट्ठी देकर पोथियों की खोज में १५० बौद्ध भिक्षु भेजे थे। इस तरह और भी कितनी पोथियाँ गई हैं, इसका ठिकाना नहीं।

सिर्फ चीन में ही नहीं तिब्बत में भी राजशक्ति के बल पर बौद्ध धर्म और पोथियाँ गई हैं। तिब्बत में बौद्ध धर्म के जाने की एक दिलचस्प कहानी है। कहा जाता है कि तिब्बत का पहला राजा भारत से गया था और वह कोशल के प्रसेनजित् का लड़का था। इससे तीसरे राजा के राज्य-काल में तिब्बत में प्रथम बार बौद्ध धर्म का प्रवेश हुआ और वह भी एक अजीब ढंग से। प्रवाद है कि राजा जब अम्बु में था, तब उसके प्रासाद के ऊपर शून्य से एक पेटी गिरी, जिसमें कारण्ड-व्यूहसूत्र की एक पोथी, एक पत्र, 'ओं मणि पद्मे हूं' मन्त्र, एक स्वर्ण

और चिन्तामणि की एक मिट्टी की मूर्ति थी। हिल साहब ने अनुमान किया है कि बौद्ध धर्म नेपाल वहाँ गया होगा, क्योंकि उसमें कारण्डव्यूहसूत्र की पोथी थी जिसका नेपाल में प्रचार अधिक है। इसके ५ भिक्षु वहाँ पहुँचे और उन लोगों के उन सब की योगिता समझाने की कोशिस तो की लेकिन राजा बौद्ध धर्म में दीक्षित नहीं कर सके। इससे बढ़कर एक ऐतिहासिक घटना का उल्लेख पाया जाता है। स्तान् ने ६१६ ई० में थौमि संभोत को अन्य सोलह दमियों के साथ वर्णमाला ले आने के लिए यहाँ जिन्होंने दक्षिण भारत जाकर एक लि-व्यिन् लिपिकार ?) ब्राह्मण और सिंहघोष पण्डित से भारतीय पिमाला सीखी। उन्होंने काश्मीर जाकर वहाँ प्रचलित री लिपि भी सीखी और यहाँ से २४ लिपियाँ ले उनके साथ तिब्बत के कुछ स्वतन्त्र-वर्णों के लिये अक्षरों में कुछ रूपान्तर कर तिब्बत में वर्णमाला लित की। भारत में रहते समय उन्होंने कारण्डव्यूह अवलोकितेश्वरसूत्र और कुछ अन्य ग्रन्थों का अनुवाद था। साथ साथ वे बहुत-सी पोथियाँ भी ले गए जिनमें से व्याकरणमूलत्रिंशद्नाम और व्याकरणलिङ्गा-जैसे कुछ बौद्ध धर्म के बाहर के भी ग्रन्थ थे। स्रङ्- ने नेपाल और चीन की राजकुमारियों से विवाह था, जिससे तिब्बत में बौद्ध धर्म का ज्यादा प्रचार होने। इनके राजत्वकाल में हिन्दुस्तान से कुमार, नेपाल से मन्जु, काश्मीर से तबुत और गनुत, चीन से हा-चाङ्ग या धर्मोपदेशक के रूप में तिब्बत में आये थे और या दुभाषिये के रूप में थौमि, धर्मघोष और वज्र। किलि-सो-त्सान् ने बौद्ध पण्डित बुला ले जाने के खोटान और हिन्दुस्तान में आदमी भेजे थे। भारत गुह्य और बुद्धशान्ति को बुला ले जाने के लिये हुए दौत्य में जो लोग थे, उन लोगों ने महायान की पाँच पुस्तकें कण्ठस्थ कर ली थीं, जिन्हें उन्होंने में अपनी भाषा में लिखा। इसी के राजत्वकाल से प्राप्त सुवर्णप्रभात सूत्र और कर्मशतक का भी भाषा में अनुवाद हुआ था। इसी समय अग्- आयुर्वेद, ज्योतिष, तन्त्र इत्यादि विषयों के अनेक ग्रन्थ अनुवाद किए थे। कि-लि-त्सान् के समय में शान्तरक्षित के पास बुलाहट आई। लेकिन उनको चीनी योगाचारीय भिक्षुओं से बाधा मिली और उन्हें लौट आना पड़ा। लौटती बार वे उद्यान के माध्यमकाचार्य पद्मसम्भव को बुला ले जाने के लिये राजा से अनुरोध कर आए थे। पद्मसम्भव गए भी और उनकी देख-रेख में मगध के नालन्दा विहार के अनुकरण पर लासा का समये विहार बना। सन् १८७४ ई० में पण्डित नएन् सिङ्ग (नयन सिंह) इसमें ठहरे थे और उन्होंने वहाँ शुद्ध सुवर्ण की मूर्तियाँ और एक बड़ी भारी लाइब्रेरी देखी थी। उसी समय काश्मीर से भिक्षु आनन्द भी आए थे। पद्मसम्भव के बाद एक और विख्यात पण्डित भी आए थे, जिनका नाम था कमलशील। उन्होंने हा-चाङ्ग या महादेव को राजा के सामने परास्त किया और माध्यमिक मत का स्थापन किया। उन्होंने अनेक ग्रन्थों का अनुवाद किया और इसी समय संस्कृत-तिब्बती कोष 'महाव्युत्पत्ति' का भी संकलन हुआ। त्सान-पो ने अपने राजत्वकाल में भारतवर्ष से जिनमित्र, शीलेन्द्रबोधि, धनशील, प्रज्ञावर्मा, सुरेन्द्रबोधि इत्यादि बहुत से पण्डितों को बुलाया था, जिन्होंने तिब्बती बौद्धग्रन्थ संग्रह के कार्य में आर्यदेव, चन्द्रकीर्ति, नागार्जुन, अश्वघोष प्रभृति पण्डितों के ग्रन्थों का भी प्रचार किया। उन्होंने पुराने अनुवादों का पुनः संशोधन तथा अनूदित ग्रन्थों का पुनः सम्पादन भी किया। सन् १०१३ ई० में शिष्यों के साथ धर्मपाल और सन् १०४२ में बंगाल से अतिशा भी तिब्बत गए थे। अतिशा ने प्राधानतः तन्त्र-ग्रन्थों का अनुवाद और प्रचार किया।

इस संक्षिप्त विवरणी से मालूम होता है कि किस प्रकार पण्डितों और उनके साथ पोथियों की धारावाहिक यात्रा इस देश में होती रही। कान्-जुर और तान्-जुर नामक बौद्ध-ग्रन्थसंग्रह से कुछ पता लग सकता है कि यहाँ से कितनीपोथियाँ तिब्बत में गई हैं, सिर्फ बौद्ध ग्रन्थ ही नहीं, कितने ही व्याकरण, दर्शन नीतिशास्त्र, और कालीदास का मेघदूत, वररुचि की शतगाथा, रविगुप्त का आर्याकोश तथा अमर-कोश, नागानन्द इत्यादि ग्रन्थ भी गए थे। यहाँ तक कि रामायण और महाभारत की

पोथियाँ भी वहाँ गई थीं, जिनका तिब्बती में अनुवाद पाया जाता है।

सिर्फ राजशक्ति के बल पर ही नहीं, स्वतःप्रवृत्त और धर्मप्रणोदित होकर भी बहुत-से बौद्ध भिक्षु विदेश जाते थे अशोक के धर्मप्रचारकों की विवरणी से मालूम होत है कि उन्होंने काश्मीर-गान्धार और यवनलोक में प्रचारक भेजे थे और उन प्रचारकों ने वहाँ बौद्ध-धर्म स्थापन भी किया था। काश्मीर-गान्धार बौद्धधर्म का एक प्रधान केन्द्र हो उठा था। तक्षशिला का बौद्ध विद्यापीठ उसी अञ्चल में था। काश्मीर-गान्धार का प्रदेश यवनलोक (अर्थात् अरब, फारस, पूर्वी तुर्किस्तान, तिब्बत और चीन इत्यादि) देशों के लिये हिन्दुस्तान का मुखद्वार था। इसलिये उस अञ्चल से अनेक भारतीय भिक्षु पूर्वी तुर्किस्तान, खोटान, काशगर, यारकन्द, समरकन्द इत्यादि प्रदेशों में जा बसे थे। इस प्रकार खोटान भारत के बाहर होने पर भी संस्कृत साहित्य और संस्कृति का एक केन्द्र हो उठा। फिर खोटान पारस्य, चीन और भारत का एक मिलन-केन्द्र भी था। जिस तरह भारतवासी वहाँ जा बसे थे, वैसे ही चीन से आकर भी लोग बस गए थे। यहाँ से बौद्ध धर्म चीन और तिब्बत तक पहुँचता था। इससे इस मिश्रित उपनिवेश में भी भारत से बहुत-सी पोथियाँ चली गईं जिनका अब कहीं कहीं उद्धार हो रहा है। इसका उल्लेख हम पीछे करेंगे। उन दिनों खोटान में संस्कृत ग्रन्थों का एक बड़ा भारी संग्रह था और संस्कृत पढ़ने के लिये विदेश से बहुत लोग वहाँ आते थे। राजकुमार चिनू-किउ-चिन्न-शेङ्ग ने खोटान आकर गोमती-विहार में बुद्धसेन से केवल बौद्ध ग्रन्थ ही नहीं, आयुर्वेद भी अध्ययन किया था और गुरु से प्राप्त कुछ पोथियाँ भी वे अपने देश को ले गए थे। शायद पारस्य में भी भारतीय बौद्ध भिक्षु जा बसे थे और वहाँ बौद्ध धर्म का काफी प्रभाव और प्रचार था, वहाँ बौद्ध धर्म की खूब पढ़ाई भी होती थी और इसलिये पोथियाँ भी जरूर गई होंगीं। नहीं तो आनू-शि-काको (लोकोत्तम), आनू-हिउ-एनू (आनू इरानी भिक्षुओं के पहिले लगता है, क्योंकि आनू सि अथवा आनू शक पारस्य का चीनी नाम था) इत्यादि पारस्य में जाकर चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार और बौद्ध ग्रन्थों का अनुवाद नहीं कर सकते। यहाँ तक की हूण या शकों में भी बौद्ध धर्म का काफी प्रचार था और चि-लु-किआ-चाम् (लोकक्षेम) चि-याओ इत्यादि शब्द (युए-चीं) बौद्ध भिक्षु भी चीन गये थे और उन्होंने बौद्ध धर्म का प्रचार और ग्रन्थों का अनुवाद किया था। इस प्रकार सोगडिआना (समरकन्द का काङ्ग-सेङ्ग-काइ या सङ्घवर्मा), कुच (कुमारजीव) इत्यादि जगहों से भी अनेक बौद्ध भिक्षु चीन गए थे। इन बातों से पता चलता है कि उन-उन देशों में संस्कृत का काफी प्रचार था तथा अध्ययन होता था, जो विना पोथियों के हो नहीं सकता। जो लोग विदेश में जाते थे,वे लोग अपने साथ कुछ पोथिय भी ले जाते थे और उनका उन भाषाओं में अनुवाद करते थे

यह तो उत्तरी मार्ग के स्थलपथ की बात हुई। दक्षिण के जलपथ से भी बहुत-सी पोथियाँ चीन, विशेष कर दक्षिणी चीन, सुवर्णभूमि (स्याम, कम्बोडिआ, मलय प्रायद्वीप और अन्यान्य द्वीपों) में गई हैं। भिक्षु विघ्न (वेइ-कि-नन्) ने सम्भवतः सिंहल से पालि धम्मपद की एक प्रति लेकर उसका चीनी में अनुवाद किया था। मध्य-भारत के नन्दी या पुण्योपाय नामक एक भिक्षु भारत और सिंहल से महायान और स्थविरवाद के ग्रन्थ संग्रहकार त्रिपिटक के १५०० ग्रन्थ ले गये थे।

"जो निन्दनीय की प्रशंसा करता है और प्रशंसनीयकी निन्दा करता है, वह उस पाप के कारण सुख को नहीं प्राप्त होता। जूए में अपने को और अपने सर्वस्व को जो खोना है, वह थोड़ी हानि है, इसकी अपेक्षा सन्तों के प्रति मन को जो दूषित करना है—वह बहुत बड़ी हानि है। सन्त पुरुष की निन्दा करने वाला अपने मन और वचन को पाप में लगाकर उस नरक में उत्पन्न होता है, जहाँ की आयु एक लाख निरब्बुद और एकतालीस अब्बुद हैं। असत्यवादी नरक को जाता है और जो कोई काम करके कहता है कि मैंने ऐसा नहीं किया वह भी।"

—सुत्तनिपात।

ों से प्रेम और पीड़ितों की सेवा करनेवाले

लंका बाबा

भिक्षु धर्मरक्षित

भगवान् बुद्ध के शील, त्याग, संयम, न्याय, अहिंसा र शान्ति के आधारभूत उपदेशों ने ऐसे अनेक महान् क्तियों को उत्पन्न किया है, जिन्होंने नाना प्रकार के ों, विपत्तियों तथा अभावों को सहन कर अपने प्राणों जोखिम में डाल मानव मात्र के कल्याण का चिन्तन ा है और सतत प्रयत्न कर सफलता प्राप्त की है। ल, तिब्बत, चीन, कोरिया, लंका, बर्मा आदि देशों ये हुए धर्मप्रचारकों ने कम कष्ट नहीं उठाया है। हीं ने उत्तुङ्ग पर्वत-शृंखलाओं को लाँघा है तो किन्हीं बीहड़ और भयानक जंगलों को। किन्हीं ने समुद्र की ल तरंगों को पार किया है तो किन्हीं ने निर्जल, क तथा शून्य मरुस्थलों को, तथागत की यह वाणी ो उनके कानों में सदा गूँजती रही है—

'मेरे धर्म-घोष का उद्घोषण करते,
मेरे धर्म-नगाड़े को पीटते,
भली भाँति मेरे धर्म-शंख को फूँकते,
तुम लोग देव और मनुष्यों की भलाई के लिए घूमो।
संसार में मेरे विजय की ध्वजा उड़ाते,
मेरे धर्म-केतु को फहराते,
मेरे धर्म रूपी भाले को उठाते,
देव और मनुष्य लोकों में घूमो।'

उन पराक्रमी महान् व्यक्तियों को तथागत की 'आरम्भ ो, निकल पड़ो, बुद्ध-शासन में जुट जाओ' वाणी भी सदा स्मृति बनी रही है। यही कारण है कि न्होंने संगी-साथी की अपेक्षा न कर, वार्धक्य का ख्याल ख, अस्सी-अस्सी वर्ष की अवस्था में भी विदेशों की ायें की हैं। यह हमारी 'प्राक्-कथा' मात्र नहीं है, ा बाबा' जैसे व्यक्तियों ने इस सदी में भी साठ वर्ष की अवस्था में अपने देश, कुल, धन आदि सर्वस्व का त्यागकर हमें सन्मार्ग दिखाया है।

सिंहल के जिन धर्म-पुत्रों ने इस सदी में भारत की सांस्कृतिक सेवायें की हैं, उनमें अनागारिक धर्मपाल और 'लंका बाबा' का नाम सदा अमर रहेगा। इन दोनों व्यक्तियों ने लगभग एक साथ ही आजीवन ब्रह्मचारी रहने की, भारत की सांस्कृतिक सेवा करने की और भारत में ही अपने शेष जीवन को लगा देने की दृढ़ प्रतिज्ञा की थीं। दोनों महानुभावों की प्रव्रज्या (भिक्षु-दीक्षा) भी एक ही साथ, एक ही दिन और एक ही स्थान पर हुई थी। केवल अन्तर था दोनों के क्रियात्मक रूपों एवं कार्य-क्षेत्रों में।

यद्यपि लंका बाबा के गृहस्थ जीवन का नाम श्री एम० ए० पीरीस था और प्रव्रजित (भिक्षु) होने का श्रद्धानन्द; किन्तु प्रायः लोग उन्हें 'लंका बाबा' ही कहा करते थे। लंका बाबा का जन्म कोलम्बो के पास नुगेगोड नामक गाँव में हुआ था। वे बाल ब्रह्मचारी थे। बुद्ध, धर्म और संघ में उनकी अचल श्रद्धा थी। वे बचपन से ही प्रति पूर्णिमा, अमावस्या और अष्टमी को अष्टशील ग्रहण कर उपोसथ व्रत रहा करते थे। लंका, बर्मा, और स्याम में प्रायः सभी धार्मिक व्यक्ति इन दिनों में स्थानीय विहारों में जाकर भिक्षु लोगों से शील ग्रहण करते हैं। उपोसथ-व्रत रहकर वह दिन संयम, सदाचार और धर्म-चिन्तन में ही व्यतीत करते हैं। दान आदि देना तो उनका कर्तव्य ही है। धर्म-श्रवण और बुद्ध-पूजा इत्यादि भी आवश्यक कार्य हैं। 'लंका बाबा' पर इन सब बातों का इतना गहरा प्रभाव पड़ा था कि उन्होंने अपने गृहस्थ

जीवन को बड़े ही संयम और धार्मिकता के साथ व्यतीत किया, भिक्षु-जीवन की तो बात ही क्या ?

सिंहली पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा पाने के पश्चात् उन्होंने अँग्रेजी विद्यालय से हाई स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण की और जीविकावृत्ति के लिए 'सीलोन रेलवे' में नौकरी कर ली। जब तक वे नौकरी करते रहे, तब तक उन्हें धार्मिक कार्यों के लिए बहुत अवकाश नहीं मिलता था, फिर भी प्राप्त-अवकाशों में उपोसथ रहना, भिक्षु-संघ को भोजन दान देना, उपदेश सुनना और 'तरुण-बौद्ध, समिति' (Y. M. B. A.) के सांस्कृतिक प्रयासों में सहयोग करना—यही उनके काम होते थे।

जब उनकी अवस्था ढल चुकी और वे नौकरी से रिटायर्ड हुए, तब उन्हें विशेष प्रसन्नता हुई। अब वे पूर्ण स्वतन्त्र थे। पिंजड़े से उन्मुक्त पक्षी की भाँति शीघ्र ही भारत की सांस्कृतिक सेवा के निमित्त चल पड़े। वे सिंहल में रहते समय सदा ही भारत में बौद्ध धर्म के पुनरुत्थान के स्वप्न देखा करते थे और तथागत की जन्मभूमि में आकर अपनी कामनाओं की पूर्ति का चिन्तन किया करते थे।

'लंका बाबा' यात्रा करते हुए जब बुद्ध भगवान् की परिनिर्वाण भूमि कुशीनगर में पहुँचे, तब उन्हें एक ओर तो परिनिर्वाण मन्दिर की विशाल शान्तिमयी मूर्ति का दर्शन कर प्रसन्नता हुई, किन्तु दूसरी ओर आसपास की निर्धन, अशिक्षित और साधन-विहीन जनता की दुर्दशा देखकर मार्मिक खेद हुआ। उन्होंने कुशीनगर को ही अपना कार्य-क्षेत्र बनाने का दृढ़ संकल्प किया और वहीं के विहार में वास।

'लंका बाबा' ने देखा कि जो कुशीनगर कभी मल्ल गणतन्त्र की राजधानी था और जहाँ अनेक परिवेण (विद्यालय) थे, जिसमें वीर बन्धुलमल्ल, दीर्घकारायण, वज्रपाणी मल्ल आदि ने शिक्षा प्राप्त की थी, जहाँ का रोजमल्ल शिक्षा संचालक गणराज था, वहाँ सम्प्रति दो ही चार लोग ऐसे थे जो चिट्ठी-पत्री लिख-पढ़ सकते थे। उन्होंने शिक्षा के इस अभाव को देखकर आसपास के गाँवों में घूम-घूमकर बच्चों को एकत्र करना प्रारम्भ किया और एक अध्यापक को रखकर निःशुल्क पाठशाला की स्थापना की। गाँव के निर्धन बालक मजदूरी करके जो दो-चार पैसे दिन भर में कमा लेते थे, जिससे उन्हें एक समय रूखी-सूखी रोटी मिल जाया करती थी, भला वे पाठशाला में कैसे बैठकर पढ़ सकते थे ? उनके माँ-बाप भी पैसे के लोभ में कब उन्हें पढ़ने के लिए भेजना स्वीकार कर सकते थे ? जब लंका बाबा ने देखा कि निर्धनता के कारण ग्रामीण अपने बच्चों को पढ़ने के लिए नहीं भेजते हैं, तब वे बच्चों को मिठाई पैसे चावल, फल, आदि बँटवाने लगे। कुशीनगर दर्शनार्थ आने वाले लोगों से भी उन्होंने बच्चों को शाबुन वस्त्र, मिठाइयाँ आदि दिलाने का प्रयत्न किया। फलतः थोड़े ही दिनों में पाठशाला में बच्चों की संख्या इतनी बढ़ गई कि उसका प्रबन्ध करना कठिन होने लगा। आए दिन कुशीनगर में जो जूनियर हाई स्कूल और इण्टर कालेज हैं, वे सब उन्हीं 'लंका बाबा' के सुप्रयत्नों एवं प्रेरणाओं के फल हैं।

'लंका बाबा' बड़े त्यागी और दानी थे। उन्हें पेन्सन के ६२) मासिक मिलते थे; जिनमें से वे अपने खाने-पीने में केवल १०) मासिक व्यय करते थे। शेष रुपये बच्चों को मिठाई आदि देने में ही व्यय कर दिया करते थे। उन्हें दोपहर में जो भोजन मिलता था उसमें से सबसे पहले भिखमंगों के लिए एक भाग अलग रख कर ही भोजन करते थे। वे बहुत से निर्धन, असहाय और अभावग्रस्त लोगों को सदा वस्त्र भोजनादि भी प्रदान किया करते थे।

'लंका बाबा' को बुरे कामों से बड़ी चिढ़ थी। जब उन्हें कोई बुरा कार्य करते दृष्टिगत होता था तब "अच्चा नहीं, अच्चा नहीं" कहते हुए अनेक प्रकार से उपदेश देकर फिर वैसा न करने के लिए प्रतिज्ञा करवाते थे। एक दिन कुछ छात्रों ने कुशीनगर के खण्डहर में मछलियाँ पकड़ना आरम्भ किया। पूजा करने के लिए जब 'लंका बाबा' उधर पहुँचे, तब उन छात्रों के कार्य पर उन्हें बड़ी घृणा उत्पन्न हुई और करुणा-विह्वल हो उन पकड़ी हुई सब मछलियों को उन्होंने पानी में छोड़वा दिया। तथागत ने एक बार ऐसे ही श्रावस्ती और जेतवन के बीच मछली मारते हुए कुछ बच्चों को देखकर कहा था—

"बच्चो ! क्या तुम दुःख से डरते हो ? क्या तुम्हें दुःख अप्रिय है ?"

"हाँ, भन्ते ! हम दुःख से डरते हैं, हमें दुःख अप्रिय है।"

"यदि तुम्हें दुःख अप्रिय है, तो प्रकट या छिपकर मत करो। यदि पापकर्म करोगे या करते हो तो दुःख से मुक्ति नहीं हो सकती, चाहे भागकर कहीं भी जाओ।"

"लंका बाबा" धर्म-प्रचार के लिए बहुत प्रयत्नशील करते थे। उन्होंने 'बौद्ध-शिशु-बोध' को हिन्दी में अनुवाद कराकर बच्चों में वितरित किया था। प्रति रविवार को कुशीनगर में उन बच्चों की एक सभा हुआ करती थी, जो धर्म-शिक्षा की प्रयोगिता में भाग लेते थे। बच्चे पञ्चशील, अष्टशील, बुद्ध-जीवनी, जयमङ्गल अट्ठगाथा आदि कण्ठस्थ करके सुनाते थे, उन्हें मिठाइयाँ, पैसे और साबुन दिया करते थे। भगवान् के मन्दिर में पूजा करने के लिए मोमबत्तियाँ और धूपबत्तियाँ और पूजा करने की विधि बतलाया करते थे। वे बच्चों के हितैषी, माँ–बाप तुल्य थे। उन्हें उठने-बैठने से खाने-पीने आदि आचरण सम्बन्धी सारी बातों को बतलाया करते थे।

उन्हें पशुओं से भी बहुत प्रेम था। वे पशु-पक्षियों भी भोजन दिया करते थे। कुत्तों के लिए तो उन्होंने एक सी द्रोणी बनवा ली थी, जिसमें निर्धारित समय पर कुत्तों को भोजन दिया जाता था। कुत्ते भी भोजन का आ जाना करते थे। जब मन्दिर का दोपहरी घंटा बजता तब चारों ओर के कुत्ते दौड़ पड़ते थे। उन्हें भी अपने खाने का समय और घण्टे के शब्द का ज्ञान था।

'लंका बाबा' केवल दिन में ही विहार में रहा करते थे। सन्ध्या होते ही वे परिनिर्वाण मन्दिर में चले जाते थे और रात भर मन्दिर के भीतर रह कर ध्यान-भावना में समय बिताते थे। कुशीनगर का परिनिर्वाण-स्थान ध्यान-भावना के लिए बड़ा ही अनुकूल है। स्वर्गीय आचार्य श्री धर्मानन्द कौशाबी ने भी वहाँ के मनोज्ञ उपवन में रहकर दिनों तक ध्यान-भावना की थी, किन्तु ध्यान के विघ्नों ने उनके समाधि-मार्ग में विघ्न उत्पन्न कर दिया, जिससे सफलता नहीं मिली। 'लंका-बाबा' को किसी भी समाधि-कण्टक का सामना नहीं करना पड़ा था। उन्होंने चित्त की शान्ति के लिए एक बार ग्यारह दिनों तक अन्न-जल का भी त्याग कर दिया था !

'लंका बाबा' ने जब हर प्रकार से कुशीनगर की सेवा कर ली, तब उन्हें लुम्बिनी जाने का विचार हुआ। उन्होंने सोचा 'हमारा एक भाई (अनागारिक धर्मपाल) सारनाथ और बुद्धगया की सांस्कृतिक सेवा कर रहा है। मैंने भी कुशीनगर के प्रति अपने कर्त्तव्यों का यथासाध्य पालन किया, अब लुम्बिनी की दशा भी सुधारनी चाहिए।' वे एक नेपाली भिक्षु के साथ तथागत की जन्मभूमि लुम्बिनी गये और वहाँ अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए कार्य आरम्भ कर दिये, किन्तु तराई के विषम जलवायु के कारण उन्हें मलेरिया हो गया। बहुत कुछ दवादारू करते रहने पर भी रोग बढ़ गया। कौन जानता था कि उनकी यह अन्तिम लुम्बिनी-यात्रा होगी ? वे फिर कुशीनगर न लौट सकेंगे ? अभी लुम्बिनी के अभागे बालकों एवं जनता के दुःख दूर भी न हो सके थे कि इसी बीच सन् १९३४ के अप्रैल मास में वे शान्ति, करुणा और दया की मूर्ति 'लंका बाबा' तथागत की पुण्य-भूमि के लिए अपने पार्थिव-शरीर को छोड़ सदा के लिए शान्त हो गए !

कुशीनगर के नर-नारी आज भी 'लंका बाबा' के निर्मल चरित्र एवं धार्मिक कार्यों की अनेक कहानियाँ सुनाते हैं और उनके गुणगान करते हुए थकते नहीं।

सब से सस्ता हिन्दी त्रैमासिक

पुस्तकालय

वा० मू० आठ आने भेजने वालों को १९५१ का सुन्दर रंगीन उत्तम चन्द्रतिथि तारीखों युक्त कैलण्डर मुफ्त।

जयदेव ब्रदर्स, बड़ौदा।

बौद्ध-जगत

कौशाम्बी के सुप्रसिद्ध विहार घोषिताराम की प्राप्ति

इलाहाबाद जिले में यमुना नदी के किनारे, श्री गोवर्धनराय शर्मा, प्रोफेसर इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के निरीक्षण में, उसी विश्वविद्यालय की प्राचीन ऐतिहासिक खोज करनेवाली समिति द्वारा कौशाम्बी की खोदाई के सिलसिले में प्रसिद्ध मठ घोषिताराम का अन्वेषण किया गया है; जहाँ भगवान् बुद्ध प्रायः निवास किया करते थे।

इस खोदाई के परिणाम स्वरूप उन सज्जनों को अतीत के अनेक भग्नावशेष, मुहरें तथा लेखों के अतिरिक्त एक शिला-लेख भी प्राप्त हुआ है। इन भग्नसारकों से यह सिद्ध हो गया है कि यह वही प्रसिद्ध घोषिताराम बौद्ध विहार है, जो भारतवर्ष के प्राचीन बौद्ध विहारों में एक था। आज से २५०० वर्ष पूर्व यह विहार भगवान् बुद्ध के शुभागमन के उपलक्ष में, कौशाम्बी के एक प्रसिद्ध धनाढ्य घोषित सेठ द्वारा निर्मित किया गया था, जहाँ उन्होंने महाराज उदयन को दीक्षा दी थी और मध्य प्रदेश तक अपने धर्म का प्रसार किया था।

भगवान् बुद्ध यहाँ प्रायः आया करते थे और अपने जीवन काल में उन्हें सर्व प्रथम यहीं पर भिक्षु संघ के झगड़ों का सामना करना पड़ा था। यहीं पर उन्होंने उन नियमों का भी प्रतिपादन किया था, जो एक विनय-विहीन भिक्षु के लिये करना आवश्यक था। इसी स्थान पर उन्होंने अनेक सूत्रों का उपदेश दिया था, जो भिक्षु संघ के अनुशासन तथा उन्नति से सम्बन्धित हैं।

इस विहार में भगवान् बुद्ध के प्रमुख शिष्य-गण भी आया करते थे। प्रायः समय-समय पर आनन्द, महामोग्गल्लान, सारिपुत्त, मुसिल, नारद और पिण्डोल भारद्वाज यहाँ रहा करते थे। भगवान् के निर्वाण प्राप्त करने के बाद भी घोषिताराम का यह विहार बहुत दिनों तक बुद्ध धर्म का एक प्रसिद्ध केन्द्र बना रहा। जनश्रुतियों के अनुसार पहली शताब्दी ई० पू० में यहाँ से तीस हज़ार भिक्षु गण लंका गये थे। यहाँ पर विदेशी यात्री भी आया करते थे। फाहयान तथा ह्यानचाङ्ग दोनों चीनी यात्री यहाँ आये थे और अपने निज के विवरण भी लिख गये हैं। आधुनिक प्रोफेसर श्री एन० ए० घोष तथा डाक्टर बी० सी० लाहा ने इस विहार की प्राचीनता एवं प्रसिद्धि पर बहुत ही जोर दिया है।

पत्थर की शिला जिसकी लम्बाई तथा चौड़ाई क्रम से दो-दो फीट है, एक घर की सतह (फर्श) पर पाई गई, जब कि खोदाई का काम ३ फीट गहराई से हो रहा था। इस शिला का लेख ब्राह्मी लिपि में है, जो सम्भवतः दूसरी शताब्दी ई० का होगा। वह इस प्रकार है—

भदन्तस धारस अन्तेवासिस भिक्षुस भगलस...'बुद्ध वासे घोषिताराम सवे बुद्धवम् पूजाये शिला कारि(ता)

इस लेख का अनुवाद इस प्रकार है—"इस शिला का स्थापन, भदन्त धार के शिष्य भिक्षु भगल द्वारा घोषिताराम में, जो भगवान् बुद्ध के निवास करने का स्थान है, सभी बौद्ध धर्मावलम्बियों की पूजा के लिए किया गया है।"

इस लेख के अतिरिक्त यहाँ पर कुछ और मधुकलश की भाँति दो तरह के अत्यन्त आकर्षक तथा अलंकृत अलङ्कार मिले हैं। एक धर्मचक्र नान्दी पद प्रतीक है और दूसरा स्वस्तिका है, जो चार एक ही में गुथी हुई पत्तियों से बना है। कौशाम्बी में पाई गई पत्थर की मूर्तियों पर ऐसे अलङ्कार पाये गये हैं। ये मूर्तियाँ इलाहाबाद के अजायबघर में सुरक्षित हैं।

यह खोज एक बार फिर कौशाम्बी के स्थान को गुरुता प्रदान करती है। जब तक कौशाम्बी में भगवान् बुद्ध के निवास स्थान का ठीक-ठीक निर्णय नहीं हो जाता, तब तक यह खोज इस बात को निश्चय करती है कि यह वही स्थान है, जहाँ भगवान् निवास करते थे और जो बौद्ध

र्मिक कार्य क्षेत्र का एक मुख्य केन्द्र था। भारतवासियों था संसार के सभी बौद्ध-धर्मावलम्बियों की दृष्टि में यह त्र स्थान उतना ही आकर्षक तथा महत्व का है, जितना म्बिनी, बुद्धगया, कुशीनगर और सारनाथ है। अभी ड़े ही दिनों की खोदाई में इस विहार से अनेकों प्रकार पत्थर की मूर्तियाँ, मुहरें, लेख तथा प्राचीन भग्न-रक मिले हैं और यह आशा की जाती है कि इसकी पूर्ण खोदाई हमारे प्राचीन इतिहास के अनेक रिक्त नों को पूरा कर देगी।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की इस समिति की बैठक, ६ जनवरी की शाम को कुलपति डाक्टर डी० आर० चार्य की अध्यक्षता में उन्हीं के कमरे में समिति के ष अनुरोध पर हुई। इस बैठक में डाक्टर बेनी प्रसाद, मिति के सभापति, श्री के० सी० चटोपाध्याय, पं० मोहन व्यास, श्री जी० आर० शर्मा तथा श्री एस० ० काले भी उपस्थित थे।

यह सभा, कौशाम्बी में होनेवाली प्रगतिशील खोदाई प्रशंसा की, और इस शिला के फलस्वरूप प्राचीन द्ध विहार घोषिताराम के स्थान को पाकर अत्यन्त हर्ष था सन्तोष प्रगट किया।

सुनने में आया है कि कुलपति ने इस समिति को कार्य को सम्बन्धित रखने के लिये तीन हजार रुपये देने का वादा किया है; और यह भी निश्चय किया गया है कि सरकार से प्रार्थना की-जाय कि इस कार्य को आगे बढ़ाने के लिये वह सम्पूर्ण सहयोग तथा सहायता दे।

जनता बुद्ध-दिवस मनाये—भारत के कानून मंत्री श्री अम्बेडकर ने अभी हाल ही में भारतीय जनता से अपील की है कि दूसरे धार्मिक आयोजनों की तरह वह बुद्ध-दिवस भी मनाया करे। उन्होंने अपने भाषण के सिलसिले में कहा—"यह दुःख का विषय है कि भगवान् बुद्ध की जन्म भूमि में ही लोग उन्हें भुला दें।"

बर्मा द्वारा बुद्ध-मूर्ति का दान—गत मास में भारत स्थित बर्मा के राजदूत सर मौंग्गी ने बुद्ध विहार नई दिल्ली में एक समारोह के साथ दिल्ली से १० मील दूर स्थित "अशोक हेल्थ विहार" के लिए एक पीतल की भव्य मूर्ति प्रदान की। मूर्ति "अखिल बर्मा-महासंघ" नामक समिति की ओर से दो प्रतिनिधियों के साथ भेजी गयी थी। सर मौंग्गी ने उनसे उसे ग्रहण कर अशोक हेल्थ विहार के अध्यक्ष भिक्षु वीरधर्मवर को दिया। बर्मा के सुप्रीम कौंसिल के सदस्य भिक्षु ऊ जागर मूर्ति को लेकर आये थे।

कहानी, कला व व्यवहारिक ज्ञान का भारत का सबसे अधिक पठनीय मासिक

मानसरोवर

- सामाजिक व पारिवारिक समस्याओं पर कहानियाँ जो न केवल मनोरंजन ही करती वरन् मार्ग प्रदर्शन भी करती हैं।
- सहज, सुलभ भाषा में सभी प्रचार के विषयों पर लेख।
- आकर्षक छपाई व गेट अप
- बहुत साधारण मूल्य —६ आने प्रति, ४) वार्षिक, नमूना मुफ्त।

दिल्ली प्रेस, पोस्ट बाक्स १७, नई दिल्ली।

२६ जनवरी १९५१

भारतीय प्रजातंत्रके शुभ स्मृतिदिन से साप्ताहिकसे दैनिक रूपमें परिवर्तित

हिन्दी दैनिक : 'युगधर्म'

(संचालक:—श्री नरकेसरी प्रकाशन सीमित, नागपुर)

सर्व सामान्य जनताकी शुभ कामनाओं और स्नेहपूर्ण सहयोगकी कामना करता है।

सुदृढ़मत निष्पक्ष दृष्टिकोण और राष्ट्रीय-हित कामनाके पवित्र उद्देश्य को ले, देश-विदेशके ताजे समाचार, राजनीतिक-प्रवाह, विशिष्ट विचारपूर्ण लेख स्थानीय गतिविधियों सहित यह पत्र सर्वोपयोगी प्रमाणित होगा।

●

संवाददाता, अभिकर्ता, ग्राहक एवं विज्ञापनदाता बनने के लिये
इच्छुक बन्धु अतिशीघ्र पत्रव्यवहार प्रारंभ करें।

पत्रव्यवहार का पता—

व्यवस्थापक
दैनिक युगधर्म,' रामदास पेठ, नागपुर, १.

हमारे सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

श्री वीरेन्द्रकुमार के कलामय कृतित्व का अनुपम प्रतीक :—

मुक्तिदूत ॥)

❀ उपन्यास क्या है, गद्यकाव्य का ललित निदर्शन है...मर्मज्ञों ने मुक्तकण्ठ से प्रसंशा की है।

उर्दू काव्य के महान मर्मज्ञ श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय की दीर्घकालव्यापी साधना :—

शेर-ओ-शायरी ८)

❀ संग्रह की पंक्ति-पंक्ति से संकलयिता की अन्तर्दृष्टि और गम्भीर अध्ययन का परिचय मिलता है। हिन्दी में यह संकलन सर्वथा मौलिक और बेजोड़ है।

विदग्ध और विलक्षण साहित्यकार श्री द्विवेदी की जीवन झांकी—

पथचिह्न २)

❀ मनोरम भाषा, मर्मस्पर्शी शैली.......
लेखक ने पंक्ति-पंक्ति पर अपना हृदय उधेड़ दिया है।

प्रबुद्ध विद्वान् और ओजस्वी ग्रंथकार डा० जगदीशचन्द्र जैन की प्रासादिक कृति :—

दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ ३)

❀ जनपरम्परा के मनोरंजक उपाख्यान ... शैली सरल और सुबोध......

जैनशासन ४।)

❀ जैनधर्म का परिचय तथा विवेचन करनेवाली सुन्दर कलाकृति।

कुन्दकुन्दाचार्य के तीन रत्न २)

❀ कुन्दकुन्द स्वामी के पंचास्तिकाय, प्रवचनसार और समयसार इन तीन महान् आध्यात्मिक ग्रन्थों का हिन्दी में विषय परिचय।

अन्य पुस्तकों के लिए बड़ा सूचीपत्र मंगाइये।

पता :—भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड, बनारस ४

हमारा अनुपम प्रयास

"अखिल विश्व बौद्ध संस्कृति अंक"

का आयोजन

हम बुद्धाब्द २५०० (सन् १९५६) के शुभावसर पर "धर्मदूत" का एक सुन्दर और विशाल अंक प्रकाशित करना चाहते हैं, जिसके लिए कम से कम एक लाख रुपये की आवश्यकता है। अभी तक बहुत थोड़े भाइयों ने इधर ध्यान दिया है। समय निकट है और कार्य महान् है। हमें इस अंक के प्रकाशन में सन्' ५४ से पूर्व ही भिड़ जाना है अतः अपनी सहायता शीघ्र भेजने की कृपा करें। हमारे इस सांस्कृतिक यज्ञ में क्या आप सम्मिलित होकर सहयोग देना नहीं चाहते? यदि चाहते हैं तो शीघ्र अपनी सहायता भेजें। हम देखना चाहते हैं कि आप किस उत्साह से हमारी सहायता कर रहे हैं। थोड़ी या बहुत जो भी रकम सहर्ष स्वीकार की जायेगी। कृपया शीघ्रता कीजिये।

निवेदकः—
व्यवस्थापक "धर्मदूत"

प्राप्त-दान

"अखिल विश्व बौद्ध संस्कृति अंक" के लिए निम्नलिखित सज्जनों ने दान भेजा है। हम इन्हें हार्दिक धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि अन्य सज्जन भी इस महान कार्य को सफल बनाने में सहयोग करेंगे—

१. श्री जालिया प्रसाद
सेमरौता,
रायबरेली २)

"धर्मदूत"

का

आगामी विशेषाङ्क

बुद्ध जयन्ती के शुभावसर पर "धर्मदूत" का एक महत्वपूर्ण विशेषाङ्क आगामी अप्रैल मास में प्रकाशित होगा। इसमें कला, इतिहास, धर्म, दर्शन और पुरातत्व सम्बन्धी गवेषणापूर्ण अधिकारी विद्वानों के लेख प्रकाशित होंगे।

इस विशेषाङ्क में पढ़िये

बौद्ध संस्कृति की अमर कहानियाँ, बौद्ध विभूतियों के निर्मल जीवन-चरित्र, बौद्ध दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन, भगवान् बुद्ध के अमर सन्देश।

हिन्दी में

एक मात्र बौद्ध मासिक-पत्र 'धर्मदूत' ही है। आज ही आप ३) वार्षिक शुल्क भेज कर ग्राहक बन जाइये।

(विज्ञापनों के लिए स्थान विशेषांक में दिया जायगा।)

व्यवस्थापक,
"धर्मदूत"
सारनाथ, बनारस।

हिन्दी में बौद्ध-धर्म की पुस्तकें

गुरुकुल-पत्रिका,
गुरुकुल काँगड़ी.

भगवान् बुद्ध का जीवन चरित्र	२)
बुद्ध और बौद्ध धर्म - आचार्य श्रीचतुरसेन शास्त्री	३)
दीघनिकाय—महापण्डित राहुल सांकृत्यायन	६)
मज्झिम निकाय— ,, ,,	८)
विनयपिटक— ,, ,,	८)
पालि महाव्याकरण - भिक्षु जगदीश काश्यप	४॥)
धम्मपद - अवधकिशोर नारायण	१॥)
भगवान् बुद्ध की शिक्षा - श्री देवमित्त धर्मपाल	।−)
बोधिद्रुम (कविता) - सुमन वात्स्यायन	।=)
तथागत - आनन्द कौसल्यायन	१॥)
बुद्ध और उनके अनुचर - आनन्द कौसल्यायन	१॥।)
पञ्चशील और बुद्ध-वन्दना— बोधानन्दस्थविर	=)
भगवान् हमारे गौतम बुद्ध—प्रो० मनोरञ्जन प्र०	−)
भगवान् बुद्ध - आनन्द कौसल्यायन	=)
जातक भाग १, २ और ३ ,,	७।), ७।), १०)
बुद्ध चित्रावली	७।)
सरल पालि शिक्षा - भिक्षु सद्धातिस्स	१॥)
पालि धातुरूपावलि	॥=)
बौद्ध धर्म सवाल-जवाब (उर्दू में)	।=)
सुत्तनिपात - भिक्षु धर्मरत्न	१)
खुद्दकपाठ - ,,	।)
बौद्ध कहानियाँ—व्यथित हृदय	१॥)
बुद्धकीर्त्तन—प्रेमसिंह चौहान	१॥)
बुद्धार्चन - प्रेमसिंह चौहान	।)
बुद्ध भगवान् और छत्ता—जगतनारायण	।=)
भगवान् बुद्ध ने कहा था—सुमन वात्स्यायन	।=)
बौद्धचर्य्या-पद्धति—भदन्त बोधानन्द	१॥)

श्री गौतमबुद्ध जी—जगतनारायण	।=)
भगवान् गौतम बुद्ध - स्व० पं० ईश्वरी प्र० शर्मा	॥=)
बुद्धदेव - शरत कुमार राय	१॥।)
सारिपुत्र तथा मौद्गल्यायन पं० विश्वनाथ शास्त्री	॥।)
अम्बपाली बेनीपुरी	२)
जो लिखना पड़ा - आनन्द कौसल्यायन	३)
गौतमहंस किसका ?	।=)
वार्तिकालंकार - राहुल सांकृत्यायन	३)
तथागत का प्रथम उपदेश - भिक्षु धर्मरक्षित	।)
बौद्ध-शिशुबोध— ,, ,,	।)
तेल कटाह गाथा— ,, ,,	।)
सारनाथ-दिग्दर्शन— ,, ,,	।)
कुशीनगर का इतिहास— ,, ,,	२॥)
पालि-पाठ-माला— ,, ,,	१)
जाति भेद और बुद्ध— ,, ,,	॥)
ब्राह्मणधम्मिय सुत्त— ,, ,,	=)
पालि जातकावाली - बटुकनाथ शर्मा एम० ए०	२)
बुद्ध-शतकम्—आनन्द कौसल्यायन	।)
बुद्धवचन— ,, ,,	॥)
महापरिनिर्वाण सुत्त—भिक्षु ऊ कित्तिमा	१।)
बुद्ध चरित प्रथम और दूसरा भाग,	२॥), १॥), ४)
हर्षचरित (दो भाग) सूर्यनारायण चौधरी	३)
बौद्ध-दर्शन मीमांसा—बलदेव उपाध्याय	६)
भारतीय दर्शन— ,, ,,	८)
अभिधम्मत्थ सङ्गहो बौद्ध-दर्शन	२॥)
सौन्दरनन्द काव्य—सूर्यनारायण चौधरी	३)
ब्रह्मजाल सुत्त—(मतों का जंजाल)	।)

सूचीपत्र के लिए =) की टिकट के साथ लिखें।

प्राप्ति-स्थानः—

महाबोधि पुस्तक भण्डार, सारनाथ, [illegible]

15 FEB 51

प्रकाशक—धर्मालोक, महाबोधि सभा, सारनाथ, (बनारस)
मुद्रक—ओम प्रकाश कपूर, ज्ञान मण्डल यन्त्रालय, कबीर चौरा, बनारस।

धर्मदूत

१५८

पुस्तकालय,
गुरुकुल काँगड़ी.

—१५
—१०

जनवरी १९५१

वार्षिक चन्दा ३)
एक अङ्क ।=)

विषय-सूची

विषय पृष्ठ

१. बुद्ध-वचनामृत २४९
२. पाश्चात्य देशों में बौद्ध-धर्म—भिक्षु नारद २५०
३. तिब्बत-भारत का सांस्कृतिक सम्बन्ध—श्रीराहुल सांकृत्यायन २५१
४. पुरानी पोथियों की विदेश-यात्रा—श्रीप्रह्लाद प्रधान २५४
५. व्यक्ति का पुनर्निर्माण—भदन्त आनन्द कौसल्यायन २५६
६. बहुजन हिताय बहुजन सुखाय (कविता)—श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी २५८
७. मैंने भगवान् बुद्ध की वकालत क्यों शुरू की?—श्रीरामचन्द्र कुलकर्णी २५९
८. थाइलैण्ड में बौद्ध-धर्म—श्रीशान्तज्ञान २६२
९ कबीर ने बौद्ध-धर्म से लिया था!—श्रीगोविन्दशरण त्रिगुणायत एम० ए० २६४
१०. भदन्त महावीर—भिक्षु धर्मरक्षित २६६
११. ताण्डुल-नालिका का मूल्य—(जातक से) २६९
१२. बौद्ध-जगत् २७०

"धर्मदूत"

का

"अखिल विश्व बौद्ध संस्कृति अंक"

हम बुद्धाब्द २५०० (सन् १९५६) के शुभावसर पर "धर्मदूत" का एक सुन्दर और विशाल अंक प्रकाशित करने का आयोजन कर रहे हैं जिसमें विश्व के सभी देशों के बौद्धों का हर एक पहलुओं से परिचय रहेगा। ऐसे अवसर पर क्या आपने हमारे इस महान् कार्य में थोड़ी भी सहायता करने का संकल्प किया है? यदि किया है तो शीघ्र अपनी सहायता हमें प्रदान करें। इस कार्य के लिए कम से कम एक लाख रुपये की आवश्यकता है। यदि आप अपने नित्य के व्ययों में से एक एक पैसा भी रख छोड़ें तो भी आप एक बहुत बड़ी सहायता कर सकेंगे। हम यह शीघ्र देखना चाहते हैं कि आप किस उत्साह से हमारी सहायता कर रहे हैं। थोड़ी या बहुत जो भी रकम सहर्ष स्वीकार की जायेगी।

निवेदक:—

व्यवस्थापक "धर्मदूत"

प्राप्त-दान

"अखिल विश्व बौद्ध संस्कृति अंक" के लि निम्नलिखित सज्जनों ने दान भेजा है। हम इन् हार्दिक धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि अन्य सज्जन भी इस महान कार्य को सफल बनाने में सह योग करेंगे—

१. श्रीमती जानकी भारतीय
पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी
अकाली मार्केट
अमृतसर

२. श्रीपरमानन्द मौर्य
ए० एन० हायर सेकण्डरी स्कूल
चकिया, बनारस

समालोचनार्थ - परिवर्तनार्थ

धर्म-दूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय मनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं केवल-पुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ । महावग्ग, (विनय-पिटक)

'भिक्षुओ ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिए, लोकपर दया करने के लिये, देवताओं और ष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिए विचरण करो । भिक्षुओ ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी स्था में कल्याणकारक धर्म का, उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य प्रकाश करो ।'

सम्पादकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

र्ष १५ | सारनाथ, जनवरी | बु० सं० २४९४
ई० सं० १९५१ | अङ्क १०

बुद्ध-वचनामृत

भूत-भविष्य की चिन्ता छोड़ वर्तमान में लगो

"अतीत का अनुगमन करे, न भविष्य की चिन्ता में पड़े । जो अतीत है, वह तो नष्ट हो गया र भविष्य अभी आ नहीं पाया, अतः वर्तमान पर ध्यान दे । जो असंहारी और असंकोपी है, उसे ज्ञान् बढ़ावे ।"

"आज ही कर्तव्य में जुटना चाहिए, कौन जानता है कल मरण हो । महासेन मृत्यु से युद्ध रते हमारा कोई निश्चय नहीं है । रात-दिन निरालस, उद्योगी हो । इस प्रकार विहरने वाले को ही ान्त मुनि-जन भद्रैक-रक्त कहते हैं ।"

"आज मुझे अवकाश नहीं है, कल (दानादि पुण्य) कर्म करूँगा—ऐसा सोच, पुण्य-कार्यों में लस करना ठीक नहीं, क्योंकि तीनों कालों तथा त्रिभुवन में कोई भी आदमी मरण से छुटकारा हीं पाया है । जैसे ग्वाला लाठी से गायों को चरागाह में ले जाता है, वैसे ही बुढ़ापा और मृत्यु णियों की आयु को ले जाते हैं ।

"जो दण्ड-रहितों को दण्ड से पीड़ित करता है, निर्दोष को दोष लगाता है, वह शीघ्र ही इन तों में से एक को प्राप्त होता है । कड़वी वेदना, हानि, अंग का भंग होना, भारी बीमारी या चित्त-क्षेप को प्राप्त होना, या राजा से दण्ड को प्राप्त होता है, दारुण निन्दा, जाति-बन्धुओं का विनाश, गों का क्षय, अथवा उसके घर को अग्नि जलाता है । काया छोड़ने पर वह दुर्बुद्धि नरक में उत्पन्न ता है ।"

पाश्चात्य देशों में बौद्ध धर्म

भिक्षु नारद

[इस लेखके लेखक लंका के एक प्रसिद्ध नवयुवक भिक्षु हैं, जो गत वर्ष एक विशेष निमन्त्रण पाकर यूरोप गये थे और इंगलैण्ड, जर्मनी, स्विटजरलैण्ड आदि देशों में विभिन्न स्थानों में धर्मोपदेश दिये थे। उन्होंने अपने इस लेख में पाश्चात्य देशों में बौद्ध-धर्म के नव-उत्थान का वर्णन किया है और बतलाया है कि यूरोप में बौद्ध धर्म के प्रसार से एक स्वर्णयुग का उदय होगा—सम्पादक]

अहिंसा एवं सदाचार के दर्शन से युक्त बौद्धधर्म प्रत्येक विवेकी व्यक्ति को जँचता है, क्योंकि यह ऐसा मत है कि लोगों में अन्धविश्वास की तो अपेक्षा ही नहीं करता तथा न तो किसी प्रकार के रूढ़िगत सनातनी विचारों अथवा मतों को ही प्रश्रय देता है बल्कि यह तो वह धर्म है जो कि स्वतन्त्र खोज, सहिष्णुता, समानता, बुद्धि प्रेम और अहिंसा पर आश्रित उत्तम जीवन के आधारों को ही प्रतिपादित है।

बुद्धि एवं व्यवहारवादी पश्चिम वाले बौद्ध-धर्म को मानें या न मानें, किन्तु इसमें उनकी दिलचस्पी अवश्य है। क्योंकि उनमें से बहुत से बुद्धिमान अपनी परम्परा के विश्वासों और, धार्मिक पुस्तकों से असन्तुष्ट हैं। जिसमें आधुनिक विज्ञान और खोज के प्रकाश में असामयिक एवं मूर्खतापूर्ण मालूम पड़ते हैं।

एक प्रसिद्ध विद्वान ने कहा है-"कट्टर धर्मी तत्वज्ञानी उन मनुष्यों को स्वप्न की दुनिया में बातें करते हुये मालूम पड़ते हैं, जिनके मस्तिष्क विज्ञान के नये ज्ञान से चकाचौंध हो गये हैं।"

उन्हें दो दुःखद महायुद्ध देखने का अभाग्य प्राप्त रहा, जिसे हम दिल से चाहते हैं कि पुनरावृत्ति न हो। यह दूषित विज्ञान का ही फल रहा, जो लाखों मनुष्यों के असंख्य दुःखों एवं पशु-बल की वेदी पर बहुमूल्य मानव-जीवन के निछावर होने का कारण बना। समझदार पश्चिमवाले व्यक्तिगत अनुभव से अनित्यता एवं दुःख के वास्तविक सत्य को तो अच्छी तरह महसूस करते हैं, जो बौद्ध-धर्म के दो मौलिक सिद्धान्त हैं

जो तीसरा सिद्धान्त "अनात्म" है, वह भी अब यूरोप एवं अमेरिका के अनेक मनोवैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित कर रहा है। उनमें से जो अधिक प्रतिभावान् हैं, वे तो अब मनोविज्ञान की शिक्षा अनात्म के दृष्टिकोण से दे रहे हैं।

सत्य-हीनता के इस सूक्ष्म प्रश्न पर विचार करते हुये एक विशेष मनोवैज्ञानिक लिखता है—"न तो किसी ने आत्मा को स्पर्श किया है और न किसी ने उसे निरीक्षण-नली में रखकर देखा ही है। ऐसा कोई मनुष्य नहीं, जो अपने नित्यप्रति के अनुभव की वस्तुओं की तरह उसके सम्पर्क में आया हो। फिर भी उसके अस्तित्व में शंका करना नास्तिक बनना और अपना सिर गँवाना होगा। आज भी समाज में स्थान रखनेवाला मनुष्य यह प्रश्न करने का साहस नहीं कर सकता।"

मालूम पड़ता है कि विज्ञान यूरोप की उपजाऊ जमीन पर इस धर्म (बौद्ध धर्म) के प्रचारार्थ मार्ग-निर्माण कर रहा है।

बुद्धिमान यूरोपीय लोग बौद्ध दर्शन एवं शील की अत्यन्त प्रशंसा करते हैं। अष्टांगिक मार्ग, पञ्च शील के नियम, दस शिक्षा-पद, चार स्मृतियाँ, प्रवचन, प्रेम-अहिंसा अनित्यता आदि बातें उन्हें खूब जँचती हैं। कर्म एवं पुनर्जन्म के सिद्धान्त अवश्य ही उनके लिये अभी नवीन हैं।

बाहर से देखने में वे समदर्शी तथा निष्पक्ष मालूम पड़ते हैं। फिर भी लगभग सभी बौद्ध धर्मावलम्बी के घर में एक पूजा-गृह होता है। जहां वे फूल चढ़ाते और ध्यान-भावना करते हैं।

पञ्चशील का अवलोकन करना या समझना उनके कुछ कठिन नहीं मालूम पड़ता। सन्तोष का विषय कि अधिकांश यूरोपीय बौद्धधर्मावलम्बी शाकाहारी हैं। में से भी कुछ ऐसे हैं, जो वीगन समाज से सम्बन्ध ते हैं, दूध, मक्खन तथा पनीर तक का सेवन नहीं करते। तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय, तो यूरोप के बौद्ध र्मावलम्बी कम हैं, किन्तु विचारों से बौद्ध होने के ण ये अनात्मवादी हैं और आदर्श बौद्ध-जीवन व्यतीत ने में प्रयत्नशील हैं।

इंगलैण्ड, फ्रांस, स्विटजरलैण्ड—इन तीनों देशों में हें देखने का हमें शुभ अवसर प्राप्त हुआ है। बौद्ध यों के लिए ध्यान करना मुख्य कार्य है। बौद्ध धर्म न नेवाले भी सामूहिक-ध्यान-कक्ष में जाना अपना कर्तव्य ते हैं। जो सर्वप्रिय लाभदायक और सफल सिद्ध हो हा है। बहुत से देशों पर छाये हुए भौतिकवाद के कूल वातावरण के होते हुए भी ध्यान में जो सफलता ली है, उसके लिए यूरोपीय बौद्ध धर्मावलम्बियों को वाद है।

इस समय सम्पूर्ण यूरोप में बौद्ध संघ एक बड़े पैमाने है। जो नियमित सभायें तथा अन्य भाषाओं में बौद्ध हित्य का मुद्रण कर प्रभावपूर्ण अमूल्य सेवा कर रहे हैं। के अदम्य उत्साह तथा निःस्वार्थ के परिणाम के फल-रूप बौद्ध धर्म धीरे-धीरे पश्चिम में बढ़ रहा है और के अनुयायियों की संख्या बड़ी तेजी से बढ़ रही है।

पश्चिम में इस समय शुद्ध बौद्ध धर्म की आवश्यकता जिसे पश्चिमी अपने वैज्ञानिक-ज्ञान से अच्छी तरह झ सकते हैं। यूरोपीय बौद्धों को मिलावट के किसी भी त को प्रारम्भ में ही नष्ट कर देना चाहिए। बौद्ध धर्मावलम्बियों को बुद्ध-यान जैसे सुन्दर 'यान' को छोड़कर और किस यान की आवश्यकता है? जिसमें श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग सबके लिए एक है। भगवान् बुद्ध के सुन्दर उपदेशों को बहुत एशियायी देशों में ही इधर-उधर करके दूषित कर दिया गया है, तो फिर इसमें और अधिक मिलावट करके तथा यूरोपीय रंग चढ़ाकर और दूषित क्यों किया जाय? धर्म का अच्छा ज्ञान रखनेवाले लोग ही शिक्षित यूरोपीय वर्ग को बौद्ध धर्म को वैज्ञानिक ढंग से समझा कर बहुत बड़ी सेवा कर सकते हैं, ताकि उनके आधुनिक युग की बुद्धि से मेल खा सके।

पश्चिम में संघ स्थायी रूप से स्थापित हो सके या न हो सके, किन्तु फिर भी कुछ बौद्ध केन्द्र आवश्यक हैं। जहाँ बौद्ध-भिक्षु विनय के नियमों का पालन करते हुए अच्छी तरह रह सकें और बेरोक-टोक धार्मिक कार्यों को कर सकें। संसार के बौद्ध धर्मावलम्बियों के दिली सहयोग से "लेसामी दी बुद्धिज्म" तथा "बुद्धिस्ट विहार सोसाइटी" ने क्रमशः पेरिस तथा लन्दन में पूर्ण सामानों से युक्त दो विहार बनवाने में पहले से ही दिलचस्पी ली है।

स्थायी बुद्ध विहार बर्लिन में एक, पेरिस तथा लंदन में दो और शायद जेनोवा में भी एक है। अब वह दिन अधिक दूर नहीं, जब कि पश्चिम में पूर्णतः बुद्ध शासन यूरोपियनों को बौद्ध बनाने के लिए नहीं, अपितु पृथ्वी पर पूर्ण शान्ति एवं भलाई के लिए स्थापित होगा।

क्या ही अच्छा हो कि पूर्व का आध्यात्मिक ज्ञान पश्चिम के वैज्ञानिक ज्ञान से मिल जाय, जिससे एक ऐसे स्वर्णयुग का उदय हो, जिसमें सभी शान्तिपूर्वक संसार के नागरिक बनकर रह सकें।

तिब्बत-भारत का सांस्कृतिक सम्बन्ध

महापण्डित श्री राहुल सांकृत्यायन

सदियों की धर्मान्धता के कारण भारतवर्ष के सांस्कृ- क महत्त्व की वस्तुएँ अधिकतर नष्ट हो चुकी हैं। हमारी कला के कितने थोड़े से और छिन्न-भिन्न अवशेष अजन्ता और बाघ में प्राप्त हैं। हमारे पुराने हस्तलिखित ग्रन्थों में बहुत कम ही प्राग्मुस्लिम-काल तक जाते हैं। बौद्धधर्म का विशाल साहित्य तो भारत से बिल्कुल लुप्त

हो चुका है और बहुत थोड़े ग्रन्थ, नेपाल में सुरक्षित हैं। नालन्दा, सुल्तानगंज कुरकिहार, कावेरीपट्टन जैसे बहुत थोड़े से स्थानों में भारतीय मूर्तिकला की सुन्दर कांस्य मूर्तियां, बहुत थोड़ी संख्या में और भूमि के भीतर दबाई होने से हमारे पास तक पहुँच सकीं। वृहत्तर भारत ने चित्रों, मूर्तियों और प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों के रूप में भारतीय संस्कृति की अद्‌भुत निधियों को सुरक्षित रखा और इस काम का सबसे अधिक श्रेय तिब्बत को प्राप्त है।

तिब्बत में यद्यपि गृहयुद्ध और आक्रमणकारियों से युद्ध भी होते रहे, किन्तु उतनी संख्या में नहीं जितने कि भारत में और वृहत्तर भारत के देशों में दूसरे तिब्बत की जलवायु भी कपड़े पर लिखे भारतीय चित्रों और ताल-पत्र पर लिखे संस्कृत ग्रन्थों के सुरक्षित रखने के लिए अधिक अनुकूल थी। भारतीय चित्रों, सांस्कृतिक ग्रंथों और धातु मूर्तियों का जितना सुन्दर संग्रह तिब्बत में है, वैसा कहीं पर नहीं। मुझे याद है, ग्यारहवीं शताब्दी में बने साक्या विहार के ल्हा-खङ्-छेन् मोकी छतपर की वह छोटी सी कोठरी जिसे बाहर से देखने पर, यह सन्देह नहीं हो सकता था कि इसमें भीतर दसवीं, ग्यारहवीं, बारहवीं शताब्दियों के अनमोल संस्कृत ग्रन्थों के चालीस बण्डल मौजूद हैं। इन ग्रन्थों में, अश्वघोष, असंग, वसुबन्धु, धर्मकीर्ति, प्रज्ञाकर गुप्त जैसी भारत की अद्वितीय प्रतिभाएँ सुरक्षित थीं और जिनके बारे में दुनिया जानती थी, कि तिब्बती और चीनी अनुवाद छोड़ अब मूलग्रन्थ कभी नहीं मिल सकेंगे, शलुङोर, साक्य के अनमोल संस्कृत हस्त लेखों के प्राप्त होने की सूचना जब पश्चिम के विद्वानों को मिली, तो उनमें अद्‌भुत हर्ष पैदा हुआ और कितनों ने सुझाव रखा कि उनके बारे में विद्वानों का अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन किया जाये। उस समय की गवर्नमेंण्ट के पास इतनी फुर्सत और हृदय कहाँ था? बिहार के—जहाँ पटना म्युजियम में उन ग्रन्थों में से कितने ही के फोटो अब भी मौजूद हैं। अँग्रेज प्रभुओं ने यह जरूर चाहा, कि उनके प्रकाशन करने का काम आक्सफोर्ड-विश्वविद्यालय को दे दें। पिछली सरकार की शिकायत करने की क्या जरूरत है, जब कि हमने अभी तक उनके लिए कभी कुछ नहीं किया।

तिब्बत में उपरोक्त विहारों के अतिरिक्त, एक दर्जन से अधिक और विहार हैं जिनमें भारतीय चित्रपट, धातुमूर्तियाँ और कुछ में हस्तलिखित ग्रंथ भी आज तक सुरक्षित रहे हैं। हमारे देश को यदि अपनी सांस्कृतिक निधियों के साथ प्रेम और अपनी संस्कृति का अभिमान होता, तो तिब्बत के इन मठों में अभियान भेजकर मिक्रोग्राफी और पैरिसप्लस्टर के सहारे सबका प्रतिचित्र या प्रतिमूर्ति मँगवा लेता। लेकिन आज इन सांस्कृतिक निधियों के लिए एक और भयंकर खतरा उत्पन्न हो गया है, जिससे डर है कि हजार डेढ़ हजार बरस से सुरक्षित इतिहास के लिए महार्घ और हमारी भावी देशाभिमानी सन्तानों के लिए प्राणसम प्रिय ये निधियां सर्वथा नष्ट न हो जायें।

कान्सू, कोकोनो और चिङ्‌वाइन प्रान्तों के सम्मिलित स्थान पर तुंगन नाम की एक जाति बसती है। यह जाति के तौर पर चीनी लेकिन धर्म के तौर पर बहुत पिछड़े हुए धर्मान्ध मुसलमान हैं। उनकी संख्या पाँच से दस लाख तक बतलाई जाती है। बहुत दिनों से चीन के भीतर उन्होंने अपने सामंत के नेतृत्व में अपना स्वतन्त्र सा प्रदेश बना रखा है। पेकिंग और नानकिंग की सरकारें उनके सामंत को ही गवर्नर मान लिया करती थीं। वह अब तक कम्युनिस्टों के सख्त विरोधी रहे हैं, लेकिन कम्युनिस्टों ने उन्हें पहले छेड़ना पसन्द नहीं किया। लेकिन अब जब चीन पर सभी जगह उनकी विजय-पताका फहराने लगी है, तो तुंगनों को वह कैसे अछूता छोड़ सकते थे? वहाँ अब हमारी सांस्कृतिक निधियों को खतरा पैदा होने का डर है। चीनी कम्युनिस्टों के प्रहार से जब कु-मिन तांग अपने को नहीं बचा सकी, तो तुंगन बेचारे किस गिनती में हैं? लेकिन बहुत कम सम्भावना है, कि तुंगन नेता, जो कि उनके राजनीतिक एवं धार्मिक नेता भी हैं, और प्रदेश के अधिकांश सम्पत्ति के स्वामी तथा निरंकुश शासक भी रहे हैं, खुशी-खुशी सुलह करने लगे। उनके सामने कू-मिन तांग के नेताओं का आज का उदाहरण मौजूद है, और दूसरे अपनी अपार सम्पत्ति और प्रभुता को त्यागना उनके लिए आसान काम नहीं है। तुंगन का इस संघर्ष में क्या भविष्य होगा, वह तो अस्पष्ट है, किन्तु तुंगन-सामंत तथा धार्मिक नेता और उनके अनुयायी,

पराजय के बाद भागने का जो मार्ग स्वीकार करेंगे, वही हमारी सांस्कृतिक निधियों के खतरे का कारण है। पलायमान तुंगन उत्तर की ओर नहीं भाग सकते, क्योंकि वहाँ मंगोलिया के कम्युनिस्ट बाधक हैं, पूरब की ओर नहीं भाग सकते, क्योंकि उधर माओ-त्से-तुंग का दृढ़ शासन है। वे पश्चिम की तरफ नहीं भाग सकते क्योंकि उधर भी सिंक्यांग में कम्युनिस्ट प्रभाव बढ़ चुका है। उनके लिए केवल दक्षिण का रास्ता ही अपेक्षाकृत अति सुगम है, क्योंकि वे जानते हैं कि उधर तिब्बत पार करते ही भारत आ जायगा, जहाँ हिन्दुस्तान नहीं तो पाकिस्तान में अवश्य शरण मिल जायेगी। वे यह भी जानते हैं कि अपनी आधुनिक राइफलों के साथ यदि दस हजार भी तुंगन सैनिक दक्षिण की ओर मुँह कर दें तो तिब्बत में ऐसी क्षमता नहीं है कि उन्हें रोक सके। यह स्मरण रखना चाहिए कि तुंगन-सैनिकों की संख्या दो लाख बतायी जाती है जिनमें अपने मुल्लों और सामंतों के बहकावे में आकर दस हजार तो अवश्य दक्षिण की ओर हिजरत कर सकते हैं। तिब्बत की सीमाओं में पहुँचने के चार ही पाँच दिन बाद उन्हें रेडिङ् विहार मिलेगा जहाँ दो दर्जन से अधिक सुन्दर भारतीय चित्रपट हैं, कुछ ताल-पोथियाँ और मूर्त्तियाँ भी हैं। पाँच-छः साल पहले जब कजाक भगोड़े मध्य एशिया से कश्मीर की ओर आते हुए पश्चिमी तिब्बत के भीतर से गुजरे तो उन्होंने बहुत से बौद्ध विहारों को लूटा और जला दिया। तुंगन भगोड़े रेडिङ् के साथ उससे अच्छा व्यवहार नहीं करेंगे।

रेडिङ् के बाद ग्यारहवीं शताब्दी का न तंग लुङ् विहार आयेगा—जिसमें भी भारतीय तिब्बती और चीनी संस्कृति से सम्बन्ध रखनेवाली बहुत सी कला की वस्तुएँ हैं—उसकी भी बुरी हालत होगी। फिर फनू पो उपत्यका के पोतोपा, ञरवा, ग्याल्हा-खङ् नालन्दा (तिब्बत का नालन्दा), गुनूथङ् के विहार आयेंगे। ये भी प्राचीन विहार हैं और इनमें भी तिब्बत ही नहीं, भारत और चीन के भी ऐतिहासिक पदार्थ हैं। फिर लासा नगरी आयेगी जिसने पिछले तेरह सौ वर्षों से भारतीय निधियों की रक्षा की है। वह भी धर्मान्ध तुंगनों के कारण किस अवस्था को प्राप्त होगी, इसे सोचने पर भी रोमांच हो आता है। लासा के बाद भारत पहुँचने तक एक दर्जन से कम तथा समृद्धिशाली तथा कला-संस्कृति के प्रतीकों से पूर्ण विहार नहीं हैं। ये सारे उनकी दया की भिक्षा माँगकर भी अपनी रक्षा नहीं कर सकते।

हमें पूरा विश्वास है, कि हमारी सरकार इसके बारे में जागरूक होगी। हम अपनी सांस्कृतिक निधियों के साथ-साथ, तिब्बत और चीन की भी सांस्कृतिक निधियों की रक्षा कर सकते हैं, यदि तीनों सरकारें इस विषय में सावधान हों। हमारे राजदूत को चीन की कम्युनिस्ट सरकार से मिलकर इसके लिए प्रयत्न करना होगा, जिसमें दक्षिण की ओर से आनेवाले भगोड़ों को पहाड़ी डाँड़ों पर रोक दिया जाय। यह काम तिब्बत अकेले नहीं कर सकता है। हमारी तीनों देशों के अपनी-अपनी सांस्कृतिक निधियों के अतिरिक्त कितनी ही सम्मिलित निधियाँ भी हैं, यदि इसे समझाया जाय, तो अपनी संस्कृति के प्रेमी चीनी कम्युनिस्ट नेता अवश्य इधर ध्यान देंगे। तिब्बत सरकार को भी सावधान कर देने की आवश्यकता है। जैसे हो सके, तुंगन लोगों के पास भी यह संवाद पहुँचा देना चाहिए कि अगर तिब्बत के विहारों और उनकी ऐतिहासिक वस्तुओं को लूटा-पाटा या नष्ट किया गया तो भारत सरकार कभी भगोड़ों के इस अत्याचार को बर्दाश्त न कर सकेगी।

यह तो तुरन्त जो खतरा पैदा हुआ है उसके प्रतीकार की बात हुई; साथ ही क्या हमारी केन्द्रीय सरकार अपने कर्तव्य को समझकर ऐसा प्रबन्ध नहीं कर सकती, कि तिब्बत में मौजूद हमारी धातु मूर्तियों, चित्रपटों और पुस्तकों को तूलिका, पैरिसप्लाटर और मिक्रो-फोटोग्राफी के द्वारा उतार कर भारत में लाया जा सके। सौभाग्य से तिब्बत में अवस्थित हमारे प्रतिनिधि संस्कृत और तिब्बती भाषा के अच्छे जानकार हैं, तिब्बती सरकार भी योग देने के लिए तैयार मिलेगी। फिर क्यों न इस काम को हाथ में लिया जाय? अन्त में यह भी कहना होगा कि तिब्बत से प्राप्त संस्कृत के अनमोल ग्रन्थों के प्रकाशन की भी कोई व्यवस्था अवश्य होनी चाहिए।

पुरानी पोथियों की विदेश-यात्रा

श्री प्रह्लाद प्रधान

[१]

भारतवर्ष में तालपत्र और भूर्जपत्र आदि पर लिखी गई पुरानी पोथियाँ आज दूर-दूर के देशों से प्राप्त हो रही हैं। इनके विदेश जाने का इतिहास यद्यपि अधिकांश में अब भी अज्ञात है तथापि सम्राट् अशोक के बाद से उनका जो कुछ इतिहास मिलता है वह बहुत कुछ धारावाहिक ही है। इस प्रबन्ध में उसी इतिहास का संक्षिप्त विवरण उपस्थित किया जा रहा है।

जहाँ तक ब्राह्मणों का सम्बन्ध है, उनका प्रभाव भारत में तो था ही, बृहत्तर भारत (सुवर्णभूमि या स्वर्णद्वीप) अर्थात् स्याम, कम्बोडिया, चम्पा, मलय, सुमात्रा, जावा, बाली इत्यादि में भी कम नहीं था। प्राचीन भारतीयों का पूर्व में चीन, सुवर्णभूमि और पश्चिम में रोम-साम्राज्य से व्यवसाय सम्बन्ध ख्रीष्टपूर्व युग का है। व्यवसायी लोग कितने ही स्थलपथ और जलपथ से तत्तत् स्थानों में जाया करते थे। कितने ही वहाँ जाकर बस भी जाते थे। रोम-साम्राज्य में बस जाने का प्रमाण नहीं मिलता; लेकिन हिन्दू लोग वहाँ खूब जाते थे और वहाँ के भूगोल से सम्पूर्ण परिचित थे। हिन्दुओं को नील नदी के उत्पत्ति स्थान का पूर्ण ज्ञान था और वह भी ठीक ठीक। कप्तान पेक् ने, जो आधुनिक युग में सर्वप्रथम नील नदी के उत्पत्ति स्थान पर पहुँचा था, इस बात को स्वीकार किया है कि हिन्दुओं की विवरणी के सहारे वह पहुँचा। किन्तु रोम-साम्राज्य में हिन्दू संस्कृति का कितना प्रभाव था, इसका ठीक-ठीक पता नहीं चलता। लेकिन बृहत्तर भारत में हिन्दुओं के वहाँ बस जाने का प्रमाण मिलता है। वे लोग हिन्दू थे और उनपर ब्राह्मण सभ्यता का यथेष्ट प्रभाव था। उन लोगों का जीवन, विशेष कर धार्मिक जीवन, बिना ब्राह्मण के चल नहीं सकता होगा। उन ब्राह्मण पुरोहितों के साथ उनकी प्रधान संपत्ति—पोथियाँ जरूर होंगी। अवश्य ही ब्राह्मण लोग पूजापाठ की सब पद्धति कंठस्थ कर लेते थे, लेकिन कहीं भूल न हो जाय, इस भय से लिख भी लेते थे।

सिर्फ व्यवसाय ही नहीं, राज्यस्थापन भी हिंदू-संस्कृति का विस्तार और पोथियों की यात्रा का सहायक था। सौदागरी के बाद साम्राज्य दिखाई देता है, सिर्फ व्यवसाय के पीछे शक्ति सबल होनी चाहिये। बृहत्तर भारत में भी वाणिज्य के बाद साम्राज्य स्थापित हुआ। पूर्व और दक्षिण भारत से बहुत से हिन्दू चम्पा में जा बसे। वहाँ हिन्दू सभ्यता का पूर्ण विस्तार होने लगा और वहाँ की शासन करने वाली 'चम' जाति प्रायः हिन्दू हो गई। सच बात तो यह है कि यद्यपि चम जाति के राजा शासन कर रहे थे, तथापि शासन की बागडोर हिन्दुओं के हाथ में थी। बाद में चलकर श्रीमार, श्रीरुद्रवर्मा, पृथिवीन्द्रवर्मा, इन्द्रवर्मा इत्यादि राजाओं ने चम्पा में हिन्दूराज्य स्थापन कर क्रमशः फन् (बर्मन्), गङ्गराज, पाण्डुरङ्ग, भृगु इत्यादि राजवंश चलाए थे। कम्बोडिआ (कम्बोज) में एक कौण्डिन्य ब्राह्मण ने फुनान् वंश और राज्य स्थापित किया था। मलय, सुमात्रा, जावा, बाली इत्यादि में भी हिन्दुओं ने उपनिवेश और राज्य स्थापित किए थे। वहाँ पहले शैव और भागवत धर्म का बहुत प्रचार था तथा शिव और विष्णु की मूर्त्तियाँ और मन्दिर बड़ी संख्या में आज भी पाए जाते हैं। उन देशों में यज्ञ आदि भी होते थे। हाल ही में डा० सिल्वाँ लेवी ने बहुत से हिन्दू नित्यकर्म-पद्धतियों का उद्धार किया है, जो विकृत संस्कृत में अभी तक मौखिक चली आती हैं। वेद, नारायणाथर्वशीर्षोपनिषद्, वेदपरिक्रमसार, संहिताकिरण इत्यादि ग्रंथ और स्तोत्रों के सिवा रामायण, महाभारत इत्यादि भी वहाँ गए थे। जावा में इनका अनुवाद असंपूर्ण रूप में पाया जाता है और जावा के साहित्य पर इनका पूर्णमात्रा

प्रभाव पाया जाता है। इस प्रकार भुवनकोष, भुवन-संक्षेप इत्यादि संस्कृत ग्रंथों का भी अनुवाद प्राप्त है। डा० सिल्वाँ लेवी ने संस्कृत में एक 'बुद्धदेव' का भी उल्लेख किया है। इससे साफ मालूम होता है कि ब्राह्मण लोग जाकर उन देशों में बसे थे और उनके साथ पोथियाँ भी गई थीं।

लेकिन ब्राह्मण धर्म के विस्तार के सहारे जितनी पोथियाँ बाहर गई हैं, उनसे ज्यादा बौद्ध धर्म के विस्तार के साथ गई हैं। जहाँ हिन्दू समाज या हिन्दू संख्या का आधिक्य या राजशक्ति का समर्थन नहीं होगा, वहाँ ब्राह्मण धर्म नहीं टिक सकता। ब्राह्मण धर्म की मूल भित्ति है वेद का प्रमाण, वर्णाश्रम और ब्राह्मणों की श्रेष्ठता। लेकिन अन्य देशोंकी कोई स्वतन्त्र और संस्कृत जाति ब्राह्मणों की श्रेष्ठता क्यों मानने जायेगी? फिर ब्राह्मण धर्म सर्वसाधारण का धर्म कैसे हो सकता था? ब्राह्मणों ने धर्म में सबको समान अधिकार नहीं दिया है। किन्तु बौद्धधर्ममें यह बात नहीं है। इसमें जातिभेद या वर्णश्रेष्ठता का कोई सवाल नहीं उठता। इसके अतिरिक्त यह व्यक्ति की दीक्षा और साधना में विश्वास करता है और उसे पूर्ण स्वतन्त्रता देता है। ब्राह्मण धर्म में इसका अभाव है। इसलिए बौद्धधर्म विदेशमें जितना फैल सका, उतना ब्राह्मण धर्म नहीं।

बौद्धधर्म ज्यों-ज्यों फैलता गया, त्यों-त्यों पोथियाँ भी बाहर जाने लगीं। बौद्धधर्म के फैलने में उसकी उदारता और असंकीर्णता तो कारणों में से एक थी ही, एक दूसरा कारण राजशक्ति भी थी। सबसे पहिले अशोक ने इस ओर प्रयत्न किया और कलिंग समर के बाद स्वयं बौद्धधर्म में दीक्षित होकर अपने राज्य के बाहर भी धर्म-प्रचारक भिक्षु भेजे। उन्होंने काश्मीर गान्धार में माध्यान्तिक स्थविर, अपरान्त में यवन धर्मरक्षित स्थविर, महाराष्ट्र में महाधर्मरक्षित स्थविर, यवन लोक या यवनविषय में महारक्षित स्थविर, हिमवन्त या हिमालय प्रदेश में मध्यम स्थविर, स्वर्णभूमि में शोण और उत्तर स्थविर और ताम्रपर्णी या लंका में त्रिपिटकज्ञ महेन्द्र स्थविर को भेजा। वे प्रचारक भिक्षु जब गये होंगे, खाली हाथ नहीं गये होंगे। जब प्रचार के लिए गये तो त्रिपिटक का कुछ-न-कुछ अंश जरूर ले गये होंगे; उन स्थविरों की प्रचार की विवरणी से यह साफ जाहिर होता है। माध्यान्तिक स्थविर ने असीविसोपम सुत्त, महादेव स्थविर ने देवदूत सुत्त, रक्षित स्थविर ने अनमतग्गपरियाय सुत्त, यवनधर्मरक्षित स्थविर ने अग्गिक्खन्धोपम सुत्त, महाधर्मरक्षित ने महानारदकस्सपजातक, मध्यम स्थविर ने धम्मचक्कप्पवत्तन सुत्तान्त और महेन्द्र स्थविर ने चुल्ल-हत्थिपदोपम सुत्त और समचित्तान्त सुत्त आदि की व्याख्याओं के द्वारा धर्मप्रचार किया। उपर्युक्त प्रत्येक सुत्त या सुत्तन्त त्रिपिटक के अन्तर्गत एक एक पुस्तक है (?)। इससे साफ सूचित होता है कि अशोक के राजत्वकाल में पाली बौद्ध ग्रन्थों की पोथियाँ बाहर जाने लगी थीं।

अशोक के बाद इस ढंग से फिर किसी राजा ने धर्म-प्रचारक भेजा या नहीं—ठीक पता नहीं चलता। अवश्य कनिष्क, हर्षवर्धन, देवपाल इत्यादि अनेक राजाओं ने बौद्ध धर्म की पृष्ठपोषकता की, लेकिन उन राजाओं के राजत्वकाल में धर्म-प्रचारक भेजे जाने का कोई उल्लेख नहीं मिलता। उन लोगों ने अपने देश में बौद्ध भिक्षु बुलाए थे। जो हो, अशोक के बाद उस युग के भिक्षुओं ने बौद्ध धर्म का प्रचार करना अपना एक कर्त्तव्य बना लिया था और उन भिक्षुओं के अथक परिश्रम से सुदूर विदेशों में बौद्ध धर्म का काफी प्रचार हो गया और उसकी जड़ जम गई। इस प्रकार बौद्ध धर्म का विदेशों में सम्मान बढ़ने लगा और तत्तत् देशों के राजाओं से उन-उन स्थानों में बौद्ध धर्म पहुँचाने के लिये अह्वान आया।

जो आदमी दूसरे की जान मारनेवाला है, वह परलोक में चाहे सारे उपभोग और धन-सम्पत्ति का लाभी हो, रूप से मार के समान चमकता हो, तथापि जवानी में भी न चाहते हुए मरण को प्राप्त होता है। जो मनुष्य हिंसा से रहित, नित्य अपने शरीर से संयत हैं, वे उस अच्युत पद (निर्वाण) को प्राप्त करते हैं, जिसे प्राप्त कर वे शोक नहीं करते।

—भगवान् बुद्ध

व्यक्ति का पुनर्निर्माण

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

आज पुनर्निर्माण की चर्चा है व्यक्ति के नहीं, समाज के। अपने नहीं, दूसरों के। क्या व्यक्ति का पुनर्निर्माण एकदम उपेक्षा की चीज़ है?

यह सत्य है कि व्यक्ति समाज की उपज है, और यदि सारा समाज लूला-लँगड़ा रहे तो एक व्यक्ति भी सीधा नहीं ही खड़ा हो सकता। किन्तु फिर समाज भी तो व्यक्तियों का ही समूह है। यदि व्यक्ति, व्यक्ति की ओर ध्यान न दे अथवा व्यक्ति अपनी ही ओर ध्यान न दे तो समाज भी आखिर कैसे सीधा खड़ा हो सकता है?

अंग्रेजी की प्रसिद्ध तुक-बन्दी है—

If everybody looks to his own reformation, how very easy to form a nation.

भावार्थ—यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने सुधार की ओर ध्यान दे तो एक जाति का निर्माण कितना आसान है।

बौद्ध धर्म में सम्यक्-व्यायाम के चार अंग कहे गये हैं—

१—इस बात की सावधानी रखना कि अपने में कोई अवगुण आ न जाये।

२—इस बात का प्रयत्न कि अपने अवगुण दूर हो जायें।

३—इस बात की सावधानी रखना कि अपने सद्गुण चले न जायें।

४—इस बात का प्रयत्न करना कि अपने में नये सद्गुण चले आयें।

बाग में यदि अच्छे फल-फूल न लगाये जायें और जमीन को यूँ ही बेकार पड़ा रहने दिया जाय तो उसमें बेकार के झाड़-झंखाड़ उग ही आयेंगे। यदि अवगुणों को दूर करने और सद्गुणों को लाने का उपाय निरन्तर नहीं किया जायगा तो अवगुण बने ही रहेंगे, और सद्गुण नहीं ही आ पायेंगे। इसलिए यदि इस चतुर्मुखी कार्यक्रम को घटाकर इनके केवल दो अंगों को स्वीकार कर लिया जाय तो भी मैं समझता हूँ भगवान् बुद्ध का उद्देश्य पूरा हो सकता है—

अवगुणों को दूर करना और सद्गुणों को अपनाना यह दोनों भी क्या अर्थ की दृष्टि से एक ही नहीं है? इसका उत्तर 'हाँ' और 'नहीं'—दोनों देना होगा।

एक आदमी को व्यर्थ बक-बक करने की आदत है। यदि वह अपनी आदत को छोड़ता है तो वह अपने व्यर्थ बोलने के अवगुण को छोड़ता है। किन्तु साथ ही और अनायास ही वह मित-भाषी होने के सद्गुण को अपनाता चला जाता है। यह तो हुआ 'हाँ' पक्ष का उत्तर। किन्तु एक दूसरे आदमी को सिग्रेट पीने का अभ्यास है। वह सिग्रेट पीना छोड़ता है, और उसकी बजाय दूध से प्रेम करना सीखता है। तो सिग्रेट पीना छोड़ना एक अवगुण को छोड़ना है, और दूध से प्रेम जोड़ना एक सद्गुण को अपनाना है। दोनों दो भिन्न वस्तुएँ हैं—पृथक् पृथक्।

अवगुणों को दूर करने और सद्गुणों को अपनाने के प्रयत्न में, मैं समझता हूँ कि अवगुणों के दूर करने के प्रयत्नों की अपेक्षा सद्गुणों के अपनाने का ही महत्त्व अधिक है। किसी कमरे में गन्दी-हवा और स्वच्छ-वायु एक साथ रह ही नहीं सकती। कमरे में हवा रहे ही नहीं, यह तो हो ही नहीं सकता। गन्दी हवा को निकालने का सबसे अच्छा उपाय एक ही है—सभी दरवाजे और खिड़कियाँ खोलकर स्वच्छ-वायु को अन्दर आने देना।

अवगुणों को भगाने का सबसे अच्छा उपाय है, सद्गुणों को अपनाना।

ऐसी बातें पढ़-सुनकर हर आदमी यह कहता सुनाई देता है जो किसी समय बेचारे दुर्योधन के मुँह से निकली थीं—

'धर्म' जानता हूँ उसमें प्रवृत्ति नहीं।
'अधर्म' जानता हूँ उससे निवृत्ति नहीं।

एक आदमी को कोई कुटेव पड़ गई---सिग्रेट की ही सही। अत्यधिक सिनेमा देखने की ही सही। बहुत 'संकल्प' करता है, बहुत 'कसमें' खाता कि अब सिग्रेट न पीऊँगा, अब सिनेमा देखने न ऊँगा, किन्तु समय आने पर जैसे आप ही आप उसके सिग्रेट तक पहुँच जाते हैं, और वह सिग्रेट उसके तक। बेचारे के पाव सिनेमा की ओर जैसे आप ही बढ़े चले जाते हैं।

क्या 'सिग्रेट' न पीने का और 'सिनेमा न देखने का' 'संकल्प' सच्चा नहीं? क्या उसने झूठी कसम खाई? क्या उसके संकल्प की दृढ़ता में कमी है? नहीं 'संकल्प' तो उतना ही दृढ़ है जितना किसी का सकता है। तब उसे बार-बार असफलता क्यों होती होती है और बार बार होती है।

इस 'असफलता' का कारण और 'सफलता' का रह- कदाचित् इस एकही उदाहरण से समझ में आ जाय।

जमीन पर एक छः इञ्च, या एक फुट लम्बा, चौड़ा ड़ी का तख्ता रखा है। यदि आप से उसपर चलने के कहा जाय तो क्या आप चल सकेंगे? क्यों नहीं? आसानी से। अब इसी तख्ते के एक सिरे को किसी की छत पर रख दिया जाय, और शेष तख्ते को खुले आकाश में आगे बढ़ा दिया जाय और तब आप इसी तख्ते पर चलने के लिये कहा जाय तो क्या आप भी उस पर चल सकेंगे? 'डर लगेगा। नहीं चल ।'

कोई पूछे क्यों? आप इसके अनेक कारण बतायेंगे। कारण एक ही है। आप नहीं चल सकते, क्योंकि समझते हैं कि आप नहीं चल सकते।

यदि आप विश्वास कर लें कि आप चल सकते हैं, और लकड़ी के तख्ते को थोड़ा थोड़ा जमीन से ऊपर हुए उसी पर चलने का अभ्यास करें तो आप उस- बड़े आराम से चल सकेंगे। सरकसवाले पतले-पतले पर कैसे चल लेते हैं? बस ऐसे ही चल लेते हैं। वे विश्वास करते हैं कि वे चल सकते हैं, और तदनुसार अभ्यास करते हैं। वे चल ही लेते हैं।

यदि आप किसी अवगुण को दूर करना चाहते हैं तो उससे दूर-दूर रहने के दृढ़ संकल्प करना छोड़िये, क्योंकि जब आप उससे दूर-दूर रहने की 'कसमें' खाते हैं, तब भी आप उसी का चिन्तन करते हैं। चोरी न करने का संकल्प भी चोरी का ही संकल्प है। पक्ष में न सही, विपक्ष में सही। है तो चोरी के ही बारे में। 'चोरी' न करने की इच्छा रखने वाले को 'चोरी' के सम्बन्ध में कोई संकल्प-विकल्प ही न करना चाहिये।

यदि हम अपने संकल्प-विकल्पों द्वारा अपने अवगुणों को बलवान न बनायें तो हमारे अवगुण अपनी मौत आप मर जायेंगे।

हमें अपने संकल्प-विकल्पों द्वारा अपने सद्गुणों को बलवान बनाने की आवश्यकता है।

यदि आप की प्रकृति 'चंचल' है—आप अपने 'गंभीर-स्वरूप' की 'भावना' करें। यथावकाश अपने मन में अपने 'गम्भीर-स्वरूप' का चित्र देखें। अचिरकाल में ही आप की प्रकृति बदल जायगी।

यदि आप की प्रकृति 'अस्वस्थ' है, आप अपने 'स्वस्थ स्वरूप' की 'भावना' करें। यथावकाश अपने मन में 'स्वस्थ स्वरूप' का चित्र देखें। अचिरकाल में ही आप की प्रकृति बदल जायगी।

यदि आप की प्रकृति 'अशान्त' है—आप अपने ही 'शांत स्वरूप' की 'भावना' करें। यथावकाश अपने मन में अपने 'शांत स्वरूप' का चित्र देखें। अचिरकाल में ही आप की प्रकृति बदल जायगी।

शायद आप को 'गम्भीरता,' 'स्वास्थ,' 'शांति' की उतनी आवश्यकता ही नहीं, जितनी दूसरी लौकिक चीजों की।

उन चीजों की प्राप्ति में यह नियम निश्चयात्मक रूप से सहायक होगा, किन्तु निर्णायक नहीं।

संसार में प्रत्येक कार्य अनेक कारणों से होते हैं। यदि दूसरे कारण एकदम प्रतिकूल में हों तो अकेली 'भावना' क्या करेगी? कोई तरुण अपना शरीर बलवान बनाना चाहता है। खाने-पीने के साधारण नियमों का खयाल नहीं

करता, स्वच्छ वायु में नहीं सोता, व्यायाम नहीं करता, केवल 'भावना' के ही बल पर 'बलवान' होना चाहता है। यह असम्भव है।

'भावना' अपना काम करती है, किन्तु अकेली 'भावना' खाने-पीने, स्वच्छ-वायु और व्यायाम-सभी की जगह नहीं ले सकती।

जो 'बलवान' बनने की सच्ची 'भावना' करेगा वह अपने खाने-पीने, स्वच्छ वायु और व्यायाम की भी चिंता क्यों न करेगा?

इन अर्थों में 'भावना' को सर्वार्थ-साधिकार कहा जा सकता है।

सब भावनाओं में श्रेष्ठ भावना एक ही है, जिसे सभीने अपने अपने धर्म ग्रन्थों में स्थान दिया है—

सभी के प्रति मैत्री,
गुणियों के प्रति प्रमुदता,
दुखियों के प्रति दया,
दुष्टों के प्रति उपेक्षा।

सचमुच इससे बढ़कर 'ब्रह्म-विहार' की कल्पना नहीं की जा सकती।

बहुजन हिताय बहुजन सुखाय

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी

बहुजन—हिताय,
बहुजन—सुखाय।

नर उठो, नारियो उठो, उठो,
झाँकी यह झिलमिल स्वर्ण किरण,

निद्रा खोने, तन्द्रा धोने—
वह चली पुलकमय पवन,

सब उठो, जगो,
निज कर्म लगो,

सपनों की दुनिया दूर जाय।

बहुजन—हिताय,
बहुजन—सुखाय।

दुनिया उभचुभ कर डूब रही,
फैला आँसू का प्रलय ज्वार,

आहों की आँधी में उजड़ी,
जाती मानवता की बहार।

आगे बढ़कर,
करुणा से भर,

बहुजन—हिताय,
बहुजन—सुखाय।

हम सागर यदि न उलीच सकें,
आँखों की दो बूँदें हर लें,

हम पर्वत उठा सकें न अगर,
बोझे दो सिर के कम करदें।

अर्पित जीवन,
अर्पित जन-धन,

अर्पित होवे मन-बचन काय,

बहुजन - हिताय,
बहुजन—सुखाय।

मैंने भगवान् बुद्ध की वकालत क्यों शुरू की ?

श्री अनन्त रामचन्द्र कुलकर्णी

मैंने १९२४ में एल० एल० बी० की परीक्षा पास र नागपुर शहर में वकालत शुरू की थी। तब से १९४६ के अन्त तक, मैं नागपुर में ही वकालत करता रहा। न्तु १९४६ के अन्त में मैंने वकालत छोड़ दी। यह रिवर्तन मुझ में कैसे आया ? इसका इतिहास मैं यहाँ क्षेप में दे रहा हूँ--

सन् १९२७ में नागपुर शहर में एक मामला उपस्थित हुआ। नागपुर में एक बहुत पुराना देवस्थान है। समें एक शंकर की पिंडी है। मंदिर के बहुत पुराना होने से हाँ की शिव की पिंडी तथा अन्य मूर्तियाँ भग्नावस्था में ं। इस मन्दिर की बगल में हिंदू मेहतर तथा मुसलमानों के घर हैं। मन्दिर की मूर्तियों के भग्नावस्था में होने मन्दिर में कोई पूजा करने नहीं जाता था। बल्कि सलमानों के बच्चे उसके आँगन में खेलते थे और मन्दिर गंदा भी करते थे। जब मंदिर ऐसी दशा में था, तब समें महन्त हरेन्द्र जितेन्द्रव्यास नाम के महानुभाव पंथ एक पंजाबी संन्यासी रहने आये। वहाँ कुछ दिन रहने उस सन्यासी ने उस मन्दिर में श्रीकृष्ण की मूर्ति स्थापना की। और उसने उस कृष्ण की मूर्ति की पूजार्चा भी शुरू की। इस महानुभाव संन्यासी ने मंदिर में गीचा लगाया, नल गाड़ा और हर तरह मंदिर की वस्था सुधारी। जब मन्दिर की अवस्था सुधर गई, तो सके सम्बन्ध में झगड़े शुरू हो गये। एक शैव सम्प्रदाय सन्यासी खड़ा हुआ और कहने लगा कि मन्दिर मेरा । उसका कहना था कि यह मन्दिर एक शिव मंदिर है। नुभाव सन्यासी का कहना था कि यह महानुभावों मन्दिर है। दोनों साधु जब अपना-अपना अधिकार न्दिर पर दिखाने लगे तो कलह कोर्ट में गया। यह सन् २७ की बात है। एक समय कोर्ट के आँगन में बहुत लोग महानुभाव संन्यासी के पीछे लगे थे। इन लोगों का कहना था कि महानुभाव साधु एक ढोंगी साधु है। उसने शिव जी की मूर्ति को फोड़ा है, अतः इस मंदिर में रहने का इसको कोई अधिकार नहीं है। मूर्तियों को फोड़कर इसने हिन्दुओं की धर्म-भावना दुखाई है। इस विषय में उसके विरुद्ध कोर्ट में एक अभियोग भी पेश किया गया था। इस मामले में अभियोगी का कहना था कि महानुभाव लोग सनातनी हिंदू नहीं हैं। ये लोग केवल कृष्ण की ही पूजा करते हैं। शिव-लिंग या नन्दी की पूजा ये लोग बिल्कुल ही नहीं करते। परन्तु जनता को फँसाने की दृष्टि से इस महानुभाव साधु ने शिव-लिंग को छेद कर उसमें एक प्रकार की पवित्र मिट्टी रखकर उसे ऊपर से बन्द कर दिया है। यों तो यह साधु ऊपर से दिखाने के लिये शिव-लिंग की पूजा करता है। परन्तु यह केवल ढोंग है। वह सच पूजा करता है उस पवित्र मिट्टी की, जिसको इसने छेद में भरा है। महानुभाव संन्यासी का यह कृत्य निंद्य तथा अपराधपूर्ण है। अतः इसकी जाँच होनी चाहिये और अपराधी को दण्ड मिलना चाहिये। ऐसा उस अभियोग का सारांश था। लोग प्रक्षुब्ध होकर महानुभाव सन्यासी का पीछा कर रहे थे। ऐसी परिस्थिति में वह महानुभाव सन्यासी मेरे पास आये और मुझे इस संकट से मुक्त कराने के लिए कहने लगे। मैंने तो प्रथम ही उनसे पूछा 'क्या जैसा ये लोग कहते हैं, आपने शिव मूर्ति को छेदकर भ्रष्ट किया है ? उन्होंने कहा 'नहीं'। इस उत्तर से प्रसन्न हो, मैंने कहा—"अच्छा, कोर्ट में मैं आपकी रक्षा करूँगा"। जब कोर्ट में मामला पेश हुआ, तब कोर्ट से मैंने प्रथम ही स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि अगर मेरे पक्षवाले ने मूर्त्ति फोड़ने का निंद्य काम किया होगा, तो यह दोषी है और इसे सजा मिलनी ही चाहिये। परन्तु इसका कहना है कि

ऐसा काम उसने बिल्कुल नहीं किया, अतः वह निर्दोषी है। कोर्ट में गवाही हुई और कोर्ट ने ऐसा निर्णय दिया कि मूर्ति फोड़ने का आरोप झूठ है। अतः कोर्ट ने महानुभाव सन्यासी को निर्दोषी कहकर छोड़ दिया। परन्तु मामला यहीं समाप्त नहीं हुआ।

अब विरोधी पक्ष ने वादी बनकर दीवानी कोर्ट में मन्दिर पर कब्जा पाने की नालिश की और उसमें बुनियादी विवाद-विषय यह उपस्थित किया की महानुभाव लोग सनातनी हिन्दू न होने से प्रतिवादी को इस सनातनी हिन्दुओं के मन्दिर में रहने का या उसका प्रबन्ध करने का कोई भी अधिकार नहीं है। इस पर हमने भी वादी से निम्न प्रश्न पूछे :—

१. हिन्दू कौन है ?
२. क्या सनातनी हिन्दू ?
३. क्या महानुभाव लोग हिन्दू हैं ?
४. हिन्दू और सनातनी हिन्दूओं में क्या अन्तर है ?

इन प्रश्नों के उत्तर वादी ने इस प्रकार दिये :—

१. जो मनुष्य वेद को प्रमाण मानता है, वह हिन्दू है।
१. जो हिन्दू चातुर्वण्य तथा छूआ-छूत को मानते हैं वे सनातनी हिन्दू हैं।
३. हाँ; महानुभाव लोग हिन्दू हैं।
४. वेद को प्रमाण मानते हुए जो मनुष्य चातुर्वण्य तथा छूआ-छूत मानता है, वह सनातनी हिन्दू है। किन्तु महानुभाव लोग चातुर्वण्य तथा छूआ-छूत नहीं मानते, अतः वे सनातनी हिन्दू नहीं हैं।

सच देखा जाय तो हिन्दू और सनातनी हिन्दूओं का अन्तर नाम मात्र का है। और महानुभाव लोग सनातनी हिन्दू भी हैं—यह एक निर्विवाद सत्य है। महानुभाव-लोग हिन्दू हैं, यह बात जब वादी को मंजूर है, तो वे सनातनी हिन्दू हैं, यह बात भी उसको मंजूर करना ही होगा क्योंकि उसी के कथनानुसार मनुष्य हिन्दू तभी होता है, जब वह वेद को प्रमाण मानता है। तो महानुभाव लोग वेद को प्रमाण मानते हैं, यह बिलकुल स्पष्ट है। और अगर वेदों में चातुर्वण्य सन्निहित है, तो महानुभाव लोग भी चातुर्वण्य को मानते हैं, इसमें कुछ भी संदेह नहीं। तो फिर महानुभाव लोग सनातनी हिंदू कैसे नहीं होते—यही समझता नहीं। अतः हिन्दू तथा सनातनी हिन्दू—ये दोनों एक ही तात्पर्य वाले शब्द हैं।

इस दावे का अन्तिम निर्णय नागपुर-हाई-कोर्ट में १९४२ या १९४३ में हुआ। इस निर्णय में हाई कोर्ट ने ऐसा कहा कि महानुभाव लोग हिन्दू हैं। वादी का दावा खारिज हुआ।

सच बात तो यह है कि मनुष्य जन्म से ही ब्राह्मण होता है, इस बुद्धिहीन परम्पराको महानुभाव लोग नहीं मानते। और इस परम्परा को मिटाने का बहुत जोरों का प्रयत्न महाराष्ट्र में महानुभाव सम्प्रदाय के संस्थापक श्री चक्रधर स्वामी ने किया। अतः महानुभाव लोग ब्राह्मणों या तत्सम लोगों की दृष्टि में अ-सनातनी हैं। इन स्वयं मान्य सनातनी लोगों की दृष्टि में जो कोई मनुष्य इस अन्यायी परम्परा पर आघात करता है, वह अ-सनातनी बन जाता है। जो सच्चे हिन्दू हैं, वे इन लोगों की दृष्टि में झूठ बन जाते हैं। महात्मा गांधी अपने को सनातनी कहते थे और वे सच्चे अर्थ में सनातनी थे भी। परन्तु गोडसे की दृष्टि में वे सनातनी नहीं थे। वैसे ही भगवान् बुद्ध सनातनी थे, क्योंकि वे कहते थे कि मैं तो सनातन धर्म ही बताता हूँ।

परन्तु जो झूठ या सैतानी वृत्ति के हिन्दू हैं, वे बुद्ध को सनातनी नहीं मानते। इन लोगों के दृष्टिकोण के उलटा होने से उनका शब्द-कोष भी उलटा है। संक्षेप में कहें तो यह हिंसक और अहिंसक वृत्तियों का झगड़ा है। हिंसक वृत्ति के लोगों को अहिंसक वृत्ति के लोग बुरे दीखते हैं और अहिंसक वृत्ति के लोगों को हिंसक वृत्ति के लोग। अब इसका निर्णय पाठक ही कर लें।

महानुभाव लोग सनातनी हिन्दू नहीं हैं, इस बात के प्रमाण के लिये वादी ने बहुत से विद्वान् पंडितों की गवाही ली थी। सब ने साधारणतः यही कहा कि महानुभाव लोग सनातही हिन्दू नहीं हैं। अर्थात् इन्होंने मनुष्य जन्म से ही ब्राह्मण होता है, इस परम्परा का समर्थन किया। इस पर मैंने एक वयोवृद्ध पंडित से पूछा कि आप भगवान् गौतम बुद्ध को विष्णु का ९वाँ अवतार मानते हैं या नहीं? उन्होंने झट कह दिया—हम गौतम बुद्ध को अवतार नहीं मानते। हमारा बुद्ध दूसरा ही है। वयोवृद्ध

डित के इस कथन से मुझे बहुत दुःख हुआ और मेरे न में ऐसे विचार आने लगे कि भगवान् बुद्ध के प्रति ह्मणों में इतना अनादर क्यों है ? जैसे-जैसे मैं विचार रने लगा, मुझे विश्वास होने लगा कि भगवान् बुद्ध ने नुष्य जन्म से ही ब्राह्मण होता है, इस परम्परा को राया। अतः भगवान् बुद्ध से ब्राह्मण-वर्ग असन्तुष्ट है। ह्मण तो चाहते हैं:—

''पूजिय विप्र शील गुण हीना।
शूद्र न गुणगण ज्ञान प्रवीना॥''

इसी कारण बुद्ध को अवतार मानते हुए भी ब्राह्मण ग उनके प्रति अनादर दिखाते हैं। महात्मा गांधी ने से साम्राज्यशाही नष्ट की, वैसे ही भगवान् बुद्ध ने ह्मणशाही नष्ट की—ऐसा कहना अनुचित न होगा। सका अर्थ यह नहीं होता कि बुद्ध ने किसी से द्वेष या। पाप से घृणा करो, परन्तु पापी को मत मारो—ही परम कारुणिक भगवान् बुद्ध की शिक्षा का सार है। तः ब्राह्मणशाही नष्ट की—इसका अर्थ ऐसा होता है कि द्ध ने कहा कि ब्राह्मण एक पद है। वह किसी का जन्म-द्ध अधिकार नहीं है। जिस मनुष्य ने काम, क्रोध, ह, लोभ, मद और मात्सर्य को जीता है, और जो शुद्ध टिक की तरह निर्मल बना है, वह ब्राह्मण है। ऐसी भूति संसार में कहीं पर भी रहे, वह पूजनीय है वन्दनीय । जैसे ब्राह्मण एक पद है, वैसे ही शूद्र गाली है। जो सक है, चोर है, व्यभिचारी है, झूठ है, शराबी है, वह द्र है। जन्म से न कोई ब्राह्मण होता है और न जन्म कोई शूद्र होता है। कर्म से ही मनुष्य ब्राह्मण या शूद्र ता है। मुट्ठी भर ब्राह्मण जो अपने को सनातनी कहते , भले ही भगवान् बुद्ध को महापुरुष न मानें, परन्तु से विश्वास है कि ब्राह्मणों में भी बहुत से ऐसे सज्जन कलेंगे जो बुद्ध को महापुरुष मानते हैं। ऐसे लोगों से ी नम्र प्रार्थना है कि केवल 'हम बुद्ध को एक महापुरुष नते हैं'—ऐसा कहने से काम नहीं चलेगा। जब क वृत्ति के लोग संसार में हिंसा का प्रचार करते हैं, मको भी चाहिये कि अहिंसा के स्पष्ट प्रतीक को ही ने सामने आदर्श रखें और इसी कारण हमें स्पष्ट कर होगा कि भगवान् बुद्ध ही हमारे सच्चे मार्ग-दर्शक हैं। और इसका हमें प्रचार तथा प्रसार करना पड़ेगा, इस भावना से प्रेरित होकर मैंने संकल्प किया कि नागपुर में बुद्ध के प्रचार के लिये एक संस्था होनी चाहिये, जो केवल बुद्ध का ही प्रचार करेगी। यहाँ हमें यह समझ लेना चाहिये कि बुद्ध का प्रचार, किसी व्यक्ति का प्रचार नहीं है। बुद्ध तो एक पद है। बुद्ध का तात्पर्य है 'सम्पूर्ण ज्ञानी-पुरुष, ज्ञानमय-पुरुष या ज्ञान रूप'।

इस उद्देश से मैंने ७ अप्रैल १९४४ को श्रीयुत बाबूदेव रामचन्द्र पूर्णिक—जो उस समय नागपुर हाईकोर्ट में जज थे और जो आज यूनियन पब्लिक सर्विस कमीशन के सदस्य हैं—की अध्यक्षता में नागपुर में 'बुद्ध सोसाइटी नागपुर' नाम की संस्था स्थापित की, जिसका मैं मन्त्री हूँ। यह हम अभिमान के साथ कहते हैं कि हमारी संस्था अच्छा काम करने लगी। हर साल हम भगवान् बुद्ध की जयन्ती मनाने लगे। १९४५ के बुद्ध जयन्ती में करीब बीस हजार लोग जयन्ती के उत्सव में शरीक हुए थे। उत्सव के पश्चात् लोग जब अपने-अपने घर वापस जाने लगे तो कई एक दूसरे से ऐसा पूछते थे कि यह बुद्ध कौन हैं, जिसकी जयन्ती आज मनाई गई है ? मैंने सोचा कि बुद्ध के बारे में हमारे समाज में इतना अज्ञान क्यों ? जिस बुद्ध ने समस्त विश्व को आलोकित किया, वह पुरुषोत्तम बुद्ध हमारे घर में ही क्यों अज्ञात हैं। इस अज्ञान को अपने समाज पर कलंक समझ मैंने उसको मिटाने का निश्चय किया और इसी कारण १९४६ के अन्त से मैंने वकालत करनी भी छोड़ दी। 'एक म्यान में एक ही तलवार' इस न्याय से मैंने सद्धर्म-प्रचार को ही अपना उद्देश्य बनाया और उसके लिये कटिबद्ध हो गया। ऐसा समझना अनुचित न होगा कि अब मैंने मनुष्य की वकालत छोड़ भगवान् बुद्ध की वकालत शुरू की। और तब से मैं तन, मन और धन से भगवान् बुद्ध की वकालत कर रहा हूँ। और मुझे पूर्ण विश्वास है कि थोड़े ही दिनों में भारत भगवान् बुद्ध को अपनायेगा और इस पवित्र कार्य में मेरी समस्त राष्ट्र-प्रेमी, मानवता-प्रेमी, धर्म-प्रेमी तथा न्याय-प्रेमी सज्जनों से प्रार्थना है कि भारत का कल्याण कैसे हो सकता है, इस प्रश्न का वे निरपेक्ष बुद्धि से विचार करें। ऐसा विचार करने पर उन्हें पता लगेगा कि भगवान् बुद्ध भारत

के सबसे महान्, सबसे अधिक बुद्धिमान् और सबसे उत्तम पुरुष हैं और इसी कारण बुद्ध ही हमारे सच्चे मार्ग-दर्शक हैं।

भगवान् बुद्ध से हमें दो ठोस लाभ होते हैं। हमारे समाज में जो जातीयता और अस्पृश्यता जैसे बुरे रोग हैं, उनपर 'भगवान् बुद्ध' एक रामबाण औषधि हैं। इस रोग के नष्ट होने पर हमारा समाज बलवान् तथा संगठित होता है। अगर हम इस रोग को नहीं मिटायेंगे तो यही हमको मिटायेगा, इस बात को हमें नहीं भूलना चाहिये। आज हमें स्वाधीनता तो प्राप्त हुई है। परन्तु उसकी रक्षा करना ही हमारा प्रथम कर्त्तव्य है। और इसी कारण हमारे नेताओं ने भगवान् बुद्ध का धर्मचक्र अपने राष्ट्रध्वज के मध्य में ग्रहणकर भगवान् बुद्ध का गौरव किया है। दूसरा लाभ यह है कि बुद्ध भारत को संसार में बहुत ऊँचा स्थान देते हैं। जैसे हिन्दुओं में ऐसी परम्परा है कि अगर कोई हिन्दू मरणासन्न हो तो उसे सद्गति प्राप्त होने के इरादे से उसके मुख में हम तुलसीजल या गंगाजल डालते हैं। वैसे ही बौद्ध लोगों में ऐसी परम्परा है कि अगर कोई बौद्ध मरणासन्न हो तो उसे सद्गति प्राप्त होने के उद्देश से उसके मुख में भारत की पवित्र मिट्टी डाली जाती हैं। बौद्ध धर्म-ग्रन्थों में लिखा है कि संसार में धर्म, सत्य, न्याय तथा नीति का उपदेश सदा भारत में ही होता है। इस भावना से प्रेरित होकर बौद्ध लोग भारत में यात्रा के लिये आते हैं। और जहाँ भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ, जहाँ उनको ज्ञान प्राप्त हुआ, जहाँ उन्होंने प्रथम धर्मोपदेश दिया और जहाँ उनका परिनिर्वाण हुआ इन स्थानों का दर्शन करते हैं और लौटते समय इन स्थानों की पवित्र मिट्टी अपने साथ मरणासन्न बौद्धों के मुख में डालने के लिये ले जाते हैं। अब हमें विचार करना चाहिये कि हमारी मिट्टी को इतनी पवित्रता किसने दी। अगर बुद्ध के समान नररत्न भारत में पैदा न होता, तो भारत की मिट्टी में इतनी कीमत न आती। अतः जिस बुद्ध ने भारत को संसार में इतना ऊँचा स्थान प्राप्त करा दिया है, उस नर-श्रेष्ठ बुद्ध को हम कैसे भूल सकते हैं? उनके प्रति हम कैसे कृतघ्न हो सकते हैं? भगवान् बुद्ध के बिना भारत एक अनाथ बालक है- यह बिल्कुल निर्विवाद सत्य है। क्योंकि भगवान् बुद्ध के प्रभाव से ही चीन, जापान, बर्मा, स्याम, तिब्बत मंगोलिया, कोरिया, सीलोन आदि देश हमारे मित्र बने हैं। इससे ज्यादा लाभ हमारा क्या हो सकता है? अतः यह स्पष्ट है कि भगवान् बुद्ध को अपनाने में ही भारत का कल्याण है।

थाइलैण्ड में बौद्ध धर्म

श्री शान्तज्ञान

इतिहासकारों ने यह स्वीकार किया है कि बौद्ध-धर्म ईसा से ५०० वर्ष पूर्व थाइलैण्ड में प्रचारित किया गया था। स्वर्ण-भूमि के लिए जो मंडल प्रचार-कार्य के लिए गया था, उसके नेता शोण और उत्तर थेर थे। इन्हें भारत के महान् सम्राट अशोक की संरक्षता प्राप्त थी। जिसे लंका, बर्मा, थाइलैण्ड, कम्बोडिया की बौद्ध जनता अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखती है। थाइलैण्ड के निवासी शांतिप्रिय तथा स्वतन्त्रता के उपासक हैं। अतः उन्होंने भगवान् बुद्ध के उपदेशों को भली भांति ग्रहण किया। यहां के राजाओं तथा बड़े बड़े सरदारों के सहयोग से इस देश में यह धर्म अत्यन्त उन्नति के शिखर पर पहुँचा। फलतः करीब दो करोड़ जनता आज बौद्ध है।

इस दीर्घ काल में यह धर्म पल्लवित होता रहा, किंतु एक बार इसे ईसाई धर्म के समक्ष दबाने का प्रयत्न किया गया। यह घटना बुद्धाब्द २२२८ में हुई। जब कि राजा नाराइय राज्य करते थे। उस समय हालैंड, पुर्तगाल, फ्रांस से राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित हो गया था। फ्रांस के राजा लुई चौदहवें ने राजा नाराइय के दरबार में राजदूत, पादरी और कारीगरों को भेजा था। फ्रांस यह चाहता था कि वह राजा नाराइय का धर्म-परिवर्तन करके देश पर

स्थापित कर ले । यह योजना असफल हुई । देश विप्लव हुआ और ऐसे अधिकारियों को निकाल कर किया गया, जो इस योजना, कैथोलिक पादरियों और के समर्थक थे । एक दूसरा अवसर बुद्धाब्द २३२४में । जब कि बौद्धधर्म पर पुनः कुठाराघात हुआ । इस बर्मा के राजा मंगराय ने इस देश पर आक्रमण किया । देश की राजधानी अयोध्या के पतन पर अधिकांश कागज-पत्र तथा नगर के साथ ही जला दिये गये । अग्नि कई दिन तक प्रज्वलित था ।

थाइलैण्ड में धर्म पर किसी प्रकार का दबाव नहीं गया । प्रत्येक व्यक्ति को धर्म की पूर्ण स्वतन्त्रता । यह नीति प्राचीन काल से अब तक चली आ रही है । विहार के निकट गिरिजा घर मसजिद बिना किसी के हो सकते हैं । इस देश में बौद्धों के समान यों और मुसलमानों के भी अधिकार हैं । लंका और लैण्ड में धार्मिक सम्बन्ध बहुत दिनों से चला आ रहा । लंका के भिक्षु इस देश में आये और कभी दक्षिणो की राजधानी नगर धम्मराज में चैत्य बनवाये । लंका के भिक्षुओं का राजा सुखोवथाई बहुत सत्कार थे। यहां एक लंका-वंश नामक निकाय भी चला २२९६ कि लंका में बौद्धधर्म की दशा शोचनीय थी, तो लंका ने संघ का संस्कार करने का विचार किया और निमित्त अपने एक विशेष दूत को अयोध्या के राजा भेजा । उनसे अनुरोध किया कि आप मेरे देश में का पुनरुद्धार करें । अयोध्या के राजा धम्मराज ने के नेतृत्व में भिक्षुओं का एक मंडल लंका भेजा । मंडल कुछ वर्ष तक लंका में ठहरा । उपाली के प्रयत्न उपाली-वंश या स्याम-निकाय का प्रादुर्भाव हुआ, भी वर्तमान् है । एक तंत्र राज्य व्यवस्था होने के राजा जनता का प्रभु था, और धर्म का संचालन महा- की एक समिति करती थी, जिसका प्रमुख नेता 'संघ- होता था इसकी नियुक्ति राजा करते थे । यह पद्धति चूलालंकार तक चली । इस समय संघ-व्यवस्था के एक कानून बना है । किन्तु सिद्धान्तों में कोई परि- नहीं हुआ है । बुद्धाब्द २४८४ में एक नया संघ- संसद द्वारा बनाया गया । जिसके अनुसार संघ का संचालन-कार्य तीन संस्थाओं को दिया गया । गौण संघ मंत्री, संघ सभा और विनयधर गण- संघ मंत्री का प्रथम कार्य शिक्षा है । धर्म की शिक्षा तीन भागों में दी जाती है । प्रथम, द्वितीय और तृतीय । पालि की शिक्षा बहुत बढ़ी हुई है । इस प्रकार के शिक्षा देने वाले स्कूलों की संख्या बढ़ रही है । साधनों से युक्त नये आधुनिक इमारतें बनाई जा रही हैं । दो हाई स्कूलों में जहाँ विश्वविद्यालयों का सा पाठ्य-क्रम है, भिक्षु लोग प्रवेश पा सकते हैं । थाइलैंड के बौद्ध धर्म-विश्वविद्यालय योजना के ये स्कूल बीज हैं । इन आँकड़ों को देखने से उन्नति का पता चलेगा । ये हाल के सरकारी रिपोर्ट से लिए गए हैं । मठों की संख्या १९,१५०, भिक्षु १,६१,९८९, श्रामणेर ६८,२७१, धम्म-शिक्षा में स्नातक २,७५,६७९, पालि स्नातक ७,७०६ ।

राज्य-धर्म (बौद्ध धर्म) होने के नाते सरकार की नीति पर इसका प्रभाव पड़ता है । नियमों को बनाते समय धर्म के सिद्धांतों पर ध्यान दिया जाता है । बौद्ध धर्म के मूल सिद्धांत का अभेद और सहिष्णुता ही आधार है । सरकारी दफ्तर उपोसथ के दिन अपना कार्य बन्द कर देते हैं । यह चन्द्र मास के अनुसार आठ व पन्द्रह को पड़ता है । देश के सभी स्कूलों में पूजा होती है । हाई स्कूलों और विश्वविद्यालयों में धर्म की शिक्षा दी जाती है । प्रति सप्ताह बौद्ध धर्म पर रेडियो द्वारा ब्राडकास्ट होते हैं और तीन महीने तक तो नित्य होते हैं । सरकार की ओर से बौद्ध उत्सवों को प्रधानता दी जाती है । देश के जीवन में बौद्ध धर्म का प्रमुख स्थान है । हर एक आदमी को कुछ समय के लिये समयानुसार भिक्षु बनना पड़ता है । मठों में नौजवान और बूढ़े सभायें करते हैं । त्योहारों तथा राष्ट्रीय पर्वों पर भिक्षुओं को दान दिया जाता है । यह देखकर प्रसन्नता होती है कि काषाय वस्त्र पहने हुये भिक्षु लोग भिक्षा के लिये जाते हैं और जनता उन्हें भिक्षा प्रदान करती है ।

इस समय पहले की अपेक्षा लोग अधिक धर्मप्रिय हैं । बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ संस्थायें बनाई गई हैं । भिक्षुओं को शासन के आधुनिक तरीकों की शिक्षा देने के लिए एक संस्था खोली गई है । जिसे सरकार से सहायता मिलती है । संघ के अधिकारियों के आदेश से इसका परिणाम यह देखने में आता है कि देश की सामाजिक स्थिति ऊँची हो

गई है और शासन-कार्य सुचारु रूप से चलता है। यह विश्वास किया जाता है कि देश की उन्नति के साथ ही साथ थाइलैंड, दक्षिणी-पूर्वी एशिया में बौद्ध धर्म के शत्रुओं के विरुद्ध एक सुदृढ़ मोर्चा स्थापित करेगा।

कबीर ने बौद्ध धर्म से लिया था !

श्री गोविन्द शरण त्रिगुणायत, एम. ए.

बौद्ध धर्म विश्व का एक प्रशस्त धर्म है। किसी समय सारे संसार पर उसका प्रभुत्व था। विश्व के समस्त महान् धर्म उसके आगे नतमस्तक थे। उसके दिव्यालोक के सामने विश्व का प्राचीनतम वैदिक धर्म भी मलिन पड़ चला था। देश भर में उसी का प्रचार और प्रसार था। इस बौद्ध धर्म का भारतीय जीवन और विचारधारा पर व्यापक एवं अक्षुण्ण प्रभाव पड़ा है। स्वयं उसके प्रतिद्वन्द्वी ब्राह्मण धर्म के अनुयायी भी उसके प्रभाव से अछूते नहीं बचे। यदि कबीर ऐसे सारग्राही महात्मा पर भी उसका कुछ प्रभाव पड़ा हो, तो आश्चर्य ही क्या है।

यह निर्विवाद है कि ईसा से लगभग ४'१० ई० पूर्व तक वैदिक ब्राह्मण धर्म का पूर्ण विकास हो चुका था, उसके कर्म, उपासना और ज्ञान इन तीनों काण्डों पर अनेकानेक ग्रन्थों की रचना हो चुकी थी। ब्राह्मण धर्म के विकास के साथ-साथ ब्राह्मणों का भी प्रभुत्व पूर्णरूप से स्थापित हो गया। एक ओर तो यज्ञ-यज्ञादि के विधान से समाज में हिंसा आदि कुछ दानवी वृत्तियाँ अट्टहास करने लगीं, दूसरी ओर ब्राह्मणों में ब्रह्मवाद के मिथ्या प्रवाह के फलस्वरूप अहमन्यता बढ़ चली। धर्म को इस प्रकार विकृत एवं जाति-विशेष की वस्तु बनते देख कुछ विचारशील विद्वानों में उसके प्रति प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो गई। इसी प्रतिक्रिया की भावना के फलस्वरूप भारत में बौद्ध धर्म का जन्म हुआ।

बौद्ध धर्म का उदयकाल निश्चित करने के लिए हमें भगवान् बुद्ध के समय पर विचार करना पड़ेगा। अनुमान यह है कि बौद्ध धर्म भगवान् बुद्ध के निर्वाण काल तक अवश्य प्रचलित हो गया होगा। भगवान् बुद्ध के निर्वाण-काल के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। मैक्समूलर ने उनका समय ४७३ ई० पूर्व माना है। परन्तु डा० गायकवाड़ ने अनेक तर्क वितर्कों के पश्चात् उनका निर्वाण-काल लगभग ४८३ ई० पूर्व निश्चित किया है। जो भी हो यह स्पष्ट रूप से अनुमान किया जा सकता है कि बौद्ध धर्म का प्रचार ई० से ४५० शताब्दी पूर्व आरम्भ हो गया। उत्थान-पतन की अनेक कलाबाजियाँ खाता हुआ यह बौद्ध धर्म महाराज अशोक के समय में अपने विकास की पराकाष्ठा पर पहुँच गया। इसी समय भारत के इस धर्म-विशेष ने विश्व-धर्म बनने का सौभाग्य प्राप्त किया था। अतः स्पष्ट है कि लगभग २५० ई० पूर्व तक बौद्ध धर्म अपने विकास की पराकाष्ठा को प्राप्त कर चुका था।

बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास जटिल होते हुए भी मनोरञ्जक है। यहाँ पर मेरा लक्ष्य उसके इतिहास का वर्णन करना नहीं है। मैं केवल इतना कहना चाहता हूँ कि बौद्ध धर्म में समय-समय पर घोर परिवर्तन होते रहे हैं। इन परिवर्तनों के फलस्वरूप ही उसमें अनेक शाखाएँ-प्रशाखाएँ निकल पड़ीं। परिणाम यह हुआ कि उसके भौतिक सिद्धान्तों को अक्षुण्ण बनाए रखना कठिन हो गया।

बौद्ध धर्म का अपना एक विस्तृत साहित्य है जिसमें इस धर्म की सभी शाखाओं के सभी अंगों का विस्तृत विवेचन किया गया है। यहाँ पर उनका विवरण देना कठिन ही नहीं, अनावश्यक भी है। मैं केवल उन्हीं

मौलिक सिद्धान्तों और तत्त्वों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न होगा जिनसे महात्मा कबीर प्रभावित हुए थे।

बौद्धधर्म की दो प्रधान शाखायें हैं—महायान और हीनयान। महायान धर्म के प्रधान पुरस्कर्ता और प्रतिपादक नागार्जुन माने जाते हैं। ये नागार्जुन दक्षिण के निवासी थे और अब भी उनका स्थान मद्रास प्रान्त के गुन्टूर जिलान्तर्गत नागार्जुनी कोण्डा बतलाया जाता है। उस समय दक्षिण भारत में आन्ध्र राजाओं का आधिकार था। इन आन्ध्र राजाओं का समय ईसा की प्रथम शताब्दी से लेकर चौथी शताब्दी तक निश्चित किया गया है। इन राजाओं ने अपनी नवीन राजधानी धान्यकटक स्थापित की थी। नागार्जुन बहुत काल तक इसी धान्यकटक में रहते रहे थे। ये सभी आन्ध्र नरेश अधिकतर बौद्ध मतावलम्बी थे। सम्भवतः उन्हीं की प्रेरणा पाकर नागार्जुन ने अपने नवीन मत का प्रचार किया होगा।

जिस समय दक्षिण में इस प्रकार महायान का प्रचार प्रसार हो रहा था उसी समय उत्तर भारत में हीनयान अपनी हीनावस्था के दिन काट रहा था। क्योंकि १५० ई० से लेकर लगभग गुप्तकाल तक सभी राजा शैव या वैष्णव मतावलम्बी थे। उनके शासन-काल में बौद्ध धर्म के संस्कृत स्वरूप का समुचित विकास न हो सका। महायान धर्म वीं शताब्दी के लगभग दक्षिण भारत तक ही सीमित था। ७वीं शताब्दी में इसका प्रवेश उत्तर भारत में भी होने लगा था।

नागार्जुन ने सम्भवतः श्रीपर्वत पर भी अपने पंथ का केन्द्र स्थापित किया था। संस्कृत साहित्य में इस श्रीपर्वत के समीपवर्ती प्रांत में महायान के पांच उन सम्प्रदायों के भग्नावशेष अब उन समुदायों की देवी-देवताओं की जीर्ण-शीर्ण मूर्तियों के रूप में पाए जाते हैं। इससे यह पता चलता है कि महायान मत के अनेक प्रभेदों का प्रचार देश में हो चला था। अनुमान यह है कि महायान के इन विभिन्न प्रभेदों ने अपने प्रचार और प्रसार हेतु लोक में प्रचलित बहुत सी विकृत धर्म पद्धतियों से अपना सामञ्जस्य स्थापित किया होगा। सम्भवतः के फलस्वरूप छठीं व सातवीं शताब्दी में समस्त उत्तरी और पूर्वी भारत महायान मत के इन्हीं विकृत धर्म पद्धतियों से आक्रान्त हो चला था। ८४ सिद्ध और नौ नाथ बहुत कुछ ऐसी ही धर्म-पद्धतियों से प्रभावित थे। यहाँ यह नहीं भूलना चाहिए कि महायान मत अपने मूल रूप में अत्यन्त उच्च एवं सात्विक था।

कबीर का अध्ययन करने के पश्चात् यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि यदि वे नाथपंथी और वज्रयानी सिद्धों से प्रभावित हुए थे, तो प्राचीन बौद्ध पद्धतियों का भी प्रभाव उनपर कम न था। सत्यान्वेषी कबीर ने बौद्ध-धर्म के प्रधान पण्डितों से उसके मौलिक सिद्धान्तों का ज्ञान अवश्य प्राप्त किया होगा।

बौद्धों की बुद्धिवादिता कबीर की विचार-धारा में प्राण-रूप से विद्यमान है। उनका प्रत्येक शब्द प्रत्यक्ष अनुभव पर अवलम्बित है। उनकी प्रत्येक धारणा तर्क-संगत है। अन्धानुसरण से उन्हें विशेष घृणा थी। वे स्पष्ट कहते हैं:—

'ज्ञानी सोई जो आप विचारे'।

कबीर की सारी सुधार-भावना उनकी बुद्धिवादिता पर टिकी हुई है। वे किसी बात को सत्य इसलिए नहीं कहते कि प्राचीन ग्रन्थों में उन्हें सत्य कहा गया है। वह प्रत्यक्ष अनुभव में ही विश्वास करते हैं:—

'मैं कहता हूँ आखिन देखी
तू कहता कागज की लेखी'।

कहीं-कहीं पर तो उनकी बुद्धिवादिता अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई है, ऐसे ही स्थलों पर कबीर क्रान्ति-दर्शी महात्मा के रूप में दिखाई पड़ते हैं। यहाँ तक कि वे मुल्ला और पण्डित दोनों के विरोधी बन जाते हैं:—

'पण्डित मुल्ला जो कह दिया
हम छाँड़ि चले और कछु न लिया।'

उनकी यह बुद्धिवादिता दृढ़ विश्वास पर टिकी हुई है। उनका यह दृढ़ विश्वास उनकी उक्तियों में आत्म-विश्वास के रूप में व्यक्त हुआ है। उनकी ऐसी ही आत्म-विश्वास भरी उक्तियों को पकड़ कर कुछ आलोचकों ने उन पर आत्माभिमान का दोषारोपण किया है। वास्तव में उस दिव्य महात्मा में वैयक्तिक-विरोध और आत्माभिमान लेश-मात्र भी न था। उन्होंने समाज के अन्धानुगामी ठेकेदारों का विरोध विश्व-कल्याण भावना से ही प्रेरित होकर किया है, किसी भेद-भाव से नहीं।

भारतीय बुद्ध-शासन के प्रत्यावर्त्तक

भदन्त महावीर

भिक्षु धर्मरक्षित

भारतीय बुद्ध-शासन के दीर्घकालीन इतिहास की अमर कहानियों का न केवल भारत ही, प्रत्युत सारे एशिया महाद्वीप के जीवन, राजनीति, संस्कृति, धर्म, कला, पुरातत्व-आदि के साथ एक अमिट और अद्भुत सामञ्जस्य है। भगवान् बुद्ध पद-चारिका के रूप में यद्यपि पश्चिम में मथुरा और कुरु-राष्ट्र की राजधानी थुल्लकोट्ठित से आगे नहीं बढ़े थे, पूरब में कजङ्गला निगम के सुखेलुवन और पूर्व-दक्षिण में सललवती नदी के तीर को नहीं पार किये थे, दक्षिण में सुंसुमारगिरि आदि विन्ध्याचल के आसपास के निगमों तक ही गये थे तथा उत्तर में हिमालय की तलहटी के सापुग निगम और उसीरध्वज पर्वत से ऊपर जाते हुए नहीं दिखाई दिये थे, किन्तु उन्हीं के समय में उनके शिष्यों ने सूनापरान्त प्रदेश के अम्बहट्ठ पर्वत पर रहते हुए वाणिज्य ग्राम (सम्भवतः बम्बई), समुद्रगिरि, मातुलगिरि, मकुलकाराम आदि में बुद्ध-शासन का काफी प्रचार किया था। अट्ठकथाचार्य का तो यह भी कहना है कि तथागत भी अपने पाँच सौ ऋद्धिमान भिक्षुओं के साथ वहाँ ऋद्धिबल से गये थे। उन्होंने मार्ग में सत्यवद्ध-पर्वत-वासी एक परिव्राजक को भिक्षु-संघ में दीक्षा भी दी थी, जिसने बाद में उस प्रदेश में बुद्ध-शासन का पर्याप्त प्रचार किया था। कहते हैं भगवान् बुद्ध ने नर्मदा नदी के किनारे तथा सत्यबद्ध पर्वत की चोटी पर अपने पद-चिह्न भी अंकित कर दिये थे। तक्षशिला का राजा पुक्कुसाति भी तथागत के पास आकर प्रव्रजित हुआ था। ग्वालियर, उज्जैन आदि प्रदेशों में महाकात्यायन ने बौद्ध धर्म का प्रचार किया था। वे उज्जैन के राजपुरोहित के पुत्र थे। उत्कल (उड़ीसा) प्रदेश भी बुद्धशासन से अछूता न था। कुक्कुटवती (वर्तमान् क्वेटा) का राजा कप्पिन और उसकी स्त्री एक सौ बीस योजन चलकर श्रावस्ती में भगवान् बुद्ध का दर्शन किये और प्रव्रजित हुए थे। लंका-वासियों का कहना है कि तथागत ऋद्धिबल से तीन बार लंका गये थे। नेपाल का स्वयम्भू पुराण तथागत के वहाँ पहुँचने का अनेक प्रमाण उपस्थित करता है। बर्मावासियों का कहना है कि तपस्सु और भल्लिक बुद्धगया में सर्वप्रथम तथागत को भोजन कराये थे और शिष्यत्व ग्रहण कर प्रसाद रूप में उनके केश माँगकर बर्मा ले गये थे, जो सम्प्रति वहाँ के प्रसिद्ध चैत्य श्वेडगों पैगोडा में सुरक्षित है। यवन-राष्ट्र के बौद्धों का विश्वास था कि वर्तमान् इस्लाम के धार्मिक केन्द्र मक्का के काबा शरीफ का पद-चिह्न तथागत का ही है (यं तत्थ योनकपुरे मुनिनो च पादं), उस समय इस्लाम धर्म का तो जन्म भी नहीं हुआ था। ऐसे ही स्याम देशवासियों का कहना है कि सत्यबद्ध पर्वत उनके यहाँ है और नर्मदा नदी बर्मा की इरावती नदी है। जो कुछ भी हो, इतना तो स्पष्ट है कि बुद्ध-काल में बुद्ध-शासन ने भारत की सीमाओं को पार नहीं किया था।

अशोक-काल में वह लंका, बर्मा, स्याम, कम्बोज (कम्बोडिया), गन्धार, नेपाल के साथ हिमालय प्रदेश के दक्षिणी पाँचों राष्ट्र, कश्मीर, सीरिया, मिस्र, मकदूनिया और एपीरस तक पहुँच गया। धीरे-धीरे कालान्तर में बुद्ध-शासन का प्रसार चीन, तिब्बत, जापान, फारमूसा, बाली, मैक्सिको, कोरिया, जावा, सुमात्रा, मंगोलिया और साइबेरिया के विस्तृत प्रदेश तक हो गया। काबुल से होता हुआ यारकन्द, बलख, बुखारा, कूचा तथा अन्य समीपवर्ती स्थानों एवं प्रदेशों में व्याप्त हो गया। किन्तु परिवर्तनशील संसार के नियमों का व्यतिक्रमण उसके लिए सम्भव न था। समय ने धीरे-धीरे जो उसे एक ओर बढ़ाया, तो दूसरी ओर से समेटना प्रारम्भ किया। एशिया, यूरोप, अफ्रिका और अमेरिका में

प्त बुद्ध-शासन ने अपनी जन्म-भूमि भारत से अपना त्व हटा लिया। यद्यपि आज विश्व में दो तिहाई द्धों की ही जनसंख्या है तथापि उनके धर्म की जन्म-मि आज उनसे ही शून्य-सी है !

इस समय भारत में जो बौद्ध निवास करते हैं, नकी संख्या तीन लाख से अधिक नहीं है। इनमें भी गाल, आसाम, उत्तर-प्रदेश, मद्रास, बम्बई और अण्ड-न तथा नीकोबार के प्रदेशों में ही बौद्धों की संख्या धिक है, किन्तु यह भी संख्या केवल बौद्ध-गृहस्थों की । बौद्ध-भिक्षु—जो बुद्ध-शासन के संरक्षक, नेता एवं रक होते हैं, उनकी संख्या अत्यल्प है। यदि बंगाल शवासी और बर्मी, चीनी, सिंहली, तिब्बती, नेपाली, मेरिकी तथा अन्य बाह्यदेशवासी भिक्षुओं को छोड़कर ना की जाय, तो सारे भारतवर्ष में आठ से अधिक क्षु नहीं हैं। किन्तु अब यह देखने में आ रहा है कि न-दिन बौद्ध-गृहस्थों की संख्या बढ़ती जा रही है और रतीय शिक्षित नवयुवकों में प्रव्रज्या की कामना भी ल होती जा रही है। यह सब उन्हीं दिवंगत भदन्त वीर की देन है, जिन्होंने कि सन् १८५७ के भारतीय तंत्र्य-संग्राम के वीर सेनानी बाबू कुँवरसिंह के कन्धों कन्धा भिड़ाकर अँग्रेजों के साथ युद्ध किया था। उनसे ले भारत में एक भी बौद्ध भिक्षु न था और न तो रतवासी बौद्ध धर्म की ओर ही आकर्षित हुए थे। रे बौद्ध गृहस्थ अपने मार्ग-प्रदर्शक भिक्षुओं के अभाव अपने सारे धार्मिक-अनुष्ठानों के प्रति उदासीन-से हो ये थे।

भदन्त महावीर का जन्म सन् १८३३ ई० में विहार न्त के भभुआ स्टेशन से तीन मील की दूरी पर स्थित पुर नामक गाँव में हुआ था। उनके बचपन का नाम सा कि 'महावीर सिंह' था, वैसे ही वे शारीरिक शक्ति सम्पन्न थे। एक हट्टे-कट्टे पहलवान .और प्रसिद्धि-प्राप्त लाड़ी थे। वे लाठी, गतका, तलवार, भाला, बर्छी दि चलाने में बड़े ही निपुण थे। उनका नाम सुनकर सपास के चोर और डाकू थर-थर काँपते। क्या मजाल उनके रहते हुए गाँव में डाका पड़ जाय या चोरी हो ! उन्होंने कई बार अनेक डाकुओं को छट्ठी का दूध याद करा दिया था। कहते हैं उन्होंने एक बार एक चीते को भी मार गिराया था।

वे अपनी पच्चीस वर्ष की नव-तरुणाई में ही अँग्रेजों को अपनी वीरता के अद्‌भुत चमत्कार दिखाये थे। अँग्रेजों के साथ लड़ते हुए बाबू कुँवरसिंह के वीरगति को प्राप्त हो जाने के बाद जब उनके छोटे भाई अमरसिंह कहीं भाग गये, तब महावीर सिंह ने देखा कि अब अकेले काम नहीं चलेगा, 'अकेला चना क्या भाड़ फोड़ेगा ?' वे अपने पहलवान साथियों के साथ दक्षिण की ओर बढ़े और इन्दौर होते हुए मद्रास पहुँचे। मद्रास में पहलवानों का एक दंगल हुआ, जिसमें महावीर सिंह को एक हजार रुपये पारितोषिक मिले। वे वहाँ से लंका की ओर बढ़े। वहाँ पहुँचकर वे अपने एक परिचित भारतीय व्यापारी के यहाँ गये, जिसने महावीर सिंह का बड़ा आदर सत्कार किया और अपने यहाँ सदा रहने के लिए प्रार्थना भी।

महावीर सिंह लंका में रहते समय प्रायः बौद्ध-विहारों में जाया करते थे। धीरे-धीरे बौद्ध शिष्टाचार एवं धर्म की ओर उनका झुकाव होने लगा। वे भिक्षु लोगों के निर्मल चरित्र और सेवाभाव के उत्कृष्ट कार्यों से प्रभावित होकर वहाँ के इन्द्रासभ महास्थविर के पास जाकर प्रव्रजित हो गये। उनकी पूर्व की सारी धारणायें बदल गईं। वे अब महावीर सिंह के स्थान पर "श्रामणेर महावीर" बन गये। उन्हें अपने इस जीवन में पर्याप्त सुख और शान्ति की अनुभूति होने लगी। लंका का भिक्षु-जीवन उन्हें एक अद्‌भुत एकाग्रता और संयम के साम्राज्य की प्राप्ति-सा जान पड़ने लगा। उन दिनों उन्हें लंका के श्रद्धालु दायकों ने चीवर, पिण्डपात (भोजन), ग्लान-प्रत्यय (रोगी का पथ्य) एवं शयनासन के साथ नारियल के बगीचों से भी पूजित तथा सम्मानित किया। वे निस्पृह महात्मा, जो अब रुपया-पैसा भी हाथ से छूना त्याग दिये थे, भला क्योंकर सांसारिक वस्तुओं में लिप्सा करते ? जो-जो वस्तुयें उन्हें दान में प्राप्त होती थीं, उन्हें वे भिक्षु संघ को सौंप दिया करते थे।

वे कुछ दिनों तक लंका में रहकर अपने गुरु इन्द्रासभ महास्थविर और कोलम्बो के विद्योदय परिवेण के प्रधानाचार्य एवं संघनायक हिक्कडुवे श्री सुमङ्गल महास्थविर

से परिचयात्मक पत्र लेकर पाण्डेचेरी तथा कलकत्ता होते हुए सन् १८८४ में रंगून पहुँचे और उसी वर्ष वहाँ उनकी उपसम्पदा हुई। उन दिनों थीब-नरेश के पकड़े जाने के कारण बर्मा में पूर्ण अशान्ति थी। अतः भदन्त महावीर को शीघ्र ही भारत लौट आना पड़ा। वे जब कलकत्ता पहुँचे, तब उन्हें बौद्ध तीर्थ स्थानों के दर्शन की इच्छा हुई। वे बुद्धगया, राजगृह, नालन्दा के दर्शन करते सारनाथ पहुँचे। उन दिनों सारनाथ में न तो कोई मठ था, न कोई धर्मशाला थी। उन्होंने देखा कि सारनाथ के खँडहरों की ईंटें तक ढोकर बनारस जा रही थीं। इस कार्य ने उनके हृदय में आग लगा दी। उन्होंने गाड़ीवानों को बलपूर्वक रोका और एक कदम भी आगे बढ़ने नहीं दिया। उन्होंने अधिकारियों को बतलाया कि सारनाथ का ध्वंसावशेष बौद्धों का पवित्र तीर्थ-स्थान है। यहीं पर भगवान् बुद्ध ने 'धर्मचक्र-प्रवर्तन' किया था। हम बौद्ध यह नहीं देख सकते कि हमारे 'पुण्य-स्थान' की ईंटें उजाड़ी जाँय और उसके महत्त्व की ओर ध्यान न देकर प्राक्चिह्नों को मिटा दिया जाय। फलतः सारनाथ के खँडहरों की रखवाली के लिए एक आदमी बैठा दिया गया और सारनाथ की ईंटों की रक्षा होने लगी। तब से फिर कोई भी व्यक्ति एक ईंट तक उठाने का साहस न कर सका।

भदन्त महावीर सारनाथ से कुशीनगर गये। उस समय कुशीनगर में थोड़ी बहुत खोदाई हो चुकी थी। परिनिर्वाण मन्दिर की गुप्तकालीन तथागत की विशाल मूर्ति प्राप्त हो चुकी थी। भूमि-स्पर्श-मुद्रा में बैठी हुई भगवान् की मूर्ति एक वृक्ष के नीचे पड़ी हवा-पानी खा रही थी। ऊँचा ध्वंसित स्तूप कुशीनगर के अतीत का गौरव बतलाते हुए खड़ा था। इन सब का दर्शन कर भदन्त महावीर को कुशीनगर में एक भिक्षु-विहार के निर्माण की इच्छा हुई। वे मन की बात मन ही में लिए पुनः कलकत्ता लौट गये, किन्तु पुनः सन् १८९० में वे कुशीनगर चले आये और एक फुस् की झोपड़ी में रहने लगे। धीरे-धीरे आस पास के ग्रामीणों से उनका परिचय हो गया। कसया के कुछ वकील-मुख्तार भी उनके सहायक हो गये। उन्हीं दिनों कलकत्ते के प्रसिद्ध सेठ श्री खेजारी ने उनके दायकत्व-भार को ग्रहण कर हर एक प्रकार से सहायता करनी प्रारम्भ कर दी। श्री खेजारी के ही १५०००) के दान से कुशीनगर का वर्तमान् बौद्ध-विहार सन् १९०२ में बनकर तैयार हुआ, जो इस सदी का प्रथम भारतीय बौद्ध विहार है, जिसके निर्माण का सारा श्रेय भदन्त महावीर और उनके दायक श्री खेजारी को है।

भदन्त महावीर के समय में ही प्रायः कुशीनगर के खँडहरों की खोदाई का काम हुआ। परिनिर्वाण स्तूप उनके सामने ही खोदा गया और उनके सुझाव के अनुसार ही पुनः निर्माण का विचार हुआ। किन्तु पुरातत्व-विभाग से आज्ञा मिलने में बिलम्ब होने के कारण उनके जीवन में वर्तमान् स्तूप का निर्माण न हो सका। फिर भी इसके शोध-एवं निर्माण-कार्य में उनका बहुत बड़ा हाथ था। भूमि-स्पर्श मुद्रा वाली भगवान् की मूर्ति की मरम्मत उन्होंने स्वयं अपने रुपयों से करायी।

कुशीनगर के निकटवर्ती ग्रामीण उन्हें 'मोटे बाबा' कहा करते थे, क्योंकि वे शरीर के मोटे और शक्तिमान जो थे। जिस बोझ को दस-दस बारह-बारह आदमी मिलकर भी नहीं उठा सकते थे, उसे वे अकेले और एक ही हाथ से उठा लिया करते थे! कुशीनगर के वर्तमान् विहार के सामने का बड़ा घण्टा जो पाँच-छः आदमियों के उठाने पर जमीन भी नहीं छोड़ता था, उसे उन्होंने अकेले ही उठाकर लटका दिया था! कहते हैं पास वाले गाँव के एक ब्राह्मण की भैंस ऐसी भयानक थी कि उसे उसके मालिक के अतिरिक्त दूसरा कोई पकड़ नहीं सकता था। ब्राह्मण रात्रि में भैंस को खोल देता था और वह रातभर किसानों के खेत चरकर प्रातः घर लौट आती थी, जो उसे पकड़ने का प्रयत्न करता था, उसे वह सींगों के बल उठाकर पटक देती थी। भदन्त महावीर उस भैंस की चर्चा सुन चुके थे। एक रात अकस्मात् वही भैंस खेतों को चरती हुई विहार के पासवाले खेतों में आकर चरने लगी। वे खेत चरने की आहट पाकर जब विहार से बाहर आये तो उसी भैंस को पाये। भैंस उन्हें देखते ही उनकी ओर दौड़ी, किन्तु उन्होंने सतर्कतापूर्ण उसकी सींगों को पकड़कर नीचे की ओर ऐसा दबाया कि

वहीं हाँफती हुई बैठ गई। उन्होंने रस्सी माँगकर बाँधा और प्रातः उसके मालिक को बुलाकर उपदेश और भैंस को सौंपा। कहते हैं उनके इस काम से भैंस डर गई कि फिर रात में उसने उधर आने का नाम लिया। दिन में भी जब उन्हें वह देख लेती थी, तब इतने जोरों से दूर भागती थी कि चरवाहे उसे भी नहीं सकते थे !

वे प्रव्रजित होने के दिन से लेकर जब तक स्वस्थ रहे, भी कोठरी के भीतर नहीं सोये। रात्रि में उनकी विहार के बरामदे में बिछती थी और दिन में विहार बाहर बरगद के पेड़ के नीचे। लोग सदा उनके दर्शन लिये आया करते थे। वे बरगद के नीचे बैठे हुए आगत क्तियों को धर्मोपदेश दिया करते थे।

भदन्त महावीर पापियों का मुँह भी नहीं देखना ते थे। जिस प्रकार वे स्वयं निर्मल-चरित्र, संयमी तथा थे, वैसे ही लोगों का आदर करना वे जानते थे। के गाँव के एक गृहस्थ ने अपनी विवाहिता बहिन के भूषणों को बेचकर पैसे बना लिया था। इस बात का पता लगा। एक दिन उसी गृहस्थ को खँडहरों में हुए पाकर उन्होंने उसे बुलाया और कहा—"भाग मैं तुझे इन पवित्र खँडहरों में नहीं देखना चाहता। व्यक्ति महपापी है, जो अपनी बहिन तक के आभूषणों को बेच देता है।" उस गृहस्थ पर इन बातों का प्रभाव पड़ा कि वह उनके दोनों पैरों को पकड़कर पर गिर पड़ा और क्षमा माँगा। उसने घर जाकर बहिन के लिए पुनः उन्हीं पैसों से नये आभूषणों बनवा दिया !

भदन्त महावीर ने बुद्ध-शासन के भारत में प्रत्यावर्त्तन के लिए जहाँ विहारों की स्थापना किया, वहाँ भिक्षुओं को बाह्य देशों से बुलाकर भारत में रहने का भी प्रबन्ध किया। भदन्त महावीर ने न केवल कुशीनगर में ही, अपितु सारनाथ में भी बुद्ध-विहार की स्थापना की। सारनाथ के वर्तमान् बर्मी बौद्ध-विहार की प्राचीन धर्मशाला उन्हीं की कृति है। बंगाली भिक्षु कृपाशरण आदि को उन्हीं ने प्रेरित करके लखनऊ आदि स्थानों में बौद्ध विहारों के निर्माण का कार्य कराया था। बुद्धगया-मन्दिर के पुनरुद्धार एवं जीर्णोद्धार के लिए भी उन्होंने कम प्रयत्न नहीं किया था। उनके जीवन का एक-एक दिन महत्वपूर्ण कार्यों एवं घटनाओं की विचित्र श्रृंखला से आबद्ध है। वे जिस परम उद्देश्य को लेकर प्रव्रजित हुए थे, उसमें उन्हें काफी सफलता मिली। भारतीय बुद्ध-शासन के प्रत्यावर्त्तन के निमित्त उन्होंने जो-जो कार्य किये, वे सब उन प्रारम्भिक दिनों के लिए महान् एवं कठिन थे।

ये गत शताब्दी के प्रथम उत्तर भारतीय भिक्षु भदन्त महावीर अपने सारे कर्त्तव्यों एवं बुद्ध-शासन के अपने कार्यों का सम्पादन कर सन् १९१९ ई० के चैत्र मास की पूर्णिमा को परिनिर्वाण-भूमि कुशीनगर में ही सदा के लिए अपनी आँखें मूँद लिए! उनकी चिता उन्हीं के द्वारा परिशोधित भूमि पर बनाई गई और भारत में बुद्ध-शासन के प्रत्यावर्त्तक उन महान्, अमर एवं अमिट बुद्ध-पुत्र के सद्गुणों की परिशुद्ध ज्योति अग्नि-शिखा के साथ मिलकर और भी चमक उठी! तथा उनके भौतिक शरीर को स्पर्श करती हुई वह अग्नि-शिखा यह कहती हुई ऊर्ध्वगामिनी बनी रही—"वे भारतीय बुद्ध-शासन के अमर रत्न थे!"

रोचक कहानी

ताण्डुल-नालिका का मूल्य

(जातक से)

पूर्व समय में काशी राष्ट्र में बनारस नाम का नगर। वहाँ ब्रह्मदत्त राजा राज्य करता था। उस समय सत्व चीजों का मूल्य निर्धारित करने वाले 'अर्घकारक' के पद पर नियुक्त थे। वह हाथी, घोड़े, मणि, सुवर्ण आदि का मूल्य निश्चय करके चीज के मालिक को चीज का उचित मूल्य दिलवाते थे।

लेकिन वह राजा लोभी था। उसने सोचा—यदि यह अर्घ-कारक इस प्रकार मूल्य निश्चित करता रहा तो थोड़े ही समय में मेरे घर का सब धन नष्ट हो जायगा। इसलिये किसी दूसरे आदमी को अर्घ-कारक बनाना चाहिए।

राजा उस समय खिड़की खोलकर राजांगण में झाँक रहा था। उसने एक मूर्ख, गँवार और लोभी आदमी को उधर से जाते देखा, मन में सोचने लगा—यह आदमी दाम लगाने का काम कर सकेगा। उसे बुलवाकर पूछा—"अरे! क्या तू हमारा दाम लगाने का काम कर सकेगा?"

"देव! कर सकता हूँ।"

राजा ने अपने धन की रक्षा करने के लिए उस मूर्ख आदमी को अर्घ-कारक के पद पर स्थापित किया। वह मूर्ख आदमी घोड़े आदि का दाम लगाते समय दाम को घटाकर मन में जैसा आता, वैसा दाम लगाया करता था। उस पद पर प्रतिष्ठित होने के कारण वह जो कुछ भी निश्चित करता, वही चीजों का मूल्य होता था।

उस समय उत्तरापथ का घोड़ों का एक व्यापारी पाँच सौ घोड़े लेकर आया। राजा ने अर्घ-कारक को बुलवाकर घोड़ों का दाम लगवाया। उसने पाँच सौ घोड़ों का दाम एक ताण्डुल-नालिका निश्चित किया। "घोड़ों के व्यापारी को एक ताण्डुल-नालिका दे दो" कहकर राजा ने घोड़ों को अश्वशाला में भेजवा दिया।

व्यापारी सिर पीटकर रोने लगा—"पाँच सौ बढ़िया घोड़े और उनकी कीमत एक नालिका ताण्डुल!" वह पुराने अर्घ-कारक के पास गया। सारा समाचार सुनाकर उसने सलाह पूछी कि अब क्या करना चाहिए?

उसने उत्तर दिया—"उस आदमी को रिश्वत देकर कहो कि "हमारे घोड़ों का मूल्य एक ताण्डुल-नलिका है, यह हमें मालूम हो गया; अब हम यह जानना चाहते हैं कि आप से जो ताण्डुल-नालिका मिली है, उसका क्या मूल्य है? क्या आप राजा के सम्मुख खड़े होकर कह सकेंगे कि एक ताण्डुल-नालिका का क्या मूल्य है? यदि कहे कि 'कह सकता हूँ' तो उसे राजा के पास लेकर जाओ। मैं भी वहाँ आऊँगा।"

घोड़ों के व्यापारी ने 'अच्छा' कहकर बोधिसत्व की सलाह को स्वीकार किया। उसने अर्घ-कारक को रिश्वत देकर वह बात कही। रिश्वत पाकर उसने उत्तर दिया—"हाँ, ताण्डुल-नालिका का मोल कर सकता हूँ।"

'तो राज-कुल चलें' कहकर व्यापारी उसे राजा के पास ले गया। बोधिसत्व तथा दूसरे अमात्य भी वहाँ आये।

राजा को प्रणाम् कर घोड़ों के व्यापारी ने कहा—"देव! यह तो मैंने जाना कि पाँच सौ घोड़ों का मूल्य एक ताण्डुल-नलिका है, अब कृपा कर अर्घ-कारक से पूछें कि एक ताण्डुल-नालिका का क्या मूल्य है।"

राजा भीतर के रहस्य को नहीं जानता था। उसने पूछा—"अरे अर्घ-कारक! पाँच सौ घोड़ों का क्या मूल्य है?"

"देव! एक ताण्डुल-नालिका।"

"और उस ताण्डुल-नालिका का क्या मूल्य है?"

"देव! भीतर-बाहर सारा वाराणसी।"

उस समय सारा वारणसी बारह योजन में फैला था। उसके अन्दर बाहर तीन सौ योजन का देश था। उस मूर्ख ने अन्दर और बाहर, इतने बड़े वाराणसी का मूल्य किया एक ताण्डुल-नालिका।

उसके इस निश्चय को सुनकर अमात्य ताली पीटकर हँसने लगे—"हम आज तक यही समझते थे कि पृथ्वी और राज्य अमूल्य होते हैं, लेकिन आज मालूम हुआ कि इतने बड़े राज्य-सहित वाराणसी का मूल्य एक ताण्डुल-नालिका मात्र है। अहो! मूल्य करने वाले की प्रज्ञा! इतने समय तक यह अर्घ-कारक कहाँ छिपे रहे? हमारा राज्य ही इनके योग्य नहीं है।"

तब राजा ने लज्जित होकर उस मूर्ख को निकाल दिया। बोधिसत्व को ही पुनः अर्घ-कारक का पद दिया।

संसर्ग में रहने वाले को स्नेह उत्पन्न होता है और स्नेह से उत्पन्न होता है यह दुःख। स्नेह के दुष्परिणाम को देखते हुए खड्गविषाण की तरह अकेला विचरे। उलझी हुई बांस की बड़ी झाड़ की तरह गहन वह आसक्ति है, जो पुत्र-स्त्री में लगां है। बाँस के कोंपड़ की तरह बिना लगे बझे खड्गविषाण की तरह अकेला विचरे। —सुत्त निपात

बौद्ध-जगत्

सभीने एक साथ बौद्ध-धर्म अपनाया

गत मास में लंका के निगम्बु प्रदेश के चाय के वों में काम करने वाले सभी तामिल हिन्दुओं ने एक समारोह के साथ बौद्ध धर्म में दीक्षा ग्रहण की। क्षा-ग्रहण-समारोह में अनेक सारगर्भित भाषण और द्ध धर्म के पुनरुत्थान विषयक उपदेश हुए। अब निगम्बु श में कोई भी व्यक्ति अबौद्ध नहीं है। उसी समय क्षिणी लंका के गाल्ल नगर के भी दो मलयालम प्रदेशी हिन्दुओं ने भी बौद्ध धर्म में दीक्षा ग्रहण की।

वृक्ष में बुद्धमूर्ति—गत दिसम्बर मास में उत्तर श के बस्ती जिले के सवईपरसन नामक गाँव के पर स्थित एक वृक्ष के भीतर से भगवान् की एक मूर्ति निकाली गई है। यह मूर्ति पत्थर की गुप्तीन कला का अदर्श है, इसका उद्धार श्री रामचरित्र ाध्याय की सूचना पर बस्ती के जिलाधीश महोदय ने भमरनाथ शुक्ल, श्रीमती दुर्गावती त्रिपाठी, श्री रा पाण्डेय और जिला-पंचायत अफसर के साथ जाकर या। मूर्ति इस समय बस्ती के कला-भवन में रखी है।

भारतीय महाबोधि सभा का वार्षिक अधिशन—गत २२ दिसम्बर को सायंकाल भारतीय महाधि सभा का वार्षिक अधिवेशन सभा के प्रधान केन्द्र राजिक विहार कलकत्ता में हुआ, जिसमें अनेक महत्व- प्रस्ताव स्वीकृत हुये और सभा के नियमों में भी क सुधार हुए। सभा के प्रधान मंत्री ब्रह्मचारी श्री प्रिय बलि सिंह जी आजीवन प्रधान मंत्री स्वीकार किये । अन्य पदाधिकारिकों का चुनाव आगामी दो वर्षों लिए पूर्ववत् ही हुआ। केवल कोषाध्यक्ष दो के स्थान एक ही मान्य हुये। सभा के पदाधिकारियोंका विवरण प्रकार है:—

संरक्षक

माननीय तिब्बत के दलाई लामा, माननीय भूटान हाराजा, माननीय सिकिम के महाराजा, माननीय भारत के प्रधानमंत्री, माननीय थाकिन नू बर्मा के प्रधान मंत्री, श्री राज्यपाल पश्चिमी बंगाल, श्रीयुत श्रीप्रकाश और सेठ श्रीयुगलकिशोर बिड़ला।

सभापति

माननीय डा० श्री श्यामाप्रसाद मुखर्जी

उप-सभापति

डा० पी० एन० बनर्जी (वाइस चान्सलर कलकत्ता विश्वविद्यालय), श्री सी० सी० विश्वास, सर ऊ त्विन, प्रो० तान् युन-शान, सर विनय प्रसाद सिंह राय, श्री राजा हेवावितारण, डा० नलिनाक्षदत्त।

प्रधान मंत्री

श्री देवप्रियवलि सिंह

उप-मंत्री

भिक्षु एम० संघरत्न

भिक्षु एन० जिनरत्न

कोषाध्यक्ष

डा० अरबिन्द बरुआ

प्रबन्ध समिति

सर्व श्रीयुत के० सिरिनिवास नायक स्थविर, बोधानन्द महास्थविर, डी० शासनश्री स्थविर, एन० सोमानन्द स्थविर, धम्मक्खन्ध स्थविर, भिक्षु शीलभद्र, पी० पञ्ञानन्द स्थविर, एच० सद्धातिस्स स्थविर, भिक्षु एच० धम्मानन्द, भिक्षु ऊ० धर्मरत्न, भिक्षु वाइ० धर्मालोक, भिक्षु ए० धम्माधार, भिक्षु जी० सरणङ्कर, भिक्षु के० महानाम, भिक्षु एन० धम्मानन्द, भिक्षु बी० ज्ञानविमल, भिक्षु के० सीवली, भिक्षु धर्मरक्षित।

डा० कालिदास नाग, हेमचन्द्र नस्कर, डा० एम० पी० चटर्जी, डी० एन० गांगुली, मेजर जनरल एन० सी० चटर्जी, साहु मणिहर्ष ज्योति, रायबहादुर एन० सी० घोष, डा० एम० आर० साफ्ट, ज्योतिष चन्द्र घोष, पण्डित शास्त्री।

सचित्र मासिक 'इतिहास'

की अपने पाठकों को नई अनुपम भेंट

पेशवा विशेषाङ्क

जनवरी सन् १९५१ में सजधज से प्रकाशित हो रहा है। ११२ पृष्ठों से ऊपर सुपाठ्य सामग्री तथा अनेकों रंगीन चित्रों के इस विशेषाङ्क का मूल्य केवल बारह आना रखा गया है।

१० ऐतिहासिक लेख, ५ सामयिक लेख, ४ कहानी एवं कविता से युक्त

भारत के अन्तिम हिन्दू सम्राट् होने के नाते भारतीय इतिहास में पेशवाओं का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इन्हीं के हाथों से सत्ता छीनकर अंग्रेजों ने भारत को गुलाम बनाया था। उपरोक्त अङ्क उनके विषय में पर्याप्त जानकारी से पूर्ण होगा।

विद्वत् समुदाय एवं जनता ने अगस्त में प्रकाशित 'बृहत्तर भारत विशेषाङ्क' का जो स्वागत किया है वह किसी से छिपा नहीं है। इस वर्ष की दूसरी भेंट 'पेशवा विशेषाङ्क' पाठकों को सादर समर्पित है।

विशेषाङ्क के लिए डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, क्यूरेटर एशियाटिक म्यूजियम; प्रो० अम्बाप्रसाद एम. ए., रामजस कालेज; प्रो० बलराज मधोक संपादकीय विभाग 'आर्गनाइजर'; श्री गुरुदत्त वैद्य; श्री भास्कर मिश्र, क्यूरेटर, नालन्दा; म्यूजियम; डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव एम. ए., पी. एच. डी, डी. लिट., आगरा कालेज; श्री तुरीय चैतन्य; स्वामी सत्यदेव परिव्राजक; श्री रामगोपाल विद्यालंकार; श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार; श्री शम्भूनाथ तिवारी प्रभृति विद्वानों की रचनायें प्राप्त हो चुकी हैं।

इतिहास के स्थायी ग्राहकों को यह अङ्क निःशुल्क भेंट किया जायगा।

अतः शीघ्र ही वार्षिक चन्दा ५) रु० भेजकर ग्राहक बन जाइये।

अभिकर्ता एवं विज्ञापनदाता शीघ्र पत्र-व्यवहार करें।

व्यवस्थापक—

'इतिहास' कार्यालय,

कटड़ा बड़ियान, दिल्ली।

नोट—पेशवा विशेषांक लगभग १८ जनवरी तक तैयार होकर ३१ जनवरी तक सभी अभिकर्ताओं एवं ग्राहकों के पास भेज दिया जावेगा।

"धर्मदूत"

का

आगामी विशेषाङ्क

बुद्ध जयन्ती के शुभावसर पर "धर्मदूत" का एक महत्वपूर्ण विशेषाङ्क आगामी अप्रैल मास में काशित होगा। इसमें कला, इतिहास, धर्म, दर्शन और पुरातत्व सम्बन्धी गवेषणापूर्ण अधिकारी विद्वानों के लेख प्रकाशित होंगे।

इस विशेषाङ्क

में

पढ़िये

- बौद्ध संस्कृति की अमर कहानियाँ,
- बौद्ध विभूतियों के निर्मल जीवन-चरित्र,
- बौद्ध दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन,
- भारत के उत्थान के साधन,
- भगवान् बुद्ध के अमर सन्देश,

इस विशेषाङ्क में कुछ पन्ने विज्ञापनों के लिए रखे जायेंगे। जो व्यापारी या अन्य संस्थायें इनमें विज्ञापन देकर लाभ उठाना चाहें, वे अभी से स्थान सुरक्षित करा लें।

लेखकों से भी निवेदन है कि वे अपनी रचनायें मार्च के प्रथम सप्ताह तक भेजने की कृपा करें।

हिन्दी में

बौद्ध धर्म सम्बन्धी एक मात्र मासिक-पत्र धर्मदूत ही है। आप आज ही ३) वार्षिक चन्दा भेज र ग्राहक बन इससे लाभ उठायें। विशेष जानकारी के लिए निम्नलिखित पते पर पत्र-व्यवहार करें :—

व्यवस्थापक,
"धर्मदूत"
सारनाथ, बनारस।

ग्र॰ ५६३१

रजिस्ट्री की संख्या ए ७९०

हिन्दी में बौद्ध-धर्म की पुस्तकें

भगवान् बुद्ध का जीवन चरित्र	२)
बुद्ध और बौद्ध धर्म - आचार्य श्रीचतुरसेन शास्त्री	३)
दीघनिकाय—महापण्डित राहुल सांकृत्यायन	६)
मज्झिम निकाय— ,, ,,	८)
विनयपिटक— ,,	८)
पालि महाव्याकरण- भिक्षु जगदीश काश्यप	५।।)
धम्मपद - अवधकिशोर नारायण	१।।)
भगवान् बुद्ध की शिक्षा - श्री देवमित्त धर्मपाल	।-)
बोधिद्रुम (कविता) - सुमन वात्स्यायन	।=)
तथागत - आनन्द कौसल्यायन	१।।)
बुद्ध और उनके अनुचर - आनन्द कौसल्यायन	१।।।)
पञ्चशील और बुद्ध-वन्दना— बोधानन्दस्थविर	=)
भगवान् हमारे गौतम बुद्ध—प्रो॰ मनोरञ्जन प्र॰	-)
भगवान् बुद्ध - आनन्द कौसल्यायन	=)
जातक भाग १, २ और ३ ,,	७।।), ७।।), १०)
बुद्ध चित्रावली	७।।)
सरल पालि शिक्षा - भिक्षु सद्धातिस्स	१।।)
पालि धातुरूपावलि	।।=)
बौद्ध धर्म सवाल-जवाब (उर्दू में)	।=)
सुत्तनिपात - भिक्षु धर्मरत्न	१)
खुद्दकपाठ - ,,	।)
बौद्ध कहानियाँ—व्यथित हृदय	१।।)
बुद्धकीर्त्तन—प्रेमसिंह चौहान	१।।)
बुद्धार्चन - प्रेमसिंह चौहान	।)
बुद्ध भगवान् और छत्ता - जगतनारायण	।=)
भगवान् बुद्ध ने कहा था—सुमन वात्स्यायन	।=)
बौद्धचर्य्या-पद्धति—भदन्त बोधानन्द	१।।)
श्री गौतमबुद्ध जी—जगतनारायण	।=)
भगवान् गौतम बुद्ध - स्व॰ पं॰ ईश्वरी प्र॰ शर्मा	।।=)
बुद्धदेव - शरत कुमार राय	१।।।)
सारिपुत्र तथा मौद्गल्यायन - पं॰ विश्वनाथ शास्त्री	।।।)
अम्बपाली - बेनीपुर	२)
जो लिखना पड़ा—आनन्द कौसल्यायन	३)
गौतमहंस किसका ?	।=)
वार्तिकालंकार - राहुल सांकृत्यायन	३)
तथागत का प्रथम उपदेश - भिक्षु धर्मरक्षित	।)
बौद्ध-शिशुबोध— ,, ,,	।)
तेल कटाह गाथा— ,, ,,	।)
सारनाथ-दिग्दर्शन— ,, ,,	।)
कुशीनगर का इतिहास — ,, ,,	२।।)
प-लि-पाठ-माला— ,, ,,	१)
जाति भेद और बुद्ध— ,, ,,	।।)
ब्राह्मणधम्मिय सुत्त— ,, ,,	=)
पालि जातकावाली - बटुकनाथ शर्मा एम॰ ए॰	२)
बुद्ध-शतकम्—आनन्द कौसल्यायन	।)
बुद्धवचन— ,, ,,	।।)
महापरिनिर्वाण सुत्त—भिक्षु ऊ कित्तिमा	१)
बुद्ध चरित प्रथम और दूसरा भाग,	२।।), १।।), ४)
हर्षचरित (दो भाग) सूर्यनारायण चौधरी	३)
बौद्ध-दर्शन मीमांसा—बलदेव उपाध्याय	६)
भारतीय दर्शन— ,, ,,	८)
अभिधम्मत्थ सङ्गहो बौद्ध-दर्शन	२।।)
सौन्दरनन्द काव्य—सूर्यनारायण चौधरी	३)
ब्रह्मजाल सुत्त—(मतों का जंजाल)	।)

सूचीपत्र के लिए =) की टिकट के साथ लिखें।

प्राप्ति-स्थानः—

महाबोधि पुस्तक भण्डार, सारनाथ, बनारस।

प्रकाशक—धर्मालोक, महाबोधि सभा, सारनाथ, (बनारस)
मुद्रक—ओम् प्रकाश कपूर, ज्ञान मण्डल यन्त्रालय, कबीर चौरा, बनारस।

25

Compiled
1999-2000